RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 अंक : 19, वर्ष : 10, जनवरी–जून 2017

देश–देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की
अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : 10 अंक : 19 जनवरी–जून 2017

प्रधान सम्पादक

मनोज कुमार

पूर्व सदस्य

उ.प्र. माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड, इलाहाबाद (उ. प्र.)

सम्पादक

डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

अध्यक्ष – हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग

डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास, विश्वविद्यालय, लखनऊ, 226 017 (उ. प्र.)

सम्पर्क – 07607782917, 09415924888

Email : dr.virendrayadav@gmail.com • Email : virendra_kritika@rediffmail.com

Email : kritika_orai@rediffmail.com

Webside : www.kritika.org.in

सह–सम्पादक

नीलम यादव

303 तीसरा तल, टाईप फाइव, विश्वविद्यालय परिसर

डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास, विश्वविद्यालय, लखनऊ – 226 017

प्रबन्धन

आराधना ब्रदर्स

(प्रकाशक एवं वितरक)

124 / 152– सी ब्लाक, गोविन्दनगर, कानपुर–208 006, उ.प्र.

दूरभाष –09935007102, 05122651490

Email : aradhanabooks@rediffmail.com

Webside :www.kritika.org.in

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 अंक : 19, वर्ष : 10, जनवरी–जून 2017

देश–देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की
अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : 10 अंक : 19 जनवरी–जून 2017

प्रधान सम्पादकीय कार्यालय

नीलम यादव

303 तीसरा तल, टाईप फाइव, विश्वविद्यालय परिसर
डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास, विश्वविद्यालय, लखनऊ, उ.प्र.–226017
सम्पर्क – 07607782917, 09415924888
Email : dr.virendrayadav@gmail.com • Email : virendra_kritika@rediffmail.com
Email : kritika_orai@rediffmail.com
www.kritika.org.in

प्रबन्धन

आराधना ब्रदर्स

(प्रकाशक एवं वितरक)

124/152– सी ब्लाक, गोविन्दनगर, कानपुर–208 006, उ.प्र.
दूरभाष –09935007102, 05122651490
Email : aradhanabooks@rediffmail.com • Email : kritika_orai@rediffmail.com

क्षेत्रीय प्रधान सम्पादकीय कार्यालय

डॉ. कुमार बीरेन्द्र
हिन्दी विभाग
जी.एल.ए. कालेज, नीलाम्बर पीताम्बर विश्वविद्यालय,
मोहिनी नगर पलामू, झारखण्ड–822101
सम्पर्क–09955971398
Email : kumarbirandra496@gmail.com

डॉ. सुरेश एफ. कानडे
प्लाट नं. 48, साईं बंगला, प्रोफेसर कॉलोनी,
विजडम हाईस्कूल के पीछे, रामेश्वर नगर,
गंगापुर रोड, नासिक 422013 (महाराष्ट्र)
सम्पर्क–09422768141
Email : sureshkande2009@rediffmail.com

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 अंक : 19, वर्ष : 10, जनवरी–जून 2017

देश–देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : 10 अंक : 19 जनवरी–जून 2017

सामान्य अंक	:	60.00 रुपये	
इस अंक की सहयोग राशि	:	400.00 रुपये	
यू. एस. 25 $		यूरो 40 $	
व्यक्तिगत सदस्यों के लिये			
वार्षिक सदस्यता	:	300 रुपये	(डाक व्यय सहित)
पाँच वर्ष के लिये	:	3000 रुपये	(डाक व्यय सहित)
आजीवन	:	6500 रुपये	(डाक व्यय सहित)
संस्थाओं के लिये			
प्रति अंक	:	500 रुपये	(डाक व्यय सहित)
वार्षिक सदस्यता	:	1000 रुपये	(डाक व्यय सहित)
पाँच वर्ष के लिये	:	5000 रुपये	(डाक व्यय सहित)
आजीवन	:	10000 रुपये	(डाक व्यय सहित)

विषेष : सभी भुगतान नकद/आर.टी.जी.एस./बैंक ड्राफ्ट/चेक 'सम्पादक कृतिका' के नाम Payable at Lucknow भेजें। नकद जमा (R.T.G.S.) हेतु भारतीय स्टेट बैंक – मुख्य शाखा लखनऊ के A/C 30358537228 IFSC No. - SBIN0000125 में जमा कर सकते हैं। (नकद जमा हेतु बैंक कमीशन 50 रु. अतिरिक्त जमा करें।)

- ☞ विधिक वादों के लिये क्षेत्र, उरई न्यायालय के अधीन होंगे।
- ☞ कृतिका में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से सम्पादक मण्डल (कृतिका परिवार) की सहमति अनिवार्य नहीं है।
- ☞ शोध पत्रिका में प्रकाशित सामग्री के पुनर्प्रकाशन के लिये सम्पादक मंडल की लिखित अनुमति अनिवार्य है। कृतिका के सम्पादन, प्रकाशन व प्रबंधन से जुड़े समस्त पद अवैतनिक हैं।

प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव द्वारा महक कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिण्टर्स, 15, आजाद नगर, उरई (जालौन) से मुद्रित करवाकर 1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) से प्रकाशित।

सम्पादक–डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0975-0002 अंक : 19, वर्ष : 10, जनवरी–जून 2017

कृतिका : एक परिचय

शोध एवं अनुसंधान गतिविधियों के एकीकृत अध्ययन के लिये युवा शोधार्थियों, अध्येताओं को शोध के नवीन अवसरों को उपलब्ध कराने हेतु कृतिका शोध पत्रिका की परिकल्पना की गई। यह एक अन्तर्राष्ट्रीय अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका है। कृतिका का सम्पादक मण्डल देश एवं विदेश के विभिन्न राज्यों के विषय विशेषज्ञों की सहभागिता के आधार पर कार्य कर रहा है। मानविकी एवं समाज विज्ञान में शोध के नवीन अवसरों की भागीरथी प्रवाहित करने के उद्देश्य से सहकारिता के आधार पर इस शोध पत्रिका का प्रचार सम्पूर्ण भारत के साथ–साथ सात समुन्दर पार यू. एस. ए., लंदन, आस्ट्रेलिया, जापान, जर्मनी, मॉरीशस आदि के शोध निदेशक एवं शोधार्थियों का कृतिका में रचनात्मक सहयोग प्राप्त है।

कृतिका शोध पत्रिका का एक दूसरा उद्देश्य मानविकी एवं समाज विज्ञान के अलावा विषयों की सीमाओं से हटकर स्वतंत्र रूप से गहन एवं मौलिक शोध की प्रवृत्ति को बढ़ावा देना है ताकि शोध पत्र न केवल गम्भीर अध्येताओं के लिये उपयोगी हो ; बल्कि यह जनसामान्य में नवीन जानकारी, शोध के प्रति उत्सुकता एवं जागरूकता का परिचायक भी सिद्ध हो। साथ ही यह व्यावहारिक धरातल पर उपयोगी भी हो। कृतिका में इन्हीं विचारों को दृष्टिगत रखते हुये साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान के विषयों के अलावा हम विज्ञान एवं अन्य विषयों के शोध पत्र भी आमंत्रित करते हैं। उत्तर आधुनिकता एवं भूमण्डलीकरण के इस दौर में वर्तमान की ज्वलंत समस्याओं से सम्बन्धित विषयों पर समय–समय पर कृतिका परिवार विषय–विशेष पर विशेषांक केन्द्रित अंक भी निकलता है जिसकी सूचना कृतिका शोध पत्रिका में एवं अलग से पत्रों के माध्यम से शोध अध्येताओं एवं जिज्ञासु युवा रचनाकर्मियों को समय–समय पर दी जायेगी।

सामान्य निर्देश

रचनाकारों/शोध अध्येताओं से विनम्र अनुरोध :

- ☞ कृतिका साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान का एक अर्द्धवार्षिक शोधपरक अनुष्ठान है जो युवा अध्येताओं, शोधार्थियों एवं खोजकर्ताओं का अपना मंच है। अपने मौलिक एवं नवीन अन्वेषणात्मक रचनाओं के सहयोग से इसे सम्बल प्रदान करें।
- ☞ मानविकी एवं समाज विज्ञान से सम्बन्धित सभी विषयों की मौलिक रचनायें विषय विशेषज्ञों की सहमति से ही इसमें प्रकाशित की जाती हैं।
- ☞ कृतिका में प्रकाशित शोध पत्र देश एवं विदेश के विषय विशेषज्ञों के पास चयन के लिए प्रेषित किये जाते हैं। इसलिये शोध पत्र/आलेख लिखते समय संदर्भों का स्पष्ट उल्लेख करें, पुस्तक का संदर्भ, पत्र–पत्रिका का संदर्भ, प्रकाशन, वर्ष एवं संस्करण का उल्लेख आवश्यक है। शोध पत्र/आलेख की शब्द सीमा दो हजार शब्दों से अधिक नहीं होनी चाहिये। यदि शब्द सीमा अधिक है तो सम्पादक मण्डल को उसमें संशोधन, संक्षिप्तीकरण का अधिकार सुरक्षित रहेगा।
- ☞ कृपया अपनी शोध रचनाएं एवं आलेख प्रेषित करते समय अपना संक्षिप्त आत्मवृत्त, छायाचित्र प्रेषित करें। रचना के शोध संक्षेप सार का उद्देश्य, वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता एवम् उपयोगिता को अवश्य दर्शायें।
- ☞ कृतिका में पुस्तक समीक्षा के लिये चर्चित एवं महत्वपूर्ण पुस्तकों/पत्रिकाओं पर समीक्षात्मक आलेख आमंत्रित हैं। समीक्षात्मक आलेख के साथ पुस्तक/पत्रिका की दो प्रतियां रजिस्टर्ड डाक से प्रेषित करें।
- ☞ स्तरीय पुस्तक की समीक्षा के लिये समीक्ष्य पुस्तक की दो प्रतियों के साथ लेखक अपना संक्षिप्त आत्मवृत्त एवं छायाचित्र तथा पुस्तक का संक्षेपण पंजीयन डाक से सम्पादक के पते से प्रेषित करें। समीक्षा की स्थिति में शोध पत्रिका का अंक सम्बन्धित लेखक के पते पर भेजा जायेगा।
- ☞ किसी भी दशा में शोध पत्र/आलेख की प्रति वापस (स्वीकृति/अस्वीकृति की स्थिति में) नहीं प्रेषित की जा सकती है। इसलिये कृपया एक प्रति अपने पास सुरक्षित अवश्य रखें।
- ☞ कृतिका एक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका है। कृपया रचना प्रेषित करते समय यह भलीभाँति तय कर लें कि यह शोध पत्र/आलेख/रचना आपकी अपनी मौलिक कृति है। और कृतिका के मापदण्डों के अनुकूल है कि नहीं। कृतिका परिवार आपके नये अकादमिक सुझावों एवं प्रतिक्रियाओं का सदैव स्वागत करेगा।
- ☞ रचनायें कम्प्यूटर से मुद्रित अथवा कृति देव 10 में 14 फान्ट साइज में MS-Word Software में टाइप करके ई–मेल करें या साथ में सीडी एवं रचना का प्रिन्ट अवश्य भेजें।
- ☞ लेख छापने का कोई शुल्क नहीं लिया जाता है।

–कृतिका परिवार

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 अंक : 19, वर्ष : 10, जनवरी–जून 2017

देश–देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : 10 अंक : 19 जनवरी–जून 2017

अनुक्रमणिका

शीर्षक	लेखक	पृ.सं.
सम्पादकीय......		i-ii
सुलगते सवाल		
1. डिजिटल इंडिया की परिकल्पना और चुनौतियाँ	डॉ0 अनुभा श्रीवास्तव	01
2. भूमंडलीकरण के तहत लोकतंत्र का भविष्य	डॉ0 अनीता यादव	06
3. सूचना का अधिकार : मुकम्मल राह की तलाश	डॉ0 गीता यादव	09
4. असन्तुलित पर्यावरण : रचियता कौन ?	डॉ0 अंजना वर्मा	12
5. अल्पसंख्यक एवं मानवाधिकार	डॉ0 अनुपमा यादव, डॉ0 ॠतु व्यास	16
6. स्वातंत्र्य के रूप में मानवाधिकार	डॉ0 जितेन्द्र यादव	19
भारतीय संस्कृति में चिन्तन के विविध धरातल		
7. प्राचीन समय में संस्कारों की भूमिका	डॉ0 सुनीता वर्मा	23
8. बौद्ध धर्म में अहिंसा : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	आलोक कुमार	26
9. बुद्धचरितम् महाकाव्य में नक्षत्र एवं दिशाओं का महत्त्व	डॉ0 संदीप कुमार मिश्र	29
10. वैदिक साहित्य के सांस्कृतिक विवेचन में रामविलास शर्मा का योगदान	डॉ0 आनन्द कुमार यादव	33
11. भक्ति काव्य में लोक धर्म	डॉ0 दीपिका कटियार	36
12. स्वामी विवेकानन्द के वेदान्त सम्बन्धी विचारों का मूल्यांकन	नीलम देवी यादव	40
आधी दुनिया का स्याह यथार्थ		
13. महाभारत में वर्णित नारी के विविध रूप और वर्तमान में उसकी प्रासंगिकता	डॉ0 बबिता सिंह	46
14. भारतीय संस्कृति में नारी	डॉ0 अजिता दीक्षित	51
15. वैदिक साहित्य में नारी	डॉ0 शिवानी शुक्ला	54

16. भूमण्डलीकरण का प्रभाव और महिलाएँ डॉ0 गुलाब मीना 56
17. महिलाओं के संदर्भ में मानवाधिकारों के यथार्थ का अध्ययन नसीम अख्तर 59

हाशिए का विमर्श : सघर्ष और मुक्ति के नवीन क्षितिज

18. भारतीय राजनीति और दलित चेतना आजाद प्रताप सिंह 66
19. डॉ0 भीमराव अम्बेडकर के दलितोद्धार संबंधी विचारों की प्रासंगिकता डॉ0 जय सिंह 69

भारत में पर्यावरण एवं जलवायु परिवर्तन के विनाशकारी खतरे

20. हिन्दी कविता में पर्यावरण की चिंता डॉ0 ममता सिंह 73
21. सामाजिक परिस्थितिकी, पर्यावरण संरक्षण और हम डॉ0 उत्तरा यादव 76
22. जलवायु परिवर्तन और भारतीय प्रयास रमन प्रकाश 83

भारत में शिक्षा के उभरते क्षितिज और गहराती चुनौतियाँ

23. वैदिक कालीन शिक्षा की वर्तमान में प्रासंगिकता डॉ0 नीलम सिंह 86
24. भारतीय शिक्षा में नवाचार – एक अध्ययन संदीप कुमार सिंह, जयन्ती सिंह 90

साहित्य का समकालीन विमर्श

25. उत्तर आधुनिकतावाद : चिन्तन के क्रमिक आयाम डॉ0 गीता शुक्ला 94
26. हिन्दी साहित्य में साम्प्रदायिक सौहार्द की भावना डॉ0 सुमन सिंह 98
27. उलटवांसी शैली और संत साहित्य डॉ0 मंजुला श्रीवास्तव 103
28. राष्ट्रीय आंदोलन पर हिन्दी काव्य का प्रभाव डॉ0 श्याम शंकर सिंह 107
29. हिन्दी साहित्य में दलित कहानियों का स्याह यथार्थ डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव 121
30. शिवमूर्ति की कहानियों में स्त्री चेतना डॉ0 सियाराम 128
31. कवि गंग की काव्य रचनाओं का अनुशीलन डॉ0 आलोक कुमार सिंह 135
32. निधान गिरि' कृत 'भक्ति मनोहर' महाकाव्य एक अध्ययन डॉ0 अनामिका द्विवेदी 140
33. काव्य सर्जन में मूल कारण डा0 तरूण कुमार शर्मा 143
34. जन संवेदना के कवि नागार्जुन डॉ0 रेखा वर्मा 148
35. हरिकृष्ण 'प्रेमी' के नाटकों में शब्द योजना डॉ0 आशा वर्मा 151
36. भीष्म साहनी के नाटकों में सामाजिक मूल्य बोध गिरजेश कुमार 158
37. सामाजिक परिप्रेक्ष्य में लघुकथाओं का वैशिष्ट्य डॉ0 अलका द्विवेदी, डॉ0 रानी अग्रवाल 160
38. साहित्य और मानवता डॉ0 ज्योति वर्मा 165
39. मेवाती लोकगीत : लोक जीवन और संस्कृति सीमा खान 169
40. मुस्लिम कथाकारों का नारी विमर्श यतीन्द्र सिंह कुशवाहा 171
41. नाटक का विधागति वैशिष्ट्य : उसकी रंगमंचीयता डॉ0 रेखा पतसारिया 175

भारत के विकास में अग्रज एवं अनुज पीढ़ी का योगदान

42. स्वामी विवेकानन्द के दार्शनिक विचारों का विश्लेषण नीलम देवी यादव 177

43.	आर्थिक विकास का गाँधीवादी मॉडल एवं उसकी वर्तमान में प्रांसगिकता	डॉ0 आशुतोष पाण्डेय	186
44.	वर्तमान परिप्रेक्ष्य में गाँधी जी के सामाजिक दर्शन का पुनर्मूल्यांकन	डॉ0 अलका मिश्रा,दीपाली गुप्ता	192
45.	डॉ0 अम्बेडकर के सामाजिक विचार : एक विवेचना	डॉ0 शकुन्तला	196
46.	रवीन्द्रनाथ टैगोर के दार्शनिक चिन्तन की वर्तमान मे प्रासंगिकता	डॉ0 सोमेश नारायण सिंह, डॉ0 बृजेन्द्र कुमार सिंह	200
47.	पं0 नेहरू का वैज्ञानिक दृष्टिकोण और वर्तमान भारत	डॉ0 प्रतिमा गंगवार	206
48.	कालिदास कृत काव्यों में अप्रस्तुत विधान की विद्यमानता	डॉ0 पूजा श्रीवास्तव 'विद्यालंकार'	209
49.	सामाजिक चेतना से अनुप्राणित निराला	डॉ0 गरिमा जैन	216
50.	जड़भरत जी का जीवन चरितम	राखी राजपूत	219

भारत में समकालीन चिन्तन के विविध आयाम

51.	भारतीय विदेश नीति : एक अवलोकन	मनोज कुमार यादव	223
52.	अरे, इन दोऊन राह न पाई	डॉ0 ब्रजेश कुमार त्रिपाठी	227
53.	उदर रोगों में पथ्य अपथ्य का महत्व	डॉ0 वीरेन्द्र कुमार टम्टा	229
54.	इटावा जनपद की भौगोलिक पृष्ठभूमि	डॉ0 बिमल कान्त द्विवेदी	233
55.	समकालीन समस्याएँ एवं आधुनिक संस्कृत साहित्य	डॉ0 अनुभा बाजपेयी	239
56.	उत्तर प्रदेश में निर्धनता निवारण एवं ग्रामीण विकास	डॉ0 राहुल कुमार मिश्रा	242
57.	पं. दीनदयाल उपाध्याय और अर्थनीति	डॉ0 बृजेन्द्र सिंह बौद्ध	246
58.	मन : प्रदूषण तथा वेद	डॉ0 विजय खरे	252

भारत के विकास में प्रौद्योगिकी एवं पर्यटन की उपादेयता

59.	ग्रामीण क्षेत्रों में लचर शिक्षा व्यवस्था तथा शैक्षिक स्तर के उत्थान में पुस्तकालयों की भूमिका	डॉ0 आलोक श्रीवास्तव	255
60.	पुस्तकालयों में सूचना प्रौद्योगिकी का बढ़ता प्रभाव	प्रेम प्रकाश यादव	258
61.	पर्यटन उद्योग में ऐतिहासिक स्थलों की उपादेयता	डॉ0 संजू	261
62.	उत्तर प्रदेश में लघु उद्योगों की स्थिति का मूल्यांकन	मोनिका मिश्रा	266
63.	इण्डियन टेलीफोन इण्डस्ट्रीज लिमिटेड रायबरेली में मानव संसाधन की प्रमुख चुनौतियां एवं समाधान : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	डॉ0 ऊषा मौर्या	269

पुस्तक समीक्षा खण्ड

❖	डॉ0 रामकमल राय : सृजन सरोकार	डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव	274
❖	भ्रष्टाचार विश्वकोश	डॉ0 उत्तरा यादव	275
❖	हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श के विविध सरोकार	वन्दना पाण्डेय	276
❖	स्त्री विमर्श का समकालीन परिदृश्य : दशा एवं दिशा	डॉ0 सुरेश एफ. कानडे	277
❖	भारत में समाजवादी विमर्श के विविध आयाम	नीलम देवी यादव	278
❖	नई सदी का भारत : मुद्दे विकल्प और नीतियाँ	डॉ0 विजय कुमार वर्मा	279
❖	हिन्दी साहित्य में समकालीन परिदृश्य के विविध धरातल	नन्हकू प्रसाद यादव	280

सम्पादकीय......

आज का युग भौतिकता का युग है। इस भौतिकता ने घोर प्रतिस्पर्धा और अतिव्यस्तता को जन्म दिया है। मनुष्य के पास सुख के साधन तो बहुत हैं पर शांति खो गयी है। उसके जीवन से आनन्द पलायन कर गया है। आज के युग में तनाव बढ़ा है। यह तनाव नर से नारी और बाल से वृद्ध तक व्याप्त है। मनोचिकित्सयालयों की बाढ़ बढ़ी है। तनाव और स्वस्थ जीवन दृष्टि के अभाव ने हताशा–निराशा,उन्माद, अवसाद, अनिद्रा, अकेलेपन, हिंसा, आत्महत्या आदि नकारात्मक सोच को जन्म दिया है। हत्या और आत्महत्याओं की विगत कुछ वर्षों में जो वृद्धि हुई है वह अकल्पनीय और चिंताजनक है।

मनोचिकित्सक इसके मूल में भौतिक सोच और भौतिकता के आग्रह को मान रहे हैं। सभ्य और सम्पन्न समाज में यदि ये रोग व्याप्त हैं तो निश्चित ही यह भौतिकता के खोखलेपन को ही उजागर कर रहा है। मानव ने चन्द्रमा,मंगल ग्रह तक पहुँच बना ली है, उसने आकाश को भी मुट्ठी में कर लिया है लेकिन उसके हाथ से आनन्द का सूत्र फिसल गया है। जीवन की सारी क्रियात्मकता का उद्देश्य सुख–शांति और आनन्द की तलाश है और यह आनन्द कोई दे सकता है तो वह है भारत का आध्यात्मिक दर्शन। भारत भूमि चिन्तन की उर्वरा भूमि है। सहस्राब्दियों से निरन्तर जीवन को सार्थक–सुख देने का चिन्तन ही यहाँ के दार्शनिकों एवं चितंकों का अभीष्ट रहा है। मनुष्य की मानसिक अवस्था एवं मानसिक रोगों का सूक्ष्म अध्ययन एवं विवेचन करके उन्होंने जो उपाय ढूँढ़े हैं वह विचार–औषधि भारतीय दर्शन में निहित है।

बेशक जहाँ एक ओर भारत निरंतर विकास के नये सोपान चढ़ता जा रहा है और वर्तमान समय में मानव–समाज पहले की अपेक्षा अधिक शिक्षित, जागरूक एवं वैज्ञानिक हो गया है। लेकिन आजादी मिलने से पहले जो स्वप्न देशवासियों ने संजोए थे, वह स्वातन्त्र्योत्तर भारत में राजनीति के चहुँमुखी पतन होने से सब ध्वस्त होते जा रहे हैं अर्थात उसने नैतिकता के सभी मूल्य ध्वस्त कर दिये हैं । अब जनता के सभी मसले चाहे वे धर्म से जुड़े हों या पेट से वोट की राजनीति तय करती है। सत्ता द्वारा भ्रष्टाचार और दुःश्चरित्रता का खुला संरक्षण, अपराध ा तथा राजनीति के गठबन्धन ने आम जन में असहायता एवं असुरक्षा की भावना भर दी है। वोट की राजनीति ने गुटबन्दी एवं जातिवाद का भरपूर पोषण किया है। जनता का विश्वास सभी प्रकार की संवैधानिक रक्षात्मक इकाइयों से उठ गया है। जनता को राजनीतिक कुचक्रों ने इतना छला है कि वह राजनेताओं पर विश्वास करने को तैयार नहीं है। हकीकत यह है कि यह दौर राजनीति में मूल्यों के घोर पतन का युग है।

जनतंत्र को भगवान का दर्जा मिलना अर्थात देवतुल्य?राजनेताओं के बीच कुर्सी की आपाधापी अत्यन्त घृणित और भ्रष्ट होती जा रही है। अनेक प्रकार की संर्कीणताएँ एवं अन्धविश्वास राजनेताओं के जीवन का अनिवार्य हिस्सा बन गये हैं। जिससे कर्मकाण्ड एवं ज्योतिषियों का महत्व बढ़ रहा है और जिसका महत्व इस लोकतांत्रिक व्यवस्था में होना चाहिए अर्थात् आम आदमी महत्वहीन होकर या तो परिदृश्य से गायब है या फिर राजनीतिक स्वार्थपूर्ति हेतु इस्तेमाल होने वाली वस्तु बनकर रह गया है। वर्तमान भारतीय राजनीति के लोकतांत्रिक चेहरे के पीछे छिपे उसके असली चेहरे–सत्ता की हवस, जातिवाद, साम्प्रदायिकता, भ्रष्टाचार, गुण्डागर्दी को बेनकाब करने का साहसिक एवं दायित्वपूर्ण कार्य साहित्य के सृजन द्वारा किया जा रहा है। वर्तमान भारत की राजनीति सत्ता प्रतिष्ठानों पर कब्जा करने की राजनीति बन गई है और आजाद भारत में जिस राजनीतिक व्यवस्था की परिकल्पना स्वाधीनता सेनानियों ने की थी वह कहीं दिखाई नहीं देती। इस दृष्टि से उसकी सफलता भी संदिग्ध प्रतीत होती है। और इन चुनावों में सत्तापक्ष और प्रतिपक्ष दोनों की ही प्रतिष्ठा दाँव पर लगी है और इसी झूठी प्रतिष्ठा की खातिर शातिर राजनेता किस तरह से इसको भुनाना चाहते हैं और माहौल को अपने पक्ष में मोड़ने के प्रयास में किस तरह षड्यन्त्र रचते हैं आज के राजनेताओं की सत्ता लोलुपता एवं संवेदनहीनता के यह कुछ उदाहरण मात्र हैं। हाँलाकि

इधर मीडिया ने भ्रष्ट राजनीतिक संस्कृति को बेनकाब करने का महत्वपूर्ण प्रयास किया है। इसमें व्याप्त राजनीतिक परिवेश लज्जित करने वाला है। लेकिन समकालीन राजनीतिक बोध और उससे प्रभावित विभिन्न वर्गों की मानसिकता के विश्लेषण का कार्य जितना होना चाहिए, वह उतनी शिद्दत के साथ नहीं हो पा रहा है।

यदि इन सबकी पृष्ठभूमि में जाएं तो इसकी स्पष्ट तस्वीर बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में उदारीकरण की प्रक्रिया की शुरूआत से होनी शुरू हो गयी थी। उदारीकरण एक ऐसा अजूबा है, जो हर चीज को बाजार के आधार पर तोलकर , खरीदने, बेचने का काम करता है ? जिसके लिए कार्लमार्क्स ने कहा था कि पूँजीपति वर्ग ने जहाँ पर भी उसका पलड़ा भारी हुआ, वहां सभी सामंती, पितृसत्तात्मक संबंधों का अंत कर दिया। उसने मनुष्य को अपने स्वाभाविक बड़ों के साथ बांधे रखने वाले नाना प्रकार के सामंती संबंधों को निर्ममता से तोड़ डाला, और नग्न स्वार्थ के नकद पैसे कौड़ी के हृदय शून्य व्यवहार के सिवा मनुष्यों के बीच और कोई दूसरा संबंध बाकी नहीं रहने दिया। मनुष्य के वैयक्तिक मूल्य को उसने विनिमय मूल्य बना दिया है और पहले के अनगिनत अनहन्तान्तरणीय अधिकार पत्र द्वारा प्रदत्त स्वातंत्र्यता की जगह अब उसने उस एक अंतःकरण शून्य स्वातंत्र्य की स्थापना की है, जिसे मुक्त व्यापार कहते हैं। संक्षेप में धार्मिक और राजनीतिक भ्रमजाल के पीछे छिपे शोषण की स्थापना की है। यह मुक्त बाजार ही उदारीकरण है और यही भूमंडलीकरण है, जिसके दुर्गुणों से कार्लमार्क्स ने डेढ़ सौ वर्ष पहले सचेत किया था।

इक्कीसवी सदी ज्ञान की सदी है और इस सदी में बौद्धिक शक्ति ही किसी भी देश के विकास का पैमाना है। भारतीय अर्थव्यवस्था का संयुक्त राज्य अमेरिका,चीन एवं जापान के बाद विश्व में चौथा स्थान है और आर्थिक विकास की दृष्टि से चीन के बाद विश्व की दूसरी बड़ी अर्थव्यवस्था है। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि भारतीय दर्शन की प्रासंगिकता वर्तमान परिप्रेक्ष्य मे खरी उतरती है और आज भारत का नाम सर्वोच्चता प्राप्त किये हुए है और इस सर्वोच्चता का मूल आधार उसका समाजिक दर्शन ही है।

स्पष्ट है कि परिवर्तन की आँधी से हम लड़ नहीं सकते। बाजारवाद और प्रोद्यौगिकी जैसे इसके अत्याधुनिक कारकों को थोड़ा झुककर अपने ऊपर से गुजर जाने देना ही समझदारी है और यही सृजन एवं समय का तकाजा होना चाहिए। क्योंकि श्रम बदलता है संस्कृति में। और संस्कृति भाषा में और भाषा एक मानवीय विप्लव में........ क्योंकि चीजों का अन्त चीजों की शुरूआत से जुड़ा है।

एक अच्छे शोधकर्ता को सबसे पहले अपने आस–पास एवं वातावरण में हो रहे परिवर्तन को देखना चाहिए, फिर विचार करना चाहिए कि प्रस्तुत समस्या जनसामान्य के लिये कितनी उपयोगी और हानिकारक हो सकती है वह भी व्यापकता एवं उपयोग की दृष्टि से। तभी उसे कलम उठानी चाहिए क्योंकि समस्या पैदा करना एक शोधकर्ता/सृजनशील व्यक्ति का काम नहीं बल्कि समस्या से रूबरू कराना और उसका कैसे समाधन किया जाये जो सम्पूर्ण मानवता के लिये उपयोगी हो। यह सब विषय उसके लेखन में/शोध में उजागर होने चाहिये तभी उस लेखन की उपादेयता एवं उस लेखक को समाज का पथ प्रदर्शक कहा जायेगा।

कृतिका के नियमों के अनुरूप वर्तमान की ज्वलंत समस्याओं से सम्बन्धित विषयों पर विषय–विशेष पर विशेषांक केन्द्रित अंक निकालना सुनिश्चित है। विषय–विशेष पर केन्द्रित अंक को ध्यान में रखते हुये हम कृतिका का अगला जुलाई–दिसम्बर 2017 अंक समाजवादी चिंतक और साहित्यकार डॉ0 रामकमल राय की सृजन–धर्मिता के रूप में केन्द्रित करने जा रहे हैं।

इस विषय पर विस्तृत सूचना पत्रिका के अन्दर के पृष्ठों एवं अन्त के कवर पृष्ठ पर अंकित है। कृपया प्रमुख बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुये अपने गम्भीर अध्ययन से सम्बन्धित शोधपरक एवं मौलिक रचना सामग्री भेजकर सहयोग प्रदान करने की कृपा करें।

— सम्पादक मण्डल

1

डिजिटल इंडिया की परिकल्पना और चुनौतियाँ

डॉ0 अनुभा श्रीवास्तव
असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान
हे0नं0ब0रा0स्ना0महा0, नैनी, इलाहाबाद

भारत को डिजिटल इंडिया माध्यम से जोड़ने के प्रयास के रूप में डिजिटल इंडिया कार्यक्रम की शुरूआत 1 जुलाई सन् 2015 ई0 को वर्तमान केन्द्र सरकार द्वारा की गई। इस अभियान का मकसद भारत को एक इलेक्ट्रॉनिक अर्थव्यवस्था में बदलना है। डिजिटल इंडिया की अवधारणा एक भविष्योन्मुखी अवधारणा है। यह अवधारणा एक ऐसे डिजिटली भारत की संकल्पना पर आधारित हैं– जहाँ सवा अरब नागरिकों को इंटरनेट से जोड़ा जाएगा, सभी सरकारी सेवाएं इलेक्ट्रॉनिक रूप से (इंटरनेट) तथा मोबाइल उपकरणों के माध्यम से नागरिकों तक पहुँचेगी, शिक्षा का डिजिटलीकरण करके दूरदराज के क्षेत्रों तक पहुँचाया जाएगा, दूरस्थ क्षेत्रों के लोग ई–हेल्थ केयर के द्वारा स्वास्थ्य सुविधाओं का लाभ ले सकेंगे, आदि। इस प्रकार यह इंटरनेट से जुड़े हर नागरिक को एक सबल–सक्षम–समर्थ नागरिक के रूप में बदल देने का इरादा रखती है। सरकार की यह मंशा है कि सभी सरकारी विभाग और भारत की जनता एक दूसरे से डिजिटल रूप से या इलेक्ट्रॉनिक तौर पर जुड़े ताकि प्रभावी प्रशासन चलाया जा सके। कागजी कार्यवाही कम से कम करके सभी सरकारी सेवाओं को जनता तक डिजिटली पहुँचाना है। यह एक ऐसी समावेशी अवधारणा है जिसमें गाँव एक प्रमुख अंग है। समावेशी तथा सर्वांगीण विकास के लिए डिजिटल इंडिया न केवल जनोपयोगी सेवाओं के इलेक्ट्रॉनिक वितरण का मार्ग प्रशस्त करता है वरन् ग्रामीण और नगरीय जीवन शैली के बीच डिजिटल डिवाइड को खत्म करता है। डिजिटल इंडिया का लक्ष्य भारत को डिजिटल रूप से सक्षम तथा सशक्त समाज और ज्ञान अर्थव्यवस्था में बदलते हुए आई टी (इंडियन टैलेंट) + आई टी (इन्फोर्मेशन टेक्नोलॉजी) + आई टी (इंडिया टुमारो) को प्राप्त कर परिवर्तनकारी बनाना है।[1]

डिजिटल इंडिया कार्यक्रम की परिकल्पना इलेक्ट्रॉनिक एवं सूचना प्रौद्योगिकी विभाग (डीईआईटीवाई) द्वारा की गयी तथा इसके सफलतापूर्वक क्रियान्वयन के लिए एक खरब रूपये से ज्यादा का आवंटन किया गया है। सूचना प्रौद्योगिकी के उपयोग के माध्यम से सार्वजनिक सेवाओं के पूरे परितंत्र को बदलने वाले इस डिजिटल इंडिया कार्यक्रम के विकास के लिए आवश्यक नौ स्तम्भ निम्नलिखित है।[2]

1. ब्राडबैण्ड हाईवे।
2. मोबाइल कनेक्टिविटी के लिए सार्वभौमिक पहुँच।
3. सार्वजनिक इंटरनेट एक्सेस कार्यक्रम।
4. ई–शासनः प्रौद्योगिकी के माध्यम से सरकार में सुधार।
5. ई–क्रान्तिः सेवाओं की इलेक्ट्रानिक डिलेवरी।
6. सभी के लिए सूचना।
7. इलेक्ट्रॉनिक्स विनिर्माण।
8. नौकरियों के लिए आईटी।
9. अर्ली हार्वेस्ट कार्यक्रमों को बल प्रदान करना।

इन नौ स्तम्भों पर डिजिटल इंडिया की परिकल्पना खड़ी की गयी है अर्थात इन नौ स्तम्भों की मजबूती पर ही डिजिटल इंडिया कार्यक्रम (डीआईपी) की सफलता निर्भर करती है। डिजिटल इंडिया की परिकल्पना को साकार करने के लिए तीन प्रमुख क्षेत्रों की पहचान की गयी है। जिनके आसपास यह कार्यक्रम केन्द्रित हैं।[3]

1. प्रत्येक नागरिक को उपयोगिता के दृष्टिकोण से आधारभूत ढाँचा प्रदान करना।
2. माँग पर शासन और सेवाएँ प्रदान करना।
3. नागरिकों का डिजिटली सशक्तीकरण।

1. डिजिटल इंडिया मिशन की सफलता के लिए सबसे महत्वपूर्ण है एक मजबूत आधारभूत ढाँचा। नागरिकों को डिजिटल रूप से सशक्त बनाने के दृष्टिकोण से विभिन्न सेवाओं के ऑनलाइन वितरण की सुविधा, उच्चगति

इंटरनेट की उपलब्धता, नागरिकों की महत्त्वपूर्ण डिजिटल पहचान तथा नागरिकों के सामाजिक–आर्थिक सशक्तीकरण के लिए मोबाइल फोन तथा बैंक खाते के जरिए वित्तीय क्षेत्रों की सुविधाएं डिजिटल रूप से प्राप्त हो, सभी नागरिकों को अपने इलाके में एक सामान्य सेवा केन्द्र तक आसान पहुँच उपलब्ध हो। सभी नागरिकों को सार्वजनिक क्लाउड पर साझा किये जाने योग्य निजी स्पेस प्राप्त हो। संरक्षित एवं सुरक्षित साइबर स्पेस बनाया जाये। सभी ग्राम पंचायतों के स्तर से लेकर राज्य स्तर तक सभी आवश्यक संसाधनों की व्यवस्था की जाये।

2. शासन व प्रशासन के स्तर पर विभिन्न विभागों, मंत्रालयों, कार्यालयों की कार्यप्रणाली में पारदर्शिता, सुगमता, सेवा अभिविन्यास तथा एक सहज एकीकरण की आवश्यकता को पूरा करने हेतु इनके कम्प्यूटरीकरण पर बल दिया जा रहा है। ई–शासन इसी दिशा में उठाया गया एक कदम है। इंटरनेट की आसान और विश्वसनीय पहुँच को सक्षम करने के लिए अभिलेखों का बड़े पैमाने पर डिजिटलीकरण की आवश्यकता है। ऑनलाइन एवं मोबाइल प्लेटफार्म के उपयोग द्वारा सेवाओं को वास्तविक समय में उपलब्ध कराया जाएगा। सूचनाओं के जरिए प्रत्येक नागरिक के विभिन्न अधिकार भी उपलब्ध होने चाहिए। सेवाओं के डिजिटलीकरण के द्वारा सृजित कारोबार की सहजता भी सुनिश्चित होनी चाहिए। वित्तीय लेन–देन को इलेक्ट्रानिक और नकद रहित (कैशलेस) बनाकर सक्षम तथा सहज बनाया जा सकेगा।

3. डिजिटल इंडिया कार्यक्रम द्वारा भारतीय नागरिकों को डिजिटल साक्षरता प्रदान करना तथा डिजिटल संसाधनों को व्यापक रूप से सर्वसुलभ, आसान तथा सर्वव्यापी बनाना शामिल है। संहयोगात्मक डिजिटल प्लेटफार्मों के माध्यम से भारत को डिजिटल सशक्त समाज में बदलने पर केन्द्रित है।[4] सभी सरकारी कागजातों, दस्तावेजों तथा सूचनाओं को डिजिटल स्पेस में उपलब्ध करने तथा इसका अधिक से अधिक नागरिकों द्वारा उपयोग करने को प्रोत्साहित किया जायेगा। डिजिटल संसाधन व सेवाओं को क्षेत्रीय भाषाओं में उपलब्ध कराया जायेगा। व्यापक डिजिटल प्लेटफार्मों का विकास इस दिशा में किया जायेगा ताकि एक साझेदारी वाली प्रशासनिक संस्कृति विकसित हो सके जिसमें व्यक्ति अपने सभी अधिकारो की सुरक्षा सहजता के साथ कर सके।

स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि डिजिटल इंडिया कार्यक्रम आधारभूत संरचनाओं के विकास, एकीकृत तथा सुव्यवस्थित इलेक्ट्रानिक सेवाएं एवं नागरिकों की डिजिटल साक्षरता जैसे अन्तर्सम्बद्ध पहलुओं पर केन्द्रित है। इन तीनों में सबसे अहम भूमिका ''डिजिटल साक्षरता'' की है क्योंकि इसके बिना अन्य दोनों (आधारभूत संरचना तथा सुव्यवस्थित ई–सेवाएं) का कोई मतलब नहीं रह जाता है। यदि आखिरी उपभोक्ता में भी इस जागरूकता की कमी है कि उन्हें क्या उपलब्ध कराया जा रहा है तथा इस प्रणाली के उपयोग की कुशलता नहीं है तो इसका लाभ उसे प्राप्त नहीं होगा।

डिजिटल इंडिया : सफलता की ओर बढ़ते कदम

1. सरकार ई–गवर्नेस और ई–क्रान्ति के जरिए तकनीकी के माध्यम से जनता के कामकाज का जल्द से जल्द निस्तारण करना चाहती है साथ ही डिजिटल इंडिया कार्यक्रम द्वारा शासन व प्रशासन तंत्र की कार्यप्रणाली में पारदर्शिता, सरलता, सुगमता व सहजता लाना चाहती है। वह इसे लालफीता शाही के दोषो से मुक्त करना चाहती है।

2. राष्ट्रीय आप्टिकल फाइबर नेटवर्क के पूरा होने से देश के 60 करोड़ से अधिक ग्रामीण नागरिको को ब्राडबैण्ड संयोजन की सुविधा मुहैया कराने की उम्मीद है। राष्ट्रीय आप्टिकल फाइबर नेटवर्क की स्थापना से अभिगमन सेवा प्रदाताओं जैसे मोबाइल ऑपरेटरो, केबल टीवी ऑपरेटरो आदि द्वारा अगली पीढी की सेवाएं शुरू करने के लिए नये रास्ते खुल जायेंगें और स्थानीय रोजगार जैसे – ई–कामर्स, आईटी आउटसोर्सिंग के सृजन को प्रोत्साहन मिलेगा।

3. डिजिटल इंडिया द्वारा पिछड़े, दूरदराज और गुमनाम इलाको के लोगो तक बेहतर सूचना प्रसारित की जा सकेगी साथ ही स्थानीय लोगो को भी अपनी बात और समस्या कहने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकेगा। इसे सिटिजन जर्नेलिज्म (लोक पत्रकारिता) के लिए एक प्रेरणास्रोत के रूप में भी देखा जा रहा है।

4. डिजिटल इंडिया कार्यक्रम द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में तकनीकी आधारित अभिनव प्रयोग द्वारा ज्ञान अर्थव्यवस्था की स्थापना की जा सकेगी जिसमें शिक्षकों द्वारा आनलाइन साझा किए गए नोट्स हो, परिचर्चा हो, ब्लाग अथवा ई–बुक हो, वीडियो या कोई अन्य सामग्री, सभी को डिजिटली संकलित कर उंगलियो पर उपलब्ध कराया जा सकता है। एक लाख करोड़ रूपये के अति महत्वाकांक्षी डिजिटल इंडिया मिशन के अंतर्गत भारत के सभी स्कूलों को वाई–फाई से जोड़कर वृहद ज्ञान तंत्र खड़ा किया जाना है।

5. स्वस्थ भारत के निर्माण में डिजिटलाइजेशन काफी हद तक सहायक हो सकता है। इसमें मोबाइल एप्लीकेशन के द्वारा उत्तम स्वास्थ्य जानकारी भारत के प्रत्येक नागरिक तक पहुँचेगी। इसमें टैबलेट स्मार्टफोन आदि के माध्यम से हर परिवार के स्वास्थ्य की जानकारी स्वास्थ्य विभाग तक पहुँचेगी डॉक्टर आसानी से दुर्गम प्रदेश के लोगो का भी समुचित इलाज कर पायेंगे।

6. सरकार की दो महत्वपूर्ण परियोजनाओं स्किल इंडिया, और मेक इन इंडिया का उद्देश्य देश को आत्मनिर्भर और तकनीकी रूप से कुशल बनाना है, इस उद्देश्य की प्राप्ति में डिजिटल इंडिया की परिकल्पना महत्वपूर्ण भूमिका निभाकर बेहतर परिणाम दे सकती है।

7. यह परियोजना अपनी प्रकृति में 'समग्र' और समावेशी, है इस रूप में यह भारत के आर्थिक और सामाजिक रूप से अति पिछड़े दूरदराज के गाँवों के लोगो को जहाँ आज भी शिक्षा के अभाव में अंधविश्वास, रूढ़िवादिता अपने पैर जमाए हुए है उनके उत्थान की बात करती है। डिजिटलीकरण के द्वारा ऐसे समाज के लोगो तक शिक्षा व जागरूकता का प्रसार करके उनकी समस्याओं का हल ढूँढ़ा जा सकता है।

8. आज भारतीय समाज की उन्नति के मूल में महिला सशक्तीकरण एक प्रमुख मुद्दा है। सरकार द्वारा महिला सशक्तीकरण की दिशा में चलाये जा रहे कार्यक्रमों को प्रभावी बनाने एवं महिलाओं को इनके प्रति जागरूक बनाने में डिजिटल इंडिया मिशन की प्रभावी भूमिका हो सकती है। लड़कियों की प्रारम्भिक शिक्षा–दीक्षा से लेकर उनके खानपान तक के मुद्दो पर उन्हें जागरूक बनाया जा सकता है।

9. डिजिटल इंडिया की संकल्पना का केवल सामाजिक पहलू ही नहीं है बल्कि अर्थव्यवस्था के विकास की दृष्टि से भी यह अत्यन्त प्रभावकारी साबित हो सकता है फिर चाहे व्यावसायिक प्रक्रिया को बढ़ावा देना हो, चाहे रोजगार प्रदान करना, चाहे उद्योग व स्वरोजगार के नये रास्ते पैदा करना हो।

10. डिजिटल इंडिया कार्यक्रम के तहत पहली बार योजनाओं के तहत दी जाने वाली सब्सिडी के लीकेज को रोकने की पहल की गयी है। इसके लिए जैम (जनधन, आधार और मोबाइल) को चुना गया है। जैम का उपयोग लक्षित जनसमूह तक सुविधाओं के हस्तांतरण को कैशलेस ढंग से लीक–प्रूफ बनाने में मददगार साबित होगा।

चुनौतियाँ : भारत की मौजूदा सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों में डिजिटल इंडिया मिशन के मार्ग में अनेक बाधाएं हैं ये निम्नलिखित बाधाएँ इसकी सफलता की चुनौतीपूर्ण बनाती है –

- भारत में अप्रैल 2015 तक करीब 10 करोड़ लोगो के पास ही ब्राडबैंड सेवा थी। वर्तमान में भारत इंटरनेट उपभोक्ताओं के मामले में 129वें स्थान पर है और इंटरनेट की औसत स्पीड के मामले में 115वें स्थान पर। इसके साथ ही भारत में 1.2 ब्राडबैण्ड कनेक्शन है महज 100 लोगो की आबादी पर वहीं विश्व में इसका औसत 100 पर 9.4 है।[5] भारत का नेशनल आप्टिक फाइबर नेटवर्क कार्यक्रम जिस गति से चल रहा है उससे यह उम्मीद करना कि 2017 तक ब्राडबैण्ड सेवा 1.3 अरब के देश में हर घर को अधिकतम एमबीपीएस तक ब्राडबैण्ड कनेक्टिविटी मिल पायेगी एक विचारणीय स्थिति है।
- डिजिटल इंडिया कार्यक्रम में गाँवों को बदलने की बात एक बड़ी चुनौती है क्योंकि गाँवों में बिजली की सप्लाई और अन्य आधारभूत सुविधाओं का जबरदस्त अभाव है। न्यू रिसर्च सेंटर के सर्वेक्षण के अनुसार जहाँ भारत के शहरी क्षेत्रों में हर 1000 घरो में से 487 के पास इंटरनेट तक पहुँच उपलब्ध है वहीं ग्रामीण क्षेत्रों में प्रत्येक 1000 घरो में से 161 के पास यह विकल्प मौजूद है।[6] इंटरनेट की पहुँच और स्पीड को प्रभावी

करने के लिए डिजिटल इंडिया के तहत वर्ष 2020 तक देशभर में 60 करोड़ ब्राडबैण्ड कनेक्शन और ग्रामीण क्षेत्रों में 100 फीसदी टेलीडेसिटी का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

- देश के ग्रामीण इलाको में मोबाइल एवं इंटरनेट उपभोक्ताओं की संख्या 35 करोड़ के पार पहुँच गयी है। सेल्युलर मोबाइल ऑपरेटरो के संगठन (सीओएआई) के अनुसार ग्रामीण इलाको में ग्राहको की संख्या 36. 9 लाख बढ़कर 35 करोड़ 1 लाख पहुँच गयी है।[7] किन्तु इसके बावजूद भी वर्ष 2015 तक भी विश्व की केवल 50 प्रतिशत जनसंख्या के पास ही मोबाइल था और इसे 100 प्रतिशत होने में 2020 तक का समय लगेगा। आज भी देश में 55619 हजार ऐसे गाँव है जहां मोबाइल नेटवर्क कवरेज नहीं है।[8] देश में 95 करोड़ के करीब मोबाइल यूजर्स है लेकिन इनमें से केवल 21 करोड़ उपभोक्ता ही मोबाइल पर इंटरनेट का इस्तेमाल करते हैं और वह भी धीमी स्पीड की वजह से परेशान है। देश में अभी भी 28 करोड़ लोगो के पास बिजली नहीं है इस योजना के अन्तर्गत सरकार इंटरनेट एक्सेस प्रोग्राम, इंटरनेट सेंटर तथा ई–सर्विसेज आदि प्रदान करने की बात कर रही है किन्तु बिजली की भारी कमी के कारण ये किस प्रकार संचालित होंगे इसमें संदेह है।
- तकनीकी के स्वदेशी विकास और विदेशी कम्पनियों पर नियंत्रण के बगैर डिजिटल इंडिया का विस्तार न सिर्फ विनाशकारी होगा वरन् देश की सुरक्षा को भी कमजोर करेगा। सुरक्षा की दृष्टि से यदि देखा जाये तो सभी बड़ी इंटरनेट कम्पनियों के सर्वर भारत से बाहर है यदि ये सर्वर भारत के अन्दर लगाये जाये तो सुरक्षा एजेंसियो को इन पर नियंत्रण रखने में आसानी होगी तथा इन कम्पनियों की कानूनी जवाबदेही भी सुनिश्चित हो सकेगी।
- देश में ट्राफिक कन्जेक्शन और काल ड्राप की समस्या है। यूजर बढ़ने, वीडियो एप्लीकेशन्स, नेविगेशन, शॉपिंग, बैंकिंग व कम्युनिकेशन सर्विसेज का अधिक इस्तेमाल होने से समस्या और बढ़ेगी। एक तरफ सरकार द्वारा टेलीकाम कम्पनियों पर अपने ग्राहक विस्तार के अनुरूप नेटवर्क को अनुकूल रूप में नहीं ढालने का आरोप लगाया जाता है दूसरी तरफ ये कम्पनियां सरकार की स्पेक्ट्रम नीति सरल न होने का आरोप लगाती है जिससे वे अधिक स्पेक्ट्रम खरीदना हितकर नहीं मानती है। इससे कम्पनियों के पास स्पेक्ट्रम की कमी के कारण वायस कालिंग में समस्याएं आती है।
- डिजिटल इंडिया कार्यक्रम के तहत सरकार की एक प्रमुख प्राथमिकता है इलेक्ट्रानिक उपकरणों के कलपुर्जो का आयात क्रमशः कम करते हुए शून्य तक ले जाना। हम अपनी जरूरत का 65 प्रतिशत इलेक्ट्रॉनिक उपकरण आयात करते हैं जिसे शून्य तक ले जाना एक बड़ी चुनौती है। एक ऐसे समय जब यह मांग 22 प्रतिशत की चक्रवृद्धि वार्षिक दर से साथ बढ़ रही है तथा इसके 2020 तक 400 अरब डालर तक पहुँचने की उम्मीद है।[9]
- इस कार्यक्रम की एक बाधा हमारे परम्परागत प्रशासन तंत्र की वह कार्यप्रणाली तथा सोंच है जिसमें वे समस्त प्रकार के प्रगतिशील परिवर्तनों का विरोधकर स्वयं को यथास्थिति में रखना चाहते है। इस मिशन की अनेक आकर्षक योजनाये जैसे – ई–अपाईंटमेंट, ई–लाकर, ई–बस्ता, ई–पाठशाला तथा ई–स्वास्थ्य आदि बनायी गयी है अतः समस्या इन योजनाओं में नहीं बल्कि इनको पूरा करने वाले तंत्र में है जिसके द्वारा प्रशासन तंत्र को सशक्त और प्रभावशाली बनाकर बेहतर परिणाम प्राप्त किया जा सकता है किन्तु प्रशासन तंत्र का वर्तमान ढाँचा इसमें कहाँ तक अपनी भूमिका निभा पायेगा यह संदेहपूर्ण है।[10]
- इस कार्यक्रम के 'समावेशी' बनने के मार्ग की एक बड़ी बाधा अशिक्षा है जो अभिशाप बनकर ग्रामीण भारत को विकास की मुख्य धारा से अलग रखे हुए है। भारत में कुल 28.7 करोड़ वयस्क पढ़ना लिखना नहीं जानते हैं जो कि दुनियां भर की निरक्षर आबादी का 37 फीसदी है। ये निरक्षर लोग इस डिजिटल क्रान्ति की मुहिम में कैसे शामिल होंगे इसपर संदेह है।[11]

- डिजिटल इंडिया मिशन की सभी सम्भावनाएँ स्मार्टफोन, कम्प्यूटर और इंटरनेट कनेक्टिविटी पर आश्रित है। अतः भारत में शिक्षा के स्तर को बढ़ाना, तकनीकी साक्षरता सुनिश्चित करना और कम्प्यूटर, स्मार्टफोन व इंटरनेट आदि को सर्वसाधारण तक सुलभ करना बड़ी चुनौतियां है।

आज सूचना प्रौद्योगिकी विशेषकर इंटरनेट और मोबाइल युक्तियों के इस्तेमाल से तमाम तरह की सेवाओं को अधिक सुगम, तेजरफ्तार, व्यापक और प्रभावी बनाना सम्भव है। प्रशासन से लेकर कारोबार के विभिन्न स्तरों तक यह बात सिद्ध हो चुकी है कि आधुनिक भारत के निर्माण की दिशा में तकनीकों का प्रयोग अब अवश्यम्भावी है। विकास को बढ़ावा देने के साथ–साथ यह अनेक पारम्परिक चुनौतियों और रूकवटों को दूर करने में भी मदद करेगा जैसे कि भ्रष्टाचार। भारतीय प्रशासन को लालफीताशाही के दोषों से मुक्त कर क्रियान्वयन प्रक्रियाओं को आसान एवं त्वरित बनाने में डिजिटल इंडिया मिशन की प्रभावशाली भूमिका हो सकती बशर्त है कि प्रत्येक राज्य और जिले इसे पूरी निष्ठा व तत्परता से अपनाये ताकि एक ऐसा आर्थिक, सामाजिक तथा तकनीकी पर्यावरण तैयार हो जिसमें एक डिजिटल संस्कृति निर्मित की जाये ताकि इस अभियान पर निर्भरता खत्म हो जाये।

15 अगस्त 2014 को लालकिला से भारत के 68वें स्वतंत्रता दिवस समारोह में प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने अपने भाषण में ''डिजीटल भारत'' के लिए अपना दृष्टिकोण साझा करते हुए कहा ''मै जब डिजिटल भारत की बात करता हूँ तो मै विशिष्ट वर्ग की बात नहीं करता हूँ यह गरीब लोगो के लिए है। अगर भारत के सभी गाँवो को ब्रॉडबैन्ड कनेक्टिविटी से जोड़े दिया जाये और यदि हम गाँवो के हर दूरदराज कोने में स्कूलो के लिए लम्बी दूरी की शिक्षा देने में सक्षम हो जाए तो आप कल्पना कर सकते हैं कि गाँवो में बच्चो को कितनी बेहतरीन शिक्षा मिलेगी। उन्होंने आगे कहा ''तै आज यह कहना चाहूँगा कि देश के हर नागरिक को जोड़ने की क्षमता सूचना प्रौद्योगिकी के पास है और यही कारण है कि देश की एकता के मंत्र को हम डिजिटल भारत की मद्द से साकार करना चाहते हैं।[12]

निश्चित रूप से डिजिटल इंडिया की परिकल्पना अपने आप में अपार सम्भावनाओं को लिए हुए हैं। भारत आज अवसरो की महान दहलीज पर खड़ा हुआ है मजबूती से बढ़ती अर्थव्यवस्था, साक्षर युवाओं की बढ़ती जनसंख्या तथा तकनीकी का व्यापक आधार लेकर डिजिटल इंडिया जैसे मिशन से भारत को एक मजबूत, सशक्त तथा शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में उभारा जा सकता है बशर्ते है कि हम इसके मार्ग में आने वाली चुनौतियों का कारगर तरीके से समाधान कर पाये।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. कुरूक्षेत्र अगस्त 2015, पेज नं0–17
2. योजना, फरवरी 2015, पेज नं0–30
3. योजना, फरवरी 2015 ,पेज नं0–30
4. कुरूक्षेत्र अगस्त 2015 ,पेज नं0–19
5. कुरूक्षेत्र अगस्त 2015 ,पेज नं0–19
6. कुरूक्षेत्र जून 2016 ,पेज नं0–32
7. कुरूक्षेत्र फरवरी 2016 ,पेज नं0–16
8. कुरूक्षेत्र अगस्त 2015, पेज नं0–19
9. www.digitalindia.gov.in/hi/blogs
10. http://www.digitalindia.gov.in
11. http://www.mygov.in
12. कुरूक्षेत्र सितम्बर 2016 ,पेज नं0–14

❑❑

2

भूमंडलीकरण के तहत लोकतंत्र का भविष्य

डॉ0 अनीता यादव
प्रवक्ता–शिक्षाशास्त्र
महाराज सिंह स्मृति महाविद्यालय इटैली, औरैया

भूमण्डलीकरण स्थानीय या क्षेत्रीय वस्तुओं या घटनाओं के विश्व स्तर पर रूपांतरण की प्रक्रिया है। इसे ऐसी प्रक्रिया का वर्णन करने के लिए भी प्रयुक्त किया जा सकता है जिसके द्वारा पूरे विश्व के लोग मिलकर एक समाज बनाते है तथा एक साथ कार्य करते हैं। यह प्रक्रिया आर्थिक, तकनीकी, सामाजिक और राजनीतिक ताकतों का एक सयोंजन है। वैश्वीकरण एवं लोकतन्त्र दो ऐसी व्यवस्थाएँ है जिनके संयोजन से ही वैश्वीकरण व लोकतन्त्र अपने लक्ष्यों को प्राप्त कर सकते है, परन्तु इसके लिए आवश्यक है कि दोनों के जो मूल्य/आदर्श हैं उन्हें उचित तरीके से व्यवहारिकता प्रदान की जाएं। यद्यपि व्यवहारिक धरातल पर भूमण्डलीकरण की नीति अब तक उन लक्ष्यों को पाने में सफल नहीं रही, जिसका इस नीति को स्वीकार करते समय दावा किया गया था। केंद्रीय प्रश्न यह है कि बढ़ती हुई गरीबी, नाइंसाफी और अमानवीयता के कारण बुरी तरह विभाजित दुनियां में राजनीतिक प्रक्रिया को प्रोत्साहन दिये बिना क्या मानवाधिकारों और लोकतंत्र को प्रोत्साहित किया जा सकता है ?क्या ये राजनीतिक प्रतिक्रयाएँ भूमंडलीय पैमाने पर और राष्ट्रों के भीतर नहीं चलायी जानी चाहिए ? आज स्थिति यह है कि एक भूमंडलीय कारपोरेट उद्यम ने सारी दुनिया को दो हिस्सों में बाँट दिया है : एक तरफ दुनियां का वह हिस्सा है जो भूमंडलीकृत हो चुका है और दूसरी तरफ वह जो इस प्रक्रिया से बाहर रह गया है। भूमंडलीकृत हिस्सा उत्तरोत्तर प्रौद्योगिकीय समाधानों, वित्तीय सट्टेबाजियों और 'घोटालों' के जरिये दूसरे हिस्से का अतिक्रमण करने में लगा हुआ है। उसके भीतर अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, बैंकिंग, स्थानीय स्तर के भ्रष्टाचार और अपराधीकरण के बीच गठजोड़ बढ़ रहा है। भूमंडलीकृत हिस्सा आर्थिक और पर्यावरणीय संसाधनों को हड़पे ले रहा है। वह खेतिहर जमीन के बहुत बड़े हिस्से को अपने कब्जे में किये ले रहा है। एक तरफ वह किसानों को फुसला रहा है और दूसरी तरफ शहरी क्षेत्रों में मध्यवर्ग को पटाया जा रहा है। उसका इरादा यह है कि इन सभी तत्वों को भूमंडलीकृत दुनिया में 'शामिल' कर लिया जाय और दुनिया पर विभिन्न 'शर्तों' की बंदिशें थोप कर उसे अधिकार से वंचित कर दिया जाए। ऊपर से भूमंडलीकृत दुनिया यह भी नहीं चाहती कि हाशियें पर चले जाने के बाद भी उससे पूरी तरह नाता तोड़ कर गैर–भूमंडलीकृत लोग किसी 'वैकल्पिक भविष्य' की खोज कर सकें। भूमंडलीकृत अभिजन उसे हाशिये पर फेंकने के लिए तो तैयार हैं पर उस पर अपनी चौंधराहट नहीं छोड़ना चाहते। दरअसल, भूमंडलीकरण की परियोजना किसी विकल्प की इजाजत देने के लिए तैयार नहीं है। बुनियादी तौर पर वह एक ऐसी रणनीति की पेशकश कर रही है जिसके तहत दुनिया को कुछ इस तरह संगठित किया जाएगा कि उस व्यवस्था को बाहरी (सत्ता की वैकल्पिक संरचनाएँ) और भीतरी (पर्यावरण और मानवाधिकारों सरीखे सामाजिक आंदोलन) स्तर पर कोई चुनौती न मिल सके। इसलिए दोनों संभावित चुनौतियों को शक्तिहीन कर दिया गया है, ताकि वे आपस में मिलकर एक भूमंडलीकरण विरोधी समष्टिगत संघर्ष न कर सकें। यहाँ समझना यह होगा कि सामाजिक आंदोलन अगर आज की तरह बिखरे हुए और राजनीतिक रूप से शक्तिहीन न भी हों, तो भी वे अपने–आप में सत्ता की कोई संरचना नहीं खड़ी कर सकते इसके विपरीत भूमंडलीकृत राजनीति की विश्वव्यापी डिजाइन साफ देखी जा सकती है। 'शीत युद्ध के अंत' से लेकर खाड़ी युद्ध और 'नयी विश्व–व्यवस्था' के फार्मूले तक कमजोर क्षेत्रों में राजनीतिक और फौजी हस्तक्षेप के जो खेल खेले गये हैं वे यही बता रहे हैं। ये दखलंदाजियाँ संयुक्त राष्ट्र का, रियो में हुए पर्यावरण सम्मेलन का और वियना में हुए मानवाधिकार सम्मेलन का, राजनीतिक इस्तेमाल करके अंजाम दी गयी हैं। मोरक्को में हुए

गैट समझौते पर दस्तखत और विश्व व्यापार संगठन के गठन को इसी रोशनी में रखकर देखा जाना चाहिए।

भूमंडलीकरण के इन इरादों का नतीजा यह निकला है कि उसके दायरे में न आने वाले क्षेत्रों, लोगों और राज्यों को अलग–थलग करके हाशियें पर डाल दिया गया है। भूमंडलीयकरण एक ही परिघटना की प्रति–छवियाँ हैं। हाशियाकरण भूमंडलीकरण का अनिवार्य परिणाम है। भूमंडलीकरण[2]

ऐसी परिस्थितियाँ पैदा करता है जिसके कारण लाखों –करोड़ों लोग खुद को हाशिये पर पाकर अवांछित और त्याज्य समझने लगते हैं। भूमंडलीकरण के मौजूदा रुतबे का आलम यह है कि सारी दुनिया को एक इकाई बनाने का सपना देखने वाले, विश्व–संघवादी और हाल ही में सामने आए शांतिपूर्ण और शस्त्रविहीन 'विश्व–व्यवस्था' की वकालत करने वाले भी विषमता और शोषण पर आधारित बंदोबस्त को मान्यता देने लगे हैं। किसी भी तरह के सामाजिक दर्शन और सच्चे राजनीतिक वैकल्पिक मॉडल की समझ से वंचित ये लोग प्रौद्योगिकीय क्रांति से उम्मीदें लगाये बैठे हैं। उन्हें लगता है कि आधुनिक संचार और सूचना व्यवस्था मानवता को एकीकृत कर देगी, जबकि असलियत में इसने मानवता को ऐसी प्रौद्योगिकीय प्रतिमान के मातहत कर दिया है जिसके कारण वर्चस्व और उसे बढ़ाने वाली भूमंडलीय संरचनाएँ ही मजबूत हुई हैं। इन विश्ववादियो ंमे ंकुछ के इरादे जरूर नेक हैं पर इनमें से किसी के पास नयी विश्व–व्यवस्था के पैरोकारों जैसी नफासत और प्रभावी क्षमता नहीं है। ये विश्ववादी नहीं समझ पा रहे हैं कि भूमंडलीकरण के वकीलों के पास एकजुटता का कोई परिप्रेक्ष्य या संतुलित परिप्रेक्ष्य जैसी कोई चीज नहीं है जिससे व्यवस्था और 'स्थिरता' की उम्मीद भी बँध सके। इस धरती के वंचितों को जब तक ऐसी व्यवस्था और स्थिरता नहीं मिलेगी तब तक वे अपने–आप को टिकाये रखने और बेहतर भविष्य के लिए कोई गुंजाइश नहीं निकाल पाएँगे। व्यवस्था और स्थिरता स्थापित करने की कोशिश करने के बजाय भूमंडलीकरण के पैरोकार बाकी दुनिया के सामने उपनिवेशीकृत हो जाने और उसके बदले जीवित और सुरक्षित बने रहने की पेशकश रख रहे हैं। संक्षेप में वे एक नये भूमंडलीय लेवायथन (निरंकुशता का प्रतीक) के तत्वावधान में एक नयी 'सामाजिक संविदा' प्रस्तुत कर रहे हैं। टामस हॉब्स के लेवायथन के विपरीत यह भूमंडलीय लेवायथन सभी व्यक्तियों के लिए न होकर दरअसल लाखों–करोड़ों लोगों की कीमत पर होगा। अगर हम यह मान भी लें कि रीगन और थैचर के प्रेत पृष्ठभूमि में धकेले जा चुके हैं और अब क्लिंटन जैसों के नेतृत्व में हमें फासीवादी के बजाय यथार्थपरक राजनीतिक का ऐ सा भूमंडलीय मॉडल मिल गया है जो सच्ची स्थिरता, सुरक्षा और शांति में दिलचस्पी रखता है तो भी हॉब्स की दृष्टि इसके मुकाबले कहीं अधिक प्रबुद्ध साबित होगी। भूमंडलीकरण और उसके कारणों की रोशनी में एक नयी 'वैश्विक' प्रवृत्ति उभरती लग रही है। इसके कई आयाम हैं। किसी वैकल्पिक संरचना में पुनः संगठित होने से पहले ही 'राष्ट्र' टूट कर बिखरे जा रहे हैं। नये राजनीतिक गठजोड़ों को कहीं जातीयता के जबरदस्त उभारो ं का सामना करना पड़ रहा है तो कहीं वे खुद को तरह–तरह की राष्ट्रीयताओं और उपराष्ट्रीयताओं से टकराता पा रहे हैं। गृह युद्धों का सिलसिला लगा हुआ है और संभावित युद्ध अपने भयानक अंदेशों के साथ बता रहे हैं कि ये नयी राजनीतिक व्यवस्था शांतिपूर्ण या अहिंसक नहीं रह पाएगी। आणविक प्रसार का खतरा पहले से कहीं ज्यादा डरावना हो चुका है जिसके कारण राजनयिक टकराव इतना तीखा हो गया है कि क्षेत्रीय हिंसा और आतंकवाद को फैलने से रोकना नामुमकिन–सा होता जा रहा है। ऐसी विकट परिस्थिति से निपटने का जिम्मा सत्ता की आस्थाविहीन और स्वार्थकेंद्रित गुटबंदियों के हाथों में है। इन गुटबंदियों की कार्यशैली निराशाजनक नजारा पे श कर रही है। ऐ से हताश माहौल में अगर कोई किसी 'वैश्विक' समाधान के बारे में सोचे भी तो उसे हाथ कुछ नहीं लगने वाला। कोई चाहे तो उम्मीद कर सकता है कि विश्व युद्ध के बाद उभरे मुक्ति, समता और शांति के विचार के आधार पर शायद एक बार फिर राष्ट्र–राज्य खड़ा हो जाएगा। यह सोचा जा सकता है कि शायद इस नये राष्ट्र–राज्य का चरित्र पहले के मुकाबले कहीं कम दमनकारी और अधिक मानवीय होगा जिससे उसे सच्ची लोकोन्मुख विश्व व्यवस्था बनाने के लिए जनगोलबंदी के मकसद से इस्तेमाल किया जा सके गा। लेकिन यह एक

भगीरथ कार्य है जिसके रास्ते में भूमंडलीकरण की वे ताकतें अनगिनत बाधाएँ डालेंगी जिनके लिए 'विघटन' ही 'संघटन' का आधार बन चुका है।

भूमंडलीकरण के केवल दो दावे ऐसे हैं जिनके आधार पर वह कुछ बेहतर करने का दावा करता है : पहला, उसके कारण हथियारों की होड़ कमजोर पड़ जाएगी और दूसरा, अर्थशास्त्र और प्रौद्योगिकी को मिलाकर एक ऐसा भूमंडलीय बाजार बनेगा जिससे किस्म–किस्म की अर्थव्यवस्थाएँ खुद को जोड़ लेंगी। इस मॉडल ने जिन बहुत से लोगों को आकर्षित किया है, उनमें तीसरी दुनिया के नेतागण और बुद्धिजीवी भी हैं। दिक्कत यह है पूरी तरह नेक इरादों के बाद भी ये दोनों दावे व्यवहार में एक–दूसरे को काटने वाले ही हो सकते हैं। जिस भूमंडलीय अर्थव्यवस्था की बात की जा रही है उसने कुछ को छोड़कर बाकी अर्थव्यवस्थाओं को कर्ज के दलदल में धँसा दिया है जिससे निकलने के लिए उन देशों को या तो काफी नुकसानदेह किस्म का औद्योगीकरण करना पड़ रहा है या फिर हथियार उद्योग (जो खुद में उद्योगीकरण का काफी खतरनाक और नुकसानदेह रूप है) के चक्कर मे फँस जाना पड़ रहा है। नतीजे के तौर पर चीन, भारत, पाकिस्तान, ब्राजील, इराक और इजराइल जैसे देश एटॉमिक हथियार बना रहे हैं। बदले में इन देशों को क्षेत्रीय और 'भूमंडलीय' महाशक्तियों की प्रतिक्रिया का सामना करना पड़ रहा है। इस परिप्रेक्ष्य में देखने से लगता है कि राष्ट्रीय अथवा क्षेत्रीय हितों से परे जाकर भी इन देशों को कुछ भी 'भूमंडलीय' हासिल नहीं हो सका है। यहाँ टॉयनबी का वह विख्यात उद्धरण याद कर लेना जरूरी है, जिसमें उन्होंने कहा था, 'भू मं डलीकरण एक बहुस्तरीय प्रक्रिया न होकर एक प्र भुत्वशाली कें द्र का घटक बन जाने का नाम है।' भले ही आज किसी को यह बात अच्छी न लगे, लेकिन भूमंडलीयकरण अंततः असुरक्षा की भावना का भी भूमंडलीकरण कर देगा और जाने–अनजाने हम सभी फौजी और खुफिया नेटवर्कों की भूमंडलीय 'अंतर्निर्भरता' के शिकार हो जाएँगे। उग्रराष्ट्रवादी मुहिमों और उदारीकरण–निजीकरण की नीतियो ं के बीच सं बंधों पर नजर डालने से यह बात और साफ हो जाती है। अन्ततः यह कहना समीचीन होगा कि भूमण्डलीकरण एवं लोकतन्त्र परस्पर विरोधी न होकर एक साथ चलने के लिए बने हैं क्योंकि दोनो का उद्देश्य मानव जाति के लिए बेहतर अवसर उपलब्ध कराना है। लोगों के बीच बेहतर तालमेल, सहनशीलता और लोगों को प्रतिस्पर्धी बनाना भूमण्डलीकरण एवं लोकतन्त्र के मूल में है। आवश्यकता इस बात की है कि भूमण्डलीकरण व उससे जुड़ी नीतियों का उचित नियमन हो जिससे भूमण्डलीकरण से उत्पन्न होने वाली नीतियाँ भेदपरक न हो सके, बल्कि उन नीतियों का लाभ सम्पूर्ण मानव जाति के हित में हो। ऐसी स्थितियां निश्चित ही भूमण्डलीकरण व लोकतन्त्र के उज्ज्वल भविष्य के हित में होगी।

सन्दर्भ संकेत

1. रजनी कोठारी– भारत में राजनीति–कल और आज
2. सहारा समाचार पत्र–हस्तक्षेप
3. सी.वी.पी. श्रीवास्तव–भारत और विश्व

❑❑

सूचना का अधिकार : मुकम्मल राह की तलाश

डॉ० गीता यादव
अध्यक्ष–राजनीति विज्ञान विभाग
टी0डी0पी0 जी0 कॉलेज, जौनपुर

भारत जैसे लोकतांत्रिक व्यवस्था वाले देश में आम आदमी ही देश का असली मालिक होता है। इसलिए प्रत्येक आम नागरिक को सभी प्रकार की गतिविधियों से सम्बन्धित सूचनाएं जानने का आधिकार है। आज किसी भी कार्य अथवा गतिविधि को ज्ञान एवं सूचना के अभाव में समग्रता के साथ पूर्ण करना संभव नहीं है। प्रत्येक नागरिक को यह जानने का अधिकार है कि उसके द्वारा दिये गये कर का उपयोग कहाँ व कैसे किया जाता है? दुर्भाग्यवश कुछ वर्षों पूर्व तक भारत के नागरिकों के पास ऐसी कोई कानूनी व्यवस्था नहीं थी, जिसके माध्यम से वे सरकारी कार्यालयों से सूचनाएं प्राप्त कर पाते। देश की शासन व्यवस्था को ठीक ढंग से चलाने एवं देश को भ्रष्टाचार, शोषण, नौकरशाही की लालफीताशाही आदि दुर्गुणों से बचाने की आवश्यकता को महसूस किया जा रहा था, जिससे जनता सूचनाओं से अवगत होकर अपनी शक्तियों का प्रभावी रूप से सदुपयोग कर सकें। जनता को उपर्युक्त तथ्यों को जानने का अधिकार ही सूचना का अधिकार है। आर.टी.आई. अधिनियम सभी नागरिकों को लोक प्राधिकारण द्वारा धारित सूचना का अभिगम्यता का अधिकार प्रदान करता है। यदि किसी व्यक्ति को किसी सूचना की अभिगम्यता से मना किया जाता है तो वह केन्द्रीय सूचना आयोग के समकक्ष अपीली शिकायत दर्ज करा सकता है। आर.टी.आई. का अर्थ है– 'राइट टू इन्फॉर्मेशन' अर्थात् सूचना का अधिकार।

विश्व के कई देशो के नागरिकों को यह अधिकार बहुत पहले से ही प्राप्त है। लोकतांत्रिक देशों में स्वीडन पहला देश था, जिसने अपने देश के नागरिकों को सन् 1776 ई0 में संवैधानिक रूप से सूचना का अधिकार प्रदान किया। इस समय नीदरलैण्ड, आस्ट्रिया, स0रा0अमेरिका सहित कई देशों के नागरिकों को यह अधिकार प्राप्त है। भारत भी अब इन देशों की सूची में शरीक हो गया है। इसके संविधान के अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के साथ–साथ नागरिकों को सूचना का अधिकार भी दिया गया हैं। संविधान के अनुच्छेद पाँच के अनुसार प्रत्येक नागरिक का उन सभी सूचनाओं और उनके स्रोत की जानकारी प्राप्त करने का अधिकार है जिसका संबंध उनके निजी हित अथवा किसी सार्वजनिक हित से है। कनाडा में लागू अधिनियम में की गयी व्यवस्था के अंतर्गत ऐसे मामलों की अपीलीय सुनवाई हेतु 'सूचना लोकपाल' नामक पदों का सृजन किया गया हैं। अमेरिका में सन् 1964 ई0 में एक अधिनियम पारित कर सूचना के अधिकार को मान्यता दी गयी थी कि अधिनियम के अनुसार देश का कोई भी नागरिक अपनी इच्छानुसार किसी भी सरकारी दस्वावेज की प्रतिलिपि प्राप्त कर सकता है। नार्वे और डेनमार्क में भी इस तरह के प्रावधान लागू हैं। भारत में मानक पदार्थ ब्यूरो, राजस्व, खुफिया निदेशालय, रिसर्च एंड एनालिसिस विंग (आर.ए.डब्लू.) खूफिया ब्यूरों केन्द्रीय सुरक्षा बल ओर केंद्रीय आर्थिक खुफिया ब्यूरो सहित सरकार के 11 अतिसंवेदनशील विभागों को इसके दायरे से मुक्त रखा गया हैं। जाहिर है ये विभाग अतिसंवेदनशील हैं और इनकी सूचना देश की स्वतंत्रता और सुरक्षा के लिए खतरनाक होगा ऐसे में सूचना देने वाले इस कानून में सूचना न देने वाले अधिकारियों के खिलाफ दंड का कोई प्रावधान नहीं है, तथा गलत अधूरी या भ्रामक भी सूचना पर सूचना अधिकारी या वरिष्ठ अधिकारियों को दंडित करने का कोई प्रावधान नहीं है।

सन् 1976 ई0 में राजनारायण बनाम उत्तर प्रदेश मामले में उच्चतम न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 19 में वर्णित सूचना के अधिकार को मौलिक अधिकार घोषित किया। अनु0 19 के अनुसार हर नागरिक को बोलने और अभिव्यक्ति करने का अधिकार है उच्चतम न्यायालय ने कहा कि जनता जब तक जानेगी नहीं तब तक अभिव्यक्त नहीं कर सकती। उदाहरण स्वरूप सांसदों, विधायकों एवं मंत्रियों द्वारा सरकारी पैसे का दूरुपयोग कैसे

किया जाता है? इसका अंदाजा इससे लगाया जा सकता है कि 656 ऐसे पूर्व सांसद है, जिनके उपर महानगर टेलीफोन निगम की बकाया राशि 11 करोड़ 18 लाख से अधिक है इसी तरह नयी दिल्ली नगरपालिका को 699 पूर्व सांसदो से 6.32 करोड़ रूपये लेने है। अतः मतदाताओं को इतनी जानकारी अवश्य होनी चाहिए कि हमारे 'आका' देश का कैसा विकास चाहते हैं? सूचना के अधिकार को जानने से पहले हमें आवश्यक रूप से सूचना के अर्थ को भलीभांति समझ लेना चाहिए। दरअसल किसी भी स्वरूप में कोई भी सामग्री जिसके अतंर्गत इलेक्ट्रानिक रूप से धारित अभिलेख, दस्तावेज, विज्ञापन, ई–मेल, मत, सलाह प्रेस–विज्ञप्ति, परिपत्र, आदेश लॉगबुक, संविदा रिपोर्ट, कागज–पत्र, नमूने, मॉडल, आंकड़ों संबन्धी सामग्री इत्यादि शामिल है, सूचना कहलाती है। इसमें किसी निजी निकाय से सम्बन्धित ऐसी सूचना शामिल है जिसे लोक प्राधिकारी तत्काल लागू किसी कानून के अन्तर्गत प्राप्त कर सकता हैं । भारत को सही अर्थों में लोकतांत्रिक बनाने के दृष्टिकोण से 15 जून 2005 को सूचना का अधिकार अधिनियम के रूप में घोषित किया गया। सूचना पाने का अधिकार अधिनियम, 2005 सूचना की स्वतंत्रता अधिनियम, 2002 के स्थान पर लाया गया है। सूचना का अधिकार कानून की जिम्मेदारी तय करेगा तथा इसका निर्वाह नहीं करने वालों को कड़ी सजा दी जायेगी। यदि हम सूचना के अधिकार को ऐतिहासिक आइने में देखें तो ज्ञात होता है कि सूचना के अधिकार की सर्वप्रथम परिभाषा संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा जारी मानवाधिकारों की विश्व घोषणा में विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत लगभग एक सौ से अधिक मानवाधिकारों की सूची दी गयी है। केंन्द्र सरकार द्वारा दिसम्बर 1989 में तत्कालीन विदेश मंत्री, इंन्द्र कुमार गुजराल की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। इस समिति के अन्य सदस्य थे– मुफ्ती मोहम्मद सईद, के.पी.उन्नीकृष्णन, पी.उपेन्द्र तथा जार्ज फर्नाडिस। इस समिति ने नागरिकों के सूचना के अधिकर की वकालत करते हुए शासकीय गोपनीय अधिनियम, सन् 1923 ई0 में आवश्यक संशोधन करने की सिफारिश की। सन् 1998 ई0 में हुए मुख्यंत्रियों के सम्मेलन में इस अधिकार का समर्थन किया गया। सम्मेलन में मुख्यमंत्रियों ने अपने राज्यों में सूचना के अधिकार को देने के लिए आवश्यक कदम उठाने पर सहमति व्यक्ति की लेकिन समिति द्वारा तैयार प्रारूप पर कार्यवाही नहीं की जा सकी।

दिल्ली विधानसभा ने 9 अप्रैल 2001 को सूचना के अधिकार का विधेयक पारित किया। 2 अक्टूबर 2001 से इस कानून को लागू करने की घोषणा हुई लेकिन यथार्थ में इस पर अमल नहीं हुआ। इसके पहले तमिलनाडु, गोवा, राजस्थान, महाराष्ट्र तथा कर्नाटक राज्य अपने नागरिकों को यह अधिकार दे चुके हैं। मध्य प्रदेश राज्य सरकार द्वारा इस सम्बन्ध मे बिना अधिनियम के विभागीय आदेश द्वारा सूचना प्रदान करने का कार्य गया है। उत्तर प्रदेश ने भी इस संबंध में अमल की घोषणा की है।

अशिक्षाजनित अनभिज्ञता एवं अधिकारों के प्रति अचेत रहने से सूचना के अधिकारों की जानकारी संभव नहीं है। इस दिशा में लोगों को शिक्षित करने के लिए आंध्र प्रदेश सरकार ने 'टिबन सिटिस इंटेलिजेंस नेटवर्क सर्विसेज' के अंतर्गत वर्ष 2001 में लगभग 248 केन्द्र बनाए रखने का लक्ष्य रखा था। जिसके प्रत्येक केन्द्र में एक कम्प्यूटर की व्यवस्था होगी जो सभी विभागों से कार्य करवा सकेंगे। इसी प्रकार गुजरात में चुंगी भुगतान की प्रक्रिया

कम्प्यूटरीकृत की गयी है, जैसे ही कोई ट्रक गुजरात राज्य में प्रविष्ट होता है। उसका भार कम्प्यूटर में दर्ज हो जाता है तथा पूरे ढॉचे की वीडियोग्राफी हो जाती है इसके परिणामस्वरूप गुजरात राज्य में चुंगी से होने वाली आय आश्चर्यजनक रूप से बढ़ गयी है। मध्य प्रदेश के 'धार' जिले मं 'ज्ञानदूत' योजना के अन्तर्गत कई सूचना केन्द्र खोले गये हैं। वहाँ से कोई भी व्यक्ति कोई दस्तावेज प्राप्त कर सकता है और अधिकारियों को शिकायत भी भेज सकता है। इस परियोजना को 'स्टोकहोम चैलेंज अवार्ड' भी प्राप्त हुआ हैं। इस योजना का प्रसार अब सम्पूर्ण प्रदेश में कर दिया गया है। इस क्रम में 12 मई 2005 को संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन सरकार ने पारदर्शी व भ्रष्टाचार मुक्त समाज की स्थापना के लिए सूचना अधिकार अधिनियम, 2005 पारित किया। इस हेतु कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग ने 11 अक्टूबर, 2005 को एक गजट अधिसूचना जारी कर केन्द्रीय सूचना आयोग का गठन कर दिया।

सूचना अधिकार अधिनियम, 2005 में उल्लिखित प्रारम्भिक शब्द ही इसके उद्देश्यों को स्पष्ट कर देते हैं। इसके उद्देश्य खण्ड में कहा गया है कि लोक प्रशासन में खुलापन, पारदर्शिता और जबावदेही सुनिश्चत करने के

लिए इस विधि को पारित किया जा रहा है।

सूचना का अधिकार अधिनियम का मूल उद्देश्य नागरिकों को अधिकार सम्पन्न बनाना, सरकार की कार्य प्रणाली में पारदर्शिता तथा उत्तरदायित्व को बढ़ावा देना, भ्रष्टाचार को कम करना तथा लोकतंत्र को सही अर्थों में लोगों के हित में काम करने में सक्षम बनाना है। सूचना के अर्न्तगत मांगी गयी जानकारी 30 दिनों के भीतर उपलब्ध कराना जरूरी है। किसी के जीवन या स्वतंत्रता से जुड़ी सूचना 48 घण्टे के भीतर देना अनिवार्य है। सभी मंत्रालयों एवं विभागों में इस कार्य के लिए खास तौर पर जनसूचना अधिकारी नियुक्त करने का प्रावधान हैं। यदि कोई नागरिक अधिनियम के अर्न्तगत सूचना प्राप्त करना चाहता है तो उसे लोक प्राधिकरण से सम्बन्धित केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी से अंग्रेजी, हिन्दी या उस क्षेत्र की राजकीय भाषा में लिखित रूप से आवेदन कर सकता है। आवेदनकर्ता अपना आवेदन डाक द्वारा, इलेक्ट्रॉनिक माध्यम से अथवा व्यक्तिगत रूप से लोक प्राधिकारी के कार्यालय में भेज सकता हैं। आवेदनकर्ता को आवेदन के साथ सूचना मांगने के लिए निर्धारित के नाम से भेजना होता है। शुल्क का भुगतान लोक– प्राधिकरण के लेखाधिकारी अथवा केन्द्रीय सहायक लोक सूचना अधिकारी को नकद भी किया जा सकता है। गरीबी रेखा के नीचे के लोगों के लिए यह प्रकिया निःशुल्क है, किन्तु उन्हें इसके लिए आवेदन के साथ गरीबी रेखा के नीचे होने का प्रमाण–पत्र प्रस्तुत करना होता है।

राष्ट्रीय सुरक्षा से जुड़े विभाग, परमाणु उपग्रह विभाग तथा ऐसे विभागों की सूचनाओं को जिनसे देश को नुकसान हो सकता है इस अधिनियम के दायरे से बाहर रखा गया है। (धारा 24)–इस अधिनियम को यदि कारगर ढंग से लागू किया जाए तो भारत को भ्रष्टाचार में लिप्त नौकरशाही से मुक्ति मिल सकती है। एक पारदर्शी प्रशासन का नया अध्याय शुरू किया जा सकता है। इससे भारतीय नागरिकों को छोटी–छोटी सूचना सम्बन्धी प्रशासनिक आवश्यकताओं के लिए कष्टकारी प्रशासनिक परेशानियों का सामना नहीं करना पड़ेगा क्योंकि भारत जैसे विकासशील देश में जहॉ कि लगभग आधी आबादी अशिक्षित है वहां इस प्रकार के अधिनियम के पारित होने से प्रेस की स्वतंत्रता भी निश्चित रूप से सशक्त होगी क्योंकि इसके पहले प्रायः देखा गया है कि गोपनीयता कानून, 1923 को आधार बनवाकर सरकारी दस्तावेजों को प्रेस से दूर रखने का प्रयास किया जाता रहा है। भूमण्डलीकरण एवं उदारीकरण के इस दौर में जब निजी क्षेत्र की कम्पनियों, उद्यमों एवं संस्थाओं की संख्या में दिन प्रतिदिन वृद्धि हो रही है, ऐसे में इनसे संबन्धित सूचनाओं का इस अधिकार–क्षेत्र के अन्तर्गत नहीं होना निश्चय ही इस कानून की एक बड़ी खामी है, क्योंकि देश एवं समाज के विकास में आज निजी क्षेत्र महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं। इस कानून की एक बड़ी खामी यह है कि सम्प्रभुता, अखण्डता, राज्य की सुरक्षा, विदेशी सम्बन्धों आदि पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभाव के नाम पर गोपनीयता के दायरे में रखा गया है। प्रश्न यह उठता है कि यह तय करने का अधिकार किसे हैं कि कौन सी सूचना इन उद्देश्यों के लिए गोपनीय रखना आवश्यक है। कानूनन यह अधिकार सूचना आयुक्त के पास है अतः ऐसी स्थिति में पूर्ण पारदर्शिता की बात असम्भव सी लगती है कि नागरिकों को लोक प्राधिकारियों के नियंत्रण में उपलब्ध सूचना तक पहुँचाना सुलभ हुआ है। इस प्रकार सूचना तक पहुँचाना अधिनियम 2005 निश्चित ही जनता और प्रशासन दोनों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी और उसी के साथ वर्तमान कल्याणकारी राज्य की भूमिका भी सुदृढ़ होगा।

सन्दर्भ सूची

1. महाजन, संजीव : ग्रामीण समाजशास्त्र, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
2. चौधरी, सी0एम0 : ग्रामीण विकास, एक अध्ययन सब लाइम पब्लिकेशन, जयपुर।
3. विभिन्न पत्रिकाएँ : समाचार पत्र।
4. 09 सितम्बर 2010 अमर उजाला, कानपुर से प्रकाशित सूचनाएँ।
5. 12 सितम्बर 2010 अमर उजाला वाराणसी से प्रकाशित सूचनाएँ ।
6. मदन, जी0आर0 एवं अग्रवाल अमित : परिवर्तन एवं विकास का समाजशास्त्र, विवेक प्रकाशन, दिल्ली।
7. प्रतियोगिता दर्पण : मार्च 2014

❑❑

4

असन्तुलित पर्यावरण : रचियता कौन ?

डॉ0 अंजना वर्मा
व्याख्याता–समाजशास्त्र
बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर (राज0)

पर्यावरण हमारी पृथ्वी पर जीवन का आधार है, जो न केवल मानव अपितु विभिन्न प्रकार के जीव–जन्तुओं एवं वनस्पति के उद्‌भव, विकास एवं अस्तित्व का आधार है सभ्यता के विकास से वर्तमान युग तक मानव ने जो प्रगति की है उसमें पर्यावरण की महती भूमिका है और यह कहना अतिश्योक्ति न होगा कि मानव सभ्यता एवं संस्कृति का विकास मानव पर्यावरण के समानुकूलन एवं सामन्जस्य का परिणाम है। वास्तव में पर्यावरण कोई एक तत्व नहीं अपितु अनेक तत्त्वों का समूह है और ये सभी तत्व अथवा घटक एक प्राकृतिक सन्तुलन की स्थिति में रहते हुए एक ऐसे वातावरण का निर्माण करते है जिसमें मानव, जीव–जन्तु, वनस्पति आदि का विकास क्रम अनवरत चलता रहे, किन्तु यदि इन तत्त्वों में एक भी तत्व में कमी आ जाती है अथवा उसकी प्राकृतिक क्रिया में अवरोध आ जाता है तो उसका बुरा प्रभाव दूसरे तत्त्वों पर पड़ता है, जिससे एक नई विषम परिस्थिति का जन्म होता है। इस विषमता से जलवायु, वनस्पति, जीव–जन्तु एवं मानव पर प्रतिकूल प्रभाव होता है। पर्यावरण, मानव एवं उसके द्वारा विकसित आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक संगठनों से ही एक प्रदेश के पारिस्थितिक–तन्त्र का निर्माण होता है और जब तक यह सन्तुलित रहता है प्रगति होती जाती है किन्तु जैसे ही इसमें व्यतिक्रम आता है, न केवल प्रगति एवं विकास अवरूद्ध हो जाता है किन्तु अनेक प्रकार की प्राकृतिक विपदाओं का जन्म होता है जो जीव–जगत् के अस्तित्व के लिए भी संकट का कारण बन जाता है।

आज का युग विज्ञान एवं तकनीकी का युग है जहाँ विज्ञान ने मानव को अनेकानेक सुख–सुविधायें प्रदान की है इस मानवीय प्रगति एवं विकास में हमारा पर्यावरण या प्रकृति सदैव से सहायक रही है किन्तु इस विकास की दौड़ में, इसकी चकाचौंध में, इसी मूल तत्व अर्थात पर्यावरण की उपेक्षा करने लगे, उसका अनियन्त्रित शोषण करने लगे और तात्कालिक लाभों के लालच में मानव ने स्वयं अपने भविष्य को दीर्घकालीन संकट में डाल दिया है। फलस्वरूप जीवन के स्रोत पर्यावरण का निरन्तर क्षय होता जा रहा है, उसमें गिरावट आती जा रही है। जो सम्पूर्ण मानव जाति के भविष्य के लिये खतरा बनता जा रहा है पर्यावरण हमारी साँझी विरासत है यह राजनीतिक सीमाओं से परे हैं, यदि इसको क्षति पहुँचती है तो विश्व के सभी देश विकसित एवं विकासशील और सभी मानव गरीब–अमीर इससे प्रभावित होते है।

आदिकाल से ही मानव पर्यावरण का उपयोग करता आ रहा है आदिम अवस्था में उसका पर्यावरण के साथ पूर्ण तादात्म्य था, किन्तु जैसे–जैसे उसने पशुचारण, कृषि, परिवहन, उद्योगों का विकास किया, जनसंख्या में वृद्धि हुई, शहरीकरण का विकास हुआ, मानवीय आवश्यकताओं में वृद्धि हुई, उसी के साथ उसने पर्यावरण का शोषण अधिकाधिक करना प्रारम्भ कर दिया। इसी कारण जलवायु परिवर्तन, बाढ, सूखा, अकाल भूमि का बंजर होना, आनुवंशिकी संकट, रेडियोधर्मिता द्वारा विनाश, कीटनाशकों का कुप्रभाव, नांभिकीय युद्ध परीक्षण, मृदा क्षरण, भूमि कटाव आदि होने लगते है तो दूसरी ओर मनुष्य अनेक जान–लेवा बीमारियों की चपेट में आ जाता है साथ ही प्रगति के नाम पर जहर फैलते उद्योग, प्रदूषित जल एवं वायु इस अवकर्षण को दिनों दिन भवावह बनाती जा रही है।

वर्तमान युग तकनीकी युग है और तकनीकी विकास किसी भी देश की प्रगति का परिचायक है इसी कारण विश्व के राष्ट्रों मे तकनीकी विकास की होड़ लगी हुई है। विश्व के विचारकों का यह मानना है कि तकनीकी प्रगति

पर्यावरण को दिन प्रतिदिन प्रदूषित कर मानव जीवन के लिए घातक बनी हुई है। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् विज्ञान और तकनीकी क्षेत्र में हुई अभूतपूर्व प्रगति से लोगों को एक तरफ हर प्रकार की सुविधायें उपलब्ध हुई है किन्तु इस प्रगति का नतीजा केवल मानव ही नही अपितु पेड़–पौधे, हवा, पानी, जीव–जगत सभी भुगत रहे है, पशु–पक्षियों एवं पेड़–पौधों की अनेक प्रजातियाँ विलुप्त हो रही है। वनो का तीव्र गति से विनाश हो रहा है प्राणवायु ऑक्सीजन की कमी होती जा रही है तथा न शुद्ध हवा उपलब्ध है न जल। फलस्वरूप असन्तुलित पर्यावरण से जानलेवा बीमारियाँ उत्पन्न हो रही है। प्रौद्योगिकी का सीमित विकास पर्यावरण के संकट का कारण नहीं था किन्तु वर्तमान के असीमित तकनीकी विकास से पर्यावरण असन्तुलित हो रहा है कोई भी उद्योग ऐसा नही है जो रासायनिक उत्पादनों से जुड़ा नहीं हो और यह भी सच है कि ये पर्यावरण को बुरी तरह से प्रभावित कर रहे है।

कैलिफोर्निया की घाटी में कई वर्षों तक अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि डी.डी.टी. के प्रयोग से महिलाओं के गर्भ तक गिर गए। इसका विरोध करने पर अमरीकी ही नही अपितु सभी विकसित राष्ट्रो में पेस्टीसाइड उत्पादन ही बन्द कर दिया है इसके विपरीत भारत में पेस्टीसाइड का उपयोग एवं उत्पादन निरन्तर बढ़ता जा रहा है।

चिपको आन्दोलन के करीब 40 बरस बाद भी महान प्रोजेक्ट (सिंगरौली मध्य प्रदेश) को लेकर आज आन्दोलन हो रहे है। पानी को तरसते किसान महाराष्ट्र में लगातार आत्महत्या कर रहे है और जमीन कानून को लेकर अन्ना हजारे को पुनः जंतर मंतर पर जाना पड़ रहा है। भारत में पिछले करीब 14 वर्षों में 94 लाख हेक्टेयर नैसर्गिक जंगल नष्ट हो चुके है अर्थात् सन् 1999 ई. से 2013 के बीच भयानक नुकसान जंगलों का हुआ है। त्रिपुरा और गोवा छोड़कर कही पर वृक्ष व जंगल बढ़े नहीं है जंगलों पर दबाव है, इसी से प्राणीमात्र गेंड़ा, बाघ, हाथी, हिरण सब पर संकट है। नदियों के हालात दयनीय है, गंगा–जमुना सफाई अभियान वर्षों से चल रहे है किन्तु नतीजे कब आयेगें कहा नहीं जा सकता।

मानव की मूल आवश्यकता भोजन है इसको पकाने के लिए देश के 95 प्रतिशत से भी अधिक परिवार ईंधन के रूप में लकड़ी, उपले, कोयले और प्राकृतिक उपलब्ध साधन उपयोग में लाते है बढ़ती आबादी एवं कई गुनी बढ़ती आवश्यकताएँ वन–सम्पत्ति के लिए विनाश का संदेश लेकर आई है। कृषि के क्षेत्र में और कृषि उत्पादन में भारी मात्रा में वृद्धि हुई है। कृषि में फसल को अत्याधिक हानि पहुँचाने वाले कीड़ों को मारने वाले पेस्टीसाइड्स में भी वृद्धि हुई है। इसके बार–बार छिड़कने से कीड़े तो मर जाते है परन्तु अधिकांश पौधों के विष चिपका रह जाता है। 99 प्रतिशत से भी अधिक पेस्टीसाइड्स उपयोगी रह जाता है। और वह खेत में पानी एवं वायु में समा जाता है और प्रदूषण फैलाता है। एक बार छिड़कने से कीड़े मार देता है परन्तु कई वर्षों तक बार–बार छिड़कने से यद्यपि इन्सान व जानवर को मार नहीं देता परन्तु कई वर्षों बाद मानव में जहर का संचार अवश्य कर देता है।

इसके विपरीत भारत में पेस्टीसाइड का उपयोग एवं उत्पादन बढ़ता जा रहा है। यहाँ तक कि सब्जियाँ भी पेस्टीसाइड में धोकर बाजार में बेची जा रही हैं। गोभी एवं अन्य सब्जियों को पाउड़र से धोकर, आम एवं अन्य फलों को जहरीले पाउडर से पकाकर शीघ्र बेचने का प्रयास किया जाता है। फल व सब्जियों के अंकुरण से लेकर पकने तक पर्याप्त मात्रा में पेस्टीसाइड का उपयोग किया जा रहा है। उर्वरकों के अत्याधिक उपयोग के कारण भूमि की कठोरता में कमी आई है जिसमें उपजाऊ तत्व पानी में बहने लगा है। अगर ऐसा ही चलता रहा तो मिट्टी की उर्वरा शक्ति कम होती जाएगी।

औद्योगिक विकास ने मानव को प्रगतिशील बनाया। परन्तु भवन निर्माण, विद्युत उत्पादन, भट्टियों में ईंधन, तेल, डीजल, कोयले के जलने, विभिन्न उद्योगों से निकलने वाले ठोस एवं तरल उच्छिष्ट एवं जहरीली गैसों के कारण प्रदूषण कई गुणा बढ़ रहा है। कार्बाइड की गैस आदि के कारण जल, थल, नभ में विष घुलता जा रहा है, प्रदूषण फैल रहा है। यद्यपि औद्योगिक विकास के कारण उद्योगपति लाभ कमाने के नाम पर सबसे आगे है,

पर प्रदूषण निवारण करने के लिए कुछ भी करने को तैयार नहीं। औद्योगिक विकास का श्रेय सरकार लेती है परन्तु औद्योगिक उत्पादन से होने वाले प्रदूषण की जिम्मेदारी उद्योगपति पर डाल दी जाती है। कार्बन–डाई–आक्साइड, सल्फर–डाई–आक्साइड एवं अन्य जहरीली गैसों ने वायुमण्डल को विषाक्त कर दिया है। आशंका है कि शीघ्र ही पर्यावरणीय महामारी फैल जाएगी। वनों के तेजी से कटने के कारण उक्त जहरीली गैसों का प्रकृति द्वारा उपभोग कम होता जा रहा है। वायुमण्डल में जहरीली गैसों की बढ़ती मात्रा इस परिस्थिति में और भी अधिक वृद्धि कर रही है।

वर्तमान में केवल उद्योगपतियों को ही प्रदूषण से जोड़ने की परम्परा बन गई है पर जनसाधारण भी औद्योगिक प्रदूषण फैलाने में पीछे नहीं है। बड़े–बड़े शहरों में प्राचीन समय के बने मीठे पानी के कुण्ड एवं बावड़ियां मल एवं कूड़ा करकट एकत्र करने वाले पात्र बन चुके है। उदयपुर नगर में पिछौला से जलपूर्ति की जाती है इस झील में प्रतिदिन दस हजार लोगों का मल–मूत्र, 50 टन से अधिक कूड़ा करकट एवं लगभग 70 लाख लीटर गन्दा पानी अबाध रूप से गिरता है। पानी साफ किया जाता है किन्तु इस स्तर का गन्दा पानी किस सीमा तक साफ किया जा सकता होगा इसका प्रमाण अस्पतालों में आने वाले रोगियों की संख्या और पेट संबंधी बढ़ती हुई बीमारियाँ है। पीलिया प्रकोप एवं अन्य बीमारियाँ आगामी भयावह स्थिति का संकेत दे रही है। यही स्थिति पूरे देश की है।

पर्यावरण–प्रदूषण की समस्या मनुष्य के मानसिक असन्तुलन का द्योतक है व्यक्ति ने प्रतिस्पर्धा के दबाव में धरती की सम्पदा को लूटकर अपने घरों/देशों में भरना चाहा है वस्तुओं का स्वामी बनकर वह अपने भीतर के भय को छुपाना चाहता है इस भय ने विकसित देशों को परस्पर के युद्ध के लिए तैयार कर दिया है और विकासशील देश प्रकृति के साथ खिलवाड़ कर रातोंरात धनी बन जाना चाहते है भले उसके धार्मिक एवं सांस्कृतिक मूल्य खोखले हो जाये। प्रकृति को वस्तु मानने से उसके प्रति संवेदनशीलता समाप्त हो रही है। इस संवेदनहीनता ने अपना विस्तार अब प्रकृति से मानव–जीवन तक कर लिया है। पेड़ काटने और मनुष्य की हत्या करने में अब विकास और धन का लालची व्यक्ति या देश अन्तर नही करता है भोगवादी दृष्टिकोण ने अपने सिवाय दूसरे की सुखसुविधा का ध्यान रखना छोड़ दिया है। पर्यावरण–प्रदूषण की यह पराकाष्ठा है इस पर अंकुश जरूरी है, जो धार्मिक मूल्य ही लगा सकते है। मन, वचन और कर्म के दूषण दूर करने से ही प्रकृति का प्रदूषण रूकेगा। मनुष्य जब अपने स्वभाव को समझेगा तभी वह प्रकृति को स्वाभाविक रूप से रहने देगा।

प्रदूषण मानव फैलाता है और वही दूर कर सकता है। एक दूसरे पर दोषारोपण के द्वारा प्रदूषण दूर नहीं होगा, अपतिु आत्मनिरीक्षण से होगा। स्वयं में दोष देखने होंगे। यदि वह ऐसा नहीं करता है तो भविष्य बड़ा दुःखदायी होगा। गर्भपात, मानसिक चिड़चिडापन, अनेक प्रकार की बीमारियाँ, भावी सन्तानों में शारीरिक वृद्धि का अभाव, विक्षिप्त संतानों की उत्पत्ति, विविध प्रकार के स्त्री रोग आदि महामारी के रूप में छा जायेंगे एवं चाँद पर पहुँचने वाला मानव कराहता दुःखदायी मौत का शिकार बनता जाएगा।

प्रदूषण को रोकने के लिए आवश्यक है कि वृक्ष को काटने के स्थान पर उसकी सुरक्षा की जाए। धर्म समझ कर अधिक से अधिक वृक्ष लगाए जायें। हर व्यक्ति 5 वृक्ष लगाये एवं 2 अतिरिक्त वृक्षों को पानी पिलाये। सरकारी स्तर पर ऊर्जा के वैकल्पिक स्त्रोतों का युद्ध स्तर पर विकास किया जाए। सौर चूल्हों का उपयोग अति शीघ्र कर ले। उद्योगपति अपने कारखानों में प्रदूषण दूर करने वाले यन्त्र लगाये बिना कारखाना नहीं चलायें। प्राकृतिक हवा के प्रवाह मार्ग में कारखाना स्थापित नहीं करें और न ही वह नदी नालों में औद्योगिक उच्छिष्ट डालकर प्रदूषण फैलायें। उद्योगपतियों को यह नहीं भूलना चाहिए कि वे भी प्रदूषण के शिकार हो रहे हैं। धनवान होने के कारण वे पहले से ही कई बीमारियों के शिकार है और प्रदूषण के कारण कहीं मौत के पहले शिकार वही न हो जायें। स्वयं जनमानस को भी विवेकशील एवं जागृत होना होगा। घर का कूड़ा एवं मल एक निर्धारित स्थान पर डालना

होगा। इसमें भी बड़ी जिम्मेदारी नगरपालिकाओं एवं ग्राम पंचायतों की है। सफाई से अत्यधिक लापरवाही आ गई है। गन्दगी साफ होने की बजाय बढ़ रही है। गन्दा पानी सड़क पर बहता है। मरे हुए कुत्ते एवं बिल्लियाँ सड़कों पर सड़ते हैं। मल–मूत्र जलाशयों से अविरल रूप से जाता रहता है। प्रदूषण से स्वयं मानव को ही रक्षा करनी है। प्रकृति असंतुलन यदि इसी प्रकार बढ़ता गया तो प्रलय के आसार पूरे–पूरे बनते है। उस समय प्रदूषण करने वाला और प्रदूषण में प्रभावित होने वाला कहाँ पूरा मानव–समाज समाप्ति की ओर उन्मुख न हो जाए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

डॉ0 पाण्डेय, अखिलेश कुमार, विश्व भारती पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली
सिंह, प्रो0 जगदीश, पर्यावरण एवं संविकास, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली
डॉ0 जैन, प्रेम सुमन, पर्यावरण सन्तुलन एवं शाकाहार, संघी प्रकाशन, जयपुर
डॉ0 सक्सेना, हरि मोहन, पर्यावरण एवं प्रदूषण, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
डॉ0 गुर्जर व जाट, राम कुमार व बी.सी., मानव एवं पर्यावरण पंचशील प्रकाशन, जयपुर
सिन्हा, मेघा, पर्यावरण और परिस्थितिकी तंत्र, वंदना पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली

पत्र–पत्रिकाएँ

कुरूक्षेत्र
योजना
दैनिक भास्कर, रसरंग
राजस्थान पत्रिका

❑❑

एक संवेदनशील रचनाकार, कुशल शब्द शिल्पी और समकालीन साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर,समाजसेवी एवं साहित्यकार के रूप में चर्चित सहृदय, व्यवहार में मृदुल तथा लेखन में क्रियाशील, भाषा विज्ञान के मर्मज्ञ सक्रिय विद्वान तथा मन से साहित्यकार डॉ0 रामकमल राय अपने लेखन में मर्यादित सामाजिक संस्कृति के साथ–साथ राष्ट्रीय अस्मिता के प्रति सजगता के निर्माण की प्रेरणा अपनी रचनाओं के माध्यम से संप्रेषित करते नजर आते हैं। अनेक सामाजिक, सांस्कृतिक तथा शैक्षणिक संस्थाओं के अध्यक्ष रह चुके डॉ0 रामकमल राय लेखन की जिजीविषा से सक्रिय रूप से जुड़े रहे। जिसे बनाए रखने के लिए अपने जीवन में अन्तिम समय तक आप सतत, जीवंत एवं सृजनशील रहे। डॉ0 राय की अभिरूचि अनुसंधात्मक के साथ सदैव वैज्ञानिक एवं खोजपूर्ण रही है। चिंतन, मनन में सजग एवं सूक्ष्म दृष्टि रखने वाले डॉ0 रामकमल जी ने सामाजिक समस्याओं से सम्बन्धित ज्वलंत एवं शोध परक लेख अपनी पुस्तकों एवं समसामयिक पत्रिकाओं में लिखे हैं।

❖ कृपया उपरोक्त विषय पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख भेजकर रचनात्मक सहयोग देने का कष्ट करें।

5

अल्पसंख्यक एवं मानवाधिकार

डॉ0 अनुपमा यादव
विभागाध्यक्षा, हिन्दी
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, (भेल) म.प्र.

डॉ0 ऋतु व्यास
अतिथि विद्वान, राजनीति विज्ञान विभाग
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गढ़ाकोटा (म.प्र.)

मानवाधिकार मनुष्य को उसके जन्म होते ही स्वयं प्राप्त हो जाते है। मानवाधिकार वे न्यूनतम आवश्यक अधिकार है जो कि एक मानव को मानव होने के नाते एवं मानव गरिमा को बनाये रखने या अपना मर्यादित अस्तित्व कायम रखने के लिए उसे प्राप्त होना चाहिए।[1] प्रकृति द्वारा प्रदान किए गए अधिकारों और संविधान प्रदत्त संरक्षण के होते हुए उन्हें छीनने का हक किसी को भी नही है। भारतीय संविधान में इन्हें मौलिक अधिकार के रूप में सुस्थापित किया गया है, जिनके संरक्षण के लिए पुलिस की अहम भूमिका होती है। प्रथम विश्व युद्ध के समय अन्तर्राष्ट्रीय शांति भंग होने के साथ मानवाधिकारों का भी बुरी तरह हनन हुआ था। मानवाधिकार शब्द का इस अर्थ में प्रयोग सन् 1940 ई. में ''श्रीमती इलेनोर रूजवेल्ट'' ने किया।[2] आधुनिक मानव समाज में ऐतिहासिक रूप से दृष्टिपात करने पर हम यह पाते है कि इंग्लैड में तेरहवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षो में वहाँ के तत्कालीन सम्राट जॉन को कुछ सामंतों द्वारा परंपरागत अधिकारों को मान्यता देने के लिए एक मांग पत्र दिया गया। इनमें कुछ मुख्य मांगें थी–शेरिफ की शक्तियों को सीमित करना, बिना प्रतिनिधित्व के कोई कर न लगाना। इन मांगों पर विचार करने के पश्चात जो ऐतिहासिक राजाज्ञा जिसे हम चार्टर कहते है, सन् 1215 ई. में सम्राट द्वारा प्रसारित की गई। बेंथम ने उपयोगिता का सिद्धांत दिया और जे.एस. मिल ने स्वतंत्र अभिव्यक्ति के अधिकार की बात कही।[3] मानवाधिकारों के क्षेत्र में यह चार्टर 'मैग्नाकार्टा' (1215) के नाम से विख्यात है। आज भी इंग्लैड़ के संविधान की व्याख्या करने में मैग्नाकार्टा को एक आधार स्तंभ तथा व्यक्ति की स्वतंत्रता तथा समानता का पोषक माना जाता है।

सन् 1946 में गठित आयोग द्वारा जून 1948 में मानवाधिकारों की विश्वव्यापी घोषणा तैयार की गई। इस घोषणा को 10 दिसम्बर 1948 को संयुक्त राष्ट्र संघ महासभा द्वारा स्वीकार कर लिया गया। मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा संयुक्त राष्ट्र संघ की एक महान उपलब्धि है।[4]

मानवाधिकार का – भारतीय संविधान अल्पसंख्यकों को न केवल पर्याप्त संरक्षण प्रदान करता है बल्कि उनको विकास के भी पर्याप्त अवसर प्रदान करता है।[5] सामाजिक संदर्भ में इस शब्द का प्रयोग एक प्रकार से बड़े और छोटे, उच्च एवं निम्न, मालिक एवं नौकर के मध्य तुलनात्मक संबंध स्थापित करना है।

भारतीय संविधान के अन्तर्गत अल्पसंख्यकों के संबंध में दिये गये प्रावधानों को सूक्ष्मतः निम्न प्रकार व्यक्त कर सकते हैं। सामान्य प्रावधान कानून के प्रति समानता भेदभाव पर प्रतिबंध, सामाजिक समानता, सरकारी नौकरी में अवसर की समानता, धार्मिक स्वतंत्रता शैक्षिक अवसरों की समानता सर्वभौमिक मताधिकार/ विशेष प्रावधान के अनुसार शिक्षा की स्वतंत्रता, राजकीय सहायता प्राप्त करने का अधिकार, सम्पत्ति का अधिकार। उपर्युक्त प्रावधान अनुच्छेद 14 से अनुच्छेद 30 के अन्तर्गत आते हैं।

निषेधात्मक प्रावधान –

अनुच्छेद 25 सिक्ख समुदाय के लिये अनुच्छेद 331, 333, 336 एवं 337 मात्र ऐंग्लो इन्डियन के लिये लागू है। भारतीय संविधान अल्पसंख्यकों को न केवल पर्याप्त संरक्षण प्रदान करता है वरन् उनको विकास के भी पर्याप्त अवसर प्रदान करता है। अधिकांश देशों में अल्पसंख्यकों की समस्या कानून निर्माण द्वारा संरक्षित होती है। भारत में अल्पसंख्यकों का संरक्षण संवैधानिक सुरक्षा द्वारा किया गया है भारतीय संविधान न केवल बड़ी संख्या में सुरक्षा प्रदान करता है वरन् इस सुरक्षा प्रदान करने वाले कार्यों से संबंधित मशीनरी को समस्त क्षेत्रों में अन्वेषण का अधिकार

भी देता है।

इसके अतिरिक्त अल्पसंख्यक समुदाय के प्रति हत्याओं लूट आदि अपराधों, मतदान करने से रोकना, रोजगार में भेदभाव, शिक्षा क्षेत्र में पक्षपात एवं धार्मिक असहिष्णुता जैसे राजनैतिक आर्थिक एवं सामाजिक अन्याय बरतने के आरोप भी समाचार पत्रों में हेडलाइन्स में भी देखे जा सकते हैं जो कि अल्पसंख्याकों को प्राप्त संवैधानिक अधिकारों एवं मानवाधिकारों के हनन के प्रतीत नहीं होते वरन् भारतीय संविधान के प्रमुख उद्देश्य, सामाजिक न्याय के उल्लंघन के परिचायक कहे जा सकते हैं। इसके साथ ही पुलिस पर भी निष्पक्षरूप से कर्तव्य पालन न करने एवं स्वयं इन घटनाओं में लिप्त रहने के आरोप लगाये जाते हैं। पूर्व न्यायविदों के अनुसार पुलिस बल देश का सबसे बड़ा साम्प्रदायिक संगठन है। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या वास्तव में ऐसा होता है ? यद्यपि इस तथ्य को नकारा तो नहीं जा सकता फिर भी इसे पूर्णतः सत्य भी नहीं माना जा सकता। अल्पसंख्यक वर्ग के प्रति शोषण, उत्पीड़न तथा अत्याचार की घटनाओं से न केवल प्रदेश की छवि बिगड़ती है वरन अल्पसंख्यकों को प्रदत्त संवैधानिक प्रावधान निष्क्रिय हो जाते हैं क्योंकि इस प्रकार की घटनाओं से अल्पसंख्यकों के मूल अधिकारों व मानव अधिकारों का हनन होता है न्याय प्रक्रिया के लिये किये जा रहे प्रयत्नों को भी आघात पहुँचता है।

अल्पसंख्यकों के प्रति होने वाले इन अपराधों की प्रत्येक घटना घटित होने के पश्चात अल्पसंख्यकों के मानवाधिकारों के रक्षार्थ तथा उन्हें न्याय प्रदान कराने की स्थिति में क्या उचित कदम उठाया जाता है।

अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थानों को सीधे अनुसूचित विश्वविद्यालय से संबद्ध करने की मंजूरी देने के लिए अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थानों के राष्ट्रीय आयोग का गठन, जिसके अंतर्गत शुरू में केन्द्रीय विश्वविद्यालय से संबद्ध करने का भी प्रावधान है। राष्ट्रीय अल्पसंख्यक विकास वित्त निगम की अधिकृत शेयर पूंजी–2 को 500 करोड़ रूपये से बढ़ाकर 650 करोड़ रूपये कर दिया गया है।

सागर संभाग के अनुसूचित जाति जनजाति के विषय में विस्तृत अध्ययन करने के बाद कुछ तथ्य उभर कर आये जिनमें देखा गया है कि अल्पसंख्यकों के प्रति बहुसंख्यकों का व्यवहार दोयम दर्जे का होने से अपराध का मुख्य कारण है। वहीं दूसरी ओर अनुसूचित जाति जनजाति के हित में बनाये गये अधिनियमों का गलत उपयोग भी देखा गया है जिसमें पुलिस की भूमिका अहम हो गई है। जब कभी दो पक्षों में झगड़ा होता है तो साम्प्रदायिकता भड़कती है जिससे भयंकर रूप से जनहानि होती है। इस संबंध में सागर संभाग में पुलिस का कार्य संतोषजनक माना जा सकता है। क्योंकि विगत वर्षों में हुए साम्प्रदायिक दंगा का पुलिस ने पर्याप्त समाधान किया है जिसके फलस्वरूप कोई बड़ी घटना सामने नहीं आई किन्तु कुछ एक मामलों में पुलिस सफल भी नहीं रही है। जिसमें सद्दपुण जिला छतरपुर में होने वाली घटना की गूंज विधानसभा में सुनाई दी व उच्च स्तरीय जांच के आदेश दिये गये।

यह भी देखने में आया है कि पुलिस अक्सर बहुसंख्यक वर्ग के प्रभाव में रहती है अल्पसंख्यक वर्ग की महिलाओं से छेड़छाड़ सामान्य हो गई है। ज्यादातर अल्पसंख्यक वर्ग की महिलायें कामकाजी होती हैं जिन्हें बहुसंख्यक वर्ग के घरेलू कार्यों के लिये काम पर रखी जाती हैं जिससे अपराधी को अपराध करने का मौका सुलभ हो जाता है। इसी प्रकार अन्य अपराधों के चलते बस्तियों को जलाने स्त्रियों के साथ बलात्कार करने, एवं निर्वस्त्र कर घुमाने की घटनायें बहुत ही सामान्य बात है।

सर्वविदित है कि हरिजन एक्ट जो अनुसूचित जाति जनजाति के हितार्थ बनाया गया है इसका दुरूपयोग भी किया जाने लगा है इससे बहुसंख्यक वर्ग को फसाने या उन्हें ब्लेकमेल करने के लिये उपयोग में लाया जाने लगा है ऐसी स्थिति में यह सिद्ध कर पाना अत्यन्त कठिन हो जाता है कि अपराधी कौन है ? सामान्य रूप से पुलिस मानव अधिकारों द्वारा अल्प संख्यकों न्याय दिलाने में संतोषजनक रूप से सफल रही है किन्तु पूर्ण रूप से सफलता प्राप्त नहीं कर सकी है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 24 में बालश्रम का निषेध किया गया है इसमें 14 वर्ष से कम आयु के किसी भी बालक को कारखाने में कार्य करने के लिये नियोजित नहीं किया जाऐगा या किसी परि संकट नियोजन में नहीं

लगाया जायेगा। लेकिन संवैधानिक नियम के विरूद्ध इस प्रकार पुलिस के खिलाफ भक्षक होने के आरोप लगने लगते हैं जिनसे केवल जांच के बाद ही वास्तविक स्थिति का पता लगता है एवं सत्य व असत्य का पर्दाफाश होता है।

भारतीय संविधान के रचियता डॉ. भीमराव अंबेडकर ने दलित वर्ग के लोगों में आत्म सम्मान और अधिकार बोध की चेतना जागृत की थी। अप्रैल सन् 1921 ई. को बहिष्कृत भारत नामक एक पाक्षिक पत्रिका निकाल कर मानव अधिकारों के लिये संघर्ष पर जोर दिया उन्होंने कहा मंदिर तालाब कुएँ आदि अनुसूचित जाति जनजातियों के लिये निषिद्ध नहीं होना चाहिये।

डॉ. अम्बेडकर ने अल्पसंख्यक लोगों की भलाई के लिये नये संविधान में निम्नलिखित अधिकार दिए जाने को अत्यन्त आवश्यक बताया –

1. समानता मूल अधिकार
2. भेदभाव पूर्ण व्यवहार को विरूद्ध संरक्षण
3. सरकारी नौकरियों में उनका स्थान सुरक्षित
4. विधान सभाओं में भी उन्हें आरक्षण दिया जाये
5. उनकी उन्नति के लिये अलग विभाग
6. समाज से बहिष्कार करने वालों को कड़े दण्ड की व्यवस्था
7. शोषण मुक्ति के लिये अधिक ध्यान दिया जावे

उन्होंने अल्पसंख्यक उपसमिति में उनके हितों के लिये भावों संविधान में महत्त्वपूर्ण स्थान दिलाया। डॉ. अम्बेडकर अल्पसंख्यकों अनुसूचित जनजातियों को समानता के अधिकार के लिये हमेशा संघर्ष करते रहे। उनकी धारणा थी कि ईश्वर की निगाह में सब एक समान हैं फिर यह अल्पसंख्यकों के प्रति द्वेषभावना क्यों।

उनका कहना था कि मनुष्य का यह जन्मसिद्ध अधिकार है कि वह सम्मान पूर्वक जीवन यापन करे। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये अधिकाधिक कार्य करना चाहिये। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये बड़े से बड़ा बलिदान करने के लिये कटिबद्ध हों। वे संवैधानिक नैतिकता के पक्षधर थे एवं संविधान तंत्र सामाजिक क्रांति को महत्व दिया। उन्होंने अपना सारा जीवन समाज के उपेक्षित दलित शोषित और निर्बल लोगों को उन्नत करने में लगा दिया।

स्वामी रंगनाथन अपनी पुस्तक डेमोक्रेटिक एडमिनिस्ट्रेशन इन लाइट ऑफ प्रेक्टीकल वेदान्त में कहते हैं कि – अंग्रेजी शासन काल में हमारी नसों के भीतर गुलामी का जो तत्व प्रवेश कर गया वह स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी जारी है। सरकार में शामिल लोग ऐसा व्यवहार करते हैं कि मानो कि वे शासक हैं और जिन नागरिकों से वे व्यवहार कर रहे हैं वे उनकी प्रजा हैं। संविधान ने लोगों को प्रभुसत्ता दी है, इसमें वे नागरिक शामिल हैं, जो सरकार में हैं, उन्हें अपनी मानसिकता बदलनी होगी। वे शासक नहीं हैं और लोग उनके द्वारा शासित नहीं हैं। वे शासकीय अधिकारों का प्रयोग लोगों की ओर से करते हैं और इस सच्चे अर्थों में वे उनके सेवक हैं।[6]

संदर्भ संकेत

1. रघुनाथन टी.एम.एस., पूर्व तथा पश्चिम में मानवाधिकार, नई दिल्ली, वर्ष 1978, पृ. 4.
2. जाखड़ दिलीप, मानव अधिकर और पुलिस संगठन, यूनिवर्सिटी बुक हाऊस, जयपुर वर्ष 2002, पृ. 5.
3. स्वामी डॉ0 मीनाक्षी, मानव अधिकार एवं पुलिस, श्रीया प्रकाशन, इंदौर, वर्ष 2005, पृ. 16.
4. कांठेड अमरसिंह, मानवाधिकार एवं भारतीय न्यायपालिका की भूमिका, सुमन प्रकाशन उदयपुर, वर्ष 1988, पृ. 23.
5. शंखधर एम.एम. एवं बाधवा के.के., नेशनल यूनिटी एण्ड रिलीजियश मायनोरिटीज, गीतान्जली पब्लिशिंग हाउस, आनंद लोक, नई दिल्ली वर्ष 2004, पृ. 179–180.
6. मध्यप्रदेश मानव अधिकार आयोग, पत्रिका, वर्ष 2008, अंक द्वितीय, पृ. 9.

❑❑

6

स्वातंत्र्य के रूप में मानवाधिकार

डा0 जितेन्द्र यादव
असि0 प्रोफेसर (दर्शनशास्त्र)
हे0नं0ब0रा0स्ना0महा0 नैनी, इलाहाबाद

प्रस्तुत शोध पत्र में प्रो0 अमर्त्य सेन की पुस्तक 'न्याय का स्वरूप' में वर्णित मानवाधिकार की अवधारणा का विवरणात्मक–विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। प्रो0 सेन ने मानवाधिकार की अवधारणा को ऐतिहासिक आधार पर स्पष्ट किया है, मानवाधिकार मूलतः नैतिक दावे हैं और ये नैतिक दावे किसी न किसी स्वतंत्रता से जुड़े हैं। स्वतंत्रता मानवाधिकार के स्रोत के रूप में स्थापित होती है, प्रो0 सेन ने उपयोगितावाद तथा सशक्त हित आधारित दावे का इस सम्बंध में विश्लेषण कर यह स्पष्ट किया है कि मानवाधिकार की घोषणाएँ किन्हीं स्वतंत्रताओं के महत्व की स्थापनाएँ होती हैं। इसके साथ ही मानवाधिकारों के सम्बंध में कुछ आलोचनाओं के विषय में प्रो0 सेन के विचारों को भी विश्लेषित किया गया है।

(1)

मानवाधिकार की अवधारणा के अनुसार विश्व में मानव कहीं भी हो उसकी नागरिकता, निवास, प्रजाति, वर्ग, जाति, धर्म कुछ भी हो, कुछ बुनियादी अधिकार होते हैं और अन्य सभी को उनका सम्मान करना चहिए। मानव अधिकारों के नैतिक प्रभाव का उपयोग अनेक कार्यों हेतु किया जाता है– जैसे कि उत्पीड़न, मनमाने बंदीकरण, प्रजापतीय भेदभाव का विरोध, विश्व स्तर पर भूख और चिकित्सीय उपेक्षा की समाप्ति की माँग आदि। मानव अधिकार की आलोचना इस आधार पर होती है कि सिर्फ मानव मात्र के आधार पर अधिकार कैसे हो सकते हैं?क्या ये अधिकार वास्तविक रूप से हैं? इसके स्रोत क्या हैं? इन्हें सुरक्षित कौन करता है? इस तरह के अनेक प्रश्न उठाये जाते हैं।

मानव अधिकार क्या हैं? इस प्रश्न को प्रो0 अमर्त्य सेन[1] ने मानव अधिकार के समकालिक प्रयोग के अतिरिक्त उसके दीर्घकालिक इतिहास के आधार पर समझने का प्रयास किया। फ्रांसीसी क्रान्ति में माना कि सभी मानवो ने स्वतंत्र जन्म लिया है और सबके अधिकार समान होते है। अमरीकी स्वतंत्रता के घोषणापत्र में स्वंयं सिद्ध माना था कि ''प्रत्येक व्यक्ति के कुद अपराक्राम्य अधिकार होते हैं।'' मानव अधिकार किसी देश के कानून की पुस्तकों में छपे विधि द्वारा कानून नहीं है। मानव अधिकार की घोषणाएँ, उनके अस्तित्व को स्वीकार करने के बाद भी वस्तुतः क्या किया जाना चाहिए की सशक्त नैतिक घोषणाएँ ही हैं।

प्रो0 सेन के अनुसार मानवाधिकार के विषय में दो प्रश्न महत्वपूर्ण हैं[2] प्रथम उनके सत्व का द्वितीय उनके धारण क्षमता का। सत्व का प्रश्न नैतिक स्थापना कतिपय स्वतंत्रताओं के निर्णायक महत्व और उनसे सम्बद्ध सामाजिक दायित्वों (कि उन स्वतंत्रताओं का संरक्षण–संवर्धन हो) को स्वीकार करने की आवश्यकता के विषय में है। द्वितीय प्रश्न मानवाधिकारों की घोषणा में निहित दावों की धारण क्षमता को लेकर है कि अन्य नैतिक दावो के समान मानवाधिकार में निहित दावे खुली और बोधपूर्ण समीक्षा में खरे सिद्ध होंगे।

मानव अधिकारो की सशक्त आलोचना विधि शास्त्री एवं दर्शन शास्त्री बेंथम की तरफ से आती है[3] कि ''मानव अधिकार 'सदाशयपूर्ण' 'कोरी बात' है।'' वे विधि से ही अधिकार को उत्पन्न मानते हैं। उनके अनुसार इसमें कोई विशेष बौद्धिक आधार या सार नहीं होता। उपयोगितावादी यह दावा करते हैं कि सारा महत्व अंततः उपयोगिता का है जबकि मानवाधिकारवादी यह आग्रह करते हैं कि कतिपय स्वतंत्रताओं के महत्व और उनके संरक्षण के

सामाजिक दायित्व को स्वीकार किया जाना चाहिए।

नैतिकता और कानून विधि में क्या संबध होना चाहिए इस संबंध में प्रो0 अमर्त्य सेन बेंथम से असहमत होते हुए हर्बटहार्ट से सहमत होते हैं।[4] हार्ट का तर्क है कि अधिकार की संकल्पना नैतिकता की उस शाखा का अंग है जिसका विशेष संबंध इस बात से है कि एक व्यक्ति की स्वतंत्रता किसी अन्य व्यक्ति की स्वतंत्रता से बाधित (प्रभावित) तो नहीं हो रही है, ऐसा होने पर दमनात्मक कानूनी नियमों में उसके विषय में किस प्रकार की व्यवस्था की जाए। जहाँ बेंथम अधिकार को कानून की सन्तान कह रहे थे, वहीं हार्ट मानवाधिकार को कानून का अभिभावक बना देते हैं – क्योंकि उन अधिकारो से प्रेरित होकर कानून बनाए जाते हैं।[5]

प्रो0 अमर्त्य सेन का विचार है कि मानव अधिकार केवल नवीन कानून बनाने तक सीमित नहीं है,[6] मानव अधिकार की रक्षा वैधानिकता के अतिरिक्त किसी और माध्यम से करनी होगी जैसे अनेक गैर सरकारी संस्थाएं (ह्यूमन राइट्स वाच, एमनेस्टी इन्टरनेशनल, रेडक्रास) मानव अधिकारो के विषय में प्रभावी संवर्धन में बड़ा योगदान दे सकती है, इनके साथ ही शिक्षा और सामाजिक व्यवहार एवं सार्वजनिक चर्चाओं की गरिमा के विषय में जानकारी का प्रसार अधिक उपयुक्त होगा। मानव अधिकार वे नैतिक दावे हैं जो अविभाज्य रूप से मानवीय स्वतंत्रता के महत्व से जुड़े हुए हैं, इन्हें प्रभावी रूप से लागू करने में सार्वजनिक निगरानी और दबाव का बड़ा योगदान हो सकता है, अनेक परस्पर सम्बन्धित उपायों एवं बहुउपयोगिता के माध्यम से मानव अधिकारों की नैतिकता को अधिक प्रभावशाली बनाया जा सकता है।

(2)

प्रो0 अमर्त्य सेन का तर्क है कि मानव अधिकार इन नैतिक सदाशयों की अभिव्यक्ति है[8] कि उनमें निहित स्वतंत्रताओं की महत्ता पर ध्यान दिया जाना चाहिए। मानवाधिकारों की प्रासंगिकता के मूल्यांकलन का उपयुक्त प्रारम्भ बिंदु मानवाधिकारो की स्वतंत्रताओं का महत्व ही होना चाहिए। किसी स्वतंत्रता को मानव अधिकारों में शामिल करने के लिए यह आवश्यक है कि यह इतनी महत्वपूर्ण हो जिसके कारण अन्य व्यक्तियों को इस पर गम्भीरतापूर्वक ध्यान देना पड़ जाए।

मानव अधिकारों के लिए सामाजिक संरचनाओं पर भी कुछ सहमति की आवश्यकता होती है – किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता को तभी मानव अधिकार के रूप में स्वीकारा जा सकता है जब उसमें इतनी सार्थकता हो कि वह पर्याप्त सामाजिक महत्व की न्यूनतम अर्हताओं की पूर्ति कर सकें, जिसमें उस मानवाधिकार के प्रति अन्य सदस्यों के हेतु दायित्व का सृजन हो सके और तब उस स्वतंत्रता की संप्राप्ति में उस व्यक्ति को सहायता करने को तैयार हो सकेंगे। यहाँ न्यूनतम अर्हता के निर्धारण पर तर्क एवं विमर्श किया जा सकता है, मानव अधिकारों के विषय का तर्क एवं विमर्श किया जा सकता है, मानव अधिकारो के विषय का एक महत्वपूर्ण अंग आलोचनात्मक जाँच या समीक्षा भी है।[9]

मानवाधिकार सिद्धान्त में स्वतंत्रता के अवसर और प्रक्रिया आयाम अत्यंत महत्वपूर्ण है। प्रो0 सेन ने उदाहरण द्वारा इसे विस्तृत रूप से प्रदर्शित किया है[10] एक युवती सूला अपने मित्र के साथ नृत्यशाला जाना चाहती है। मान लें समाज की कुद 'दबंग संरक्षक' यह तय करते हैं कि उसे घर पर रहना चाहिए, नृत्यशाला नहीं जाना चाहिए। दूसरा परिदृश्य यह है कि समाज के दबंग संरक्षक यह तय करते हैं कि उसे शाम को बाहर जाना ही होगा क्योंकि वो विशेष मेहमान को बुला रहे हैं जिन्हें सूला की वेशभूषा नहीं अच्छी लगेगी।

उपर्युक्त दोनों ही परिदृश्यों में सूला की स्वतंत्रता का हनन हो रहा है, एक में सवतंत्रतापूर्वक जाने के अधिकार का हनन हो रहा है और दूसरे में विवशता पूर्वक जाने को कहा जा रहा है यहाँ प्रक्रिया आयाम का अतिक्रमण हो रहा है – भले ही वह यही करना चाहती थी। अवसर आयाम का अतिक्रमण और भी गम्भीर हो जाता

यदि उसे न केवल किसी और द्वारा चुना गया काम करना पड़ता बल्कि वह काम ऐसा भी होता जिसे वह कभी नहीं चुनती। यहाँ स्पष्ट है कि मानव अधिकारों में प्रक्रिया और अवसर दोनों ही बातें शामिल रहती हैं। स्वतंत्रता के अवसर आयाम में क्षमता का विचार – अर्थात् किसी मूल्यवान् कृत्यकारिता को पा सकने का वास्तविक अवसर – स्वतंत्रताओ के औपचारिकरण की एक अच्छी विधि होगी। किंड जब उसमें प्रक्रिया आयाम पर ध्यान दें तो वह क्षमताओं की तुलना में बहुत अधिक व्यापक प्रतीत होता है। उचित प्रक्रिया से वंचित किया जाना – जैसे कि बिना ढंग से मुकदमा चलाए किसी को जेल में डाल देना, मानव अधिकारों से जुड़ा एक प्रश्न है – भले ही निष्पक्ष मुकदमें से भी जेल की सजा होने की सम्भावना हो, या नहीं।[11]

अधिकारों के महत्त्व का सम्बंध अन्ततः स्वतंत्रता और उसके अवसर तथा प्रक्रिया आयामों के साथ जुड़ जाता है। यदि स्वतंत्रताएं महत्त्वपूर्ण है, तो समाज के एक सदस्य का अन्य के प्रति दायित्व कैसे निर्धारित हों।[12] प्रो0 सेन यहाँ पर सहानुभूति की प्रभावोत्पादकता सीमा और उसकी सशक्तता को मानव अधिकार की संकल्पना के लिए आवश्यक बताते हैं, एडम स्मिथ की चर्चा करते हुए व 'उदारता' और 'सार्वजनिक भावना' को भी महत्वपूर्ण मानते हैं।

किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता की संम्प्राप्ति में उचित रूप से कितनी सहायता की जा सकती है इस प्रकार अस्पश्टताएँ और असहमतियाँ हो सकती है। प्रत्येक व्यक्ति की योग्यता और क्षमता की सीमाएँ होती है – उसके विभिन्न दायित्वों और अन्य गैर–आचार शास्त्रीय तकाजों की भी आवश्यकताएँ रहती है – उन तर्को में व्यक्ति के सभी सम्पूर्ण एवं अपूर्ण दायित्वों, सरोकारों पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से ध्यान दिया जाना चाहिए।

प्रो0 सेन मानव अधिकारों के आधार के रूप में स्वतंत्रता और व्यक्ति के हितों के दावो की परीक्षा की है। प्रो0 सेन का झुकाव स्वतंत्रता को मानव अधिकारो की घोषणाएं उन स्वतंत्रताओं के महत्त्व की स्थापनाएँ होती है। जिन्हें उन अधिकारों की रचना द्वारा पहचाना और स्वीकारा जाता है।[13]

प्रो0 सेन ने जोसेफ राज के 'सशक्तहित आधारित सिद्धान्त' का उल्लेख कर उसकी परीक्षा की है[14] सशक्तहित आधारित अधिकार कुछ करने की अनिवार्यता को अन्य लोगों के हितों पर आधारित कर देते हैं। क्या अन्य लोगों के विविध हितों को अधिकारों, विशेषकर मानव अधिकारो के सिद्धान्त का पर्याप्त आधार बनाया जा सकता है। प्रो0 सेन विभिन्न उदाहरणों द्वारा यह प्रदर्शित करते हैं कि स्वहितवादी दृष्टिकोण मानव अधिकारों के लिए अपर्याप्त सिद्ध होता है। प्रो0 सेन यह भी स्वीकारते हैं कि अधिकार शब्द की इतनी विस्तृत और क्षमतापूर्ण व्याख्या की जा सकती है कि इसमें संप्रेरणाओं पर ध्यान दिए बिना व्यक्ति के सभी अधिकारों को स्थान मिल जाए। सामान्य भाषा में व्यक्ति की स्वतंत्रता का अतिक्रमण उसके हितों के हनन के समान ही समझा जाता है। अधिकार शब्द का इतना विस्तृत अर्थ लेने पर स्वतंत्रता और अधिकार के बीच की खाई काफी सीमा तक पट सकती है।[15]

कुछ मानव अधिकारों विशेषकर दूसरी पीढ़ी के आर्थिक और सामाजिक अधिकारों का इस आधार पर आलोचना किया जाता है कि पूर्ण रूपेण साकार नहीं किया जा सकता है। 'संस्थाकरण आलोचना[16] का मुख्य आग्रह आर्थिक और सामाजिक अधिकारों के सम्बंध में इस विश्वास पर आधारित है कि अधिकारों के साथ–साथ सटीक रूप से परिभाषित सहगामी कर्तव्य भी होने चाहिए। इनके संस्थागत स्वरूप की आवश्यकता का तर्क सही है फिर भी इन अधिकारो का नैतिक सत्व का महत्त्व इतना प्रबल है कि वह इनकी प्राप्ति के लिए दबाव बनाने, उसमें सहयोग करने और संस्थाओं तथा सामाजिक दृष्टिकोण में बदलाव लाने के प्रयास करने के उचित कारण का रूप धारण कर लेता है।

व्यावहारिक आलोचना[17] का तर्क यह है कि श्रेष्ठता के प्रयास के बाद भी अनेक तथाकथित आर्थिक और सामाजिक अधिकारों की सभी के लिए संप्राप्ति व्यावहारिक नहीं हो पाएगी। यदि अधिकारों को पाने के लिए उनकी व्यवहार्यता को ही आवश्यक शर्त बना दिया जाए तो केवल आर्थिक और सामाजिक ही नहीं सभी प्रकार के अधिकार – स्वतंत्रता का अधिकार भी अर्थ विहीन हो जाएंगे क्योंकि व्यवहार्यता का सन्देह सदैव बना रहेगा।

प्रो0 अमर्त्य सेन मानवाधिकारों की समीक्षा, धारण क्षमता और उपयोग के विषय में विचार व्यक्त करते हैं कि मानवाधिकार के दावों को खुली एवं सूझबूझ पूर्ण समीक्षा की कसौटी पर खरा उतरना होगा। किन्ही मानवाधिकार की स्वीकार्यता पर सहमति के बाद भी (विशेषतः अपूर्ण दायित्व) अधिकार के संचालन पर वाद की संभावना हो सकती है। किसी नैतिक दावे को मानव अधिकार के रूप में धारण क्षमता अंततः उस दावे के निर्बन्ध समीक्षा में खरे उतरने की पूर्वधारणा की क्षमता पर निर्भर रहेगी। निर्बन्ध आलोचनात्मक समीक्षा किसी दावे को उचित ठहराने और खारिज करने दोनों के लिए आवश्यक है।

निष्कर्ष – मानवाधिकार मूलतः नैतिक घोषणाएँ हैं, ये वे स्वतंत्रताएँ हैं जो मानव के लिए आवश्यक हैं। मानव अधिकार का महत्त्व कानून बनाने तक सीमित नहीं हैं, अन्य सामाजिक–नैतिक माध्यमों द्वारा इन्हें प्रभावशाली बनाया जा सकता है। पूर्ण सकारीकरण की स्थित न होने पर भी मानवाधिकार को अमान्य नहीं किया जा सकता है।

सन्दर्भ संकेत

1. डा0 अमर्त्य सेन, 'न्याय का स्वरूप', अनुवादक भवानी शंकर बागला (राजपाल, दिल्ली 2010 पृष्ठ – 308)
2. वही, पृष्ठ – 308
3. वही, पृष्ठ – 307
4. वही, पृष्ठ – 309
5. वही, पृष्ठ – 312
6. वही, पृष्ठ – 312
7. वही, पृष्ठ – 313
8. वही, पृष्ठ – 314
9. वही, पृष्ठ – 316
10. वही, पृष्ठ – 317
11. वही, पृष्ठ – 318
12. वही, पृष्ठ – 319
13. वही, पृष्ठ – 321
14. वही, पृष्ठ – 322
15. वही, पृष्ठ – 323
16. वही, पृष्ठ – 325
17. वही, पृष्ठ – 326

❑❑

---

viu thou :ih frudh dh mMku dk MkO jk; ikBdk d le{k cMh cckdh l j[krh gA yxrk ugh fd o ek= viuh thou&xkFkk luk jg gkA gj mMku d ihN ,d er0;] gj dFkk d ihN ,d l/kh nf"V] gj dk;l d ihN ,d vk'kkoknh nf"Vdk.k] gj vk'kkoknh nf"Vdk.k d lkFk ,d ldkjkRed lkp MkO jkedey jk; dk fgUnh lkfgR; dk vtkr"k= cukrh gA dN u fNiku] lc dN fn[kku dk uke gh l'tu ugh gA viu vuHkok] dk;k] lkp vkfn dk lefUor Lo:i gh l'tu gA ikfjokfjd :Ik l le) gkrh g, Hkh ikfjokfjd fpUrkvk l l?k"kjr ,o lkekftd folxfr;k l yMrh g, MkO jkedey jk; dh yEch vuHko&;k=k mUgk ^ml fojkV Åpkbl ij y tkrh g] tgk l mudk u pkgr g, Hkh o lep lekt dk fn[kk nrh gA

❖ dlk;k mijkDRk fo"k; ij viu lkekftd Kku]vuHko dh lhekvk dk /;ku e j[krh g, "kk/ki.k] rF;ijd ,o 0kKkfud rdk l ;Dr "kk/k vky[k@y[k Hkt dj jpukRed lg;kx nu dk d"V djA

7

प्राचीन समय में संस्कारों की भूमिका

डॉ.सुनीता वर्मा
72, राजेन्द्र नगर करमेर रोड, उरई(जालौन)

संस्कार का अर्थ होता है– शुद्ध करना, साफ करना, चमकाना और भीतरी रुप को प्रकाशित करना। संस्कारों का विशेष उद्देश्य मानसिक और आध्यात्मिक परिशुद्धि से है। जिस व्यक्ति का संस्कार किया जाता है, उसके मन और आत्मा पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। जब हम किसी व्यक्ति के संबंध में यह कहते हैं कि वह मनुष्य सुसंस्कृत है या उसके संस्कार अच्छे हैं, तब हमारा आशय उस व्यक्ति की बाहरी बातों या व्यवहारों से उतना नहीं होता, जितना कि उसकी सद्भावना, सच्चरित्रता तथा मन और आत्मा की पवित्रता से होता है, जिसकी प्रेरणा से वह व्यक्ति सत्कार्य करता है और अपने सद्गुणों का परिचय देता है।

संस्कारों की संख्या में विद्वानों में प्रारम्भ से ही कुछ मतभेद रहा हैं। गौतमस्मृति में 48 संस्कार बतलाये गये हैं। महर्षि अंगिरा ने 25 संस्कार निर्दिष्ट किये हैं। पुराणों में भी विविध संस्कारों का उल्लेख हैं, परंतु उनमें मुख्य तथा आवश्यक षोडश संस्कार माने गये हैं। व्यासस्मृति में इन षोडश (सोलह) संस्कारों का विवरण हैं।

गर्भाधानं पुंसवन सीमन्तो सातकर्म च। व्यासस्मृति
नामक्रियानिष्क्रमणेडन्नाशनं वपनक्रिया।।
कर्णवेधो व्रतादेशो वेदारभक्रियाविधिः।
केशान्तः स्न्नानमुगहो विवाहाग्निपरिग्रहः।।
त्रेताग्निसंग्रहश्चेति संस्काराः षोडश स्मृताः।[1]

अर्थात् – 1. गर्भाधान 2. पुंसवन 3. सीमन्तोन्नयन 4. जातकर्म 5. नामकरण 6. निष्क्रमण 7. अन्नप्राशन 8. वयन–क्रिया (चूडाकरण) 9. कर्णवेध 10. व्रतादेश (उपनयन) 11. वेदारम्भ 12. केशान्त (गोदान) 13. वेदस्नान (समावर्तन) 14. विवाह 15. विवाहाग्नि–परिग्रह 16. त्रेताग्निसंग्रह। 'संस्कार' शब्द का अर्थ हिन्दी में सँवारना होता है। ये संस्कार जन्म से मृत्यु तक मनुष्य के जीवन को सुसज्जित करते हैं तथा चरित्र–निर्माण में सहायक सिद्ध होते हैं। इस प्रकार मनुष्य के चरित्र–निर्माण में आधार–भूमि के रूप में जो मुख्य तत्त्व माने जाते हैं, उनमें संस्कार एक प्रमुख तत्त्व हैं।

मनुष्य के ह्रदय में जो भाव उठते हैं, वे इन छः बातों से परिलक्षित होते हैं– वचन, बुद्धि, स्वभाव, चरित्र, आचार, तथा व्यवहार चरित्र शब्द सामान्य रूप से व्यवहार, आदत, चाल–चलन एवं स्वभाव आदि का वाचक शब्द है। चरित्र निर्माण के लिए अनुशासन की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। प्राचीन काल में अनुशासन को संयम मर्यादा भी कहा जाता था। भगवान श्रीराम, श्रीकृष्ण गौतमबुद्ध, महावीर, गुरूनानक, गुरुगोविन्द सिंह – सभी का जीवन चरित्र आत्मसंयम की भित्तिपर – आधारित रहा हैं। चरित्र निर्माण के लियें वर्षों साधना करनी पड़ती है और उसे नष्ट करने के लिये क्षणमात्र का समय ही पर्याप्त है। यदि चरित्र बिगड़ जाय तो फिर समझना चाहिये कि हजारों–हजार जन्म बिगड़ गयें। इसलिये चरित्र निर्माण पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता हैं।

ऊँचे गिरि से जो गिरै, मरै एक ही बार।
जो चरित्रगिरि से गिरै, बिगरै जन्म हजार।।

चरित्र और आदर्श की शिक्षा हमारे देश में सबसे पहले परिवार से प्रारम्भ होती हैं। परिवार ही संस्कारतीर्थ

है। जीवन के प्रारम्भिक दिनों में बच्चे के जो संस्कार दिये जाते हैं, वे आजीवन उसका मार्गदर्शन करते हैं। माँ कौशल्या के दिये संस्कारों ने ही श्रीराम को मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम बना दिया, जीजाबाई के दिये संस्कारों ने शिवाजी को राष्ट्रनायक बना दिया तथा माँ कयाधू ने प्रह्लाद को भक्त शिरोमणि एवं महाभागवत बना दिया। मार्कण्डेयपुराण में प्राप्त माता मदालसा द्वारा अपने पुत्रों की लोरी में दी गयी संस्कारों की शिक्षा–

सदा मुरारि हृदि चिन्तयेथा –
स्तदध्यानतोऽन्तः षडरीञ्चयेथाः।
मायां प्रबोधेन निवारयेथा
ह्यनित्यतामेव विचिन्तयेथाः।।[2]

अर्थात्–बेटा! तू अपने मन में सदा श्री विष्णु भगवान का चिन्तन करना, उनके ध्यान से अन्तःकरण के काम–क्रोध आदि छहों शत्रुओं को जीतना, ज्ञान के द्वारा माया का निवारण करना और जगत की अनित्यता का विचार करते रहना– अत्यन्त ही प्रसिद्ध है।

इसी प्रकार मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम ने अपने पिता महाराज दशरथ की आज्ञानुसार राजगद्दी की जगह वनगमन कर पिता की आज्ञा पालन का अनूठा आदर्श उपस्थित किया हैं। श्रवणकुमार ने संस्कारों के कारण ही अंधे एवं वृद्ध माता–पिता को काँवर में बिठाकर तीर्थयात्रा करायी थी। पुराणों में भी माता–पिता की सेवा को सर्वश्रेष्ठ बताया है। इसके कई उदाहरण हमें पुराणों से मिलते हैं। जैसे– पद्मपुराण के भूमिखण्ड

पतितं क्षुधितं वृद्धमंशक्त सर्वकर्मसु।
व्याधितं कुष्ठिनं तातं मातरं च तथाविधाम्।।
उपाचरति यः पुत्रस्तस्य पुण्यं वदाम्यहम्।
विष्णुस्तस्य प्रसन्नात्मा जायते नात्र संशयः।।
नास्ति मातुः परं तीर्थं पुत्राणां च पितुस्तथा।
नारायणसमावेताविह चैव परत्र च।।[3]

यदि पिता पतित, भूख से व्याकुल, वृद्ध, सब कार्यों में असमर्थ, रोगी और कोढ़ी हो गये हों तथा माता भी इसी अवस्था में हों, उस समय में भी जो पुत्र उनकी सेवा करता हैं, मैं उसके पुण्य का वर्णन करता हूँ – उस पुत्र पर निःसंदेह भगवान विष्णु प्रसन्न होते हैं। पुत्रों के लिए माता–पिता से– बढ़कर दूसरा कोई तीर्थ नहीं है। वे इस लोक और परलोक में भी श्री नारायण के समान हैं।

महर्षि वेदव्यास जी माता–पिता की सेवा को– पारमार्थिक संस्कार के रुप में बताते हुए उसकी महिमा में कहते हैं –

सर्वतीर्थमयी माता सर्वदेवमयः पिता।
मातरं पितरं तस्मात् सर्वयत्नेन पूजयेत्।।[4] पद्मपुराण के सृष्टि खण्ड

इसका अर्थ है कि माता में सभी तीर्थों का अधिष्ठान है अथवा सभी तीर्थों जो पावनत्व है, उससे भी अधिक पवित्र माता है, इसी प्रकार पिता में सभी देवता प्रतिष्ठित हैं। अतः सभी प्रकार के प्रयत्न से माता–पिता के सेवा–पूजा करनी चाहिये।

विभिन्न स्थानों पर माता–पिता तथा आदरणी जनों का सम्मान एवं सेवा को श्रेष्ठ बतलाया गया हैं। तथा इसी श्रेष्ठ संस्कार का ज्ञान देते हुए मार्कण्डेयपुराण मृकण्डु मुनि अपने पुत्र से कहते हैं –

यं कंचिद वीक्षसे पुत्र भ्रममाणं द्विजोत्तमम्।
तस्यावश्यं त्वचा कार्यं विनयादभिवादनम्।। [5]

हे! पुत्र तुम जिस किसी ब्राह्मण, मुनि, पूज्य को देखना – उनको विनम्र हो अवश्य प्रणाम करना। बालक ने ऐसा ही किया। बालक को सबसे चिरंजीवी होने का ऐसा आर्शीवाद मिला कि अश्वत्थामा, बलि, व्यास, हनुमान, विभीषण, कृपाचार्य तथा परशुराम–इन सातों चिरंजीवी के साथ मृकण्डु के पुत्र मार्कण्डेयजी आठवें चिरजीवी हुए।

संस्कारों की महिमा अतुलनीय है। संस्कारों से मानव जीवन सुसंस्कृत एवं श्रेष्ठ बन जाता है। संस्कार के द्वारा यह सुनिश्चित किया जाता है कि व्यक्ति अपने दायित्वों का निर्वहन जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सक्रियता से करता है तथा नैतिकता के आधार पर उन्हें व्यवहारिक जीवन में इस्तेमाल करे। संस्कार दैनिक जीवन की वह प्रक्रिया है, जिसे अपनाकर मनुष्य अपने लक्ष्य की प्राप्ति में सफल होता है। जीवन–मूल्यों के आधार पर धर्म के दस लक्षण बताये गये हैं –

धृति क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।[6]

धैर्य, क्षमा दुष्प्रवृत्तियों का दमन, अचौर्य, शुद्धता, इन्द्रियसंयम, बुद्धि,विद्या, सत्य तथा अक्रोध – ये धर्म के दस लक्षण हैं। यदि मनुष्य इन गुणों को अपने जीवन में अपना ले तो वह सुसंस्कृत एवं दैवी सम्पदा से युक्त हो जाता है। शिक्षा के साथ संस्कारों का महत्त्व निर्विवाद है। बिना संस्कार के शिक्षा अधूरी रह जाती है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि – ''शिक्षा मात्र सूचनाओं का संग्रह नहीं है, जो ठूँस–ठूँसकर हमारे मस्तिष्क में भर दी जाए, हमें जीवन–निर्माण करने वाली तथा संस्कारित शिक्षा की परम आवश्यकता हैं।

संदर्भ सूची

1. व्यासस्मृति –9/13–15
2. मार्कण्डेयपुराण 26/37
3. पद्मपुराण के भूमिखण्ड 63/3–4,13
4. पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड 52/97
5. मार्कण्डेयपुराण
6. मनुस्मृति 6/82

❑❑

प्रो0 राय ने जय प्रकाश नारायण, राम मनोहर लोहिया एवं आचार्य नरेन्द देव के सम्पर्क से समता के केन्दीय मूल्य का उन्मेष पाया। डॉ0 राय ने समाजवादी आन्दोलनों में प्रखर भूमिका निभाई और कई बार जेल गए। सभी सरोकारों के बीच वह शाश्वत मूल्यों की तलाश में सदैव समर्पित रहे। आपमें माननीय सम्बन्धों की उच्च मूल्यवत्ता कूट–कूट कर भारी हुई थी। इसमें कोई दो राय नही कि उपने समय के रचनाकारों की समालोचना में डॉ0 राम कमल राय एक उदार किन्तु न्याय और सत्य संचित मूल्यों के प्रति विशेष आस्थावान थे।

❖ कृपया उपरोक्त विषय पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख भेजकर रचनात्मक सहयोग देने का कष्ट करें।

बौद्ध धर्म में अहिंसा : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

आलोक कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर–इतिहास विभाग
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

मानव सभ्यता और संस्कृति के विकास के लिए हिंसा का त्याग और अहिंसा का उपदेश प्राचीन काल से सभी धर्मों और समाजों द्वारा दिया जाता रहा है। अहिंसा और शांति के संदेश के सूत्र विश्व साहित्य में प्राचीनतम माने जाने वाले ऋग्वेद में भी प्राप्त होते हैं। समय के साथ अहिंसा और शांति के प्रति लोगों की संवेदना बढ़ती गयी और प्राचीन भारत में प्रचलित निवृत्ति मार्गों श्रमण संप्रदायों – जैन, बौद्ध तथा आजीवकों में तो न केवल इसके प्रति अधिक आग्रह वरन् अपने को सर्वाधिक अहिंसक सिद्ध करने की परस्पर प्रतिस्पर्धा दिखाई देती है। समय के साथ इनमें बौद्ध धर्म अहिंसा और शांति का धर्म, उसके प्रवर्तक गौतम बुद्ध को अहिंसा और शांति की साक्षात मूर्ति तथा उनकी शिक्षाओं के अनुरूप आचरण को विश्व शांति के लिए उपयोगी मान लिया गया। महात्मा बुद्ध की जन्म स्थली लुम्बिनी में विश्व–शांति स्तूप (पैगोड़ा) की स्थापना हुई और समय के साथ अपनी संवर्धनशील लोकप्रियता के कारण यह कई देशों का राजकीय धर्म भी बन गया। यद्यपि बौद्ध धर्म का अंतिम लक्ष्य निर्वाण प्राप्ति रहा हो लेकिन अहिंसा प्रवण कर्मनिष्ठ नैतिक समाज की स्थापना में बौद्ध धर्म का महती योगदान रहा है।[1]

बौद्ध धर्म के उदय, व विकास तथा प्रचार–प्रसार के वातावरण के आलोक में बुद्ध की समाज सापेक्ष दृष्टि स्पष्ट दिखाई देती है। सिद्धार्थ गौतम का सांसारिक दुःखों, और दुःखकर स्थितियों से विचलित होकर गृहत्याग और फिर संबोधि प्राप्त कर बुद्ध हो जाना और पुनः करूणा (भावात्मक सकारात्मक अहिंसा) से अभिभूत होकर लोगों में विवेक जागरण के लिए धम्म चक्र प्रवर्तन संघ, स्थापन आदि कार्य उनके लोकोपकारी भाव के प्रमाण है। वास्तव में वे सबकी भलाई के पक्ष में थे और किसी भी प्रकार के पापकर्म को अकरणीय मानते थे।[2] उनकी दृष्टि में अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि का पालन करने वाला ही थे[3] और सभी प्राणियों के प्रति अहिंसा भाव रखने वाला सर्वश्रेश्ठ है।[4] ऐसे ही लोगों को सर्वत्र उच्च स्थान प्राप्त होता है।[5]

बौद्ध धर्म में भिक्षुओं, उपासकों और सामान्य गृहस्थों के लिए अलग–अलग उपदेश दिये गये है। उपासकों के लिए भी अहिंसा को आचरणीय बताते हुये हिंसा को जन्म देने वाले अथवा हिंसा के सहयोगी कार्यों से बचने का उपदेश दिया गया है। उपासकों को संघ की सेवा के साथ अस्त्र–शस्त्र, प्राणी, मनुष्य, मद्य, तथा मांस आदि के क्रय–विक्रय, जो कि हिंसा के सहकारी हो सकते है, से बचने का परामर्श दिया गया है। इस प्रकार के कार्य समाज में यश समृद्धि तथा प्रतिष्ठा वृद्धि के साथ ही ग्रह–कलह–शमन, द्वेशादि–निवारण, रोग–निवृत्ति आदि की दृष्टि से भी उपयोगी हो सकते है।[6]

सामान्य गृहस्थों के लिए भी द्वेष, लोभ मोह और भय के वशीभूत होकर धर्मातिक्रमण न करने और जीव हिंसा से बचने की अनुशंसा मिलती है।[7] ऐसा मज्झिम निकाय मे भी उद्धरित मिलता है जहाँ मनसावाचाकर्मणा अधर्म आचरण का वर्णन मिलता है। मनसा अधर्म आचरण में लोभ, मोह और द्वेषपूर्ण कार्य तथा मिथ्यादृश्टि को शामिल किया गया है जबकि वाचा अधर्म आचरण में झूठ बोलना, चुगलखोरी, कटु वाणी आदि का उल्लेख है। कर्मणा अधर्म आचरण में हिंसक व्यवहार, क्रूरता, मार–काट, प्राणियों के साथ निर्दयता पूर्ण आचरण, चोरी, पर स्त्री गमन आदि का विवरण मिलता है। ऐसे दुष्कृत्यों में रत लोगों को नरकगामी बताया गया है।[8] इससे समाज के प्रति बुद्ध की सोच का भान होता है और हिंसा के सहकारी घटकों की पहचान हो जाती है।

मज्झिम निकाय के महादुक्खख्खन्ध सुत्त तथा विभाषा सुत्त में अधर्म आचरण के साथ–साथ धर्मारचरण का

भी वर्णन मिलता है। बुद्ध का मानना है कि इच्छाओं के वशीभूत होकर राजा–राजा, पिता–पुत्र, भाई–भाई सभी परस्पर लड़ते झगड़ते है। लोग चोरी, डकैती राहजनी भी करते है। अतः व्यक्ति के लिए लोभ मोह, द्वेष, बैर से विरत हो कर सम्यक दृष्टि ही आचरणी है लोभ मोह, द्वेष, बैर आदि को बुद्ध ने धर्माचरण की दृष्टि से घातक और अहिंसा–शांति की प्राप्ति के मार्ग में बाधक माना है।[9] बुद्ध की इस प्रकार की व्यापक दृष्टि संबोधिजन्य तो थी ही, व्यावहारिक और अनुभूतिजन्य भी थी। बुद्ध को कई बार अपने जीवन में कलह–समाधान के लिए संलग्न होना पड़ा जिसका असफलता व सफलता दोनों का खट्टा–मीठा अनुभव उन्होंने पाया था। उदाहरणार्थ–शाक्यों और कोलियो के बीच रोहिणी नदी जल बँटवारे का विवाद रहा हो अथवा भिक्षुओं में व्याप्त संघर्ष व कलह की स्थिति रही हो और उसके निराकरण में असफलता निश्चय ही बुद्ध के लिए पीड़ादायी कही जा सकती है। उन्होंने अपनी इस मार्मिक पीड़ा को कई बार व्यक्त भी किया है। विनय महावग्ग और मज्झिम निकाय के कोसम्बी और उपकिलेस्स सुत्त तथा कोसम्बी जातक में भिक्षुओं मे कलह और संघर्ष की स्थिति का विवरण मिलता है। एक दूसरे पर परस्पर कटु शब्दों का प्रहार करते कलह ग्रस्त भिक्षुओं ने बुद्ध के शांत और सद्भावपूर्ण रहने के परामर्श को जब यह कहकर ठुकरा दिया कि वे स्वयं इसका समाधान कर लेंगे, तो बुद्ध को अत्यधिक कष्ट हुआ। ऐसे अवसर पर भिक्षुओं के समक्ष कलह–शमन के लिए दिये गये उपदेश में उन्होंने मेल–जोल और एकता को दृष्टि में रखकर छः महत्वपूर्ण उपायों का सुझाव दिया। इनमें मैत्रीपूर्ण वाचिक एवं मानसिक कर्म का निर्देश तो था ही, धर्म से प्राप्त लाभों का उपभोग करने, समाधि की ओर उन्मुख करने वाले अनिन्दित, प्रशंसित आचरण करने तथा दुःख विनाशक दृष्टि से युक्त हो विहरने का भी परामर्श था। इस प्रकार का प्रशंसनीय आचरण ब्रह्म विहार की सुखद अनुभूति का कारक और अहिंसा तथा शांति का जनक कहा जा सकता है।

अंगुत्तर निकाय का अंगुलिमाल सुत्त धैर्य, शांति एवं सहिष्णुता का उच्च आदर्श प्रस्तुत करता है। आततायी अंगुलिमाल बौद्ध संघ में दीक्षित होकर सहिष्णु और संयत हो जाता है। एक बार लोगों के अस्त्र–शस्त्र के प्रहार से बुरी तरह घायल होने पर, वह उनके प्रति सहसा घृणाशील तो हो जाता है, परन्तु इसका उसे पश्चात्ताप होता है। वह बुद्ध से खेद व्यक्त करते हुये कहता है, ''भगवान! सबसे कठिन बात है तलवार से आघात करने वाले विरोधियों से घृणा न करना।''[10] बुद्ध ने इसका उत्तर दिया, ''अंगुलिमाल! इससे भी कठिन है, विरोधी से यह कहना कि तुम बुद्ध हो। बुद्ध एवं अंगुलिमाल के बीच इस वार्ता को बुद्ध के अहिंसा एवं शांति भाव के प्रमाण के रूप से प्रस्तुत किया जा सकता है। यही नहीं बुद्ध का तो यहाँ तक कहना था, कि यदि मेरे किसी अनुयायी के मन में द्विधारी आरे से अंग–प्रत्यंग को अलग कर देने वाले चोर के प्रति भी हिंसा भाव आ जाता है, तो मै उसे अपनी शिक्षाओं का निष्ठावान आचरणकर्ता नहीं मानता।[11] निश्चय ही ये और इसी प्रकार के अन्य अनेक संदर्भ इस बात के ज्वलन्त प्रमाण है, कि अहिंसा भाव बौद्ध चिन्तन–व्यवहार का मूलाधार था। उनके पंचशील तथा दश कुशल कर्म पथ में अहिंसा का अग्रणी स्थान होना भी इसकी पुष्टि करता है। पंचशीलों में शामिल सत्य, और अस्तेय आदि भी इसी अहिंसा में अंगीभूत है।

महात्मा बुद्ध ने संघ के सदस्यों तथा समाज एवं अपने गृही अनुयायियों में व्याप्त असंतोश संघर्ष विवाद अशांति आदि की प्रकृति और उनके कारणों का अनुभव किया। इसके लिए उन्होंने कई बार अहिंसा और शांति की प्रवृत्ति के अनुरूप अनेक उपायों की अनुशंसा की। उनका मानना था कि प्रत्येक जीव हानि से दूर रहना और आनंद प्राप्त करना चाहता है। यदि कोई व्यक्ति चाहता है कि वह हानि से बचते हुये आनंद प्राप्त करे, तो उसके लिए आवश्यक है कि दूसरों की हानि न करे अन्यथा शांति भंग होती है और घृणा फैलती है। इस संदर्भ में बुद्ध की यह मान्यता थी कि अपने को दूसरों में देखो, किसी को न मारो, न हानि पहुँचाओ, क्योंकि सभी मृत्यु से डरते है।[12] इस प्रसंग में स्वयं बुद्ध के सभी भूतों को आत्मवत देखने का परामर्श भी उद्धरणीय है। जहाँ कर्म के साथ वाणी से भी मनुष्य के अहिंसक होने का निर्देश मिलता है। यहाँ दूसरों को कटुवचन एवं अपशब्द बोलने की वर्जना मिलती है क्योंकि इससे लोगों का अपमान होता है जिससे वक्ता के प्रति घृणा दुर्भाव और परस्पर संघर्ष एवं कलहमय आचरण की सहज आशंका होती है।[13]

सामाजिक, आर्थिक और राजनतिक क्षेत्र में व्याप्त असमानता और अन्याय का भी हिंसक गतिविधियों में योगदान होता है। उनसे अशांति और अराजकता को बढ़ावा मिलता है। विमभाशा सूत्र में उल्लेख मिलता है कि महत्वाकांक्षा और लोभवश राजा–राजा, राज्य–राज्य, भिक्षु–भिक्षु, क्षेत्र–क्षेत्र परस्पर लड़ते रहते है। वे यदि जीतते है, तो उनके शत्रुओं की संख्या बढ़ती है और यदि हारते है तो रोष और विषाद पैदा होता है।[14] कूटदन्त सुत्त में उल्लेख है कि कुछ लोग सुखमय जीवन की इच्छा से भौतिक सुविधा की चाह में अस्त्र–शस्त्र से युक्त हो, अपराधपूर्ण काम करने लगते है क्योंकि आर्थिक विषमता शांति भंग का महत्वपूर्ण कारण है। वास्तव में सामाजिक अशांति और गरीबी में बौद्ध धर्म, कार्य–कारण सम्बन्ध देखता है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति से कर्मनिष्ठ होने की अपेक्षा की गई है। सामाजिक असमानता भी अन्याय है जो हिंसा और अशांति के उत्तरदायी घटक के रूप में उभरकर सामने आती है। बुद्ध न केवल इससे सुपरिचित थे वरन् इस संदर्भ में 'चत्तारो वण्ण समसमा' उनका सिद्धांत वाक्य था। वे कर्म को ही दायाद और योनि सब कुछ मानते थे। भौतिक उपादानो की प्राप्ति की उत्कट इच्छा अथवा किसी व्यक्ति विशेश के प्रति राग या अन्य के प्रति द्वेष की भावना से भी हिंसा और अशांति की आशंका होती है। बुद्ध की शिक्षाओं में इससे भी बचने के उपदेश मिलते है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जीवों के प्रति अहिंसा का भाव रखना बौद्ध धर्म की प्रमुख देशना है। उन्होंने अहिंसा पर बल देकर उसे अपनी मुख्य शिक्षाओं में शामिल किया, उसे सैद्धांतिक आधार प्रदान किया तथा इसे अतुलनीय अच्छाई बताया। चक्र का निशान जो धर्मयुद्ध का प्रतीक था, उसे धर्म शान्ति के प्रतीक चिह्न (धम्म चक) में परिवर्तित कर बौद्ध धर्म ने अहिंसा के क्षेत्र में मौलिक और महत्वपूर्ण योगदान दिया है। बौद्ध अहिंसा अन्तर्दृष्टि को विविध क्षेत्रों जैसे कि पर्यावरणीय, आचार संहिता, दैनिक जीवन, अन्य प्राणियों से सम्बन्ध तथा उनके प्रति नैतिक विचार एवं समाज में किनारे कर दिये गये वर्गों की दशा को समझने की आवश्यकता में निश्चित रूप से लागू किया जा सकता है। बुद्ध अतीत में कितने आवश्यक थे इसका प्रमाण उनकी प्रसिद्धि है किन्तु बुद्ध अतीत से अधिक वर्तमान में प्रासंगिक है क्योंकि कलिंग जैसा युद्ध आज हर देश लड़ रहा है ऐसा वातावरण में शांति स्थापना हेतु बुद्ध के विचार आज भी अनुसरणीय है। इसी को आदर्श मानकर सम्राट अशोक ने कलिंग युद्ध की हृदय विदारक हिंसा व नरसंहार के पश्चात भविश्य में कभी युद्ध न करने की प्रतिज्ञा ली और एक नये युग का सूत्रपात हुआ।

संदर्भ–सूची

1. दुबे सीताराम–बौद्ध संघ का प्रारंभिक विकास, पूर्वा संस्थान, गोरखपुर, 1988, पृ0 126
2. सब्ब पापस्स अकरणं कुसलस्स उपसंपदा। सचित्त परियोदपनम्, एतं बुद्धान शासनम, धम्म पद, बुद्ध वग्ग 14.183
3. यम्हि सच्चं च धम्मो, च, अहिंसा संयमो दमो। स वे वन्तमलो धीरो, थेरो इति पवुच्चति। धम्म पद, धम्मट्ठक वग्गो। 19.261
4. न तेन अरियो होति, येन पाणानि हिंसति। अहिंसा सब्ब पाणानं अरियो तु पवुच्चति।। धम्म पद, वही 19.270
5. अहिंसा ये मुनयो विच्चं कायने संवुता। ते यन्ति अच्चुतं ठान, यत्थ गन्त्वा न सोचरे।। धम्म पद, वही 17.223
6. अंगुत्तर निकाय 8.3.4. तथा 8.3.6 (महानाम सुत्त तथा जीवक सुत्ता)
7. दुबे सीतारामः बौद्ध संघ का प्रारंभिक विकास, पूर्वा संस्थान गोरखपुर, 1988, पृ0 131
8. मज्झिम निकाय, सालेय्यक सुत्त।
9. मज्झिम निकाय, महादुक्खख्खन्ध सुत्त, विभाशा सुत्त।
10. अंगुत्तर निकाय, पालि टेक्स्ट सोसाइटी, जिल्द–2, पृश्ठ 66–68, अंगुलिमाल सुत्त।
11. मज्झिम निकाय, कमचूपम सुत्त।
12. धम्मपद, दण्डवग्ग 10.1, 10.2
13. वही, दण्डवग्ग 10.5
14. मज्झिम निकाय, विभाषा सुत्त

❑❑

9

बुद्धचरितम् महाकाव्य में नक्षत्र एवं दिशाओं का महत्व

डॉ0 संदीप कुमार मिश्र
प्रवक्ता–संस्कृत
दयानन्द बछरावां, पी0जी0 कालेज, बछरावां, रायबरेली

समस्त ज्ञान विज्ञान का प्रादुर्भाव वेदों से हुआ है। ज्ञानरूपी इस महासागर को समझने के लिए मानव जीवन दर्शन से सहज ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि नक्षत्र एवं दिशाओं की महत्ता भी महनीय रूप धारण करती है। जो मानव द्वारा धारण किये गये रत्नों एवं ज्योतिषज्ञों द्वारा बताई गयी है। पूजा–अर्चना एवं शुभ मुहूर्त में किसी नवीन कार्य की शुरुआत नक्षत्र एवं दिशाओं के अनुसार ही किया जाता है। जातक कैसा होगा, उसका स्वास्थ्य कैसा रहेगा, उसके गुण दोष क्या होंगे, इन सभी तथ्यों का आकलन ज्योतिष के द्वारा नक्षत्र और दिशाओं की सहायता से किया जाता है। इन्हीं नक्षत्रों का आकलन कर मानव अपनी जन्म कुण्डली का भी ज्योतिषाचार्य से निर्माण कराता है। बुद्धचरितम् महाकाव्य में नक्षत्र शास्त्र के विविध योगों एवं राजयोगों की परिचर्चा मिलती है जिससे जीवन में शुभाशुभ मार्गों को प्रशस्त किया जा सकता है।

प्राचीन काल में भारत सभ्यता और संस्कृति के क्षेत्र में अत्यन्त समृद्ध एवं विकसित देश था। प्राचीन भारतीय महापुरुषों ने अपने दिव्य ज्ञान चक्षुओं और योग जन्य शक्तिओं से दिशाओं–नक्षत्रों के सम्बन्ध में बहुत कुछ जान लिया था। वे अपने दिव्य चक्षुओं से राशि, नक्षत्र, तारा समूह, सूर्य, चन्द्र आदि ग्रहों की गति, स्थिति और संचार आदि को देखकर योगादि के बल से अपनी शरीरगत चेष्टाओं की तुलना कर मनुष्य जीवन के वाह्य एवं आन्तरिक क्रिया–कलापों तथा उनके द्वारा होने वाले शुभाशुभ फलों का निरूपण करते रहे हैं।

'बुद्धचरितम्' महाकाव्य में नक्षत्र एवं दिशाओं की व्यक्त स्थितियों के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि मनुष्य के जन्म से लेकर वर्तमान समय तक उसके विकास में सहायक क्रियाकलापों, परिवर्तनों, स्थानान्तरणों तथा मृत्युपर्यन्त इन नक्षत्रों और दिशाओं का कितना महत्व होता है। आकाश में नक्षत्रों के रूप में ऋषि भी विद्यमान हैं जिसमें मारीचि, अग्रि, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु एवं वशिष्ठ सप्तर्षि कहे जाते हैं आकाश में उत्तर दिशा में सप्तर्षि मण्डल विद्यमान है।

महाकवि अश्वघोष के बुद्धचरितम् महाकाव्य में नक्षत्र एवं दिशाओं का वर्णन प्राप्त होता है। राजा शुद्धोदन की महिषी माया देवी के पार्श्व से जब राजकुमार ने जन्म लिया उस समय शुभ पुष्य नक्षत्र था व्रतादि के पालन तथा लोकहित सम्पादन के लिए उस पुत्र ने जन्म लिया था–

ततः प्रसन्नश्च बभूव पुष्यस्तस्याश्च देव्या व्रतसंस्कृतायाः।
पार्श्वात्सुतो लोकहिताय जज्ञे निर्वेदनं चैव निरामयंच।।[1]

महाकवि ने आकाश में समस्त तारागणों का वर्णन किया है। आकाश में तारागण मन्दता से पूर्व ही बहुत योजन दूर चला गया। राजकुमार के आश्रम में चले जाने के बाद अन्तःपुर की स्त्रियों की ऐसी दशा होती है जैसे रात्रि के व्यतीत होने पर दिन में आकाश स्थित तारागण।[2] मार की भूतसेना ने जिस समय मुनि पर आक्रमण किया उस समय चन्द्र एवं तारासमूह की आभा भी फीकी पड़ गयी। महामुनि के लिए स्थविर अनिरुद्ध ने उद्गार प्रकट करते हुए कहा है कि वे आकाशस्थ नक्षत्र मार्ग पर आरूढ़ हुए। उस समय भगवान बुद्ध दश संयोजनों से रहित त्रिविध ा भावनाओं से सम्पृक्त अपने इन तीन शिष्यों के परिवार से ऐसे शोभित हुए जैसे शुक्र अधीन चन्द्रमा पूर्णिमा के दिन तीन नक्षत्रों से युक्त होकर शोभित हुआ करता है। तदनन्तर सर्वज्ञ मुनि अपने प्रभा मण्डल के साथ ऐसे चमकने

लगे जैसे सूर्य समस्त नक्षत्र मण्डल को निष्प्रभ कर रहा हो।[3]

बहुमूल्य सुवर्ण के समान सुन्दर वर्ण वाले उस बालक ने अपनी शरीर प्रभा से समस्त दिशाओं को प्रकाशित किया। सभी दिशाएं स्वच्छ हो गयी। मार की भूत सेना ने जब मुनि पर आक्रमण किया उस समय दिशायें शब्द करती हुई प्रज्ज्वलित हो उठीं। मुनि के चतुर्थ याम बुद्धत्व प्राप्त करते ही सभी दिशाएँ अपने यहाँ स्थित सिद्धों के साथ प्रसन्न हो उठी।[4]

सभी अर्हत्पद प्राप्त भिक्षुओं ने भगवान के आदेश का पालन करते हुए पृथक्–पृथक् दिशाओं में अपनी चारिका आरम्भ की–

तत्वज्ञा हि ततो दिक्षुभिक्षवस्ते तदाज्ञया।
प्रतस्थिरेऽथ निर्द्वन्दो महर्षिश्च गयां प्रति।।[5]

जिस समय मुनि ने अपनी शारीरिक आयु के परित्याग का निश्चय किया उसी क्षण पृथ्वी भयभीत स्त्री के समान काँप उठी और समस्त दिशाओं में भयंकर उल्कापात आरम्भ हुए।[6]

बुद्धचरितम् महाकाव्य में नक्षत्रों के माध्यम से प्राकृतिक सुरम्यता और प्राकृतिक आपदाओं को नक्षत्रों से जोड़ करके महाकवि ने भौगोलिक वातावरण को इन्हीं ग्रहों और नक्षत्रों के माध्यम से प्राकृतिक आपदाओं का भी वर्णन किया है जिसमें भूकम्प, ज्वालामुखी, उल्कापात, विद्युत आदि घटनाएं परिलक्षित होती हैं। आम्रपाली उपवन, चैत्रवन, जेतवन, न्यग्रोधवन, शेतविक वन भूमि, लुम्बिनीवन, वेणुवन, पद्यषण्ड नगरोद्यान, उद्यान, कूप, मन्दिर, आराम, प्याऊ, तालाब और वृक्षों में अशोक वृक्ष, पुष्पगुच्छ, आम्रवृक्ष, अशोक सिन्धुवार, जम्बूवृक्ष, लोध्रवृक्ष, अश्वत्थ, ताड़वृक्ष, गुफा आदि पर भी नक्षत्र एवं दिशाओं का प्रभाव पड़ता है।

सूर्य : बुद्धचरितम् महाकाव्य के नक्षत्र एवं दिशाओं का वर्णन करते हुए महाकवि अश्वघोष ने सूर्य की दैदीप्यमानता को लक्षित किया है कि संसार के सभी जाज्वल्यमान पदार्थों की प्रभा सूर्य अपने उज्ज्वल प्रभा से परास्त कर देता है–

स हि स्वगात्रप्रभया ज्वलन्त्या दीपप्रभां भास्करवन्मुमोष।
महार्हजाम्बूनदचारूवर्णो विद्योतयामास दिशश्च सर्वाः।।[7]

और सूर्य के अतिशय प्रकाशमान होने का वर्णन करते हुए कहा है–

वाता ववुः स्पर्शसुखा मनोज्ञा दिव्यानि वासांस्यवपातयन्तः।
सूर्यः स एवाभ्यधिकं चाकाशे जज्वाल सौम्यार्चिरनीरितोऽग्नि।।[8]

समस्त ग्रहों में सूर्य को शोभायमान बताया गया है[9] तथा समस्त तेजस्वी पदार्थों में सूर्य तेजवान होता हुआ[10] मानो सहस्त्र किरणों वाला सूर्य अपना प्रकाश फैलाने की इच्छा कर रहा हो–

अजाज्वलिष्टाथ स पुण्यकर्मा नृपश्रिया चैव तपःश्रिया च।
कुलेन वृत्तेन धिया च दीप्तस्तेजः सहस्त्रांशुरिवोरित्ससृक्षः।।[11]

महाकवि ने अन्धकार नाशक सूर्य का वर्णन किया है कि अविद्या रूपी अज्ञान के नाश हेतु अन्धकार नाशक सूर्य के समान मुनि ने वाराणसी की यात्रा का उपदेश किया। मुनि कहते हैं कि सूर्य जगत को दिनभर तपाकर सायंकाल अस्त हो जाता है।[12] सूर्य अपनी किरणों से मेघ का स्पर्श करता हुआ आकाश में इन्द्रधनुष के समान चमक रहा है। महाकवि ने वर्णन किया है कि गुण उपस्थित रहने पर भी अभिमान से अभिभूत होने पर उसी प्रकार नहीं चमकते जैसे मेघों से आवृत्त सूर्य प्रकाशित नहीं होता। सूर्य के ताप से ही शीत ऋतु में हिम में परिवर्तित हुआ जल सूर्य की किरणों से पुनः जलरूप धारण करता है। जब मुनि निर्वाण हेतु वैशाली नगरी से गये उस समय वह नगरी इस प्रकार प्रभाहीन हो गयी मानो सूर्य राहु द्वारा ग्रस्त होने पर समस्त जगत अन्धकाराच्छन्न हो गया हो। महाकवि

ने लक्षित किया कि सूर्य ज्येष्ठमास में उत्तर दिशा में वृद्धता को प्राप्त होता है। अन्यत्र प्रसंगों में भी सूर्य का वर्णन किया गया है।[13]

चन्द्रमा : बुद्धचरितम् महाकाव्य के भौगोलिक अनुशीलन में प्राकृतिक परिदृश्यों का उद्‌बोधन करते हुए चन्द्रमा का वर्णन प्राप्त होता है। चन्द्रमा समस्त ग्रहों में अतिसुन्दर तथा शोभायमान होता है और समस्त नक्षत्रों में भी श्रेष्ठ माना गया है। चन्द्रमा शुक्ल पक्ष में प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त होता है।[14]

कवि ने यथा प्रसंग वर्णन करते हुए जल में प्रतिबिम्बित चन्द्रमा को दर्शाया है–

इति श्रुतार्थः स विषण्णचेताः प्रावेपताम्बूर्मिगतः शशीव।
इदं च वाक्यं करुणायमानः प्रोवाच किञ्चिन्मृदुना स्वरेण।।[15]

राजकुमार उद्यान क्रीड़ा के लिए अपने सहचरों के साथ आगे बढ़ते हुए उसी प्रकार शोभित हुआ जैसे आकाश में समस्त तारागणों के साथ चन्द्रमा आगे बढ़ता है।[16] महाकवि ने राजकुमार का मुख कान्तिमान चन्द्रमा के समान वर्णित किया है–

अथ काञ्चनशैल श्रृङ्‌गवर्ष्मा गजमेघर्षभबाहुनिस्वनाक्षः।
क्षयमक्षयधर्मजातरागः शशिसिंहासननविक्रमः प्रपेदे।।[17]

बुद्धचरितम् महाकाव्य में वर्णन प्राप्त होता है कि जिस प्रकार राहु के ग्रहण से चन्द्रमा की रक्षा की जाती है उसी तरह पितृशोक में मेरे पुत्र की रक्षा करो–

एकं सुतं बालमनर्हदुःखं सन्तापमन्तर्गत मुद्वहन्तम्।
तं राहुलं मोक्षय बन्धु शोकाद् राहूपसर्गादिव पूर्णचन्द्रम्।।[18]

जब पुष्पधन्वा मार पराजित होकर सेना को लेकर पलायन कर गया उस समय चन्द्रमा गुण युक्त दिखाई देने लगा जैसे कोई प्रसन्न मुख युवती हो[19] और चन्द्रमा प्रसन्न आकार से शोभायमान होने लगा।[20] पाँच भिक्षुओं के मध्य विराजमान तथागत अपनी विशिष्ट महिमा के कारण समस्त लोक में उसी प्रकार शोभायमान हुए जैसे नक्षत्रों के मध्य चन्द्रमा शोभित हुआ करता है–

स पञ्चभिः परिवृतो नक्षत्रैश्चन्द्रवद् बभौ।
अभूल्लोकप्रसिद्धश्चस्वमहिम्ना महामुनिः।।[21]

भगवान बुद्ध दश संयोजनों से रहित, त्रिविध भावनाओं से सम्पृक्त अपने इन तीन शिष्यों के परिवार में नक्षत्रों में चन्द्रमा की भांति शोभित हुए।

दश संयोजनैः क्षीणः भावनावृद्धिसंयुतः।
तथागतं नमस्कुर्वन् तस्थौ शान्त समाहितः।।
क्षीणास्रवैः शीलसमाधियुक्तैस्त्रिभिर्हि शिष्यैः परिवारितोऽसौ।
नक्षत्रनैत्रैः परिमण्डितस्तदा, रराज बुद्धः खलु चन्द्रमा इव।[22]

महाकवि ने वर्णन किया कि गुण वास्तव में उपस्थित रहने पर भी अभिमान से अभिभूत होने पर उसी प्रकार नहीं चमकते जैसे मेघों से आवृत्त तारागण चन्द्रमा–

शोभन्ते न हि सन्तोऽपि ममत्वेनावृता गुणाः।
मेघावृता न दृश्यन्ते तारा–रवि–सुधांशवः।।[23]

सुभद्र आनन्द से निवेदन करता है कि मुनि के निर्वाण प्राप्ति का समय समीप है। मैं उनके दर्शन करना चाहता हूँ क्योंकि इस जगत में प्रतिपदा के चन्द्रमा के तुल्य परम धर्म में प्रविष्ट महापुरुष के दर्शन दुर्लभ है।[24] मुनि के परिनिर्वाणानन्तर चन्द्रमा का प्रकाश क्षीण हो गया वह अपनी निष्प्रभ किरणों से वैसा ही प्रतीत हुआ जैसे पंकिल

जल से लिप्त कोई राजहंस हो–

चन्द्रोऽपि मलिनांशुर्वै मण्डलेन हतप्रभः।
वेत्राणां मध्यगो हंसः पंकलिप्त इवाभवत्।।[25]

इसी प्रकार अन्यत्र भी चन्द्रमा के वर्णन दृष्टव्य हैं।[26]

संदर्भ सूची

1. बुद्धचरितम् 1/9
2. बुद्धचरितम् 8/21
3. बुद्धचरितम् 23/30
4. बुद्धचरितम् 14/87
5. बुद्धचरितम् 16/22
6. बुद्धचरितम् 23/71
7. बुद्धचरितम् 1/13
8. बुद्धचरितम् 1/22
9. बुद्धचरितम् 1/35
10. बुद्धचरितम् 1/37
11. बुद्धचरितम् 2/50
12. बुद्धचरितम् 20/37
13. बुद्धचरितम् 1/57, 69, 20, 4/28, 100, 5/6, 43, 57, 87, 6/1, 13, 7/6, 8, 32, 8/5, 46, 9/8, 16, 78, 81, 10/15, 23, 12/117, 13/35, 41, 59, 14/107, 16/92, 17/12, 19/11, 13, 16, 44, 20/37, 55, 58, 21/53, 22/6, 7, 23, 24/42, 48, 52, 25/1, 61, 26/3, 13, 27/15, 17, 57, 47, 54, 81, 28/37
14. बुद्धचरितम् 2/20
15. बुद्धचरितम् 3/45
16. बुद्धचरितम् 3/9
17. बुद्धचरितम् 5/26, 7/34
18. बुद्धचरितम् 9/28
19. बुद्धचरितम् 13/72
20. बुद्धचरितम् 13/73, 15/3
21. बुद्धचरितम् 16/2, 94
22. बुद्धचरितम् 17/40, 41
23. बुद्धचरितम् 23/30
24. बुद्धचरितम् 26/2
25. बुद्धचरितम् 26/96
26. बुद्धचरितम् 1/1, 12, 16, 2/20, 4/5, 5/45, 6/40, 65, 10/18, 9/11, 11/2, 12/98, 13/29, 19/11, 21/40, 26/97, 106

❑❑

10

वैदिक साहित्य के सांस्कृतिक विवेचन में रामविलास शर्मा का योगदान

डॉ0 आनन्द कुमार यादव
सह–समन्वयक (बी.आर.सी.)
कमासिन, बांदा–210125 (उ.प्र.)

रामविलास मार्क्सवादी चिन्तक थे किन्तु वैदिक साहित्य और संस्कृति का विवेचन करने के कारण कुछ अतिमार्क्सवादी चिन्तकों ने उनके लेखन को लेकर उन पर कई तरह के आरोप भी लगाये। एक वरिष्ठ आलोचक ने तो उनका इसी विषय पर केन्द्रित साक्षात्कार भी लिया परन्तु वह अभी तक उन्हीं आलोचक प्रवर के पास न जाने क्यों प्रकाशनार्थ सुरक्षित है। रामविलास अपने पर लगाये आरोपों से कभी विचलित नहीं हुए। वे जानते थे कि जो लोग उन्हें सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का समर्थक सिद्ध कर रहे हैं, वे ना समझ हैं। ऐसे तमाम आरोप लगाने वालों ने उनकी यह पुस्तकें ध्यान से पढ़ी तक नहीं हैं।

असल में ऋग्वेद केवल कर्मकाण्ड के मंत्रों का संग्रह नहीं है वहाँ तो एक विस्तृत समाज है जो हड़प्पा संस्कृति से भी पहले विकसित हो चुका था। वहाँ केवल मानवतावादी दृष्टि है। तब शारीरिक और मानसिक श्रम का भेद नहीं था। अग्नि की जानकारी हमें सबसे पहले हुई। सूर्य, इन्द्र, वरूण, मरूत आदि की उपासना से वैदिक जनों को कृषि कार्य तथा गोधन बढ़ाने में सहायता मिलती थी। तब कर्म प्रमुख था वर्ण नहीं। वैदिक युग में सामन्तवादी परम्परा के दर्शन नहीं होते। वह युग और उस युग का समाज बढ़ई–लुहार–चर्मकार, स्थपित तथा कृषक आदि कर्मकारों की व्यवस्था पर आधारित था। इन भरण–पोषण करने वालों को ही भरत जन कहा गया है–''एक विशाल भू–खण्ड में फैले हुए जिन गणों और जनों के नाम ऋग्वेद में मिलते हैं उनमें भरत जन ही ऋग्वेद के रचनाकार थे।''[1] पुरोहित परम्परा बाद में विकसित हुई। लोग अपने यज्ञ भी स्वयं करते थे। आगे चल कर रामायण काल में सामन्तवाद और वर्ण व्यवस्था की स्पष्ट चेतना दिखाई देने लगी थी। महाभारत काल में तो गण व्यवस्था चरम पर थी। कौटिल्य कालीन भारत में लगातार यही गण–व्यवस्था और विकसित हुई परन्तु उल्लेखनीय है कि इस काल तक भी हाथ से काम करने वालों को हेय दृष्टि से नहीं देखा जाता था। रामविलास का यह स्पष्ट मानना है कि आर्य कहीं बाहर से नहीं आये। वह यहीं के मूल निवासी थे। यह सब उन्होंने ऋग्वेद के मंत्रों का पुरातात्विक तथा भाषा वैज्ञानिक आधार पर विश्लेषण करने के बाद सिद्ध किया है। शारीरिक और मानसिक श्रम के अभेद को लेकर उनकी टिप्पणी अत्यन्त महत्वपूर्ण है–''ऋग्वेद की यह सबसे बड़ी विशेषता है कि यहाँ शारीरिक श्रम और मानसिक श्रम का भेद मिट गया है। यह हमारा अतीत है और जिस भविष्य की ओर हमें जाना है वह भी यही है।''[2] ऋग्वेद काल में किसान ही भूमि का स्वामी होता था कोई राजा नहीं था। कारीगर और किसान अपने उत्पादन के मालिक थे। ऋग्वेद के बाद हड़प्पा संस्कृति में भी बड़े सामन्तों का या राजाओं का अस्तित्व प्रमाणित नहीं होता। पूरे हिन्दी प्रदेश को जोड़ने वाली सरस्वती नदी का विशेष महत्व रहा है। वैदिक कवियों पर टिप्पणी करते हुए डॉ. शर्मा कहते हैं–''कवियों की निगाह किसी राजा–संरक्षक पर नहीं है। वे काव्य केवल अपने वर्ण या वंश के लिए नहीं रचते, वरन् समस्त मानव समुदाय के लिए काव्य रचते हैं और देवों की उपासना करते हैं।''[3]

रामविलास का मानना है कि वैदिक भाषा विकासमान भाषा है। आज भी हिन्दी प्रदेश में अनेक शब्द ज्यों के त्यों प्रयुक्त होते हैं उनके अर्थ कहीं रूढ़ हो गये हैं तो कहीं उन शब्दों के अर्थों में विस्तार आ गया है, यह बात बिल्कुल अलग है। डॉ. शर्मा कहते हैं–''हिन्दी प्रदेश और पड़ोसी क्षेत्रों की जनपदीय भाषाओं की प्रकृतियाँ पहचान कर ऋग्वेद में प्राचीन जनपदीय भाषाओं की ध्वनि प्रकृति का विश्लेषण किया जा सकता है और इस तरह

ऐतिहासिक भाषा–विज्ञान की अनेक समस्यायें ऋग्वेद के आधार पर सुलझायी जा सकती हैं।''[4] वैदिक युग में मूर्तिपूजा नहीं प्रचलित थी। उस काल में लिंग पूजा तथा वनस्पतियों की पूजा का प्रचलन था। प्रकारांतर से कहें तो समाज विकसित हो रहा था उसमें धातु युग का विशेष महत्व है। अश्व, रथ, नावें तथा इनके उत्पादनकर्ता व्यापारी और उपभोक्ता भी सुदूर तक पाये जाते थे। कोशल और मगध जैसे प्रदेशों की भाषा का वैदिक भाषा पर गहरा प्रभाव दिखाई देता है। इन गणराज्यों का विकास भी लोक–संस्कृति, लोकभाषा के विकास के साथ–साथ ही हुआ। हड़प्पा संस्कृति में वास्तुकला का विकास अपने चरम पर दिखाई देता है। दानवों और राक्षसों की एक परम्परा वैदिक युग में रही है और यही परम्परा रामायण काल तक चली आयी है। राक्षसों और वानरों के संबंध में सम्भावना व्यक्त करते हुए रामविलास कहते हैं–''वानर और राक्षस मनुष्य हैं, यह कई विद्वानों ने लिखा है। इनके आपसी सम्बन्धों पर विचार करना चाहिए। ऐसा लगता है कि यह एक ही समाज के अंग हैं और इनका रूप भी एक दूसरे से बहुत मिलता–जुलता है।''[5]

मागधों और कोशलों के बीच युद्ध की जो परम्परा वैदिक युग में शुरू हुई रामायण में वह दण्ड कारण्य के युद्ध के रूप में दिखाई देती है बाद में यही परम्परा महाभारत में भी दिखाई देती है। कृष्ण का युद्ध मगध के राजा से हुआ। इसी प्रकार महाभारत, गीता, उपनिषद् आदि के समय को शर्मा ने शंकर मत के अनुसार विवेचित किया है। यूरोप में भी दास प्रथा थी, भारत में भी स्त्री और शूद्र दास के रूप में ही काम करते थे लेकिन यूरोप के दासों की दशा की तुलना में भारत में उनकी स्थिति उतनी शोचनीय नहीं थी। हमारे यहाँ दो तरह की दासता थी एक घरेलू, दूसरी व्यावसायिक क्षेत्र के श्रमिकों की दासता। शूद्रों और स्त्रियों को बहुत से धार्मिक कृत्यों में भाग लेने और शूद्रों के लिए तीर्थ यात्रा का विकल्प खुला था।

पुस्तक के इसी खण्ड में वेद, उपनिषद्, आयुर्वेद, धर्मशास्त्र तथा भक्ति एवं सदाचार के तत्कालीन नैतिक सिद्धान्तों की तर्क संगत व्याख्या की गई है। भारत में भक्ति की परम्परा बहुत प्राचीन है। आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य में जो भक्ति परम्परा विकसित हुई है उस पर भी ईसाइयत का प्रभाव नहीं है। धर्म शब्द व्यापक है उसका अर्थ केवल पूजा–पाठ और आडम्बर तो बिल्कुल नहीं है। परन्तु परिवर्तित समाज में राजतंत्र की सामन्तवादी परम्पराएँ लागू हुईं और पुरोहितों ने मनमाने ढंग से धर्म की व्याख्याएँ दी। ऋग्वेद में अहिंसा धर्म का प्रमुख लक्षण था पर बाद में पुरोहितों ने पशु हिंसा को धर्म में शामिल कर लिया। जाति प्रथा की जकड़बंदी; पुरोहितवादी व्यवस्था के चलते बढ़ती गई। इसी कारण भक्ति–आन्दोलन भी दूर तक चलता रहा। सन्तों की दीर्घ परम्परा अछूत और हेय समझे जाने वाले शूद्रों और स्त्रियों की कल्याण की भावना को लेकर चल पाई। सांख्य–योग–बौद्ध आदि दर्शनों तथा इनकी सामाजिक व्यवस्था में जाति का कोई स्थान नहीं था। सांख्य–योग में यहाँ तक कि महाभारत में भी पुरोहितवाद का विरोध किया गया है। शर्मा के अनुसार–''यह विरोध गीता में जोरदार ढंग से व्यक्त हुआ है। सामाजिक दृष्टि से यह गीता का सामन्त विरोधी पक्ष है।''[6] चरक ने चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में जो कार्य किया वह जाति–धर्म आदि से अलग हटकर केवल मनुष्य के हित के लिए है। यह शर्मा के अनुसार वैज्ञानिक विकास का कार्य है। चिकित्सा पद्धतियों के विकास की दृष्टि से चरक संहिता और अथर्ववेद का विवेचन विस्तार से किया गया है। इन ग्रन्थों में उस समय की यथार्थवादी दृष्टि मौजूद है। चरक के चिकित्सा शास्त्र में मन और शरीर दोनों को स्वस्थ रखने पर जोर दिया गया है। उनके समय तक वर्ण व्यवस्था के अनुसार सभी वर्णों के लिए अलग–अलग व्यवस्था का संकेत मिलता है। इस युग में भरतवंशियों में आचरण व पुरुषार्थ के आधार पर राजा का चुनाव होता था। कुछ समय बाद राजा के पुत्र को राजा बनाने की परम्परा चल पड़ी।

'चरक संहिता' में वैद्यों में आपसी प्रतिस्पर्धा का भाव प्रबल हो चुका था। इसके अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि इस समय तक नाना प्रकार के सामिष और निरामिष भोज्यों का प्रचलन हो चुका था। विभिन्न प्रकार के मद्यों का सेवन भी किया जाने लगा था–''चरक संहिता नगर सभ्यता की देन है। जहाँ ये वैद्य अपना काम करते हैं वहाँ से बाजार अधिक दूर नहीं हैं।''[7] चरक तक सभ्यता के विकास में वैज्ञानिक दृष्टि आने लगी थी और नगर

सभ्यता के साथ–साथ बाजार व्यवस्था भी विकसित होने लगी थी। चरक संहिता का अध्ययन करने के बाद डॉ. शर्मा कहते हैं कि चरक संहिता में भौतिक द्वंद्ववाद के स्पष्ट लक्षण विद्यमान हैं जिसका 19वीं सदी में मार्क्स और एंगेल्स ने विकास किया है। ''भौतिक द्वंद्ववाद का विकास 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध में मार्क्स और एंगेल्स ने किया। यूनानी विचारकों में द्वंद्ववाद के बीज हैं उसका विकसित रूप नहीं है। यह द्वंद्ववाद चरक संहिता में है।''[8]

पहले सृष्टि हुई फिर मानव समाज का निर्माण फिर वर्ण व्यवस्था। इसी के साथ बनी पाप और पुण्य की पुरोहितवादी भय की व्यवस्था। इसी भय की व्यवस्था से पुरोहित अपना वर्चस्व सामन्तों पर भी बनाने में सफल हुए। तथाकथित आडम्बर और धार्मिक व्यवस्थायें समाज को अपने अनुसार चलाते रहने की सूझ के कारण खूब पनपनें लगीं। भौतिकवादियों से इन धार्मिक नैतिक मूल्यों को लेकर विवाद भी होता रहा। यह यथार्थवादी विचारध ाारा ऋग्वैदिक युग से ही अस्तित्व में रही है। रामविलास कहते हैं–''यह भारतीय यथार्थवाद बहुत पुराना दर्शन है। यह दार्शनिक धारा ऋग्वेद से चली आई है। उसके बाद अथर्ववेद और महाभारत में भी मिलती है। और इसी भौतिकवादी दर्शन के साथ भौतिकवादी राजनीति और भौतिकवादी समाजशास्त्र का विकास भी हुआ।''[9]

भारत पर छठीं सदी ईसा पूर्व में सर्वप्रथम आक्रमण ईरान ने किया। ईरान में रहते हुए यूनानी इतिहासकार 'हेरोदोतस' ने सुना था कि भारत में चींटियाँ सोना ढ़ोकर इकट्ठा करती हैं। इसके बाद सिकन्दर का भारत पर आक्रमण हुआ। लगभग इसी समय का इतिहास कौटिल्य के अर्थशास्त्र में है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में सामन्तवादी दृष्टि नहीं है। वहाँ राजनीति, अर्थनीति, दण्डनीति का न्यायोचित स्वरूप है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में कहीं भी देवतावाद नहीं है। वर्ण भेद है किन्तु वर्ण भेद भी सामाजिक न्याय पर आधारित है। कालिदास को डॉ. शर्मा उज्जयिनी के विक्रमादित्य के समय का ही मानने के पक्ष में हैं।

रामविलास के इस सांस्कृतिक विमर्श में जो कुछ है वह सचमुच बड़ा महत्वपूर्ण है और सबसे अधिक महत्वपूर्ण है उनकी विवेचन दृष्टि लेकिन कहीं ऐसा भी है जो प्राचीनों के जीवन में कम महत्वपूर्ण नहीं रहा। विद्वानों ने संस्कृति के छः अंग माने हैं। जो क्रमशः इतिहास–धर्म–दर्शन–साहित्य–कला और ज्योतिष हैं। रामविलास के इस संस्कृति विमर्श में तत्कालीन कलाओं और ज्योतिषीय गणित की चेतना का अभाव है जिससे सारा ऋतुविज्ञान विकसित हुआ। इस प्रथम खण्ड में उनका ध्यान पुरुषार्थों पर विशेषकर काम पुरुषार्थ की ओर नहीं गया। वात्स्यायन के 'कामसूत्र', भरत के 'नाट्यशास्त्र' वास्तु–स्थापत्य जैसी ललित कलाओं व प्राचीन विद्याओं व मंदिरों की चर्चा नहीं हुई है। हिन्दी प्रदेश की संस्कृति इन सभी से भी गहरे रूप से जुड़ी रही है। यद्यपि 'आजकल' पत्रिका अप्रैल सन् 2000 ई. के अंक में प्रकाशित एक साक्षात्कार में डॉ. शर्मा ने इस दिशा में अपनी किसी नई पुस्तक की ओर संकेत अवश्य किया था। यदि यह पक्ष भी इस प्रथम खण्ड में शामिल होता तो निश्चित तौर पर उनका संस्कृति विमर्श सर्वांगपूर्ण कहा जाता।

सन्दर्भ संकेत

1. डॉ. रामविलास शर्मा–भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश, भाग–2, पृ.651
2. डॉ. रामविलास शर्मा–भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश, भाग–1, पृ.63
3. वही....., पृ.66
4. वही....., पृ.94
5. डॉ. रामविलास शर्मा–भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश, भाग–1, पृ.160
6. डॉ. रामविलास शर्मा–भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश, भाग–1, पृ.308
7. डॉ. रामविलास शर्मा–भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश, भाग–1, पृ.542
8. वही...., पृ.550
9. डॉ. रामविलास शर्मा–भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश, भाग–1, पृ.612

❑❑

11

भक्ति काव्य में लोक धर्म

डॉ0 दीपिका कटियार
विभागाध्यक्ष–हिन्दी
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हमीरपुर

लोक यानी समाज। जब शुक्ल जी के लोकजीवन की बात करते हैं तो उनका मतलब प्रायः साधारण जनता के एक विशाल भाग से होता है। लोक में रहने वाले इस साधारण जनमानस के हृदय तक ले जाने वाला साहित्य यदि कोई है तो वह है– मध्यकाल का भक्ति काव्य, चाहे कबीर का काव्य हो, सूर का या तुलसी का। भक्ति काव्य में लोकभूमि पर खड़े होकर ही लोक कवि ने वहाँ से लोक में रहने वाले जनमानस के दुखों, पीड़ाओं, असहायता से अपने को जोड़ा, और उनके जीवन को आनन्दमय बनाने के लिए कविताओं की ऐसी रसधारा प्रवाहित की। जिसमें आकण्ठ डूबकर मानव सुख का अनुभव करे। यह रस धारा थी– प्रेम की, त्याग और समर्पण की, आस्था और विश्वास की, भक्ति और श्रद्धा की।

भारत एक विशाल देश है इसकी बहुसंख्यक जनता श्रम करने वाली, किसानी कारीगरी या जीविकोपार्जन के अन्य साधनों को स्वीकार करने वाली जनता है – और इस जनता में साधारण जन के अलावा तमाम ऐसी जन–जातियाँ हैं और बाहर से आने वाली तमाम जातियाँ है जो बहुत कुछ यहाँ की विद्यमान सभ्यता और संस्कृति से लेते हुए, साथ ही अपना बहुत कुछ देते हुए, यहाँ घुल मिल जाते हैं। जिन्होंने यहाँ रहते हुए बहुत कुछ हमारी संस्कृति ग्रहण की और अपना बहुत कुछ देकर हमसे घुल मिल गये।

कालांतर में जब वेद, उपनिषद, पुराण, स्मृतियाँ तथा अन्य शास्त्र आर्य जाति द्वारा रचे गये तो स्वभावतः उनसे साधारण जनता में प्रचलित धार्मिक आचारों–विचारों, मान्यताओं का कहीं मेल बैठा और कहीं नहीं बैठा। स्थिति यह हुई कि शास्त्र और लोक समान्तर कभी मिलते–कभी टकराते चलते रहे लोक और शास्त्र में टकराव की स्थितियाँ यो तो प्रत्येक युगों में विद्यमान रही। बौद्ध धर्म, जैन धर्म, लोकायतों के अलावा आगे चलकर सिद्धों और नाथों ने भी चली आ रही वेदशास्त्र निहित मान्यताओं, विचारों, आचार–व्यवहारों को चुनौती दी और अपना रास्ता अलग बनाया जिसे हम भक्ति युग कहते हैं।

भक्ति युग में युग जीवन की आन्तरिक वेदना की स्वानुभूति है। भगवान की भक्ति और करूणा में स्थिर आशा और आस्था के स्वर हैं। निराश जनता के जीवन में शक्ति संचार का प्रयास है। भारतीय सांस्कृतिक चिन्तन परम्परा का समन्वय और विकास है। पौराणिक और शास्त्रीय कथाओं, प्रतीकों, मिथकों, विचारों एवं अनुभूति धाराओं का लोकाभिमुखी रूप है तथा उनका लोक कथाओं और लोक कलाओं से संयोग है। भक्ति काल में आशा, आस्था और श्रद्धा, धर्म साधना की मौलिक शक्तियाँ हैं और यही लोक जीवन की प्रेरक शक्तियाँ भी हैं। मध्यकाल का भक्ति साहित्य लोक चेतना की सृजन धर्मिता की देन है क्योंकि भक्ति कवियों की काव्य चेतना लोक चेतना से जुड़ी थी इसीलिए भक्त कवियों का लोक जीवन की अनुभूतियों से जोड़कर देखना चाहिए क्योंकि हम पहले ही स्वीकार कर चुके हैं कि मध्यकाल की भक्ति आन्दोलन का उत्स प्रधानता लोक जीवन की धर्मशाला है। ''मध्यकाल की धार्मिक चेतना युग की आकांक्षाओं की उपज है। वह लोक जीवन की सहज धर्म भावना का परिष्कृत उदात्त रूप है। यही कारण है लोक भाषाओं में युग जीवन तथा समाज की अभिव्यक्ति हुई है क्योंकि भक्ति मूलतः हृदय का धर्म है बुद्धि का नहीं, यह लोकधर्म है, शास्त्रीय धर्म नहीं।''[1]

मध्यकाल में विशेषता भक्ति के कवियों का अधिकतर साहित्य समाज की आशा, निराशा, दुःख, पीड़ा,

असहायता को केन्द्र में रखकर रचा गया जहाँ सारा लोक उनके साहित्य का केन्द्र बिन्दु बन गया। स्वाभाविक रूप से लोक से जुड़ा जो कुछ भी था वह उनके काव्यों में लोक तत्त्व के रूप में मुखरित हुआ चाहे वह भक्तिकाल के निर्गुण के कबीर या जायसी हो या सगुण भक्तिशाखा के कवि।

भक्तिकालीन कवियों में यदि हम कबीर के साहित्य पर दृष्टिपात करें तो उनके काव्य में जगह–जगह पर लोकधर्म दिखायी देता है। उनकी रचनाओं के आधार पर उनका लोक कवि रूप या जिसे हम जन कवि भी कह सकते हैं सर्वमान्य है– ''उत्तर भारत में भक्ति आन्दोलन का सूत्रपात वैष्णव आचार्यों की प्रेरणा से हुआ। यदि भक्ति आन्दोलन सिद्धान्तों की मंजूषा में ही बन्द रह जाता यदि इसे जन कवियों की वाणी प्राप्त न होती। इन कवियों ने तत्कालीन जनभाषाओं में भक्ति की किरणों का आलोक विकीर्ण कर जन–जन के मानस को पवित्र कर दिया। ऐसे जन कवियों में पहला नाम कबीर का ही है।''[2]

किसी रचनाकार का बड़ा होना बड़ी बात है पर उससे भी बड़ी बात उसका मनुष्य होना है और इस बिन्दु पर कबीर हमें पूरी तरह आश्वस्त करते हैं। कभी–कभी तो यह लगता है कि लोक की वेदना को देखते–देखते स्वयं को ही भूल गये। उनका संवेदनशील एवं जागरूक मनुष्य उनके कवि से भी महान हैं– 'दुखिया दास कबीर है जागैं औ रोवें, चलती चक्की देख कै दिया कबीरा रोय, दो पाटन के बीच में साबुत बचा न कोय। यह आत्मपीड़ा से उपजी उसकी भावुकता नहीं बल्कि लोकपीड़ा को आत्मपीड़ा में ढाल लेने वाली ऐसी जीवन साधना है जो विष पीकर अमृत बाँटने का संदेश देती है। पराई पीर को समझना मध्य कालीन लोक जागरण का वह गुरु मन्त्र था जो शताब्दियों से दबी कुचली मानवता के लिए लोक वेद का मन्त्र बन गया। इस अर्थ में कबीर की कविता मन्त्र की कविता है।

काशी के लोक कवि रामफेर के शब्दों में कहें तो यही कि– 'हमसे तो हँसे न बने तू अपने घरे हम अपने घरे।' – अपना पक्ष तय करने की चिंता आज के कवि की चिंता है – 'तय करो किस ओर हो तुम', कबीर ने तो बहुत पहले ही जनता के पक्ष में अपना पक्ष तय कर लिया था क्योंकि लोक तो उनकी रग–रग में समाया था और मनुष्य की चिंता ही कबीर की लोकभूमि है, काव्य कसौटी है और कबीर विश्वास शक्ति भी – 'तुम जिन जानौ गीत है यह निज ब्रह्म विचार रे।''

कबीर की कविताई भी इसीलिए लोक जागरण है। वो समाज की विसंगतियों नजर अन्दाज कर सोने वाले रचनाकार नहीं हैं। बल्कि सदैव जागते रहने वाले कवि हैं। डॉ0 मैनेजर पाण्डेय ने एक अत्यधिक महत्वपूर्ण बात की ओर संकेत किया– 'संत साहित्य शास्त्रीय बोध को ढोने का नहीं, अनुभव की धारा में बहने का प्रयास कर रहे हैं।[3] कहना न होगा कि यह अनुभव की प्रमाणिकता लोक संवेदनाओं, लोक संघर्ष की पूँजी है– 'मैं कहता ऑखिन की देखी तू कहता कागद की लेखी।' कबीर आत्मविश्वास गहरी निष्ठा के कवि हैं और वे अपने इसी विश्वास और आस्था की ठनक–ठसक लोक में भी देखना चाहते हैं–

''लोका तुम मति भोरा
जो काशी तन तजै कबीरा
तो रामै कौन निहोरा।''[4]

लोक तत्त्व की दृष्टि से जब हम सूर के साहित्य का मूल्यांकन करते हैं तो पातें हैं कि सूर के कृष्ण तो लोक देवता हैं वे लोक संस्कृति की देन हैं। श्री कृष्ण के लोक रक्षक के रूप ने लोक जीवन में हारे, थके और निराश मनों को सहारा दिया और लीला रस रसिक लोक रंजक रूप ने जनजीवन में जीवन रस का संचार किया। यही कारण है कि मध्यकाल में सगुण भक्ति आन्दोलन का प्रारम्भ ही श्रीकृष्ण भक्ति के रूप में हुआ। जहाँ श्री लोक देवता के रूप में चाहे गरीब हों चाहे अमीर, ऊँचा–नीचा, छोटा–बड़ा ब्रज का हर नर–नारी राधा के साथ हर गोपी

को वह अपनी आनन्दमयी रस माधुरी से सिंचित करते हैं। समस्त लोक उनके आनन्द का केन्द्र बिन्दु है। वे अपनी लीला द्वारा आनन्द देते भी हैं, आनन्द लेते भी हैं। चाहे बाल्य लीला के पदों में बाल्य कृष्ण बनकर अथवा राधा गोपी प्रेम प्रसंगों में प्रेमी बनकर ग्वाल बाल और सुदामा के साथ मित्र बनकर इत्यादि। सूरसागर में ऐसे तमाम पद हैं जो श्रीकृष्ण के इस लोक प्रेम को अभिव्यक्त करते हैं–

''मैया कबहि बढ़ेगी चोटी
किती बार मोहि दूध पिबत भयी यह अजहु है छोटी।''[5]

भला कृष्ण जैसे परमात्मा को भी अपनी चोटी बढ़ाने के लिए दूध पीना पड़ेगा पर उन्हें तो यशोदा को वात्सल्य सुख से अभिमंडित करना था दूसरी तरफ सूर के कृष्ण कन्हाई रूप में लोकनायक बनकर राधा के साथ–साथ हर गोपी को आनन्द देते हैं। उन्हें स्वंय भी इसमें बड़ा आनन्द मिलता इसीलिए मनहारिन का रूप धरकर कृष्ण राधा को चूड़ी पहनाने से भी नहीं चूकते। ऐसे अद्वितीय महाकवि सूर हैं जिन्होंने अपनी मुक्त लेखनी से कृष्ण काव्य की एक ऐसी लोकभूमि तैयार की जहाँ ब्रज के साथ–साथ सम्पूर्ण लोक मगन हो जाता है। अतएव सूर के यहाँ भी सबसे बड़ा लोक धर्म यदि कुछ है तो वह प्रेम है। कृष्ण के लोक रक्षक रूप की झांकियाँ बीच–बीच में ही उन्होंने दी है परन्तु उनकी वृत्ति लीला गायन में ही रमी है। ब्रज की लोक संस्कृति पूरी ऊर्जा और उठान में उनके यहाँ है। यह लोक तत्त्व की चीज है। शुक्ल जी कबीर पर परोक्ष व्यंग्य करते हैं कि अनाधिकारी होकर भी वे शास्त्र निन्दा करते हैं, पंडितों, ज्ञानियों की आलोचना करते हैं। सूर तो ब्राह्मण कुल के थे, कबीर जैसे पोथी ज्ञान से वंचित भी नहीं थे किन्तु उनके द्वारा रची–सिरजी उनकी अपढ़ ग्रामीणाएँ कैसे उद्धव जैसे ब्रह्मज्ञानी का मखौल उड़ाती हैं, उन्हें हैरान करती हैं और निर्गुण ब्रह्म के समक्ष प्रश्नचिह्न लगाती हैं। यही नहीं महारस के अवसर पर, वंशी की ध्वनि सुनते ही पारिवारिक मर्यादा, लोकलाज, घूँघट सबका तिरस्कार करते हुए रात–रात भर कृष्ण के साथ यमुना किनारे नृत्य करती हैं।

जायसी को कबीर की तरह समाज सुधारक का खिताब नहीं मिला था पर सामन्ती समाज में जीने वाले आम नारी पुरुष की मानसिकता के साथ ही साथ ग्राम्य जीवन के नैतिकता के संस्कार उनकी रचना में मिल जाते हैं। मुसलमान होते हुए भी उन्होंने अपने मनुष्य होने का परिचय दिया।

सूफी सन्त के रूप में विख्यात जायसी ने अपने महाकाव्य पदमावत में लोकसंस्कृति विशेष रूप से अवध की लोकसंस्कृति की चर्चा की है। पदमावत का पूर्वार्द्ध पूरी तरह से लोक के बीच चला। उनका पदमावत काव्य और इतिहास की ऐसी समन्वित प्रस्तुति है जिसमें लोक का कथारस, कथानक–रूढ़ियाँ हिन्दुओं के प्रचलित धार्मिक व्रत तीज–त्यौहार सब कुछ घुल मिल गये हैं। यदि कबीर की रचनाओं में दाम्पत्य प्रेम की मिठास है तो मलिक मोहम्मद जायसी भी लोक को प्रेम की विश्वास शक्ति, संकल्पशक्ति से भर देना चाहते थे–

'मानुष प्रेम भए बैकुण्ठी, नाहि त काह छार भरि भुट्ठी'

यह उनकी प्रसिद्ध उक्ति है। यहाँ हम देखते हैं कि जायसी के सामने अवध की लोक संस्कृति लोक विश्वास है तो कबीर के सामने सम्पूर्ण चैतन्य लोक।

जायसी के पदमावत में अवध प्रदेश के साधारण की जिन्दगी की छवियाँ भी नागमती वियोग वर्णन में हैं। ये सब लोकतत्व के अन्तर्गत आता है। पदमावत में जहाँ रत्नसेन पदमावती है वहाँ अलाउद्दीन खिलजी भी है और उनकी चित्तौड़ विजय भी। अलाउद्दीन खिलजी चित्तौड़ पर विजय भी प्राप्त करता है। यहाँ हम देखें तो हिन्दू–मुस्लिम संस्कृति का टकराव दिखलायी पड़ता है किन्तु जायसी को यह साध्य नहीं है उन्होंने अलाउद्दीन को मात्र भाषा का ही प्रतीक माना है। जायसी के यहाँ लोकधर्म का स्वरूप हमें उनके प्रेम तत्व के वर्णन में दिखलायी पड़ता है यह उनकी सूफी सन्त ऐसी मानसिकता है जहाँ उन्होंने धर्म से परे प्रेम के सूत्र में मनुष्यता को पिरोने की बात कही।

चित्तौड़ विजय के उपरान्त अलाउद्दीन खिलजी को वे उसकी औकात बता देते हैं जब पदमावती की बजाय उसकी राख मिलती है। शांत रस में उनके काव्य का पर्यावसान होता है। तमाम सारे प्रचलित लोक–विश्वासों और कथा–रूढ़ियों को चित्रित करते हुए भी उनका सारा बल प्रेम और इंसानी रिश्ते की इसी प्रेम पर टिकी, छवि पर रहा है। उनके लोक धर्म का यह रूप उन्हें कबीर जैसे संतों से जोड़ता है और उन्हें एक सूफी संत की गरिमा प्रदान करता है।

तुलसी का सम्पूर्ण साहित्य तो लोकधर्म के धरातल पर खड़ा है। रामचरित मानस की परिकल्पना में लोक कल्याण का जो सुन्दर रूप अवतरित हुआ है, वह देखते ही बनता है। जहाँ तुलसीमानस के द्वारा सम्पूर्ण लोक में एक ऐसी चेतना का विकास करते हैं, जो सभी को एकता के सूत्र में बांधे रखती है, जहाँ पहुँचकर सभी सुखी हो जाते हैं और सभी का कल्याण हो जाता है। कबीर की तरह तुलसी को समकालीन समाज की विषमताओं में गया है। उन्होंने स्पष्टतः कहा है कि–

'सबते कठिन जाति अपमाना' और 'नहि दरिद्र सम दुख जग माहि।'

सुर सरि के समान सबका हित चाहने वाले तुलसीदास विनय पत्रिका में लोक कल्याण की भावना से विगलित होकर राम से याचना करते हैं कि आप ही एक ऐसे स्वामी हैं जो बिना सेवा के भी भक्तों का कल्याण करते हैं। तुलसी जिस लोक की रचना करना चाहते है वह शास्त्र से संचालित है पर यहाँ पर सूर प्रगतिशील दिखायी पड़ते हैं क्योंकि उनकी गोपियों का प्रेम कोई सीमा न जानता है और मानता है। वे लोक की बन्धनग्रस्त रूढ़ियों को भी अस्वीकार कर देती हैं और शास्त्र की जड़बद्धता को भी। वही तुलसी अपने लोक में स्वधर्म एवं आश्रमवादी वर्णाश्रम व्यवस्था वाली रूढ़ि को भी तोड़ नहीं पाते। मैनेजर पाण्डेय ने बड़ी सार्थक बात कही है– 'लोक की रूढ़ियाँ शास्त्र की रूढ़ियों से कम दमनकारी नहीं होती। समाज में प्रचलित रीति–रिवाज, मान–मर्यादा, कुल–कानि आदि से उपजा लोक भय प्रायः लोकधर्म बनकर मानवीय भावों और सम्बन्धों के स्वतन्त्र विकास को खास तौर से प्रेम की दुनिया को छिन्न–भिन्न कर डालता है।''[6]

समग्रतः भक्तिकाव्य में लोकधर्म की यह छवि है और यह लोकधर्म किसी एक साँचे में ढला लोकधर्म नहीं है। संतों तथा भक्तों ने उसे अपने–अपने अनुभवों सोच तथा नीतियों के तहत उभारा है। एक बात तो विश्वास के साथ कही जा सकती है, वह यह कि अपनी संवेदना तथा सोच के सबसे उदात्त क्षण में, वे एक स्वर से प्रेम की, मानव–प्रेम की, सच्चे प्रेम की बात करते हैं, लोक के कष्टों से द्रवित होते हैं और उससे लोक की मुक्ति के लिए ही अपने–अपने आराध्यों के समक्ष नत होते हैं। भक्ति के धरातल पर, संसार के सारे कवियों को संपादित करते हुए, संसार से प्रेम करते हुए सच्चे अंतःकरण से वे आराध्य के प्रति अहेतुक, निस्वार्थ भक्ति की हामी भरते हैं। उनका मानना है कि जिस समाज में मानव प्रेम तथा भक्ति का यह रूप विद्यमान होगा, वह समाज उन्नत होगा। इसी उन्नत समाज की परिकल्पना उन्होंने की है और इसे अपने–अपने ढंग से प्रतिपादित किया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. साहित्यिक निबन्ध – डॉ0 त्रिभुवन सिंह, डॉ0 विजय बहादुर।
2. हिन्दी साहित्य कोष भाग दो – धीरेन्द्र वर्मा।
3. भक्ति आन्दोलन और सूरदास – डॉ0 मैनेजर पाण्डेय।
4. कबीर ग्रन्थावली – श्यामसुन्दर दास।
5. विनय पत्रिका– तुलसीदास।
6. भक्ति आन्दोलन और सूरदास – डॉ0 मैनेजर पाण्डेय।

❑❑

स्वामी विवेकानन्द के वेदान्त संबंधी विचारों का मूल्यांकन

नीलम देवी यादव
शोध छात्रा–इतिहास विभाग
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ 226017

आज भारत में चारों ओर अन्धकार एवं दयनीय दशा हो रही है और हमारे देश के राजनेता (कर्णधार) रिश्वत लेने से नहीं कतराते। ऐसे समय में देश की कैसी दशा–दिशा होगी, कहा नही जा सकता है ? वर्तमान में अनायास ही हमारे समक्ष स्वामी विवेकानन्द की वाणी गूँज उठती है–स्वामी विवेकानन्द का मानना था कि आप हजारों समाज बना सकते हैं, बीस हजार दूसरे संस्थान स्थापित कर सकते हैं। लेकिन इनका तब तक कोई अर्थ नहीं,जब तक उनमें शामिल लोगों के मन में दया, ममता और सहानुभूति न हो।' हमें आज कहीं पर भी ऐसा ह्वदय खोजने पर नहीं मिलता,साथ ही वर्तमान में वह आधार नही दिखता है जिस पर एक सभ्य एवं विकसित समाज की कल्पना की जा सके। न्यायाधीश घूस लेते हैं, लोकसेवा आयोग के सदस्य बेईमानी, धोखाधड़ी के आरोपों में पकड़े जाते हैं। और तो और हमारे सांसद महोदय संसद में प्रश्न पूछने के लिए पैसे लेने में नही हिचकते! ऐसे समय में स्वामी विवेकानन्द के विचार धार्मिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक दृष्टि से अपना महत्व रखते हैं। वर्तमान समय के ये ज्वलंत विषय हैं।

स्वामी विवेकानन्द के चिन्तन और व्यवहार के मूल में वेदान्त की शिक्षाएँ हैं। आपने वेदान्त को पंडितों के शास्त्रार्थ अथवा संन्यासियों की साधना का विषय ही नही माना, अपितु इसे प्रतिदिन के पारिवारिक और सामाजिक जीवन की कुंजी सिद्ध किया। सन्त विवेकानन्द पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति से भली–भाँति परिचित थे और इसे जानते थे कि 'पश्चिम की तुलना में भारतीय साहित्य, ज्ञान विज्ञान, इतिहास, संस्कृति और धर्म के पक्ष में कहीं अधिक सहिष्णु और समृद्ध है। आपका किसी के प्रति दुराग्रह नही था। प्रत्येक देश की संस्कृति की अच्छाइयों को आप सादर एवं सम्मान की दृष्टि से देखते थे। आपके चिन्तन में सार्वदेशिकता व्याप्त थी। वेदान्त के माध्यम से स्वामी विवेकानन्द एक ऐसा दर्शन विकसित करना चाहते थे जो विषमता एवं समस्त संघर्षों को दूर करके मानव जाति को सफलता के सर्वोच्च बिन्दुओं की ओर ले जाने के साथ ही खोये हुए अतीत की गौरवमयी आभा प्रदान कर सके! अर्थात् स्वामी विवेकानन्द की भावनाओं में अन्तर्राष्ट्रीयता विद्मान थी।

स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा था मुझे बहुत से युवा सन्यासी चाहिए जो भारत के ग्रामों में फैलकर देशवासियों की सेवा में खप जायें। हॉलांकि उनका यह सपना पूरा नही हुआ। स्वामी विवेकानन्द पुरोहितवाद, धार्मिक आडम्बरों और रूढ़ियों के सख्त खिलाफ थे। आपने धर्म को मनुष्य की सेवा के केन्द्र में रखकर ही आध्यात्मिक चिंतन किया था। और यह विद्रोही बयान दिया था कि इस देश के 33 करोड़ भूखे, दरिद्र और कुपोषण के शिकार लोगों को देवी–देवताओं की तरह मन्दिरों में स्थापित कर दिया जाये और मन्दिरों से देवी–देवताओं की मूर्तियों को हटा दिया जाये। स्वामी विवेकानन्द का यह कालजयी आह्वाहन वर्तमान समय में एक बड़ा प्रश्नवाचक चिह्म खड़ा करता है। आपके इस आह्वाहन को सुनकर पूरे पुरोहित वर्ग की घिग्घी बँध गई थी। आज कोई दूसरा साधु तो क्या सरकारी मशीनरी भी किसी अवैध मन्दिर की मूर्ति को हटाने का जोखिम नही उठा सकती। स्वामी विवेकानन्द के जीवन की अन्तर्लय यही थी कि वे इस बात से आश्वस्त थे कि धरती की गोद में यदि कोई ऐसा देश है जिसने मनुष्य की हर तरह की बेहतरी के लिए ईमानदार कोशिशें की हैं, तो वह भारत ही है। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार–''याद रखो कि राष्ट्र झोपड़ी में बसा हुआ है, परन्तु हाय! उन लोगों के लिए कभी किसी ने कुछ किया नही। हमारे आधुनिक सुधारक विधवाओं के पुनर्विवाह कराने में बड़े व्यस्त हैं। निश्चय ही मुझे प्रत्येक सुधार से

सहानुभूति हैं, परन्तु राष्ट्र की भावी उन्नति उसकी विधवाओं को मिले पति की संख्या पर निर्भर नहीं, वरन् आम जनता की अवस्था पर निर्भर है। क्या तुम जनता की उन्नति कर सकते हो? क्या उनका खोया हुआ व्यक्तित्व, बिना उनकी स्वभाविक आध्यात्मिक वृत्ति को नष्ट किये, उन्हें वापस दिला सकते हो ? क्या समता, स्वतन्त्रता, कार्य–कौशल, पौरुष में तुम पाश्चात्यों के भी गुरू बन सकते हो ? क्या तुम उसी के साथ–साथ स्वाभाविक – आध्यात्मिक अन्तः प्रेरणा व अध्यात्म–साधनाओं में एक कहर सनातनी हिन्दू हो सकते हो ? यह काम करना है और हम इसे करेंगे ही। तुम सबने इसी के लिए जन्म लिया है। अपने आप पर विश्वास रखो। दृढ़ धारणाएँ महत् कार्यो की जननी हैं। हमेशा बढ़ते चलो। मरते दम तक गरीबों और पद्दलितों के लिए सहानुभूति–यही हमारा मन्त्र है।

स्वामी विवेकानन्द का मानना था कि जीव अव्यक्त ब्रह्म है और उसी अन्तर्निहित ब्रह्म स्वरूप को व्यक्त करना ही मानव का चरम लक्ष्य है। धर्म के विषय में आपका मानना था कि धर्म मतवाद या बौद्धिक तर्क में निहित नहीं होता अपितु धर्म का असली तात्पर्य यह है कि व्यक्ति अपनी आत्मा के व्रह्मत्त्व को जान ले, उसका साक्षात्कार कर ले। धर्म को हम परिकल्पना की वस्तु नहीं मान सकते बल्कि वह प्रत्यक्ष दर्शन की वस्तु है और जिस भी व्यक्ति ने महान् आत्मिक दर्शन को प्राप्त कर लिया वह सहस्त्रों किताबी ज्ञानी पण्डितों से उत्कृष्ट है। इनका जो मानना था कि व्यक्ति बाह्य प्रकृति पर विजय प्राप्त कर लेता है वह उत्कृष्ट है। परन्तु जो अन्तःप्रकृति को जीतता है वह अत्यन्त उत्कृष्ट है। जब व्यक्ति अपने भीतर के मनुष्य को जीत लेता है या उसे वश में कर लेता है तो वह मन के सूक्ष्म रहस्यों को समझने लगता है। उसे आश्चर्यजनक गुप्त भेदों की जानकारी प्राप्त होने लगती है। जब हम यह मानते हैं कि ईश्वर है तो हमें उसे देखने का अनुभव भी प्राप्त करना चाहिए। अगर आत्मा है तो उसकी प्रत्यक्ष अनुभूति प्राप्त होनी चाहिए, ऐसा सम्भव नहीं है तो उन पर विश्वास ही एकमात्र उपाय है। वे नास्तिक व्यक्ति को ढोगीं पण्डितों से बेहतर मानते थे। वे मनुष्यों को उपदेशित करते हुए बार–बार यह कहते थे कि तुम किस प्रकार के सांसारिक सुखों की खोज कर रहे हो। जबकि तुम्हारा ईष्ट ही समस्त सुखों का वाहक या स्रोत है, क्यों नहीं उसे खोजते,क्यों नही उनको अपना लक्ष्य बनाते, अगर तुम ऐसा कर पाते हो तो निश्चय ही एक दिन तुम उस सृष्टिकर्ता ईश्वर को प्राप्त कर लोगे।

स्वामी विवेकानन्द जी ने मनुष्य और परमेश्वर की व्याख्या करते हुए कहा कि मनुष्य असीम वृत्त है जिसकी परिधि का कोई अता पता नहीं है, पर उसका केन्द्र अवश्य निश्चित है। जबकि ईश्वर एक ऐसा असीमवृत्त है जिसकी परिधि तो कहीं नहीं है किन्तु उसका केन्द्र एक स्थान न होकर सर्वत्र है। देवता और असुर में मात्र इतना अन्तर है कि जहाँ देवता निःस्वार्थ भाव से युक्त होते हैं वही असुर स्वार्थ–भाव से युक्त होते हैं। असुरों में पवित्रता का अभाव होता है। और जब किसी मनुष्य में अपवित्र ज्ञान और शक्ति का अतिरेक हो जाय तो वह निश्चित ही उसे असुर की श्रेणी में ला खड़ा करता है। हम सदैव पुण्य और पाप के विषय में मन्थन करते रहते हैं, जिस पर यह कहना उपयुक्त है कि पुण्य हमें उन्नति की ओर अग्रसरित करता है, जबकि पाप हमें पतन की ओर ढकेलता है।

स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय धर्म, दर्शन, योग, वेदान्त आदि से सम्बन्धित अनेक विषयों पर व्याख्यान दिये और लेख लिखे जिनको पुस्तक का रूप भी दिया गया है। स्वामी विवेकानंद सार्वभौमवाद के समर्थक थे। आपके लिए देशभक्ति एक शुद्ध और पवित्र आदर्श था, किन्तु उन्होंने मनुष्य के देवत्व का भी संदेश दिया। उनका कहना था कि धर्म, रंग, लिग आदि के मूल में वास्तविक मानव अंतर्निहित है। टैगोर की भाँति विवेकानंद को भी सार्वभौम मानव में विश्वास था। आपके अनुसार सार्वभौम बन्धुत्व का साक्षात्कार करने के लिए सार्वमानव की गम्भीर कल्पना आवश्यक थी। जिस युग में विश्व संशयवाद, नाशवान और भौतिकवाद से पीड़ित था उस समय अद्वैत वेदान्ती के रूप में विवेकानंद ने सार्वभौम धार्मिक भावना को पुनर्जीवित करने का संदेश दिया। आपकी दृष्टि में भारत का जागरण तथा मुक्ति सार्वभौम प्रेम तथा बन्धुत्व के साक्षात्कार की एक सीढ़ी थी।

भौतिक दृष्टि से आपने कहा कि इस समय हमें ऐसे बलिष्ट लोगों की आवश्यकता है जिनकी पेशियाँ लोहे

के समान दृढ़ हों और स्नायु फौलाद की तरह कठोर हों । आत्मानुभूति के लिए आपने ज्ञान योग, कर्म योग, भक्ति योग अथवा राजयोग की आवश्यकता बताया। सभी प्रकार के योग के लिए स्वस्थ शरीर की आवश्यकता होती है। स्वामी जी ने भारत के पिछड़ेपन का सबसे बड़ा कारण उसके बौद्धिक पिछड़ेपन को बताया और इस बात पर बल दिया कि हमें अपने बच्चों का मानसिक एवं बौद्धिक विकास करना चाहिए और इसके लिए उन्हें आधुनिक संसार के ज्ञान–विज्ञान से परिचित कराना चाहिए, जहाँ से जो भी अच्छा ज्ञान एवं कौशल मिले उसे प्राप्त करना चाहिए और उन्हें संसार में आत्मविश्वास के साथ खड़े होने की सामर्थ्य प्रदान करनी चाहिए।

स्वामी विवेकानन्द जी ने वेदों और उपनिषदों का गूढ़ अध्ययन किया था और उनके द्वारा प्रतिपादित सत्यों की जीवन में अनुभूति भी की थी। आपके विचार केवल तार्किक ही नही हैं, अपितु अनुभव सिद्ध हैं। स्वामी विवेकानन्द ने धर्म और दर्शन में एक नया जोश भरा। आपने संन्यास लेकर हिमालय की किसी गुफा में जाने की बजाय वह गरीब और उपेक्षित लोगों के बीच गये। धर्म ओर दर्शन के प्रति स्वामी विवेकानन्द जी का दृष्टिकोण बड़ा वैज्ञानिक था। आपने स्पष्ट किया कि कला, विज्ञान और धर्म एक ही परम सत्य को व्यक्त करने के तीन विभिन्न साधन हैं। एक स्थान पर आपने कहा है कि जब विज्ञान का शिक्षक यह कहता है कि समस्त वस्तुएँ एक ही शक्ति की द्योतक हैं तो क्या आप को ईश्वर की याद नहीं आती जिसके विषय में आपने उपनिषदों में पढ़ा है।

स्वामी विवेकानन्द जी मनुष्य के भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों रूपों को वास्तविक मानते थे। इसीलिए मनुष्य के दोनों पक्षों के विकास पर बल देते थे। आपकी दृष्टि से शिक्षा के द्वारा मनुष्य का भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार का विकास होना चाहिए । जो शिक्षा ये दोनों कार्य करें उसे ये मनुष्य के निर्माण की शिक्षा कहते हैं। स्वामी जी भौतिक जीवन की रक्षा एवं उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति और आत्मानुभूति दोनों के लिए स्वस्थ शरीर की आवश्यकता समझते थे। स्वामी विवेकानन्द ने भारत में अंग्रेजों द्वारा चलाई हुई वर्तमान शिक्षा–प्रणाली का जबर्दस्त खण्डन किया। आपका कहना था कि वह शिक्षा हमें अपनी संस्कृति के अनुरूप नहीं बनाती है। विश्वविद्यालय की वर्तमान शिक्षा प्रणाली के विषय में आपने कहा था कि ''यह ''बाबू'' पैदा करने की मशीनों के सिवाय कुछ नही है। अगर इतना ही होता, तब भी ठीक था, पर नहीं –इस शिक्षा से लोग किस प्रकार श्रद्धा और विश्वास रहित होते जा रहे हैं। आपका कहना था कि गीता तो एक प्रक्षिप्त अंश है और वेद देहाती गीत मात्र हैं। वर्तमान शिक्षा–प्रणाली की आलोचना करते हुए स्वामी विवेकानन्द ने उसकी तुलना एक ऐसे व्यक्ति से की है कि जिसे अपने गधे को घोड़ा बनाने के लिए खूब पीटने की सम्मति दी गई थी और उस व्यक्ति ने अपने गधे को घोड़ा बनाने की इच्छा से इतना पीटा कि वह बेचारा मर ही गया। वे कहते हैं, ''इस तरह लड़के को ठोंक–पीट कर शिक्षित बनाने की जो प्रणाली है, उसका अन्त कर देना चाहिए। माता–पिता के अनुचित दबाव के कारण हमारे बालकों को विकास का स्वतन्त्र अवसर प्राप्त नहीं होता। प्रत्येक में ऐसी असंख्य प्रवृत्तियाँ रहा करती हैं, जिनके विकास के लिए समुचित क्षेत्र की आवश्यकता होती है। सुधार के लिए जबर्दस्ती उद्योग करने का परिणाम सदैव उल्टा ही होता है। यदि तुम किसी को सिंह न बनने दोगे तो वह स्यार ही बनेगा।

स्वामी विवेकानन्द ने विज्ञानवाद से अभिभूत यूरोप और अध्यात्म से सम्पन्न भारत को निकट लाने का प्रयास किया। उन्होंने अपनी गहन दृष्टि से यह देख लिया था कि जिस प्रकार भारत दैहिक स्तर पर दरिद्र है उसी प्रकार यूरोप आत्मिक स्तर पर गरीब है। दोनों एक–दूसरे के अनुपूरक बन सकते हैं। इस अवधारणा के मूल में धर्म और विज्ञान के समन्वय का मसौदा था। इस सम्बन्ध में उन्होनें स्पष्ट रूप से कहा कि 'आज हम बुद्धिवादिता के इस चमकते सूर्य को चाहते हैं जिसमें बुद्धि का हृदय हो, आश्चर्यजनक असीम प्रेम और करूणा का हृदय। यह संगम हमें उच्चतम दर्शन प्रदान करेगा। विज्ञान और धर्म मिलेगें और हाथ मिलायेंगे। कविता और दर्शन मित्र बनेगें। यह भविष्य का धर्म होगा और यदि हम उसे ढाल सके तो यह सभी कालों और सभी लोगों के लिए होगा। यह एक रास्ता है जो आधुनिक विज्ञान को स्वीकार होगा क्योंकि यह स्थिति लगभग आ गयी है।'' यह प्रस्ताव पूरी मानवता

के हित में है और इसके माध्यम से वह एक ऐसे मनुष्य को निर्मित करना चाहते हैं जो भौतिक और आध्यात्मिक दोनों दृष्टियों से समृद्ध हो। इसी समृद्धि से एक ऐसा संतुलित समाज विकसित होगा, जिसमें भूख, गरीबी, गुलामी, शोषण और वर्चस्व का कोई नामोनिशान नहीं होगा। तभी पूरी दुनिया सुख शान्ति और चैन से रह पायेगी। इसलिए विष्णु प्रभाकर का यह कहना बिल्कुल सही है कि– 'स्वामी विवेकानंद की याद आते ही एक ऐसे व्यक्ति का चित्र आखों में उभर आता है जिसके शरीर पर वस्त्र तो हिन्दू संयासियों के हैं, पर जिसके अन्तस में समूची मानवता के लिए दर्द भरा हुआ है। मनुष्य ही उसका एक मात्र लक्ष्य है। मनुष्य की जड़ता का नाश करना ही उसका एक मात्र आदर्श है।

एक वेदान्ती होने के नाते यद्यपि आप आदर्शवादी चिन्तक थे परन्तु जब वे वेदान्त दर्शन को व्यावहारिक रूप में देखते हैं तो ऐसी स्थिति में उनके विचार प्रकृतिवादी, यथार्थवादी, प्रयोजनवादी तथा समाजवादी विचारों से मिलते–जुलते हैं। वे प्रायः कहा करते थे– मैं समाजवादी हूँ–इसका अर्थ है–समाज के सभी व्यक्तियों को धन, विद्या और ज्ञान का उपार्जन करने के लिए एक समान अवसर मिलना चाहिए जो सामाजिक नियम इस स्वतन्त्रता के विकास के मार्ग में बाधक हैं वे हानिकारक हैं और उनको नष्ट करने का उपाय भी शीघ्रता से करना चाहिए।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार व्यवहारिक वेदान्त ही हिन्दुओं का धर्मग्रन्थ है। जितने भी आस्तिक दर्शन हैं, सभी इसी को अपना आधार मानते हैं। सारे वेदान्तों ईश्वर को, वेदों के श्रुत रूप को तथा सृष्टि–चक्र को मानते हैं। स्वामी जी ने वेदान्त दर्शन के बारे में कहा है–''मैं यहाँ पर भारतीय दर्शन का, जिसे वेदान्त कहते हैं, प्रतिनिधित्व करने आया था। यह दर्शन उस विशाल पुरातन आर्य साहित्य से उद्‌गत हुआ है, जिसे वेदों के नाम से पुकारते हैं। यह वेदान्त दर्शन मानों शताब्दियों तक संगृहीत और चयन किये गये उस विशाल साहित्य के अन्तर्गत सभी विचारधाराओं, अनुभवों तथा विवेचनों का सर्वोत्तम पुण्य है। इस वेदान्त दर्शन की कतिपय विशेषताऐं हैं।

स्वामी विवेकानन्द का मानना था कि वेदान्त दर्शन सिद्धांत जो विश्व के सभी धर्मों में पाया जाता है और यह दावा करता है कि मनुष्य दिव्य है तथा जो कुछ भी हम लोग अपने चारों ओर देखते हैं, वह उसी दिव्यता के बोध से उद्‌भूत हुआ है। हर एक वस्तु जो सुन्दर, बलयुक्त तथा कल्याणकारी है और मानव–प्रकृति में जो कुछ भी शक्तिशाली है, वह सब उसी दिव्यता से उद्‌भूत है। यह दिव्यता यद्यपि बहुतों में अव्यक्त रहती है, मूलतः मनुष्य–मनुष्य में कोई भेद नही है, सभी समान रूपेण दिव्य है। स्वामी विवेकानन्द ने अद्वैत दर्शन ही मनुष्य को स्वयं के ऊपर सम्पूर्ण स्वामीत्व दिलाता है, उसका सारा परावलम्बित तथा उससे उद्‌भूत अन्धविश्वासों को नष्ट कर डालता है और इस प्रकार उसे वीरोचित तरीके से कष्ट सहने में, कार्य करने में और अन्ततः सम्पूर्ण मुक्तिलाभ करने में समर्थ बनाता है। यह आश्रम अद्वैत के लिए और सिर्फ उसी के लिए और सिर्फ उसी के लिये है।'' स्वामी जी जब अमेरिका से लौटे और भारत भ्रमण करते हुये वे कुम्भकोणम् पहुँचे। वहाँ विशाल जनसमूह को सम्बोधित करते हुये वेदान्त दर्शन को रेखांकित किया–संसार में जितने भी धर्म हैं, उनमें से प्रत्येक की श्रेष्ठता स्थापित करने के अनोखे–अनोखे दावे सुनने का मुझे अभ्यास हो गया है। तुमने भी शायद बल में मेरे एक बड़े मित्र डॉक्टर बैरोज द्वारा पेश किये गये दावे के विषय में सुना होगा कि इसाई धर्म ही एक ऐसा धर्म है, जिसे सार्वजनीन कह सकते हैं। मैं अब इस प्रश्न की मीमांसा करना और तुम्हारे उन तर्कों को प्रस्तुत करूँगा जिनके कारण मैं वेदान्त सिर्फ वेदान्त को ही सार्वजनिक मानता हूँ।

स्वामी विवेकानन्द ने विज्ञान और वेदान्त के बारे में भी बताया और उनके व्याख्यानों और वार्तालापों में अन्तर ज्ञान और वैदिक परम्परा के निचोड़ के रुप में इस सृष्टि की रचना के बारे में गैर तकनीक विश्व जनित विचार रखे हैं। स्वामी विवेकानन्द जी के समय में इतनी दूरसंचार के क्षेत्र में प्रगति नही हुई थी फिर भी आपने बताया कि मनुष्य, सूर्य और चन्द्रमा प्रकाश की उपस्थिति में ही देख पाता है और उल्लू रात में भी, मतलब इसका यह कि सूक्ष्म स्पंदन होता है। प्रकाश होता है लेकिन मानव आँखे इसको देखने में सक्षम नही हैं।

स्वामी विवेकानन्द जी को अपनी भारतीय विरासत का नष्ट होने का डर भी सताता रहा था क्योंकि तत्कालीन समय में आपने बंगाल के दरवाजे पर खतरा मण्डराते देखा है। क्योंकि वहाँ के ज्यादातर नौजवान हिन्दू धर्म की रुढियों से तंग आकर ईसाईयत की ओर रुख कर रहा था और इस पर नियन्त्रण करना आवश्यक था और उनकी दृष्टि में धर्मांतरण रोकना आवश्यक इसलिये भी था क्योंकि भविष्य में यह भारत स्वतन्त्रता आन्दोलन को कमजोर बनारहा था। वह दूर दृष्टि की सोच रखते थे। कुछ लोग स्वामी जी को मूर्ति पूजक समझते थे,लेकिन वह निराकार उपासक भी थे, क्योंकि विवेकानन्द ने हिमालय के मायावती आश्रम में निराकार साधना की बात की स्वामी विवेकानन्द की बात से नाराज होकर सन्यासियों ने माँ शारदामणि से बात की। लेकिन उन्होने विवेकानन्द की मनोरम प्राकृतिक प्रदेश में निराकार की साधना की बात स्वीकार की जिससे विवेकानन्द को उनके कार्य में सहायता मिली स्वामी विवेकानन्द जी न तो साकार के ही और न ही निराकार के उपासक थे। वह मानवता के उपासक थे क्योंकि हिन्दू और ब्रह्म समाजी के बीच सामाजिक तथा धार्मिक अन्तर्द्वन्द था लेकिन रामकृष्ण की शरण में आने से सभी विवाद खत्म हो गये।

वेदान्त दर्शन को व्यवहारिक रूप देने के नाते स्वामी विवेकानन्द सम्पूर्ण मानवता का कल्याण करना चाहते थे। उनके द्वारा व्यक्त विचार एवं किये गये कार्य अपने में अद्वितीय हैं। वे गरीब, अशिक्षित, असहाय, पंगु, मूक–बधिर, उपेक्षित तथा अनाथ की सेवा ही ईश्वर की सच्ची सेवा मानते थे। इन्ही विचारों को कार्यरूप देने के कारण उन्होने मठों, मिशनों, अनाथालयों, शिक्षण संस्थाओं, अस्पतालों आदि की स्थापना भारत तथा भारतेतर देशों में भी की। इन कार्यो के अतिरिक्त वे समय–समय पर पुस्तक लेखन, व्याख्यान, संभाषण, वार्तालाप, गोष्ठी, विचार–विमर्श, पत्रिका प्रकाशन, प्रवचन, काव्य रचना, संस्मरण तथा पत्र लेखन भी करते रहे। उनके तथा उनकी प्रेरणा से स्थापित भारत में 88 तथा विदेशों में 31 केन्द्र आज कार्य कर रहे हैं। इसके साथ ही इस समय प्राथमिक, माध्यमिक, उच्चतर, महाविद्यालय शिक्षण–प्रशिक्षण केन्द्र, कृषि संस्थान, तकनीकी व प्रौद्योगिकी केन्द्र, व्यवसायिक प्रशिक्षण केन्द्र, शारीरिक शिक्षा महाविद्यालय, वाणिज्यिक संस्थान, पुस्तकालय, छात्रावास, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, बहुभाषिकी विद्यालय, अन्ध एवं बाल अपराधी विद्यालय, परिचारिका प्रशिक्षण संस्था, बेसिक ट्रेनिंग स्कूल, पी.जी. बेसिक ट्रेंनिग कॉलेज, हॉस्पिटल, डिस्पेन्सरी, निशक्त एवं निराश्रितालय, अनुतोष एवं पुनर्वास जैसी अनेकानेक संस्थायें समाज सेवा में कार्यरत हैं।

स्वामी विवेकानन्द का कहना है कि अक्सर लोग अपने ईश्वर की परिकल्पना में यह विचार करते हैं कि उनका ईश्वर सबसे दूर एक ऊँचे सिंहासन पर विराजमान किसी महाराजा से कम नहीं है वे ऐसा इसलिए सोचते हैं क्योंकि वे अपने ईश्वर को उसी रूप में देखना चाहते हैं, उसके समक्ष दीप प्रज्ज्वलित करते हैं, नाक रगड़ते हैं, और उसी सत्ता से शासित होना भी चाहते हैं, इसलिए मैं तो इस पर यही कहूँगा कि संसार के लिए एक ईश्वर पर्याप्त नहीं है तुम सब ईश्वर ही तो हो, मैं बार–बार यह कहने का प्रयत्न करता हूँ कि साहस धैर्य और स्वयं की ऊर्जा को पहचानों निश्चय ही तुम संसार में सफलता प्राप्त करोगे। इसलिए उठो, जागो और स्वयं जगकर औरों के अन्धकार को दूर भगाकर उसे भी जगाओ अपने मानव जन्म को सफल करो और तब तक चलते रहो जब तक की तुम्हें तुम्हारा लक्ष्य न प्राप्त हो जाय।

सन्दर्भ ग्रन्थ

- स्वामी विवेकानन्द पर रामकृष्ण मिशन द्वारा वॉलूम में प्रकाशित सभी अंक
- शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर,चतुर्थ संस्करण
- संसार के महान शिक्षा शास्त्री, विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक, वाराणसी 2001
- विश्व के श्रेष्ठ शिक्षा शास्त्री, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा,
- उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद

- शिक्षा के दार्शनिक एवं समाज शास्त्रीय आधार,नया भारत, द्वितीय संस्करण
- स्वामी व्योम रूपानन अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ, नागपुर
- रामकृष्ण मठ नागपुर ,सरोज कुमार वर्मा–स्वामी विवेकानंद : नये युग के प्रवर्तक, योजना, संपादक –राजेश कुमार झा, प्रकाशन विभाग, 538,योजना भवन संसद मार्ग नई दिल्ली –110001
- स्वामी विवेकानंद और उनका अवदान,संपादक स्वामी विदहात्मानन्द,
- विवेकानंद– विवेकानंद योग संग्रह, संपादक–अनुराधा चावला,न्यू साधना पॉकेट बुक्स 70 रोशन आरा प्लाजा ,दिल्ली–110007
- सबके स्वामी जी –'स्वामी सर्वभूतानन्द' रामकृष्ण मिशन इंस्टीट्यूट ऑफ कल्चर गोल पार्क ,कलकत्ता
- स्वामी विवेकानन्द जी जीवन और दर्शन–'हरदान हर्ष' माया प्रकाशन मंदिर, जयपुर
- शिकागो में स्वामी विवेकानन्द जी –स्वामी व्योमरूपानन्द अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ धन्तोली
- नागपुर, स्वामी विवेकानन्द जी–शिक्षा (हिन्दी अनुवाद) श्री रामकृष्ण आश्रम, नागपुर
- आधुनिक भारतीय एवं सामाजिक चिन्तन–प्रकाशन–साहित्य भवन पब्लिकेशन्स,आगरा,2001
- पुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग–2, प्रकाशन–अरविन्द ज्योति, प्रकाशन–मथुरा
- आधुनिक भारत का इतिहास–यशपाल, ग्रोवर,प्रकाशन,नई दिल्ली
- पाण्ड़ेय, रामशकल (2005), विश्व के श्रेष्ठ शिक्षाशस्त्री : आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर
- पाण्डेय, रामशकल (2005) शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि : साहित्य प्रकाशन, आगरा
- रोलाँ, रोमाँ (2010), स्वामी विवेकानन्द जी का जीवन : जयपुर, साहित्य सागर प्रकाशन,
- लाल, रमन बिहारी (2007), शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार : विनोद पुस्तक, आगरा
- मन्दिर, चौबे, एस.पी. तथा चौबे, अखिलेश (2006), शिक्षा के दार्शनिक समाजशास्त्रीय आधार : मेरठ, इन्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस
- त्यागी, गुरूसरन दास , भारत में शिक्षा का विकास : आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर
- भटनागर, सुरेश, भारत में शिक्षा व्यवस्था का विकास : जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ एकादमी
- सिंह, ए. के., समाजशास्त्र एवं भारतीय समाज में शिक्षा : जयपुर, कविता प्रकाशन
- स्वामी विवेकानंद व्यक्ति और विचार – राजेन्द्र प्रसाद गुप्त–राधा ,पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली
- हिन्दू धर्म और उसका दर्शनशास्त्र,वेदान्त दर्शन का,मनोवैज्ञानिक चिन्तन,वेदान्त दर्शन– शंकराचार्य भाष्य,विवेकानंद जीवन और दर्शन – हरदान हर्ष ,किशोरों के स्वामी विवेकानन्द जी –भारतीय प्रकाशन, नई दिल्ली, भारतीय,राजनीतिक चिन्तन –शर्मा एवं बघेल,उदयीमान भारतीय समाज में शिक्षक –डॉ0 रामशंकर पाण्डेय,स्वामी स्वामी विवेकानन्द जी व्यावहारिक जीवन वेदान्त ,द कम्पलीट वर्क्स ऑफ स्वामी स्वामी विवेकानन्द जी, समस्त खण्ड,राजनीति विज्ञान–डॉ0 पुखराज जैन,वर्मा विश्वनाथ प्रसाद : आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्त, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा 2004,वर्मा, व्ही.पी. : स्वामी विवेकानन्द जी एण्ड मार्क्स एज् सोशियोलॉजिस्ट, द् वेदान्त केसरी ,जनवरी 1959,द् कम्प्लीट वर्क्स ऑफ स्वामी स्वामी विवेकानन्द जी :मायावती मेमोरियल संस्करण भाग–1,द् लॉइफ ऑफ स्वामी स्वामी विवेकानन्द जी, भाग–2

पत्र–पत्रिकाएँ :

- समाचार पत्र पत्रिका अखबार दैनिक – दिन–12/01/2013
- पत्रिका अखबार दैनिक – दिन–12/01/2013
- हस्तक्षेप, राष्ट्रीय सहारा, 12 जनवरी 2013
- योजना – जनवरी 2013
- वागर्थ – जनवरी 2013
- परीक्षा मंथन ईयर बुक–2012–13, मंथन प्रकाशन, इलाहाबाद

❑❑

13

महाभारत में वर्णित नारी के विविध रूप और वर्तमान में उनकी प्रासंगिकता

डॉ0 बबिता सिंह
असिस्टेण्ट प्रोफेसर–संस्कृत विभाग
चौ0 चरण सिंह पी0जी0 कालेज, हेंवरा, सैफई, इटावा (उ.प्र.)

आर्ष काव्यों की परम्परा में महाभारत का अप्रतिम स्थान है। महाभारत में समाज और जीवन के सभी पक्षों को अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ चित्रित किया गया है। महाभारत में नारी का विशेष महत्त्व है। वैसे तो एक नारी को लक्ष्य करके ही महाभारत की घटना का ताना–बाना बुना गया। इस दृष्टि से इस ग्रन्थ में नारी के विविध रूपों का जो विश्लेषण प्राप्त होता है वह अन्यत्र नहीं है। अतः इस शोध–पत्र में महाभारत को आधार बनाकर नारी के विविध रूपों का विश्लेषण किया गया है।

पुरुष और नारी दोनों किसी भी समाज के, महत्त्वपूर्ण एवं अनिवार्य अंग हैं। दोनों में से एक के भी अभाव में समाज रुपी रथ में गतिशीलता नहीं आ सकती। किसी भी समाज या राष्ट्र की सभ्यता–संस्कृति में पुरुष की अपेक्षा नारी का विशेष योगदान होता है। बिना नारी के न तो पुरुष का जीवन पूर्ण हो सकता है और न समाज का विकास। किसी भी देश या काल विशेष की सभ्यता का वास्तविक ज्ञान नारी–जीवन के ही अध्ययन से प्राप्त हो सकता है। एक ओर तो नारी समाज में रहकर स्वयं उसके उत्थान–पतन से प्रभावित होती है, तो दूसरी और पुरुष की परिवर्तनशील प्रवृत्तियों का प्रभाव भी नारी पर पड़ता है। इस प्रकार नारी–जीवन के अध्ययन से तत्कालीन सभ्यता का तो पता चलता ही है, तद्‌युगीन सामाजिकों की चिन्तन धारा का भी ज्ञान प्राप्त हो जाता है। एक काल ऐसा भी था जिसमें नारी गौरवमयी और पूज्यास्पद बनकर, रणभूमि में अपने वीर पति का सहयोग करती थी। इसके ठीक विपरीत कभी नारी को पर्दे के भीतर प्राणी बनाकर उसके अधिकारों का संकुचन कर दिया गया। अतः उनके आरोह अवरोहों के बीच गमनशील नारी जीवन ही किसी सभ्यता एवं संस्कृति का यथार्थ ज्ञापक हो सकता है।

धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से संस्कृत वाङ्मय में महर्षि वेदव्यास रचित महाभारत का विशिष्ट स्थान है इस महाकाव्य में नारी का स्वरुप काफी विस्तृत एवं विकसित दृष्टिगत् होता है, जिसका आधार बनाकर नारी के विविध रुपों का विवेचन किया जा रहा है। भारतीय संस्कृति में नारी को सदा पूज्या माना गया है उसे समाज में सम्मान्नीय स्थान प्राप्त है। नारीके अपमान से समस्तशुभ कर्म निष्फल हो जाते हैं।[1]

महाभारत काल में स्त्री गृह की लक्ष्मी होती थी। अतः वह विशेष रूप से रक्षणीय होती थी। साथ में यह भी कहा गया है कि कल्याण चाहने वाले को स्त्री का सत्कार करना चाहिए क्योंकि ललित एवम् अनुगृहीत स्त्री श्री होती है। महाभारत में नारी की अवध्यता प्राप्त है।[2]

महाभारत में भीष्म ने तो यहाँ तक प्रतिज्ञा कर ली थी कि वे स्त्री नामधारी या स्त्री स्वरुपिणी पर अस्त्र नहीं चलायेंगे। इसी के फलस्वरुप उन्होंने शिखण्डी पर बाण नहीं चलाये।

महाभारत कालीन व्यावहारिक जीवन में नारी की प्रमुख तीन अवस्था दृष्टिगोचर होती हैं प्रथम अवस्था जन्म से लेकर विवाह के पूर्व तक कौमार्य की है, जिसे नारी का कन्यारुप कहा जाता है। द्वितीय अवस्था विवाह के बाद आरम्भ होती है, जो इसका मातृरुप है। मनु महाराज ने नारी जीवन की इन तीनों अवस्थाओं का निर्देश किया है। इन्होंने कहा है कि कौमार्य में नारी का रक्षक उसका पिता होता है। वह पिता के संरक्षण में रहकर कन्या जीवन को व्यतीत करती है। यौवन में जब नारी वैवाहिक सूत्र में बँध जाती है, तो उसका रक्षक पति हो जाता है। तीसरी

वृद्धावस्था में नारी पुत्र के संरक्षण में चली जाती है।[3]

इन तीन अवस्थाओं के अतिरिक्त नारी–जीवन के कुछ और रुप है जैसे विधवा–वियोगिनी, वेश्या, कुलटा इत्यादि। महाभारत में नारी के स्वरूप के परिप्रेक्ष्य में ये अवस्थाएँ भी विचारणीय हैं।

कन्या का स्थान एवम् अधिकार :

महाभारत में कन्या की सुन्दर एवं स्नेहिल पारिवारिक स्थिति का परिचय प्राप्त होता है कन्या के जन्म में आनन्दित होकर उसके संस्कार और शिक्षा का प्रबन्ध करके माता–पिता उसका विशेष लाड़–प्यार से लालन–पालन करते थे। पिता की रक्षा एवं माता के संरक्षण में उसके लिए सुख और मनोरंजन के पर्याप्त साधनों का प्रबन्ध किया जाता था। माता–पिता उसके भविष्य की चिन्ता में उसके लिए सुयोग्य वर की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहते थे।

पिता की गोद में बैठकर ''नीतिशास्त्र'' का पाठ सुनाने वाली द्रोपदी पितृ स्नेह में पली हुई बालिका का एक चित्र प्रस्तुत करती है। गरीब परिवार में भी पिता–पुत्री का परस्पर व्यवहार प्रेमपूर्ण रहता था, जैसा कि एक ब्राह्मण और उसकी कन्या का था। आश्रम में रहने वाले कण्व का भी शकुन्तला के प्रति नितान्त स्नेह था। कन्या के लिए निन्दा परक किसी शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। महाकवि व्यास ने अपने महाभारत में नारी के सच्चरित्रता, एवम् सत्यनिष्ठा की प्रशंसा की है।

कन्या की शिक्षा–दीक्षा :

शिक्षा मानव जीवन की अपरिहार्य आवश्यकता है। इसके बिना जीवन अपूर्ण रहता है। अशिक्षित नारी, जिस पर सारी गृह व्यवस्था निर्भर है, सुन्दर परिवार का सृजन कैसे कर सकती है? उसके लिए शास्त्रीय एवम् व्यावहारिक दोनों प्रकार की शिक्षा अपेक्षित है, महाभारत काल में स्त्री शिक्षा काफी विकसित अवस्था में थी। वह पुरुषों के समकक्ष बिना भेदभाव के शिक्षा प्राप्त करती थी, पुत्र की तरह पुत्री का भी विद्यारम्भ के पूर्व उपनयन संस्कार सम्पन्न किया जाता है। तथा वह ब्रह्मचर्य का पालन करती हुई विभिन्न विषयों की शिक्षा ग्रहण करती थी। उसे यज्ञ सम्पादन और वेदाध्ययन करने का पूर्ण अधिकार था। शुभ्र शाण्डिली, और प्रभावती जैसी आश्रम की संचालिकाएँ थीं।

प्रायः कन्याओं की शिक्षा घर पर ही हुआ करती थी। जीवन को सफल बनाने के लिए अपेक्षित शिक्षा वह माता से प्राप्त करती थी। शाण्डिली ने स्वयं कहा है ''कन्या'' च परिशिक्षये'' माता ही सभी गुरुओं में श्रेष्ठ मानी जाती थी। कन्या, पिता, भाई आदि गुरुजनों से भी ज्ञान प्राप्त करती थी। अश्वपति ने सावित्री को धर्मशास्त्र के वचन सुनाये थे कुन्तीभोज ने कुन्ती को अतिथि सेवा का महत्त्व समझाया था। वधू रुप में स्त्री को सास तथा अन्य स्त्रियों से शिक्षा मिलती थी।

महाभारत में नारी का पत्नी रुप :

महाभारत कालीन नारी को पत्नी रुप में पारिवारिक एवम् सामाजिक, तथा राजनीतिक प्रतिष्ठा प्राप्त थी। माता–पिता सास, ससुर, देवर, ननद एवं परिवार के समस्त जनों के साथ इनका व्यवहार अत्यंत मधुर था तथा घर से बाहर भी घूमने–फिरने की स्वतंत्रता प्राप्त थी। सामाजिक धार्मिक एवम् साम्पत्तिक क्षेत्र में इन्हें पुरुषों के समान ही अधिकार प्राप्त था। स्त्री और पुरुष दोनों शरीरतः पृथक होकर भी मूलतः अभिन्न होते थे। धार्मिक अनुष्ठानों में पति और पत्नी का समान अधिकार होता था। पत्नी को साथ लिए बिना यज्ञ कर्म अन्य अनुष्ठान पूर्ण नहीं हो सकते थे। कुन्ती ने द्रोपदी को अश्वमेघ यज्ञ में यज्ञ पत्नी होने का आशीर्वाद दिया था। तथा राजसूय यज्ञ में द्रौपदी के केश अमृत स्नान से पवित्र हुए थे।

राज्याभिषेक के समय द्रौपदी को वेदों पर व्याघ्रचर्म पर बिठाकर युधिष्ठिर ने उसके साथ अग्नि में विधि–पूर्वक हवन किया था। महाभारत काल में नारी को आर्थिक अधिकार प्राप्त था। नारी को अपने स्त्रीधन पर पूर्ण अधिकार था कुन्ती ने व्यास जी से प्राप्त सारा धन ब्राह्ममणों को दान दिया था। राजा पुष्य की रानी ने पति के बिना पूछे

ही अपने कुण्डल उत्तंक को दान कर दिये थे। इससे स्पष्ट हो जाता है कि अपने अलंकारों एवं प्राप्त धन पर नारी के सम्पूर्ण अधिकार थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि महाभारतकाल में नारी को सम्मान प्राप्त था वे उस समय भी पूज्य एवम् आदरणीय थीं। शिक्षा, धर्म, व्यक्तित्व और सामाजिक विकास में उसका महान योगदान था। पुरुषों की तुलना में वह किसी प्रकार निम्न और अनुन्नत नहीं थी।

महाराज मनु ने मानव जीवन में पत्नी को विशेष महत्त्व प्रदान करते हुये यह कहा है कि स्त्रियाँ सन्तानोत्पत्ति के द्वारा महान उपकार करने वाली पूजनीया और गृह की शोभा हैं। महाभारत में इस भाव को व्यक्त करते हुए कहा गया है कि यदि घर पुत्र–पुत्रियों से भरा हुआ है, लेकिन पत्नी नहीं है तो पुरुष के लिए वह जंगल से भी अधिक भयावह होता है। पत्नी पुरुष के लिये वह परम मित्र है जो घोर विपत्ति में भी साथ नहीं छोड़ती। कालिदास ने भी पत्नी को गृहणी, सचिव, एकान्त, सखी तथा ललित कलाओं में शिष्या कहा है।

द्रोपदी के विषय में युधिष्ठिर की उक्ति है कि यह हमारी प्रिय पत्नी प्राणों से भी बढ़कर है। यह माता तथा बड़ी बहन की भाँति परिपालनीय एवम् पूज्य है। पत्नी के लिए पति 'सर्वस्व' तथा शरणदाता था। पत्नी 'सहधर्मचरी' और सहधर्मधारिणी कही जाती थी।

परस्पर व्यवहार का जो चित्रण महाभारत में मिलता है वह इतना प्रशंसनीय है कि कुटुम्ब की संश्लिष्टता का गौरव कुटुम्ब की स्त्रियों के कारण प्रतिष्ठित प्रतीत होता है। कौरव–पाण्डवों में युद्ध हुआ ''फिर भी पाण्डव मेरे द्वारा पुत्रवत् परिपालनीय हैं'' कहने वाली गान्धारी एवं पाण्डवों– कौरवों में मैंने कभी भेद–भाव नहीं किया', कहने वाली कुन्ती जैसी नारियों ने ही कुटुम्ब व्यवस्था को स्थिरता प्रदान की है।

महाभारत में नारी का माता रूप :

महाभारत में नारी का सबसे अधिक पूज्य रूप माता के रूप में ही पाया जाता है। मार्कण्डेय द्वारा जन्मदात्री के रूप में माता का महात्म्य वर्णित है – ''दस मास तक अपनी कुक्षि में गर्भ को धारण करके कष्ट उठाने वाली अतुल वेदना सहकर अपत्य का उत्पन्न करने वाली और स्नेह से उसका पालन पोषण करने वाली माता से श्रेष्ठ संसार में अन्य कौन है?'' शान्ति पर्व में भी कहा गया है कि ''माता के समान दूसरी छत्रछाया, दूसरा सहारा, दूसरा रक्षक और दूसरा प्रिय कोई नहीं है।[4]

पिता, माता, गुरु, अग्नि और आत्मा इन पाँच गुरुओं में सर्वोपरि गुरु माता ही है। राजधर्म के उपदेश के क्रम में भीष्म युधिष्ठिर से कहते हैं कि ''आचार्य दस श्रोत्रियों से उपाध्याय दस आचार्यो से पिता दस उपाध्यायों से और माता दस पिताओं से श्रेष्ठ है। माता के गौरव के समक्ष (सम्मुख) समस्त पृथ्वी तुच्छ है। अतः माता पिता के समान दूसरा कोई गुरु नहीं है।''[5]

पिता की सेवा से इहलोक, माता की सेवा से परलोक तथा गुरु सेवा से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। महाभारत में ''स्वधर्मे मातृरक्षणम्'' मानने वाले चिरकारी, अपनी माता की रक्षा रक्षा के लिए गर्भच्युत च्यवन और ओर्व, माता को दुःख से मुक्त करने के लिए कष्ट उठाने वाले गरुड़ और आस्तीक तथा माता के पुनर्जीवन का वर माँगने वाले परशुराम ऐसे बहुसंख्यक स्नेही पुत्रों के उदाहरण हैं। महाभारत में माता के अधिक अधिकार का संकेत प्राप्त होता है। सावित्री, दमयन्ती, कुन्ती, द्रौपदी आदि राजकन्यायें, राजमातायें और पत्नियाँ स्वेच्छा से दान दे सकती थीं। इससे अनुमान होता है कि माता को सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार प्राप्त था।

उत्तक ने गुरु पत्नी को उसके इच्छानुसार गुरु दक्षिणा लाकर दी थी। इससे माध्यम वर्ग में भी नारी, पति द्वारा अर्जित धन पर अधिकार रखती थी। महाभारत कालीन माता पुत्रवत्सला के साथ–साथ धर्मनिष्ठा भी होती थी। वह अपनी संतान के कल्याणार्थ व्रत, उपवास, तप, हवनादि कर्म किया करती थी। अन्त में यह कहा जा सकता है कि महाभारत काल में माता रूप में नारी का स्वरूप गौरवमय एवम् आनन्दपूर्ण था।

नारी पात्रों के साथ विडम्बनायें :

महाभारतकालीन युग में भी जहाँ स्त्रियों का पूर्ण सम्मान था वहीं उनके जीवन में अनेक विषमतायें भी थीं। जैसे– सत्यवती ने न चाहते हुए भी ऋषि पराशर के भय से काम भोग किया और वेद व्यास पुत्र को उत्पन्न किया। ये अलग बात है कि वेद व्यास ने महाभारत की रचना कर प्रसिद्धि प्राप्त की और माता सत्यवती की आज्ञा से हस्तिनापुर की वंश वृद्धि हेतु उनकी पुत्रवधुओं अम्बिका और अम्बालिका के साथ नियोग विधि से समागम किया। परन्तु वर्तमान युग के अनुसार यह निन्दनीय है।

अम्बा जो काशिराज की पुत्री थी उसका शाल्व नरेश में अनुराग था और स्वयंवर में उसको उन्हीं का वरण करना था परन्तु उसी समय भीष्म द्वारा समस्त नरेशों को पराजित कर अम्बा और उसकी दोनों अनुजाओं का हरण कर हस्तिनापुर में लाना और माता सत्यवती की आज्ञा से भाई विचित्रवीर से विवाह कराना परन्तु शाल्व में अपने अनुराग को बताते हुये अम्बा ने उस विवाह को स्वीकार नहीं किया। तब भीष्म ने उसे उसी सम्मान के साथ शाल्व नरेश के भेज दिया। परन्तु भाग्य की विडम्बना देखिये जिस शाल्व का उसमें पहले से ही अनुराग था आज उसने तुम किसी पर पुरुष द्वारा स्पर्श कर ली गई हो इस कारण मैं तुम्हें नही अपना सकता' ऐसा कहकर उसके निश्च्छल प्रेम का अपमान किया। जिससे वह 17 वर्षीय बाला जिसका जीवन शुरू होने से पहले ही खत्म हो गया जो वन में भीष्म और शाल्व के कारण अपमानित होती हुई दर–दर भटकती रही। क्या यह उचित था? क्या शाल्व का प्रेम इसी भौतिक और दैहिक स्तर पर था। जिसने बिना अपराध के ही उसके सतीत्व पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया। इसका परिणाम महाभारत में भीष्म वध के रूप में समाने आया।

कुन्त भोज की पुत्री कुन्ती जो एक आदरणीया स्त्री के रूप में सामने आती है जिसने पति और पुत्रों के साथ ज्यादातर समय राजमहल से बाहर व्यतीत किया और तमाम कष्टों को सहकर भी धर्म पर अविचल खड़ी रही। उसी कुन्ती के द्वारा कन्यावस्था में मात्र उत्सुकता वश भगवान सूर्य की उपासना करना और कर्ण जैसे वीर पुत्र को प्राप्त करना एक सौभाग्य की बात थी। परन्तु लोक लाज के भय से वह उसे अपना न सकी और अपने शरीर से जन्मे पुत्र को समाज द्वारा सूत पुत्र के सम्बोधन और पाँचों पाण्डवों द्वारा उसका तिरस्कार देखकर वे जीवन भर मानसिक कष्ट सहती रही और अन्त में कर्ण की मृत्यु का समाचार सुनकर अपने मातृत्व को रोक न सकी और समस्त संसार को अपने अश्रुओं के सागर में डुबो कर प्रदर्शित किया।

द्रुपद पुत्री द्रोपदी जो याज्ञसेनी अर्थात् यज्ञ की वेदी से उत्पन्न हुई और पाँचों पाण्डवों की पत्नी, कुरुकुल की ज्येष्ठ और श्रेष्ठ कुलवधू थी वही द्रोपदी आज युधिष्ठिर के द्वारा द्यूत में हारे जाने के कारण, भरी सभा में दुःशासन द्वारा केशों को खींचकर लाया गया और दुर्योधन द्वारा 'आज से तुम कौरवों की दासी हो' उनकी सेवा करो, ऐसा कहकर दुर्योधन उसको निर्वस्त्र करने की आज्ञा दे देता है। ऐसी विषम परिस्थितियों में पड़कर भी द्रोपदी ने सभा में बैठे हुये विद्वतजनों से यह प्रश्न किया कि "धर्म के द्वारा मैं जीती गई हूँ या नहीं? इस अवसर पर भीष्म अपनी स्वकल्पित प्रतिज्ञा के कारण, द्रोण आदि आचार्य राजाश्रय के लाभ के कारण अथवा राजभय के कारण सिर झुकाकर मौन बैठे रह जाते हैं और द्रोपदी का चीर हरण होने लगता है। इससे अधिक विडम्बना और क्या हो सकती है कि एक राजकुल की वधू, एक राजरानी हस्तिनापुर की राजसभा में अपने ही कुल परिवार के अत्यन्त सम्माननीय अपने पितामह, अपने आचार्यों आदि के समक्ष खुद को असहाय पाती है। उस समय हस्तिनापुर की राजसभा में जो हुआ वह न तो उस समय उचित था और न ही आज। क्योंकि कोई भी धर्म या प्राकृतिक न्याय किसी भी नारी के इस प्रकार के अपमान की अनुमति नहीं देता और वह भी अपनी ही कुलवधू का। यह समस्त हस्तिनापुर के लिये शर्म की बात थी। इसकी अन्तिम परिणति महाभारत के युद्ध रूप में हुई।

इसी प्रकार से महाभारत का एक अन्य पात्र गान्धारी है जो पति परायणा है, राजमाता है, परम विदुषी है लेकिन पुत्र मोह से ग्रस्त है। अपने पति के अन्धे होने के कारण दोनों नेत्र होते हुये भी आँखों पर पट्टी बाँधकर

अन्धे की भांति अन्धे पति का अनुगमन करती रहती है।यदि गान्धारी ने अपनी आँखों पर पट्टी न बाँधी होती तो शायद दुर्योधन की निरंकुशता इतनी न बढ़ती।

निष्कर्ष :

उपर्युक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि महाभारत में नारी को जहाँ एक ओर कन्या पुत्री, पत्नी और माता के रूप में उच्च स्थान प्राप्त था वहीं दूसरी ओर मात्र साधारण स्त्री ही नहीं बल्कि राजमहिषियां भी अनेक विडम्बनाओं का शिकार हुईं और अनेकों को अपने अस्तित्व और अस्मिता को रक्षा के लिए संघर्ष करना पड़ा। साथ ही महाभारत का सम्पूर्ण संघर्ष एक नारी की अस्मिता और स्वाभिमान की रक्षा के लिये लड़ा गया महा विश्व युद्ध था। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यह सन्देश आज की युवा पीढ़ी के लिये एक चेतावनी है। ममता, प्यार, करुणा, दया, कोमलता की प्रतिमूर्ति नारी जब अपने स्वाभिमान और अस्मिता के लिये जब अंगड़ाई लेती है तब रणचण्डी बनकर के अनेकों राजकुलों तक के नाश का कारण बन जाती है। विश्व युद्ध का निमित्त बन जाती है। इसीलिए स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा था कि ''स्त्रियों की दशा में सुधार न होने तक विश्व का कल्याण का कोई मार्ग नहीं। किसी पक्षी को एक पंख के सहारे उड़ना नितान्त असंभव है।''

अन्त में यही कहना चाहूँगा कि महाभारत काल की नारी अपने सम्मान की रक्षा के लिए जीवन भर लड़ती रही और आज की नारी अपने सम्मान के लिए लड़ रही है। भले ही इस देश में नारी के सम्मान हेतु कई कानून बनाये गये हैं। सैद्धान्तिक रूप से तो वह सही है लेकिन व्यवहारिकता का उनमें दूर–दूर तक अभाव है। जब तक अपनी मानसिकता नहीं बदलेगा तब तक वह समाज में स्त्री और पुरुष के आदर्श स्वरूप को नहीं बना पायेगा।

सन्दर्भ सूची

1. पूज्या लालयितव्या'' च स्त्रियो नित्यं जनाधिप।
   स्त्रियों यत्र च पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।
   अपूजिता'' च यत्रैताः सर्वास्तत्रा फलाक्रियाः।। (मनु.–3/56)
2. स्त्रियोऽवध्याः सर्वेशां धर्मविदुशो जनाः(भीष्म पर्व–महाभारत)
3. पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने। रक्षतिस्थविरे पुत्राः न स्त्री स्वातंत्रयमर्हति। मनु0
4. नास्ति मातृ समा छाया, नास्ति मातृ समायतिः।
   नास्ति मातृ समं त्राणं नास्ति मातृसमः प्रियः।। महा0 शान्ति पर्व
5. दशैव तु सदाचार्यः श्रोत्रियानतिरिच्यते।
   दशाचार्यपुपाध्याया उपाध्यायान्पिता दश।।
   पितृन्दश तु मातैका सर्वा वा पृथिवीमपि।
   गुरुत्वेनाभिभवति नास्ति मातृ समो गुरुः।। (महाँ0. शान्ति)

❑❑

किसी भी लेखक का लेखन मन की आकुलता, संवेदनशीलता का परिणाम उसके सृजन में मानवीय संघर्षों, सामाजिक परिवेश में होने वाले परिवर्तन का यथार्थपरक चित्रण होता है। कल्पना के विशाल फलक पर जब यह वास्तविकता का उद्देलन, भावोद्गार प्रकट करता है तो शिखर से सागर, अज्ञेयःसृजन एवं संघर्ष जैसी कृति की सर्जना होती है। शब्दों का मायाजाल बुने बगैर भाव–संवेदनाओं की अभिव्यक्ति कर चिंतक डॉ0 रामकमल राय ने सृजन की आकुलता को अपनी रचनाओं में दर्शाया है।

❖ कृपया उपरोक्त विषय पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख भेजकर रचनात्मक सहयोग देने का कष्ट करें।

14

भारतीय संस्कृति और नारी

डॉ. अजिता दीक्षित
एसो. प्रो. – हिन्दी
राधे हरि राज. स्ना. महाविद्यालय, काशीपुर (ऊ. सिं. न.) उत्तराखण्ड

संस्कृति शब्द का अनेक संदर्भों और अर्थों में प्रयोग होने के कारण उसकी परिभाषा देना नितान्त कठिन है। आज की हिन्दी में यह अंग्रेजी शब्द 'कल्चर' का पर्याय माना जाता है, परन्तु तत्वतः वह 'कल्चर' का पर्याय नहीं है। 'कल्चर' विज्ञान के उन प्रयोगों के लिए भी प्रयुक्त होता है जिनसे कृषि, जीवाणु संवर्धन एवं रोग विशेष के विषाणुओं के संबंध में नवीन तथ्य प्राप्त करते हैं। व्यापक अर्थ में कल्चर शब्द का प्रयोग नर विज्ञान में किया जाता है। उसके अनुसार संस्कृति समस्त सीखे हुए व्यवहार अथवा उस व्यवहार का नाम है, जो सामाजिक परम्परा से प्राप्त होता है। संकीर्ण अर्थ में संस्कृति एक वांछनीय वस्तु मानी जाती है और संस्कृत व्यक्ति एक श्लाध्य व्यक्ति समझा जाता है। इस प्रकार संस्कृति मानव–चेतना का ऐसा विकास–क्रम है जो उसे परिष्कृत एवं समृद्ध करके विशेष जीवन पद्धति का सृजन करती है।

सभ्यता और संस्कृति शब्दों में अन्तर है। सभ्यता से तात्पर्य उन अविष्कारों, उत्पादन के साधनों एवं सामाजिक, राजनीतिक संस्थाओं से है जिनके द्वारा मनुष्य की जीवन यात्रा सुगम एवं स्वातंत्र्य का मार्ग प्रशस्त होता है। जबकि संस्कृति का अर्थ चिन्तन तथा कलात्मक सर्जन की वे क्रियाएँ हैं जो मानव जीवन एवं व्यक्तित्व को समृद्ध बनाने वाली हैं।

भारतवर्ष अनेक धर्मों, जातियों एवं संस्कृतियों का देश रहा है। हिन्दू धर्म के भी प्राचीन वैदिक रूप, पौराणिक रूप में पर्याप्त अंतर है। इसके अतिरिक्त इस्लाम, बौद्ध, ईसाई धर्म आदि का प्रभाव भी पड़ता रहा है। फलस्वरूप संस्कृति का रूप बदलता रहा। भारतीय संस्कृति की अनेक विशेषताएँ उसे दूसरे देश की संस्कृतियों से अलग पहचान दिलाती है। प्रमुख विशेषता सहिष्णुता एवं समन्वय की भावना है।

विश्व इतिहास पर दृष्टिपात करने पर हमें प्राचीन संस्कृतियों में नारी के देवी रूप की प्रतिष्ठा मिलती है। भारतीय संस्कृति में नारी सौंदर्य की उदान्तता के तीनों रूप–माँ, पत्नी और कन्या दृष्टिगत होती हैं। ज्ञानभार्गियों के लिए परमात्मा माता–स्वरूप भी है। कबीर कहते है–''हरि, जननी मैं बालक तोरा।'' तुलसीदास जी ने माता का स्थान पिता की अपेक्षा अति उच्च माना है, ''जौं केवल पितु आयसु ताता। तौ जानि जाहु जानि बड़ि माता।'' (अयोध्या काण्ड, दोहा 56 चौपाई) पत्नी रूप की उदान्तता का चित्रण पद्मावती के प्रेम और जौहर में दृष्टिगत होता है–

''आज मरम मैं जानिऊँ सोई।
जस पियार पिड और न कोई।।'' (जायसी ग्र., पृ. 54 पर)
''कढ़ि प्रान बैठी लेइ हाथा।
मरै, तौ मरौं, जियौं एक साथा।।'' (जायसी ग्र., पृ. 65 पर)

ऐसा ही राधा का प्रेमातिरेक, सीता का तप और त्याग तथा कौशल्या, सुमित्रा, मन्दोदरी, अनुसुइया, सती, पार्वती आदि नारियों का आध्यात्मिक उत्कर्ष उनके उदान्त रूप की अनुभूति कराता है। तुलसीदास एवं रामभक्त कवियों ने 'सीता' को परम शक्ति के रूप में देखा–

''उद्भव स्थिति संहारकारिणीं क्लेश हारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नवोऽहं रामवल्लभाम्।।''

(तुलसीदास–रामचरितमानस, बालकाण्ड दोहो 5)

और अपनी शक्ति सीता से वियुक्त होने पर राम व्याकुलता की अनुभूति करते हैं–

'प्रियाहीन डरपत मन मोरा' (रामचरित मानस, किष्किन्धा काण्ड दोहा 14 चौपाई)

सगुण भक्त कवियों ने कन्या रूप की उदात्ता का चित्रण किया है। सूर और तुलसी ने कन्या रूप का चित्रण निष्कलुष एवं उदात्तभाव में किया है। इन भक्त कवियों के अनुसार कन्या परम पुनीत है, सम्माननीया है। उनकी ओर कुदृष्टि करने वाले का वध कर देने पर भी पाप नहीं लगता।

''अनुज वधु भागिनी सुत–नारी। सुनुसठ कन्या समएचारी।
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई। लाहि बधे कछु पाप न होई।।''

(रामचरित मानस 4 किष्किन्धा काण्ड)

वैदिक संस्कृति में नारी के दो रूप प्राप्त होते हैं– दिव्य देवी रूप तथा सामाजिक रूप। दिव्य रूप में एक तो प्रकृति के दिव्य रूप की देवियाँ हैं– सूर्य, रात्रि आदि। दूसरे पृथ्वी, सिंधु, सरस्वती नदी आदि चेतना का आरोप करके नारी रूप की कल्पना करना। तीसरे अमूर्त भावनाओं की प्रतीक देवियाँ–अदिति, श्रद्धा आदि। पृथ्वी के मातृत्व की कल्पना प्रशंसनीय है। आकाश के लिए नहीं मिलती। वेदकाल में अदिति देवी का विशेष उल्लेख हुआ है। वह सर्वशक्तिमती और आदित्यों की जन्मदात्री है। देवियों की स्तुति से पुरुष की नारी विषयक श्रद्धा का उदान्त रूप प्रकट होता है।

नारी के व्यापक सौन्दर्य एवं सृजन शक्ति को दिव्य भावात्मक कल्पना के कारण उसकी सामाजिक स्थिति को भी गरिमा प्राप्त हुई। सृष्टि में पुरुष और नारी की उत्पत्ति का एक ही केंद्र है। ब्रह्म न एकाकी न रहकर अपने आपको दो में विभक्त कर दिया, जिसके दक्षिणअंश को पुरुष तथा वाम अंग को नारी की संज्ञा दी। (वृहदारण्यक उपनिषद)

इस मान्यता से समाज में स्त्री और पुरुष दोनों की स्थिति समान हो गई। शिव के अर्द्धनारीश्वर रूप में यही धारणा साकार हुई है। वैदिक काल में कोई भी धार्मिक कार्य स्त्री की उपस्थिति के बिना प्रारम्भ नहीं होता था। मैत्रेयी, गार्गी, जैसी विदुषी नारियाँ, नृत्य, संगीत, कला, राजनीति में भी निपुण थीं। रातपथ ब्राह्मण में कहा है– 'नारी के बिना नर का जीवन अधूरा है।'

नारी भावना प्रधान होती है। जय शंकर प्रसाद लिखते है–

''नारी जीवन का चित्र यही, क्या विकल रंग भर देती हो।
स्फुट रेखा की सीमा में, आकार कला को देती हो।।''

मैथिलीशरण गुप्त जी ने भी नर और नारी की समानान्तर स्थिति के संबंध में लिखा है–

''एक नहीं दो–दो मात्राएँ, नर से बढ़कर नारी।''

शैक्षिक दृष्टि से नारियों के दो वर्ग है– एक वर्ग में ब्रह्मवादिनी ऋषिकाएँ तथा दूसरे से गृहस्थ धर्म का पालन करने वाली गृहिणियाँ। शिक्षा प्राप्ति का समान अधिकार होने के कारण ऋषियों एवं ऋषिकाओं के सूक्त भी महत्वपूर्ण है। विश्वारा, अपाला, घोषा, लोपामुद्रा, श्रद्धा, कामायनी आदि ऋषिकाओं के सूक्तों में जीवन के प्रति आस्था तथा शक्ति प्राप्त होती है, उसने भारतीय संस्कृति पर अमिट छाप छोड़ी है।

दूसरा वर्ग नारी के माता, पत्नी, पुत्री आदि से संबंध रखता है। विवाह समाज की सबसे महत्वपूर्ण संस्था है, क्योंकि इसी पर सामाजिक संबंध निर्भर करता है। विवाह के अनुष्ठान में उच्चरित होने वाले मंत्र उसी अतीत

संस्कृति के प्रवाह में बहकर हम तक आये हैं। परिवार व्यवस्था हमारी सामाजिक व्यवस्था को आधार स्तम्भ है। स्त्री और पुरुष इसके आधार हैं। परिवार को सुचारू रूप देने में दोनों की ही भूमिका महत्वपूर्ण है। वर्तमान में वैचारिक बदलाव आया और महिलाएँ घर से बाहर कदम रख सभी क्षेत्रों में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही हैं पहले की तुलना में स्त्रियों में जागरूकता आयी है। शिक्षा के विकास से पितृ सत्तात्मक संबंधी नियमों में शिथिलता आयी है। आज की नारी नर को अनुभव करा चुकी है कि उसमें शक्ति एवं क्षमता की कमी नहीं है।

भारतीय संस्कृति में 'मातृदेवो भव' के उद्घोष से अभिप्रेरित हमारी संस्कृति में नारियों का स्थान सदैव वंदनीय एवं सम्माननीय रहा है। मनु ने 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' कहकर नारी के गौरव में वृद्धि की है। परन्तु जहाँ उसे एक तरफ तो शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया जाता है। तो वहीं दूसरी ओर 'अबला' भी कहा जाता है। इन दोनों ही अतिवादी धारणाओं ने नारी के स्वतंत्र विकास में बाधा पहुँचाई है।

भारत में शताब्दियों की पराधीनता के कारण महिलाएँ अभी तक समाज में पूरी तरह वह स्थान प्राप्त नहीं कर सकी है जो उन्हें मिलना चाहिए। जहाँ दहेज की वजह से कितनी बहू बेटियों को जान से हाथ धोना पड़ रहा है तथा बलात्कार की घटनाएँ भी होती रहती है। दामिनी (निर्भया) की घटना इसका सबसे बड़ा उदाहरण है। आज समाज को यह समझना होगा कि विकास की केन्द्र है। उसके सुव्यवस्थित जीवन के अभाव में सुव्यवस्थित समाज की कल्पना नहीं हो सकती।

सन्दर्भ सूची

1. भारत की संस्कृति एवं कला – राधा कमल मुखर्जी
2. प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी – डॉ. गजानन शर्मा
3. रामचरित मानस – तुलसी, गीताप्रेस, गोरखपुर
4. जायसी ग्रन्थावली

❑❑

डॉ0 राम कमल राय तत्कालीन समय (सन् 1978 ई0–सन 2003 ई0) के साहित्य शिरोमाणि थे। इस समय में डॉ0 राम कमल के अति नजदीक रहने वाले परम सनेही मित्र एवं सहयोगियों प्रो0 सत्य प्रकाश मिश्र, गिरिराज किशोर, परमानन्द श्रीवास्तव, सूर्य प्रसाद दीक्षित, विश्वनाथ त्रिपाठी, भारत भारद्वाज, लक्ष्मी कान्त वर्मा, राजमल बोरा, अवधेश प्रधान, हरिनारायण राय, जय प्रकाश धूमकेतु, जैसे दिग्गज साहित्यकारों का सानिध्य उनको मिला।

❖ कृपया उपरोक्त विषय पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख भेजकर रचनात्मक सहयोग देने का कष्ट करें।

15

वैदिक साहित्य में नारी

डॉ. शिवानी शुक्ला
एम.ए., पीएच.डी.
गोविन्द नगर, कानपुर

अनादिकाल से नारी मनुष्यता के इतिहास की प्रधान नायिका है। उसको लेकर राष्ट्र का उत्थान हुआ है और पतन भी, साहित्य उसको पाकर धन्य हुआ है और समय–समय पर गिरा भी है। मकड़ी के जाले की भाँति विश्व का इतिहास नारी के केन्द्र–बिन्दु के चारों ओर फैलता और सिकुड़ता रहा है। आज की नारी को लेकर इस संसार में एक आन्दोलन और हलचल मची हुई है। नारी महाप्रकृति की सर्जनाशक्ति का प्रतीक है इसीलिए उसमें जो भाव उदय होते हैं वही समाज में प्रतिबिंबित होते हैं।

नारी–अर्थ के बोधक शब्द नारी के स्वरूप पर बहुत कुछ प्रकाश डालते हैं। कवियों की दृष्टि में नारी माया सी दुर्बोध, प्रकृति भी बहुरूपी तथा सहानुभूति सी सरल रही है। विषम समाज में विषम स्थिति होने के कारण नारी के विभिन्न स्वरूप हो गये हैं। मनुष्य का नारी के साथ शारीरिक, रागात्मक और धार्मिक सम्बन्ध होने के कारण भी नारी के स्वरूप भेद हो गये और उनके सूचक शब्दों की अलग–अलग सृष्टि हुई।

मेना – ऋग्वेद में 'मेना' शब्द नारी अर्थ का वाचक है। महर्षि यास्क के अनुसार इसकी व्युत्पत्ति हे है – 'मानयन्ति एना" पुरूषः[1]। पुरूष इनका आदर करते हैं, अतः स्त्रियों को मेना कहते हैं। लौकिक संस्कृत में मेना शब्द मान्या बना गया। संस्कृत में मेना शब्द व्यक्ति वाचक संज्ञा के रूप में मिलता है। पार्वती की माता का नाम मेना था, गार्गी, अपाला, घोषा आदि। नारी के लिए प्रचलित शब्द स्त्री है। स्त्री शब्द 'स्त्यै' धातु से बना है। यास्क के अनुसार स्त्यै का अर्थ लज्जा से सिकुड़ना है।[2]

इसी प्रकार यज्ञ के अर्थ में 'नार्यः' शब्द का प्रयोग हुआ है। तैत्तिरीय आरण्यक 6/1/3 और शतपथ ब्राह्मण 3/5/4/4 में यह प्राप्त होता है। नारी शब्द 'नृ' नर से बना है। नृ+ अञ् + ङीन = नारी। पतञ्लि के अनुसार – (नुर्धर्म्या नारी, नरस्यापि नारी) इसका उल्लेख मिलता है।[3] इसी प्रकार महिला, दुहिता, जाया आदि का उल्लेख भी प्राप्त होता है। वेदों में नारी के स्वरूप का विशेष उल्लेख किया गया है। जिनमें कुछ विदुषी नारियाँ अपने सद्गुणों के कारण तथा मंत्रों का साक्षात्कार करने वाली ऋषिकाओं के रूप में प्रतिष्ठित हुईं। जैसे – लक्ष्मी, दुर्गा, सरस्वती, अदिति, उषा, गायत्री, इन्द्राणी, इला, भारती, होला श्रद्धा आदि वैदिक देवियाँ अनेक तत्वों की अधिष्ठात्री हैं। इन्हें कहीं देवमाता तो कहीं देवकन्या बताया गया है। अदिति आकाश, आन्तरिक्ष, माता, पिता, पुत्र और समस्त देवता हैं। वेदों में अदिति के साथ–साथ दिति का भी उल्लेख मिलता है – 'अदितिं दितिं चं। इन्हीं दिति को पुराणों में दैत्यों की माता कहा गया है। इसी प्रकार सूर्य की पुत्री सूर्या है। इन्हें ऋग्वेद में देवी और ऋषिका भी कहा गया है। सूर्या ने दशम मण्डल के 85 वें सूक्त का साक्षात्कार किया था। उसमें बहुत सी ज्ञातव्य बातें हैं।

इन्द्राणी इन्द्रदेव की पत्नी हैं। इनका नाम शची है। ऋग्वेद के दशम मण्डल, सूक्त 145 की ये ऋषि हैं। 159 वे सूक्त की ऋषिका प्रलोम शची कही गयी है।

ऋग्वेद के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि आर्यों में स्त्री–शिक्षा का यथेष्ट प्रचार था। स्त्रियाँ वेदाध्ययन करतीं और कविताएँ बनाती थीं। वैदिक साहित्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है। कि पहले की स्त्रियाँ वेद पढ़ती थीं और यज्ञोपवीत धारण करती थीं। सुलभा, मैत्रेयी और गार्गी आदि की विद्वता प्रसिद्ध है। ब्रह्मवादिनी घोषा के द्वारा साक्षात्कृत (दशम मण्डल) 39 वें और 40 वें सूक्तों में कुछ ऐसे मन्त्र हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि आर्य लोग विवाह के समय वर और कन्या को विविध वस्त्राभूषणों से विभूषित करके उनका बहुत सम्मान करते थे। समाज में स्त्रियों को यज्ञ कार्य करने के साथ–साथ प्यार व स्नेह भी प्राप्त था। स्त्री उस समय अपने पति के अधीन रहती थी, परन्तु

घर के अन्य सब पदार्थों पर उसी का प्रभुत्व रहता था। वर और वधू जब विवाह में एक साथ बैठते थे, उस समय गुरुजनों और देवताओं से वधू के सौभाग्य के लिए प्रार्थना की जाती थी। यह प्रथा आर्यों में आज भी प्रचलित है। आज भी यह मन्त्र पढ़कर सिन्दूर एवं सौभाग्यवर्धक आर्शीवाद अर्पण किया जाता है। वह मन्त्र यह है –

सुमड़ गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत।
सौभाग्यमस्यै दत्त्वा यायास्तं वि परेतन।।

अर्थात् यह परम कल्याणकारी वधू यहाँ बैठी है, गुरूजनों तथा देवताओं! आप सब लोग यहाँ आवें, इसे कृपा दृष्टि से देखें तथा इसे सौभाग्यसूचक आशीर्वाद देकर अपने–अपने स्थान को पधारें।

यम स्मृति में लिखा है कि – 'पूर्वकाल में कुमारियों का उपनयन, वेदारम्भ तथा गायत्री–उपदेश होता था परन्तु उनके गुरु या अध्यापक केवल पिता, चाचा या बड़े भाई होते थे। जैसे कि इसका उल्लेख है –

पुरा कल्पे कुमारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते।
अध्यापनं च वेदानां सावित्रीवचनं तथा।
पिता पितृव्यो भ्राता वा नैनामध्यापयेत् परः।।

यजुर्वेद के अनुसार पिता के धन पर केवल पुत्र का अधिकार था कन्या का नहीं[4]। वाजसनेयि संहिता के अनुसार – ब्रह्मचारिणी और शिक्षित कन्या का विवाह होना चाहिए[5]। अथर्ववेद के अनुसार – कन्या ब्रह्मचर्यपूर्वक रहकर तरूण पति को प्राप्त करती है – ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्'[6]। माता–पिता के निरीक्षण में कन्या पति का चुनाव करती थी। (6/61/1)। कन्या की विदाई के समय उसके पिता पलंग, गद्दा और कोंच आदि देते थे। गाय, कम्बल आदि भी दिया जाता था। स्त्री का अपने पति पर इस लोक और परलोक में भी अधिकार होता था – 'त्वं सम्राज्येधिपत्युरस्तं परेत्य च।'[7]

मनुस्मृति के अनुसार – जो नारी सन्तानहीन हो, जिनके कुल में कोई न हो, जो पतिव्रता, विधवा या रोगिणी हों, उनकी रक्षा सब लोग करें।

हिन्दू धर्म शास्त्रों में सती नारी की महिमा का वर्णन किया गया है। ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार –

पृथिव्यां यानि तीर्थानि सतीपादेषु तान्यपि।
तेजश्च सर्वदेवानां मुनीनां च सतीसु वै।
सतीनां पादरजसा सद्यः पूता वसुन्धरा।।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि नारी का सनातन मातृत्व ही उसका स्वरूप है। भगवान राम–कृष्ण, भीष्म–युधिष्ठिर, गाँधी–मालवीय आदि जगत् के साथ पुरूषों को नारी ने ही सृजन किया, वह जगत को प्रतिक्षण आनन्द प्रदान करने वाली स्नेहमयी जननी है।

सन्दर्भ सूची

1. निरूक्त – 3/21/2।
2. निरूक्त – 'स्त्रियः स्त्यायते : अपत्रपणकर्मणः' –3/21/2।
3. महाभाष्य् 4/4/9।
4. यजुर्वेद – तैत्तिरीय संहिता – 6/5/8/2।
5. वाजसनेयि संहिता – 12/3/17–18।
6. अथर्ववेद – 11/5/18
7. अथर्ववेद – 14/1/43।

❑❑

16

भूमण्डलीकरण का प्रभाव और महिलाएँ

डॉ0 (श्रीमती) गुलाब मीना
व्याख्याता–राजनीति विज्ञान
बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर (राज0)

भूमण्डलीकरण विश्वव्यापी स्तर पर विभिन्न देशों की आर्थिक निर्भरता की बढ़ती हुई प्रवृत्ति है तथा यह सीमा से परे अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी का तीव्र प्रवाह और वस्तुओं तथा सेवाओं का लेनदेन है। भूमण्डलीकरण न केवल अर्थव्यवस्था को अपितु समाज को भी एकीकृत करता है। इस प्रक्रिया में बाजार, उत्पादन, पूंजी निवेश और प्रौद्यौगिकी का भूमण्डलीकरण भी शामिल है। भारतीय संदर्भ में देखा जाए तो विदेशी मुद्रा अर्जित करना और भुगतान के बीच संतुलन बनाए रखना भूमण्डलीकरण के प्रमुख आधार थे लेकिन आज इस प्रक्रिया से व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र सभी प्रभावित है। भूमण्डलीकरण ने बाजारों का एकीकरण किया और विश्व अर्थव्यवस्था पर अमेरिका, चीज जैसे राष्ट्रों के प्रभुत्व को बढ़ावा दिया है जिससे ताकतवर राष्ट्र और शक्तिशाली हो गए लेकिन छोटे राष्ट्र जिनमें गरीब किसानों, महिलाओं की स्थिति में अपेक्षाकृत गिरावट आई है।

भूमण्डलीकरण का समाज के सभी वर्गों पर प्रभाव पड़ा है लेकिन महिलाएं इससे ज्यादा प्रभावित हुई है। महिलाओं पर इसका सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रकार का प्रभाव पड़ा है। सर्वप्रथम हम सकारात्मक प्रभाव की चर्चा करे तो यह एक सुखद बदलाव है कि अब महिलाएं और उनकी छवि निर्धारित ढांचे (सांचे) से बाहर आ रही है। इसका मुख्य कारण है महिलाओं का शिक्षित होना। पिछले कुछ वर्षों से महिला साक्षरता में बढ़ोतरी हुई है। अन्य शिक्षा में भी महिलाओं की संख्या बढ़ी है। शिक्षित और आत्म निर्भर महिलाओं के बढ़ते आंकड़ों ने देश की अर्थव्यवस्था में इनकी भागीदारी सुनिश्चित की है। आज उच्च और तकनीकी शिक्षा में भी महिलाओं की संख्या बढ़ी है। जिससे उनके लिए रोजगार के अवसरों को बढ़ाया है और ये महिलाएं अपने कार्यक्षेत्र में पुरूषों के वर्चस्व को भी चुनौती देती नजर आ रही है।

लड़कियों की शिक्षा के प्रति बढ़ती जागरूकता ने पूरे देश को प्रभावित किया है। धीरे–धीरे ही सही अब इस धारणा को बल मिल रहा है कि लड़कियां भी शिक्षित और आत्मनिर्भर हो। यह उनके भावी जीवन की बेहतरी के लिये ही नहीं उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व विकास के लिये भी जरूरी है। हमारा पितृसत्तात्मक सामाजिक ढांचा और घर–परिवार दोनों में आए बदलाव इस बात को दृढ़ता से रेखांकित करते हैं कि अब लड़के और लड़की में कोई फर्क नहीं। भारतीय प्रशासनिक सेवा (2015, 2016) की वरीयता के शुरूआती पायदानों पर लड़कियों ने सफलता हासिल की है। शिक्षित और सजग महिलाओं की यह तस्वीर सामाजिक और पारिवारिक बदलाव को भी रेखांकित करती है। घर हो या बाहर उन्हें आर्थिक और सामाजिक जीवन से जुड़े निर्णय लेने की आज़ादी मिली है। यही वजह है कि यह बदलाव हमारे घरों से लेकर सामाजिक परिवेश तक साफ दिखता है। महिला शिक्षा का आर्थिक स्तर पर ही नहीं सामाजिक और परिवारिक उन्नति में भी बड़ा योगदान होता है। एक राष्ट्र श्रेष्ठ तभी बनता है जब परिवार की महिलाएं पढ़ी लिखी और समझदार होती है। इसलिये भावी पीढ़ी की अच्छी परवरिश में भी शिक्षित महिलाओं का बड़ा योगदान होता है।

एक समय था जब लैंगिक पूर्वाग्रहों के चलते लड़कियों के अभिभावकों में इतनी सजगता और जागरूकता नहीं थी अब हालात काफी बदल गये हैं। पिछले कुछ वर्षों से व्यवसायिक शिक्षा, इंजीनियरिंग और अध्यापन के क्षेत्र में महिलाओं की संख्या बढ़ी है जिससे निजि क्षेत्र की कंपनियों में भी महिला श्रम शक्ति की भागीदारी बढ़ी

है। देश–विदेश के कई प्रतिष्ठित संस्थानों में महिलाएं काम कर रही है। शिक्षित महिलाएं अपने अधिकारों को लेकर भी सजग होती है। शिक्षा के कारण ही महिलाएं अपनी अस्मिता और सम्मान के साथ सशक्तिकरण के पथ पर अग्रसर है।

पहले स्त्री की पहचान सिर्फ माँ, पत्नी, बहन और बेटी के तौर पर होती थी। पहली बार ऐसा हुआ कि कुछ साहसी लड़कियों ने परम्परागत रिश्तों से अलग और परिवार से बाहर जाकर अपनी स्वतंत्र पहचान बनानी शुरू की। अभी तक लड़कियों की शिक्षा, नौकरी और विवाह के बारे में जो निर्णय परिवार करता था, उसे लड़कियां खुद करने लगी है। आज महिला अन्याय के खिलाफ आवाज़ उठाने लगी है। आज महिलाएँ राजनीति में सशक्त हो गई है वो सब पंच, सरपंच, पार्षद, मुख्यमंत्री, राष्ट्रपति तक सभी पदों को सुशोभित कर राजनीति में अपनी सक्रिय भागीदारी निभा रही है।

भूमण्डलीकरण का सकारात्मक प्रभाव से नकारात्मक प्रभाव भी है। भूमण्डलीकरण द्वारा कम्प्युटराइजेशन एवं संचार क्रांति का प्रादुर्भाव हुआ और स्त्री को उपभोक्ता क्रांति का केन्द्र बनाया गया। आज महिलाओं की प्राथमिकताएं, आदर्श बदल गए हैं। पढ़ना, कैरियर, नौकरी पाने से पूर्व उन्हें दिखना अधिक महत्वपूर्ण लगने लगा है। महिलाएं निरंतर सुंदरता के असंभव प्रतिमानों का पीछा करती नजर आती है। अगर उसे फेशवास, शैम्पू, बॉडी लोशन जैसी चीजें नहीं मिले तो युवतियों को लगता है उनको जीवन में जरूर चीजें नहीं मिली है। उनका जीवन बेकार है और वे डिप्रेशन का शिकार होने लगती है। स्लीम फीगर की चाह में खाना–पीना कम कर दिया है जिससे वे कुपोषण का शिकार होने लगी है। महानगरों में तो यह रोग इस कदर बढ़ गया है कि युवतियां विशेष फिगर–फिचर्स की चाह में कॉस्मेटिक सर्जरी करवा रही है। गरीब तबके की लड़कियां सस्ता, घटिया कॉस्मेटिक सामान खरीदकर चर्म रोगों का शिकार हो रही है। महिलाओं में बढ़ते इस रूझान में मीडिया की बहुत भूमिका है। मीडिया विज्ञापनों में स्त्रियों के उन्हें रूपों को प्रधानता देता है जो शरीर के प्रदर्शन से संबंध रखता है उसकी बुद्धि, पढ़ाई और सृजनात्मकता से नहीं। यह पूंजीवादी, उपभोक्तावादी संस्कृति मनुष्य को उपभोग का गुलाम बनाती है और उसके स्वविवेक को नष्ट कर देती है।

आज वैश्वीकण द्वारा स्त्री की प्रेम, वात्सल्य, ममता जैसी मूलभूत गुण कार्डस और दिवसों में सीमट कर रह गये हैं। आज हम मदर्स–फादर्स डे बनाने लगे हैं। माता–पिता दोनों के कार्यरत होने पर शाम को घरों में बच्चे, पिता अपने–अपने कमरों में बंद होकर इंटरनेट से चेट करते रहते हैं जिससे परिवार का आपसी प्रेम कम होता जा रहा है। पति–पत्नी में आपसी मतभेद बढ़ रहे हैं। बच्चों का ममत्व, आदरभाव कम होता जा रहा है वो हिंसक होते जा रहे हैं।

भूमण्डलीकरण द्वारा जहां एक तरह देश का विकास हो रहा है। गॉव–शहर स्मार्ट होते जा रहे हैं लेकिन समस्याएं भी बढ़ती जा रही है। महिलाओं पर आये दिन अत्याचार बढ़ रहे हैं। रोजगार के क्षेत्र में महिलाएं आगे आई हैं लेकिन नियमित नौकरी एवं स्वरोजगार में इनकी भागीदारी ज्यादा नहीं है। अस्थायी मजदूरों के रूप में इनकी संख्या बढ़ी है। कम तनख्वाह पर ज्यादा भाग दौड़ करने से इनकी जीवन शैली बेहद शक्तिहीन हो गई है। गाँवों में खेती की स्थिति ठीक ना होने एवं अशिक्षा के कारण ग्रामीण महिलाओं की स्थिति भी ठीक नहीं है। गरीब परिवारों की महिलाओं की स्थिति और भी खराब है। उन्हें भोजन, आवास, स्वास्थ्य एवं स्वच्छ वातावरण की मूलभूत सुविधाएँ नहीं मिल पाती।

भौतिकतावादी युग के विलासितापूर्ण जीवनशैली में एवं बढ़ती मंहगाई में परिवार में बच्चों का पालन–पोषण ठीक से करने में बहुत मुश्किलें आती हैं। ऐसी स्थिति में महिलाएँ बालिका की शिक्षा, स्वास्थ्य, दहेज की मार, बलात्कार की बढ़ती घटनाओं को देखते हुए कन्या को जन्म नहीं देना चाहती जिससे भ्रूण हत्याएं बढ़ती जा रही है। जिससे लिंगानुपात घटता जा रहा है।

सरकारों द्वारा शिक्षा पर अनुदान राशि कम करने एवं निजि शिक्षा को बढ़ावा दिया जाने से शिक्षा मंहगी होती जा रही है। और वो भी पूर्ण रूप से रोजगारन्मुख नहीं है। ऐसी स्थिति में बालिका शिक्षा के स्तर पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। महिला मजदूरों को कार्यस्थल पर सही वातावरण न मिलने, अशिक्षा एवं स्वास्थ्य सुविधा मंहगी होने के कारण इन महिलाओं का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता है और वे विभिन्न प्रकार की बीमारियों से ग्रस्त होती जा रही है। असंगठित क्षेत्र की कामगार महिलाएं ओर अधिक शोषित होती जा रही है।

भारत जैसे देश में पारम्परिक समाज में जहां बुजुर्गों की देखभाल नैतिक दायित्व माना जाता था लेकिन अब संयुक्त परिवारों की जगह एकल परिवार ने ले ली है जिससे बुर्जुग लोगों की उपेक्षा होने लगी है। स्त्री बुढ़ी हो, जवान उसके अकेले रहने का कोई ठोर ठिकाना कभी नहीं रहा। आज भी नहीं। अविवाहित अकेली या परिवार बिखरने पर होने वाले अकेली महिला कहां जाए बुढ़ी होने पर भी उसके लिए दुनिया सुरक्षित नहीं है बल्कि तरह–तरह के खतरों से भरी हुई है।

महिलाओं को समाज में चाहे कितनी भी स्वतंत्रता एवं अधिकार मिल जाए लेकिन जब तक इनका दैहिक एवं भावनात्मक शोषण होता रहेगा महिलाओं का सशक्तिकरण सार्थक नहीं हो सकता। इसके लिये महिलाओं को भी वैश्वीकरण के इस छलावे को समझना होगा कि वह भोग्या व सौंदर्य की सामग्री नहीं है उसे अपनी पहचानन बनानी होगी। साथ ही सरकार द्वारा भी नैतिक मूल्यों पर आधारित एवं रोजगारोन्मुख शिक्षा को बढ़ावा दिया जाना चाहिये एवं महिला सुरक्षा के उचित एवं व्यावहारिक कानून बनाकर उनका उचित निर्वाह किया जाना चाहिये तभी महिलाओं पर बढते अत्याचार कम होंगे एवं महिला सुरक्षित और सबल बन सकेगी।

संदर्भ सूची

1. डां. ब्रज कुमार पाण्डेय, डां. दीपक कुमार राय य भूमण्डलीकरण विविध आयाम, विनोद बुक सेंटर, दिल्ली, 2012
2. भगवती स्वामी एवं सविता किशोर य महिला सशक्तिकरण क्यों और कैसे, आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स, जयपुर, 2008
3. वी.एन. सिंह एवं जनमेजय सिंह य नारीवाद, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2013
4. नरेश भार्गव य वैश्वीकरण समाजशास्त्रीय विश्लेषण, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2014
5. कामता सिंह य ''पदरे की मर्यादा'', जनसत्ता, 27 सितम्बर, 2015
6. शैलेन्द्र चौहान य ''विज्ञापनों में स्त्री देह'', जनसत्ता, 29 नवम्बर, 2015
7. गायत्री आर्य य ''एकला चलो रे, जनसत्ता, 30 अगस्त, 2015
8. क्षमा शर्मा य ''अकेली स्त्री का घर'' जनसत्ता 20 दिसम्बर, 2015
9. मधु अरोड़ा य ''आधुनिकता के शगल'' जनसत्ता 16 अगस्त, 2015

❑❑

एक दर्जन कृतियों के सृजनकर्ता एवं अनेक प्रशासनिक उत्तरदायित्वों का निर्वहन कर चुके डॉ0 रामकमल राय कृति की राह से कृतिकार की निर्मिति और आचरण की राह से व्यक्ति का मूल्यांकन उनका सिद्धांत जैसा था। डॉ0 राय ने अज्ञेय की काव्यनुभुति की तलाश करते हुए उनकी सौदर्य चेतना, सांस्कृतिक चेतना,स्वाधीनता बोध, प्रणयानुभूति के साथ ही साथ काव्य भाषा को परखने की कोशिश है। आपकी दृष्टि में अज्ञेय की काव्याव्यक अनुभूति की अभिव्यक्ति से तनिक भी कम महत्व उनके गद्य लेखन का नही है। चाहे उनके उपन्यास, कहानियाँ, संस्मरण, आत्मवृत्त हों ये सभी कृतियाँ काव्य कृतियों से कमतर नहीं हैं।

❖ कृपया उपरोक्त विषय पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख भेजकर रचनात्मक सहयोग देने का कष्ट करें।

17

महिलाओं के संदर्भ में मानवाधिकारों के यथार्थ का अध्ययन

नसीम अख्तर
शोध छात्रा, समाजशास्त्र विभाग
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास वि0वि0, लखनऊ (उ0प्र0)

मानवाधिकार ऐसे अधिकार हैं जो किसी व्यक्ति को मानव होने के नाते अनिवार्य रुप से मिलते हैं या मिलने चाहिए। एक मनुष्य के रुप में जीवन हेतु ये अधिकार अति आवश्यक हैं। इन मानवाधिकारों का मूल उद्देश्य व्यक्ति को सम्मानपूर्वक गरिमामय मानवीय जीवन व्यतीत करने हेतु उपयुक्त परिस्थितियां प्रदान करना है। इस प्रकार मानवाधिकार सार्वभौमिक होते है और व्यक्तित्व विकास के लिए आवश्यक भी।

मनुष्य योनि में जन्म लेने के साथ मिलने वाला प्रत्येक अधिकार 'मानवाधिकार' की श्रेणी में आता है। संविधान में बनाये गये अधिकारों से बढ़कर महत्व 'मानवाधिकारों' का माना जा सकता है। कारण यह है कि ये ऐसे अधिकार हैं जो सीधे–सीधे प्रकृति से संबंध रखते हैं। जैसे जीने का अधिकार कोई कानून सम्मत अधिकार नहीं, वरन समाज के प्रत्येक वर्ग को प्रकृति द्वारा समान रुप से प्रदान किया गया है।

मानवाधिकार की अवधारणा :– मानवाधिकार की अवधारणा का इतिहास बहुत पुराना है। इस अवधारणा का विकास सत्ता के निरंकुश उपयोग पर अंकुश लगाना है। मध्यकाल में 13वीं शताब्दी में राजा और सामंतो के मध्य हुआ समझौता जिसे 'मैग्नाकार्टा' कहा जाता है, ने मानवाधिकार की पृष्ठभूमि तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

वर्तमान मानवाधिकार सम्बन्धी गतिविधियां वास्तव में द्वितीय विश्वयुद्ध का परिणाम है। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान घटित अमानवीय घटनाओं की भर्त्सना करते हुए अमेरिका के राष्ट्रपति फ्रैंकलिन रुजवेल्ट (1882–1945) का भाषण (1940) जिसमें उन्होंने मनुष्य की चार मूलभूत स्वतंत्रताओं का उल्लेख किया था, भविष्य में मानवाधिकार संबंधी घोषणा का मुख्य आधार बना। फ्रैंकलिन की पत्नी एलीनोर रुजवेल्ट (1884–1962) की अध्यक्षता में 1946 में गठित मानवाधिकार आयोग द्वारा तैयार किये गये प्रारुप को संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा स्वीकृत और घोषित किये जाने के साथ ही विश्व समुदाय द्वारा इसे न केवल मान्यता दी गई बल्कि अपने–अपने संविधानों में स्थान देकर विधिक स्वरुप भी प्रदान किया गया। 10 दिसम्बर, 1948 को मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा की गई। (जी0एल0 शर्मा 2015)1

मानव अधिकारों का सार्वभौम घोषणा–पत्र–1948

संयुक्त राष्ट्र द्वारा मौलिक मानव अधिकारों को अपने शासन पत्र में समर्थन दिया गया है जिसमें स्त्री एवं पुरूशों के सम्मान एवं उनके अधिकारों की रक्षा की बात कही गई है, जिससे सामान्य विकास एवं जनसाधारण के जीवन स्तर में सुधार हो सके।

धारा 1 : प्रत्येक मनुष्य अपनी प्रतिष्ठा एवं अधिकार के क्षेत्र में जन्मत स्वतंत्र है। वह विवेक और चेतना से सम्पृक्त है और उसे आपस में एक–दूसरे के साथ आपसी भाई–चारे का व्यवहार करना चाहिए।

धारा 2 : सभी व्यक्ति रंग, जाति, लिंग, भाशा, धर्म, राजनीतिक विचार राष्ट्रीय या सामाजिक पृष्ठभूमि, धन–सम्पत्ति, जन्म अथवा अन्य विशिष्ट स्थिति के भेदभाव के बिना मौलिक अधिकारों के भागीदारी होंगे। साथ ही किसी व्यक्ति के साथ देश की राजनीति, अधिकार क्षेत्र अथवा अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के आधार पर किसी प्रकार का विभेद नहीं किया जाएगा।

धारा 3 : प्रत्येक व्यक्ति को जीने का अधिकार, स्वतंत्रता और सुरक्षा का अधिकार है।

धारा 4 : किसी भी व्यक्ति को दास या दासत्व के लिए बाध्य नही किया जा सकेगा। दासता एवं इससे सम्बन्धित कोइ भी कार्य निशिद्ध है। किसी भी रूप में मनुष्य के क्रय–विक्रय पर पूर्णतः प्रतिबन्ध रहेगा।

धारा 5 : किसी भी व्यक्ति को यातना या अमानवीय कष्ट नहीं दिया जा सकेगा।

धारा 6 : प्रत्येक व्यक्ति को सभी जगह कानून के समक्ष एक मनुष्य के सम्मान का अधिकार है और वह बिना किसी विभेद के कानूनी सुरक्षा का अधिकारी है।

धारा 7 : इस घोशणा–पत्र के उल्लंघन में किसी भी प्रकार के भेदभाव के विरूद्ध सभी को समान सुरक्षा का अधिकार है और साथ ही ऐसे विभेद के लिए किसी प्रकार के प्रलोभन के विरूद्ध भी उन्हें सुरक्षा प्राप्त है।

धारा 8 : प्रत्येक मनुश्य को संविधान और कानून द्वारा प्राप्त मौलिक अधिकार के उल्लंघन के विरूद्ध सक्षम राष्ट्रीय न्यायाधिकरण के समक्ष आवेदन करने एवं न्याय पाने का अधिकार है।

धारा 9 : किसी व्यक्ति को गैर–कानूनी रूप से गिरफ्तार, रोककर रखना अथवा देश से निष्कासित नहीं किया जा सकेगा।

धारा 10 : किसी व्यक्ति के अधिकारों के निर्धारण और उसके विरूद्ध गठित किसी आपराधिक मामले के प्रसंग में उस व्यक्ति का स्वतंत्र एवं निश्पक्ष न्यायाधिकरण के समक्ष सुनवाई के पूर्णतः समान अधिकार है।

धारा 11 : प्रत्येक व्यक्ति को अगर वह दोषी है तो कानूनन उसे अपने को निर्दोश साबित करने का अधिकार है जब तक कि पब्लिक ट्रायल द्वारा उसे दोषी न साबित कर दिया जाए।

किसी व्यक्ति को तब तक दंड देने का प्रावधान नहीं है, जब तक कि वह राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के कानून के तहत कानूनन दोषी न पाया जाए, जिस समय अपराध हुआ हो और इसी तरह एक आपराधिक गतिविधि के लिए एक ही समय पर भारी जुर्माना लगाने का प्रावधान भी नहीं है।

धारा 12 : किसी भी व्यक्ति की निजी गोपनीयता, परिवार, घर या उसके पत्राचार के साथ गैर–कानूनी तरीके से हस्तक्षेप नहीं किया जा सकेगा और न ही उसके सम्मान और सामाजिक प्रतिष्ठा पर आक्रमण किया जा सकेगा। प्रत्येक मनुश्य का इस तरह के हस्तक्षेप अथवा प्रहार के विरूद्ध कानून के संरक्षण का अधिकार है।

धारा 13 : (i) प्रत्येक राज्य की सीमा में भ्रमण करने और उसमें रहने का सभी को समान अधिकार है।

(ii) प्रत्येक व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह अपना देश अथवा अन्य देश को छोड़ सकता है और लौट भी सकता है।

धारा 14 : (i) प्रत्येक व्यक्ति को किसी उत्पीड़न के विरूद्ध किसी भी अन्य देश में आश्रय लेने का अधिकार है।

(ii) परन्तु यह अधिकार उस स्थिति में लागू नहीं हो सकता है, जब यह उत्पीड़न अराजनीतिक अपराध या संयुक्त राष्ट्र संघ के सिद्धान्तों या उद्देश्य के विरूद्ध हो ।

धारा 15 : (i) प्रत्येक व्यक्ति को राष्ट्रीयता का अधिकार है।

(i) कोई भी अपनी राष्ट्रीयता से स्वेच्छाचारितापूर्वक वंचित किया जा सकेगा।

धारा 16 : (i) योग्य उम्र वाले प्रत्येक स्त्री और पुरुष को जाति, राष्ट्रीयता, धर्म के बन्धन में विवाह करने और परिवार बसाने का अधिकार है। विवाह करने, विवाह के निर्वाह अथवा उसके विघटन का समान अधिकार दोनों को प्राप्त होगा।

(ii) विवाह उसी समय मान्य होगा जब पति अथवा पत्नी की पूरी सहमति हो।

(iii) परिवार समाज की एक मौलिक व प्राकृतिक इकाई है और इसे समाज व राज्य के संरक्षण का अधिकार है।

धारा 17 : (i) वैयक्तिक अथवा अन्य के सहयोग से सम्पत्ति अर्जित करने का अधिकार है।

(ii) किसी को भी स्वेच्छाचारितापूर्वक उसकी सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जा सकेगा।

धारा 18 : प्रत्येक व्यक्ति को विचार, धारणा और धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार है। इस अधिकार के अन्तर्गत अपने विश्वास और धर्म के परिवर्तन का अधिकार भी सम्मिलित है, साथ ही इसमें वैयक्तिक अथवा सामूहिक रूप में सार्वजनिक या निजी स्थान पर अपने धर्म और विश्वास के शिक्षण, आचरण, पूजा की अभिव्यक्ति भी सम्मिलित है।

धारा 19 : प्रत्येक व्यक्ति विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकारी है। इस अधिकार के अन्तर्गत बिना हस्तक्षेप के अपने विचार पर दृढ़ रहने की स्वतंत्रता का अधिकार भी सम्मिलित है। साथ ही, इसके अन्वेशण, सूचनाओं और विचारों को किसी भी जनसंचार के माध्यम से सम्प्रेशित करने का अधिकार भी सम्मिलित है।

धारा 20 : (i) प्रत्येक व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह शान्तिपूर्ण सभा व संगठन का अयोजन कर सकता है।

(ii) किसी को भी किसी संगठन से जुड़ने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है।

धारा 21 : (i) प्रत्येक व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह अपनी सरकार में शामिल हो सकता है चाहे प्रत्यक्ष रूप से चुने हुए या प्रतिनिधि के तौर पर।

(ii) प्रत्येक व्यक्ति को सार्वजनिक सेवा का समान अधिकार है।

(iii) जनता की इच्छा सरकार के प्रभुत्व का आधार है। यह इच्छा सार्वभौमिक और समान मताधिकार के द्वारा नियतकालीन और प्रामाणिक चुनाव के माध्यम से अभिव्यक्त होगी। यह चुनाव गुप्त मतदान अथवा स्वतंत्र मतदान प्रक्रिया द्वारा संचालित होगा।

धारा 22 : प्रत्येक व्यक्ति को समाज का सदस्य होने के नाते सामाजिक सुरक्षा का अधिकार है और इसी के तहत प्रत्येक राज्य या संस्था को अपने संसाधनों के अनुसार राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सहयोग करने तथा सामाजिक व सांस्कृतिक अधिकारों की स्वतंत्रता है जिसमें उसकी गरिमा और व्यक्तित्व का विकास निहित है।

धारा 23 : (i) प्रत्येक व्यक्ति को काम करने, रोजगार चुनने एवं बेरोजगारी के विरूद्ध अपने कार्य स्थिति को सुधारने की स्वतंत्रता है।

(ii) बिना किसी वर्ग–विभेद के प्रत्येक व्यक्ति को समान कार्य के लिए समान वेतन प्राप्त करने का अधिकार है।

(iii) प्रत्येक व्यक्ति को अपने हितों के संरक्षण हेतु ट्रेड यूनियन के गठन और उसमें सम्मिलित होने का अधिकार है।

धारा 24 : प्रत्येक व्यक्ति को आराम और अवकाश जिसके अन्तर्गत उचित कार्यावधि के निर्धारण और वेतन सहित नियमित छुट्टियों का अधिकार है।

धारा 25 : (i) प्रत्येक व्यक्ति को अपने स्वास्थ्य और पारिवारिक सहूलियत हेतु भोजन, कपड़ा, मकान, दवाई एवं अन्य सामाजिक कार्य हेतु सामान्य जीवन स्तर जीने का अधिकार है। बेरोजगारी, बीमारी, शारीरिक अक्षमता, वैधत्य बुढ़ापा अथवा नियंत्रण से बाहर ऐसी परिस्थिति, जिसमें जीवनयापन के संसाधन की कमी ही में सुरक्षा पाने का अधिकार भी सम्मिलित है।

(ii) मातृत्व और बचपन में विशेष देखभाल और सहायता के अधिकारी है। विवाह अथवा विवाहेत्तर संबंध से

उत्पन्न सभी बच्चे समान सामाजिक सुरक्षा का उपभोग करेंगे।

धारा 26 : (i) प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा का अधिकार है। शिक्षा निःशुल्क होगी विशेषकर प्रारम्भिक व मौलिक स्तर पर प्रारम्भिक शिक्षा आवश्यक होगी। तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा सामान्यतः उपलब्ध होगी तथा समान रूप से योग्यता के आधार पर उच्च शिक्षा उपलब्ध होगी।

(ii) मनुश्य के व्यक्तित्व के पूर्ण विकास हेतु अपने मौलिक अधिकारों व मानवाधिकार की रक्षा हेतु, शिक्षा प्रदान की जाएगी। यह शिक्षा विभिन्न राष्ट्रों, जातीय अथवा धार्मिक समूह के बीच परस्पर सहमति, सहनशीलता और मैत्री को बढ़ावा देगी और साथ ही शान्ति की बहाली हेतु संयुक्त राश्ट्र संघ की गतिविधियों को आगे बढ़ाएगी।

धारा 27 : (i) सभी व्यक्तियों को समाज की सांस्कृतिक गतिविधियों में भाग लेने का स्वतंत्र अधिकार है। उन्हें कलाओं का आनन्द तथा वैज्ञानिक उन्नति के लाभों में हिस्सेदारी का अधिकार है।

(ii) प्रत्येक व्यक्ति को अपने वैज्ञानिक, साहित्यिक और कलात्मक कार्य से उत्पन्न नैतिक और भौतिक हितों के संरक्षण का अधिकार है।

धारा 28 : (i) प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक और अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था का अधिकारी है जिसके तहत वह इस घोषणा—पत्र में निहित सभी अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं का पूर्णतः उपभोग कर सके।

धारा 29 : (i) प्रत्येक व्यक्ति का अपने समुदाय के प्रति कुछ कर्तव्य है जिसमें उसका स्वतंत्र एवं पूर्ण विकास सम्भव हो।

(ii) प्रत्येक व्यक्ति को कानून द्वारा निर्धारित सीमाओं में अपनी स्वतंत्रता और अधिकारों को पाने का अधिकार है, जिसका उद्देश्य अपनी पहचान साथ ही दूसरे की स्वतंत्रता और अधिकारों का आदर करते हुए एक जनतांत्रिक समाज में नैतिकता, सार्वजनिक व्यवस्था एवं जनकल्याण को प्राप्त करना है।

धारा 30 : इस घोषणा—पत्र में शामिल किसी भी प्रावधान की व्याख्या किसी भी देश, समूह या व्यक्ति को इसमें निहित अधिकारों या स्वतंत्रताओं को नश्ट करने वाली गतिविधियों में भाग लेने के अभिप्राय से नहीं की जानी चाहिए। (ममता मेहरोत्रा 2014)[2]

भारत में मानवाधिकार :—

संयुक्त राष्ट्र संघ के मानवाधिकार घोषणा—पत्र पर भारत ने 1948 में हस्ताक्षर किया था। तथापि लगभग एक वर्ष पूर्व निर्मित भारत के संविधान में मौलिक अधिकारों के माध्यम से मानवाधिकारों को मान्यता दी जा चुकी थी। संविधान के खण्ड तीन में विधि के समक्ष समानता (अनुच्छेद 14), धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग अथवा जन्म स्थान के आधार पर विभेद व निषेध (अनुच्छेद 15), अवसर की समानता (अनुच्छेद 16), अस्पृश्यता का अंत (अनुच्छेद 17), वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 19), अपराधों के लिए दोषसिद्धि के संबंध में संरक्षण (अनुच्छेद 20), प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता (अनुच्छेद 21), मानव के दुर्व्यापार एवं बलात श्रम का प्रतिषेध (अनुच्छेद 23), कारखानों में बालकों के नियोजन पर प्रतिबंध (अनुच्छेद 24), धर्म की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 29, 30), इत्यादि अधिकार भारत के नागरिकों को प्रदान किये गये हैं। इतना ही नहीं संविधान में इन अधिकारों की रक्षा के लिए अनुच्छेद 32 एवं अनुच्छेद 226 में संवैधानिक उपचार भी दिए गए हैं। केन्द्र सरकार द्वारा इन अधिकारों के संरक्षण तथा संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा घोषित किये जाने वाले मानवाधिकार संबंधी अभिसमयों, प्रसंविदाओं, के सम्यक पालन हेतु तथा संबंधित उत्तरदायित्वों के सम्यक् निर्वहन हेतु 1993 में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग का गठन किया गया। (जी0एल0 शर्मा 2015)[3]

अतः मानवाधिकार वे अधिकार है जिन पर सभी मनुष्यों का हक है। इस विचारधारा के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति मनुष्य मात्र होने से ही कुछ अधिकारों का हकदार हो जाता है। मानवाधिकार बिना किसी भेदभाव के प्रत्येक मनुष्य

के जन्मजात अधिकार है चाहे वह किसी भी देश, निवास–स्थान का हो और चाहे स्त्री हो या पुरुष। मानवाधिकारों से तात्पर्य ऐसे हक जो हमारे जीवन और मान–सम्मान से जुड़े हैं। ये हक हमें जन्म से मिलते हैं।

यथार्थ :– मानवाधिकारों के सार्वभौमिक घोषणा–पत्र में 30 धाराओं का वर्णन किया गया है जिनमें प्रत्येक व्यक्ति को चाहे वह स्त्री हो या पुरुष समान रुप से अधिकारों का वर्णन किया गया है जिसे सैद्धान्तिक तौर पर देखने से लगता है कि ये अधिकार सभी व्यक्तियों (स्त्री–पुरुष) को समान रुप से प्राप्त हैं परन्तु कुछ धाराएं ऐसी है जो महिलाओं के संदर्भ में सिद्धान्त और यथार्थ में भिन्न है। जैसे–

धारा 2 में बताया गया है कि लिंग के आधार पर किसी भी प्रकार का विभेद नहीं किया जाएगा परन्तु तीसरी दुनिया के अधिकतर देशों में सामाजिक भेदभाव और लिंग–भेद को लेकर महिलाओं के साथ जो पक्षपात होता रहा है, उसके कारण वे दूसरी श्रेणी की नागरिक बन गई हैं। जैविक दृष्टि से पुरुषों से अधिक शक्तिशाली होने के बावजूद लड़कों की तुलना में 3 लाख अधिक लड़कियां प्रत्येक वर्ष भारत में मर जाती हैं। प्रत्येक 6 महिलाओं में एक की मृत्यु लिंग–भेद पर आधारित भेदभाव के कारण होती है। एन0सी0ई0आर0टी0 के एक अध्ययन के अनुसार, भारत में जन्मी 12 मिलियन लड़कियों में से प्रतिवर्ष 25 प्रतिशत अपना 15वां जन्मदिन नहीं मना पाती हैं। (डॉ0 बिन्देश्वर पाठक 2010)[4]।

धारा 3 में जीने का अधिकार स्वतंत्रता और सुरक्षा का अधिकार दिया गया है परन्तु हम देखते हैं कि महिलाओं के साथ इन तीनों आधारों पर भेदभाव किया जाता है। जीने का अधिकार प्रत्येक मनुष्य का अधिकार है परन्तु कन्या भ्रूण हत्या जैसे घिनौने कार्य स्त्री को उसके जीने के अधिकार से वंचित कर देते हैं कन्या होना अपने आप में इतना अपमानजनक समझा जाता है कि कन्या को इस संसार में आने से पहले ही उसे गर्भ में मार दिया जाता है। हालांकि भारत सरकार द्वारा इस कृत्य पर प्रतिबन्ध लगाने हेतु प्रसव पूर्व निदान तकनीक अधिनियम, 1994 लागू किया गया।

इसी प्रकार स्वतंत्रता और सुरक्षा के संबंध में समान अधिकार प्राप्त हैं परन्तु हम देखते हैं कि महिलाओं को पुरुषों की तुलना में कम स्वतंत्रता प्रदान की जाती है यदि महिलाएं घर से बाहर जाना चाहें तो उन्हें यह सलाह दी जाती है कि वह किसी पुरुष को अपने साथ लेकर जाये। महिलाओं को रोजागार, शिक्षा, विवाह आदि चुनने के संबंध में भी स्वतंत्रता नहीं है। यदि हम सुरक्षा की बात करें तो यह पहलू किसी से अनजान नहीं है कि वर्तमान में महिलाएं कितनी सुरक्षित हैं ?जब वे गर्भ में सुरक्षित नहीं है तो आप अंदाजा लगा सकते हैं कि बाहरी दुनियां में उनको कितनी सुरक्षा प्रदान की गई होगी ?इस संबंध में डा0 राज सक्सेना द्वारा लिखित दोहा याद आता है (डा0 राज सक्सेना 2013)[5]

घर में भाई मारता, बाहर लुच्चों से तंग।
घर बाहर दोनों जगह, बेटी बनी पतंग।।

धारा 4 में बताया गया है कि मनुष्य के क्रय–विक्रय पर पूर्णतः प्रतिबन्ध रहेगा यद्यपि वर्तमान में लड़कियों का अपहरण कर उन्हें देह–व्यापार हेतु बेंचना एक आम बात है आये दिन हम ऐसी खबरें अखबारों और ज्ट चैनलों पर देखते सुनते है पिछले साल मई, 2016 में राजस्थान में हनुमानगढ़ जिले के भादरा थाना क्षेत्र में पुलिस ने देश के उत्तर–पूर्वी राज्यों की लड़कियों को बहला–फुसलाकर उन्हें बेंचने वाले गिरोह की एक महिला सहित चार सदस्यों को गिरफ्तार किया था जिसमें असम और बंगाल की लड़कियों को बेंचा गया था। (देशबन्धु, 2016)[6]

धारा 16 की उपधारा एक व दो में विवाह से संबंधित अधिकार दिये गये है तथा इसे विघटित करने का भी समान अधिकार है। परन्तु यथार्थ में विवाह एवं तलाक के संबंध में ये अधिकार महिलाओं की अपेक्षा पुरुषों को ज्यादा दिये गये है। महिला का विवाह किसके साथ होगा यह घर के पुरुष वर्ग द्वारा ही तय किया जाता

है। हालांकि बदलते परिवेश में कई जगहों पर लड़की की इच्छा भी पूछ ली जाती है परन्तु वे ऐसा बहुत कम होता है। जबकि विवाह के संबंध में निर्णय लेने का अधिकार महिला को नहीं है तो फिर उसे विघटित करने का अधिकार भला कैसे प्राप्त हो सकता है ? संस्कारों का हवाला देकर लड़कियों को हमेशा यही सिखाया जाता है कि विवाह जन्म–जन्मांतर का बंधन है और इसे तोड़ा नहीं जा सकता, इस बंधन को निभाने का पूरा जिम्मा महिलाओं पर ही होता है। इस बंधन को तोड़ने की पहल महिला कभी नहीं कर सकती, क्योंकि ये अधिकार पुरुषों को है। वे जब चाहें, जैसे चाहें इस बंधन से मुक्त हो सकते हैं। वर्तमान में मुस्लिम महिलाओं के संबंध में तीन तलाक का मुद्दा खूब गरमाया हुआ है जिसमें यदि पति चाहे तो फोन पर तीन बार तलाक–तलाक–तलाक बोलकर विवाह के बंधन से मुक्त हो सकता है। इस प्रकार महिला की मर्जी हो न हो परन्तु फिर भी उसे विवाह करना पड़ता है उसी प्रकार विवाह के बंधन से भी मुक्त होना पड़ता है।

धारा–17 में सम्पत्ति को अर्जित करने और उसके संग्रहण करने का अधिकार तथा उसकी इच्छा के बिना सम्पत्ति से वंचित न करने का अधिकार दिया गया है। भारत में भी हिन्दू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2005 द्वारा अब सम्पत्ति में बेटे के बराबर सम्पत्ति बेटियों को भी प्राप्त करने का अधिकार दिया गया है लेकिन आज कितनी महिलाएँ हैं जिन्हें इस कानून का ज्ञान है ?और यदि ज्ञान है भी तो कितनी महिलाओं ने अपनी पैतृक सम्पत्ति में अपने अधिकार की माँग की भी होगी ? शायद न के बराबर। और अगर की भी होगी तो कितनी महिलाओं को उनके अधिकार की सम्पत्ति उन्हें दी गई होगी ? ये कुछ प्रश्न हैं जो इस धारा के समान अधिकारों पर प्रश्न चिह्न लगाते हैं।

धारा 23 की एक और दो उपधाराओं में किसी भी व्यक्ति को रोजगार चुनने, काम करने, समान वेतन पाने का अधिकार है यद्यपि हम देखते हैं कि महिलाओं को रोजगार चुनने के संबंध में सीमित अधिकार है उनके लिए कुछ व्यवसायिक क्षेत्र पहले से निर्धारित कर दिये गये हैं जैसे–शिक्षिका, बैंकिंग, नर्सिंग। आज हम महिलाओं को प्रत्येक क्षेत्र में अपना लोहा मनवाते हुये देख रहे हैं परन्तु यह सुविधा अभी बहुत कम लड़कियों को प्राप्त है कि वे अपनी मर्जी से रोजगार चुने।

इसी प्रकार समान कार्य के लिए समान वेतन पाने का अधिकार भी महिलाओं को है परन्तु महिलाओं को असंगठित क्षेत्रों से पुरुषों से कम वेतन दिया जाता है। अर्थव्यवस्था के असंगठित क्षेत्र में, चाहे वह ग्रामीण हो या शहरी, महिलाओं की स्थिति अत्यन्त विषमता और अभाव के दुष्चक्र में फँसी हुई है। इस क्षेत्र में व्यापक रुप से मजदूरी में भेदभाव प्रचलित है। जहाँ महिलाएँ पुरुषों को दी जाने वाली मजदूरी का एक तिहाई या उससे भी कम पाती हैं। (साधना आर्य, 2013)[7]

धारा–26 की उपधारा एक में समान शिक्षा की बात कही गई है जिसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को समान एवं निःशुल्क शिक्षा प्रारम्भिक स्तर पर दी जायेगी परन्तु हम देखते हैं कि महिला शिक्षा का प्रतिशत हमेशा पुरुषों से कम ही रहा है यद्यपि सरकार ने इस दिशा में कई सार्थक प्रयास किये हैं परिणामस्वरुप महिला शिक्षा के प्रतिशत में बढ़ोत्तरी हुई है परन्तु अभी भी यह प्रतिशत निराशाजनक बना हुआ है। भारत की जनगणना 2011 के अनुसार भारत की साक्षरता दर 75.06 है जिसमें महिला साक्षरता 65.46ः तथा पुरुष साक्षरता 82.14ः है। (भारत की जनगणना 2011)[8] इससे स्पष्ट होता है कि अभी भी महिला एवं पुरुष साक्षरता के बीच एक गहरी खाई है। जिसका मुख्य कारण पितृसत्तात्मक समाज एवं रुढ़िवादी विचारधारा है। स्त्री शिक्षा की इस माली हालत के लिए गरीबी तथा स्त्रियों के लिए समाज का सौतेला रुख जिम्मेदार है। सीमित साधनों वाले परिवार बेटे की शिक्षा पर ही अपने साधन लगाते हैं। (गोपा जोशी, 2011)[9]

निष्कर्ष :– मानवाधिकार एक ऐसा अधिकार है जो स्त्री और पुरुष को समानता की दृष्टि से देखता है। परन्तु हमारे समाज में मानवाधिकारों के प्रति संवेदनशीलता बहुत कम दिखाई देती है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण आये दिन

महिलाओं के साथ होने वाली अमानवीय घटनायें हैं। जो ये दर्शाती हैं कि समाज में महिलाओं की स्थिति आज भी सोचनीय है। ध्यान देने की बात ये है कि महिलाओं की निम्न स्थिति के लिए पुरुष जितने जिम्मेदार हैं वहीं कहीं न कहीं महिलाएं भी इसके लिए जिम्मेदार हैं, चाहे कन्य भ्रूण हत्या हो या दहेज उत्पीड़न आदि में महिलाएं भी उतनी ही भागीदार है। इस संबंध में एक पंक्ति याद आती है कि ''महिला ही महिला की दुश्मन होती है।'' परन्तु इस पंक्ति में कितना सच है यह बता पाना कठिन है क्योंकि यदि ऐसा है तो इसका मुख्य कारण शिक्षा का अभाव तथा पितृसत्तात्मक समाज है जो एक महिला को दूसरी महिला पर अत्याचार करने के लिए विवश करता है।

भारत में मानवाधिकार एक ऐसा मुद्दा है जिसके लिए दीर्घकालीन नीति तथा सरकारी और गैर सरकारी दोनों ही स्तरों पर सहयोग की जरुरत है। इसके लिए समाज के प्रत्येक सदस्य विशेषतः महिलाओं के मानवाधिकारों के संबंध में जागरुक करने की आवश्यकता है। ताकि वे अपने अधिकारों के प्रति सजग हो सकें तथा स्वयं को सशक्त कर सकें।

संदर्भ सूची

1. शर्मा, जी0एल0 (2015), सामाजिक मुद्दे, नई दिल्ली : रावत पब्लिकेशन्स, पृष्ठ सं0–361
2. मेहरोत्रा, ममता (2014), महिला अधिकार, नई दिल्ली : राधा कृष्ण प्रकाशन प्राईवेट लिमिटेड पृष्ठ सं0–16–20
3. शर्मा, जी0एल0 (2015), सामाजिक मुद्दे, नई दिल्ली : रावत पब्लिकेशन्स, पृष्ठ सं0–362
4. पाठक, डॉ0 बिन्देश्वर (2010), स्त्रियों और बच्चों के मानवाधिकार –संस्थागत दृष्टिकोण, मानवाधिकार : नई दिशाएं, वार्षिक अंक–7, नई दिल्ली : राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग पृष्ठ सं0–15
5. सक्सेना, डॉ0 राज (2013), कन्या भ्रूण हत्या पर कुछ दोहे http://www.deshbandhu.co.in(may 16,2016)
6. राजस्थान में लड़कियों को बेंचने वाला गिरोह गिरफ्तार (2016), देशबन्धु, http://www.deshbandhu.co.in(may 16,2016)
7. आर्य, साधना (2013), स्वतंत्रता उपरान्त विकास का स्वरुप और महिलाओं पर प्रभाव, (संप) द्वारा साधना आर्य, निवेदिता, मेनन, जिनी लोकनीता, नारीवादी राजनीति : संघर्ष एवं मुद्दे, दिल्ली : हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, पृष्ठ 217
8. भारत की जनगणना, 2011
9. जोशी, गोपा (2011), भारत में स्त्री असमानता, दिल्ली : हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, पृष्ठ सं0 253

❑❑

अज्ञेय का मूल्यांकन समग्रता में करने वालों में प्रो0 रामकमल राय का नाम प्रमुख है। जिजीविषा और जीवटता अज्ञेय के कृति साहित्य की पहचान है। सामाजिकता में निजत्व का विलय नहीं बल्कि साथ,साहचर्य–सान्निध्य यही दृष्टि है जो अज्ञेय के अद्वितीय अवदान को एक सम्यक निर्मिति देती है। कहने को तो डॉ0 रामकमल राय लोहियावादी थे लेकिन अपने साहित्य में आपने ज्यादा घालमेल नहीं किया। वस्तुतः डॉ0 रामकमल साहित्य के निश्चल प्राणी थे, विनीत, विनम्र और साहित्यकारों के प्रति अनुरागी। कुल मिलाकर तत्कालीन समय के वर्तमान में आप साहित्य के अजातशत्रु हैं।

❖ कृपया उपरोक्त विषय पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख भेजकर रचनात्मक सहयोग देने का कष्ट करें।

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

भारतीय राजनीति और दलित चेतना

आजाद प्रताप सिंह'
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान एवं लोक प्रशासन विभाग,
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

भारत की सामाजिक स्थिति में जाति की भूमिका न केवल महत्वपूर्ण बल्कि निर्णायक भी है। कुछ जातियों को प्रतिष्ठा और विशेषाधिकार प्राप्त हैं, जबकि कुछ अन्य जातियों को तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता है और उन्हें बहुत सी कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। जाति पर आधारित सामाजिक विभाजन मूलतः वर्ण व्यवस्था का ही विकृत रूप है।

बाबा साहब डॉ0 अम्बेडकर ने माना है कि – ''जाति व्यवस्था भारतीय समाज व्यवस्था का सबसे बड़ा दोष है।'' सर्वप्रथम इस जाति की पहली को सुलझाने की (सिंहः 1998:32) कोशिश की गयी है और जाति के आधार पर किये गये उत्पीड़न को भी चित्रित्र करने का प्रयास किया गया है। जाति आधारित उत्पीड़न की शुरूआत वर्ण व्यवस्था (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र) के निर्माण से प्रारम्भ होती है और दिनों–दिन ये वर्ण संकर और अधिक भागों में विभाजित होने लगते हैं। समाज के चौथे वर्ण से एक और वर्ण उत्पन्न होता है जिसे चर्तुवर्ण व्यवस्था में कहीं पर भी स्थान नहीं दिया जाता। इसे अतिशूद्र, अस्पृश्य, अत्यज, अछूत कहा जाता है और इसी के आधार पर इस वर्ग पर होने वाले उत्पीड़न की सीमा और अधिक बढ़ जाती है।

सन् 1965 में डा0 अम्बेडकर की मृत्यु के बाद की दलित राजनीति जिन उतार चढ़ाव से होकर गुजरी है इसे तीन चरणों में बांटा जा सकता है। रिपब्लिकन पार्टी का उत्थान और पतन, दलित पैंथर का उभार तथा तीसरे चरण के रूप में दलितों की राजनीतिक सत्ता पर दावेदारी व मांग निश्चित ही दलित राजनीति के इस नये चरण के मिजाज का कांशीराम या मायावती बखूबी प्रतिनिधित्व करते हैं लेकिन वही इसके एकमात्र प्रतिनिधि नहीं है।

सोचने वाली बात यह है कि इसका आगे का रास्ता क्या होगा?क्या दलित अस्मिता का द्वन्द नयी–नयी चीजों, परिघटनाओं को सामने लाता हुआ इसी तरह जारी रहेगा या वह वैकल्पिक संस्कृति की रूपरेखा तय करने में अपना धनात्मक योगदान कर सकेगा तथा इस प्रयास में अपने में वास्तविक हितैषी तलाश पायेगा या पूंजीवादी विचारों, संगठनों द्वारा तय दायरों में ही सिमटा रहेगा।

वास्तव में प्रजातन्त्र की सबसे बड़ी उपलब्धि यह रही है कि दलितों में राजनीतिक चेतना जगी है, वे सक्रिय हो उठे हैं तथा अपने अधिकारों की मांग करने लगे हैं। तथा भारतीय अर्थतन्त्र में सभी राजनीतिक दल दलितों को अपनी ओर रिझाने का प्रयास कर रहे हैं। हालांकि राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में तीखापन जरूर नजर आ रहा है मगर सामाजिक क्षेत्र में अभी भी दलित हाशिये पर ही हैं।

यह आन्दोलन सामाजिक है किन्तु समाज के भीतर क्रिया–प्रतिक्रिया की अर्न्तक्रियाएं होती रहती हैं। विश्लेषणात्मक विधि से समस्याओं का निराकरण करने के लिये समझने में मदद मिलती है किन्तु यदि समाधान संश्लेषणात्मक न होकर विश्लेषणात्मक होता है तो सामाजिक अर्न्तसंबंध ठीक करने तक, यन्त्र के अन्य पुर्जे चुपचाप पड़े रहते हैं। यहाँ नया समाधान आते ही पूरे समाज के लिये स्वीकार्य होना पड़ता है। यह सच है कि शरीर का कोई अंग सड़ने पर उसका प्रभाव पूरे शरीर पर पड़ता है किन्तु उसी प्रकार 'फारेन एलीमेन्ट' शरीर में आने पर उसकी स्वीकार्यता करानी होती है।

इस जाति–वर्ग में अन्य समाज के वर्गों के प्रति अनाथ और विद्रोह की भावना को पैदा करता है। इसके

परिणामस्वरूप उत्पीड़ित जातियों में चेतना की भावना पनपती है और यही सामाजिक चेतना को आपस में एकजुट होने में सहायता करती है और यही समाजिक चेतना राजनीतिक चेतना की ओर अग्रसर होती है। इस चेतना के गोलबन्दीकरण तथा लामबन्दीकरण में सबसे कारगर हथियार समूह की भिन्न पहचान बनती है और इसी पहचान के आधार पर विभिन्न जाति समूह आपस में एकजुट होने लगते हैं। इसी क्रम में विभिन्न सामाजिक मंचों का निर्माण होता है। इसी लामबन्दीकरण को और अधिक प्रभावी और सक्रिय बनाने के लिए इन जाति समाजों के द्वारा विभिन्न पहचान चिन्हों को भी निर्मित किया जाता है और लामबन्दीकरण को और अधिक सक्रिय किया जाता है। इसी आधार पर राजनीति में सक्रियता को भी बढ़ाया जाता है। समाज के पंचम वर्ग, जो अंत्यज एवं अस्पृश्य समाज था, ने समय के साथ इस समाज की अमानवीयता के खिलाफ विद्रोह की आवाज बुलन्द करनी प्रारम्भ की जिसे समाज का भी सहयोग मिला।

आज दलित समाज विभिन्न दलों में सक्रियता के साथ भाग ले रहा है। जहाँ एक ओर उसके स्वयं के द्वारा संचालित दल आज भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में स्थापित हो रहे हैं, वहीं अन्य दलों में भी दलित सक्रियता बढ़ रही है। विभिन्न दलों में विद्यमान दलितों की क्या स्थिति है? इसे तो उन दलों में उनकी सक्रियता के आधार पर देखा जा सकता है। यद्यपि भारतीय संविधान में दलित समाज (अ0जाति/अ0जनजाति) के लिए संसद और विधानसभा की सीटों में आरक्षण की व्यवस्था है जिसके परिणामस्वरूप लोकसभा और विधानसभाओं में दलित चुन कर आ रहे हैं पर राजनीतिक दलों में स्वरूप ही दलितों को किसी सामान्य सीट से चुनाव प्रत्याशी बनाया जाता है। बात रही उनकों दल के कार्यप्रणाली में शामिल करने की तो वो भी नाम मात्र की है। विभिन्न दलित नेताओं से विचार–विमर्श के उपरान्त यह जानने में आया कि दलितों को आज भी राज्यों व केन्द्र सरकारों में दलितों को नवरत्न कहे जाने मन्त्रालयों का प्रमुख नहीं बनाया जाता। सभी राजनीतिक दल इस मामले में 'हमाम में सब नंगे हैं' जैसी स्थिति में ही दिखते हैं।

दलित से बहुजन की ओर बढ़ता यह समाज अस्पृश्य समाज के साथ पिछड़े समाज के गठजोड़ के बाद बहुजन समाज के रूप में सामने आया जिसे ज्योतिब फुले के बाद कांशीराम ने अधिक प्रचलित पहचान दी। जहाँ दलित को मात्र अस्पृश्यों के साथ जोड़कर देखा जा रहा था वहीं बहुजन को कांशीराम ने अनुसूचित जाति/जनजाति/पिछड़ा वर्ग और धर्मान्तरित अल्पसंख्यक वर्ग के साथ मिलाकर, भारतीय राजनीति में जमी पड़ी जातियों को एक चुनौती दी और अल्पसंख्यक समाज का राज नहीं चलेगा' का नारा उद्घोषित किया गया। कांशीराम ने कहा कि यह समाज देश की जनसंख्या का 85% से अधिक है तथा राजनीति और सामाजिक हिस्सेदारी में इनकी भूमिका नगण्य है और दूसरी ओर 15% से कम अगड़ी जाति के लोग राजनीति और समाज पर पूरा कब्जा किए हुए हैं। यह व्यवस्था तो लोकतान्त्रिक नहीं है क्योंकि लोकतन्त्र तो बहसंख्यक जनता को सहभागिता का नाम है पर वर्तमान सरकार अल्पसंख्यकों के द्वारा संचालित है। इस प्रकार इन्होंने दलितों–बहुजनों का जाग्रत कर और उनको राजनीतिक सत्ता में हिस्सेदारी दिलाने हेतु बहुजन समाज पार्टी की स्थापना की। इस दल ने अम्बेडकरवाद को अपनी विचारधारा का आधार बना कर अपने संघर्ष की शरूवात की और उत्तर प्रदेश में चार बार सरकार बनायी।

आज भी दलितों को चाहे वो किसी भी राजनीतिक दल में क्यों न हो, उन्हें कम से कम दलित मुद्दों पर एकजुट होना चाहिए। दलित को दलों से भिन्न 'कॉमन प्लेटफॉर्म–फॉर दलित' बनाना चाहिए जिसमें पिछड़ों को भी साथ लेना आवश्यक होगा क्योंकि लोकतंत्र लोगों की ताकत को सलाम करता है। दलितों–पिछड़ों का गठजोड़ लोगों की ताकत का प्रतीक है। इस ताकत के आधार पर यह बहुसंख्यक समाज भारतीय राजनीति अपनी उचित भूमिका का निर्वाह कर पाएगा। साथ ही साथ पिछड़े समाज व्यवस्था में दलितों और पिछड़ी जातियों को जाति और उपजाति के विचार को समाप्त कर एक गठजोड़ की बात सोचनी चाहिए। यह जातियों को बांटने के लिए

ब्राह्मणवाद द्वारा प्रयोग किया गया एक वैचारिक शस्त्र है जैसे अंग्रेजों 'फूट डालो और शासन करो की नीति' का प्रयोग किया था। इसी प्रकार से ब्राम्हणवादी विचार समूह इन दलित–पिछड़ी जातियों को विभाजित करने और उनमें असमानता के विचारों को पैदा करने का सदैव प्रयास करता है।

दक्षिण में दलित और पिछड़ों का संघर्ष शुरू है। वहाँ पिछड़ों ने ही दलित का शोषण अधिक किया है। दक्षिण से सबक लेकर ही आज उत्तर प्रदेश में दलित पिछड़ों के साथ कभी मिलना नहीं चाह रहा है। उ0प्र0 में 1993 में सपा से बसपा का तालमेल का नतीजा भी सामने हैं। हालांकि विचार धारा के स्तर पर दलितों और पिछड़ों में एकता बहुत स्वाभाविक लगती है लेकिन जमीनी स्तर पर इनमें इसलिये संघर्ष की स्थिति बनती है क्योंकि दलित अपने शोषण के लिये उच्च जातियों की तुलना में पिछड़ों को ज्यादा जिम्मेदार मानते हैं। वैसे भी दलितों का आधार गाँवो में है जहाँ से उच्च जातियां शहरी करण आदि के कारण पलायन कर चुकी हैं। वहां इनका सामना पिछड़ों से ही होता है।

डॉ0 सोहनपाल सुमनाक्षर ने कहा कि ''21वीं सदी दलित की होगी' चन्द्रभान प्रसाद के अनुसार यह अच्छे आशय वाले कार्यकर्ता की आशावादिता मात्र है। वैसे यह बात सच हो भी सकती है परन्तु तब जब दलित वर्ग स्वयं प्रयासरत होगा। जबकि दलितों को जब भी मौका मिलता है वो अपने वर्ग का साथ छोड़कर अवसर का पूरा लाभ लेते हैं। मराठा, पटेल, नायर, कमांस, रेड्डी, लिंगायत, थेवर आदि तथा कथित शूद्र जाति के थे। अब इन जातियों ने क्षत्रियता ग्रहण कर रखी है। अर्थात् दलितों को जब मौका मिलता है वह अपने उद्धार के लिये अपनी पुरानी स्थिति छोड़ देते हैं। यही स्थिति राजनेताओं की भी है वो दलितों के वोट लेते समय तो उदार हो जाते हैं पर पद प्राप्त करने के पश्चात उन्होंने दलितों के लिये कुछ करने की उन्हें कोई चाहत नही होती।

दलित–बहुजनों को शिक्षित संगठित होकर संघर्ष करने के रास्ते की ओर अग्रसर होना ही होगा। इसके साथ ही साथ आगे बढ़े दलित समाज को पीछे छूट गये दलित समाज को आगे बढ़ने के अधिक अवसर प्राप्त हों, इसके लिए संघर्ष करना चाहिए। अक्सर आगे बढ़े दलितों को ब्राह्मणवादी लोग अपने समकक्ष सम्मान प्रदान कर उन्हें अन्य दलित समाज से काट दे रहे हैं जिससे आरक्षण जैसा प्रावधान मात्र दलितों के आगे बढ़े दलित समूह में ही केंद्रित होकर रह गया है। अब दलितों में एक ''अभिजात्यवर्ग' का प्रदुर्भाव हुआ है जो समाज के पीछे छूट गए दलितों से अपने को अलग किये हुए है, जो दलित आंदोलन के लिए शुभ संकेत नहीं है। आगे बढ़े दलित समाज को पीछे छूट गए दलितों को आगे बढ़ाने में अधिक प्रयास किये जाने की आवश्यकता है, तभी एक बहुसंख्यक समाज का आंदोलन हो पाएगा और समाज व्यवस्था के वर्तमान स्वरूप को भी तभी बदला जा सकता है।

''भारत में राजनीतिक समानता की बात तो हो गयी, किन्तु अभी सामाजिक और आर्थिक जीवन में विषमतायें शेष हैं। इस विसंगति को शीघ्र अति शीघ्र दूर किया जाये या फिर वे लोग जो सताये हुये हैं,राजनीतिक लोकतन्त्र की धज्जियाँ उड़ा देंगे।''

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. दलित अस्मिता की राजनीति, प्रवेश कुमार।
2. बाबा साहेब डा0 अम्बेड़कर सम्पूर्ण वाड़मय खण्ड–2 नवम्बर 1993
3. M.N. Srinivas, India-Social structure, Delhi Hindustan Publishing House.
4. सुभाष गानाड़े (लेख) 'दलित आस्मिता के नये प्रश्न' उदधृत राष्ट्रीय सहारा, 20 जनवरी 2001
5. चन्द्रभान प्रसाद (लेख) शेड द ओल्ड उदघृत पायनियर, 30 जनवरी 2001

❑❑

19

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर के दलितोद्धार संबंधी विचारों की प्रासंगिकता

डॉ0 जय सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर – संसकृत विभाग
राजकीय महिला महाविद्यालय, अम्बारी, जिला आजमगढ़ (उ.प्र.)

''जीवन की सफलता अछूतों का स्तर मानवता के स्तर तक लाने में है।''

– डॉ भीमराव अम्बेडर

विश्व में जाति वर्ण वर्ग एवं मानवीय असमानता जैसी सामाजिक अमानवीय कुव्यवस्थाओं, कुरीतियों और रूढ़िवादियों के विरूद्ध बूकर टी. वाशिंगटन एवं नेल्सन मंडेला के साथ–साथ आज वर्तमान में कैलाश सत्यार्थी, मलाला युसुफजूई आदि है। ठीक इसी प्रकार भारत में जाति–पाति, छुआ–छूत, ऊँच–नीच आदि विभिन्न सामाजिक कुरीतियों के दौर में एक ऐसी असाधारण शख्सियत का अवतरण इस धरती पर हुआ जिसने समाज में एक नई क्रांतिकारी चेतना एवं सोच का सूत्रपात किया वह महान शख्सियत थी डॉ0 भीमराव अम्बेडकर।

वेदिक काल में सामाजिक आर्थिक परिस्थितियाँ, मान्यतायें, और अवस्थाऐं प्रतिकूल थी। चातृर्य वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था, अस्पृश्यता, धार्मिक अंध विश्वास, कर्मकाण्ड यज्ञ, वलि, लोक–परलोक, धर्म–मजहब, ऊँच–नीच आदि रूढ़िवादी विचार एवं कुरीतियों का स्थापित साम्राज्य चरम सीमा पर जा पहुँचा था। देश में मनुवादी व्यवस्था के बीच समाज को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र के रूप में विभाजित कर दिया था। शूद्रों में निम्न एवं गरीब जातियों को शामिल करके उन्हें अछूत की संज्ञा दी गई और उन्हें नारकीय जीवन जीने को विवश कर दिया गया था जिसके दुष्परिणाम आज भी भारतीय समाज को भुगतने पड़ रहे हैं। समाज में जितनी भी सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक समस्यायें है उनका संबंध वर्णव्यवस्था अथवा जाति व्यवस्था से है। इनकी वजह से समाज में समता, स्वतंत्रता, भ्रातृत्व और न्याय जैसे मानवीय मूल्यों का मार्ग प्रशस्त नहीं हो सका तथा नैतिक मानवीय मूल्य, और सामाजिक मूल्यों का निरंतर ह्रास होता रहा है। ऐसी स्थिति में डॉ0 भीमराव अम्बेडकर का जन्म भारतीय समाज की दिशा बदलने में आधार स्तंभ माना जाता है। कहा जाता है कि काल प्रवाह के भय से श्रेष्ठकर्म में निरंतर प्रवृत महापुरुष युग में अनेक मिलते है, किन्तु उस श्रेष्ठ कर्म के द्वारा काल प्रवाह की धारा को ही मोड़ देने की क्षमता रखने वाले डॉ. भीमराव अम्बेडकर जैसे महानायक सहस्राब्दियों में कही एक बार धरा को कृतकृत्य करते है। वे युग दृष्टा थे। इस अर्थ में अवतारों और ऋषियों की पवित्र भूमि भारत उनके कर्मयोगमय मार्गदर्शन के बिना अपनी सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और धार्मिक संकल्पना में कभी भी इस प्रकार उन्नतपथ पर अग्रसर नहीं हो सकता था। उन्होंने सदियों से दबी सहमी भारतीय आवाज को स्पष्टता एवं बुलंदी के साथ गौरवमयी अभिव्यक्ति देकर समाज में प्रत्येक जन की समतामूलक साझेदारी को सुनिश्चित करने की दिशा में प्रयास किया। उनका यह प्रयास कितना सार्थक हुआ है यह आज एक विचारणीय प्रश्न है। क्या आज वर्तमान परिवेश में उनके विचार प्रासांगिक है क्या उनके विचारों को व्यवहारिक रूप में परिणत कर समाज और देश का विकास संभव हुआ है इस पर बुद्धिजीवी वर्ग, चिंतकों, नीति निर्माताओं को विचार करना होगा।

शोध की उपकल्पना – प्रस्तुत शोध आलेख की मूल परिकल्पना यह है कि डॉ0 भीमराव अम्बेडकर के दलितोद्धार संबंधी विचारों को किन आधारों पर प्रासांगिक माना जाये, उसका विश्लेषण करना तथा उनके विचारों

को वर्तमान समय में प्रासंगिक माना जाना कहाँ तक उचित है आदि तथ्यों की खोज करना है।

समंक संकलन – शोध आलेख में तथ्यों अर्थात् समंकों का संकलन करने के लिए प्राथमिक एवं द्वितीयक स्त्रोत का प्रयोग कर संकलित आंकड़ों की व्याख्यान विश्लेषण, वर्गीकरण एवं विवेचन कर महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष प्रस्तुत करना है।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर के दलितोद्धार संबंधी विचार – अगाध ज्ञान के भंडार, घोर अध्यववासी, अद्भुत प्रतिमा, सराहनीय निष्ठा, न्यायशीलता और स्पष्टवादिता के धनी डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने अपने आपको दलितों के प्रति समर्पित कर दिया था। अस्पृश्यता समझी जाने वाली महार जाति में जन्म लेने के कारण उन्हें अपने जीवन में पग–पग पर भारी अपमान और घोर यंत्रणा की स्थितियों का सामना करना पड़ा था इन अपमानों और सामाजिक यातनाओं को झेलते हुए वे जीवन में निरंतर आगे बढ़े और उन्होंने निश्चय किया कि भारत में अस्पृश्यता वर्ग के लिए अमानवीय जीवन की इस स्थिति को समाप्त कर उन्हें मानवता पर लाना है। इस महामानव ने भारत के दलित वर्ग के प्रति निष्ठा और समर्पण की जिस स्थिति को अपनाया था, उसके आधार पर उसे भारत का इब्राहिम लिंकन और मार्टिन लूथर कहा गया।

डॉ. अम्बेडकर ने शैशवकाल से ही वर्णव्यवस्था अस्पृश्यता आदि की विसंगतियों, विकृतियों और सामाजिक कटु अनुभवों को अपने जीवन में गहन अनुभव किया था। वर्ण व्यवस्था का अभिशाप तो हमेशा दलित वर्ग पर कभी निर्धनता के दंश के रूप में, तो कभी धार्मिक एवं सामाजिक कुरीति आदि के रूप में परिलक्षित होता रहा। यही स्थिति अम्बेडकर को हिन्दू धर्म की बुराईयों के प्रखर विरोधी के रूप में खड़ा कर देती है और इन्हीं स्थितियों से उबरने की छटपटाहट उन्हें अन्य मानवीय धर्म के चयन हेतु प्रेरित करती है। इसी कारण दलितोद्धार की भावना उन्हें सार्वजनिक जीवन और राजनीति में ले आई। उनके समस्त सार्वजनिक जीवन का सर्वप्रमुख एक मात्र लक्ष्य था दलितोद्धार। डॉ. अम्बेडकर ने अपने जीवन के प्रथम 35 वर्षों में पग–पग पर घोर अपमान, अमानवीय व्यवहार और भारी यंत्रणा की स्थितियों को भोगा था। एक बार उन्होंने एक पत्रकार से कहा था ''मेरे दुःख दर्द और मेहनत को तुम नहीं जानते जब सुनोगे रो पड़ोगे''। यंत्रणा की इन स्थितियों से गुजरते हुए ही उन्होंने दलितोद्धार का संकल्प समानता की स्थिति को प्राप्त करने के लिए सवर्णो से लड़ाई प्रारंभ कर दी थी। तीस वर्षों से भी अधिक समय तक इस अहिंसक लड़ाई का नेतृत्व करते रहे। उनके द्वारा लड़ी गई, इस लड़ाई में उच्च हिन्दू जातियों के प्रति गहरी भावना निहित है। इस विरोध भावना के कारण ही उन्होंने घोषणा की ''उन व्यक्तियों तथा संस्थाओं को अछूतों की बात कहने का हक नही है, जो स्वयं अछूत नहीं है।''

दलितोद्धार की दिशा में डॉ. अम्बेडकर के द्वारा अनेक ऐसे कार्य किये गये है जो आज भी प्रासंगिक दिखाई दे रहे, जो निम्नानुसार हैं–

डॉ. अम्बेडकर जी ने जातिप्रथा और हिन्दू समाज के परम्परागत विधान पर ऐसा कठोर प्रहार किया जैसा अभी तक किसी ने नहीं किया था। उन्होंने कहा था कि चार वर्णों पर आधारित सामाजिक ढाँचे की हिन्दु योजना ने ही जाति व्यवस्था और अस्पृश्यता को जन्म दिया है जो कि असमानता का एक अमानवीय रूप है। उनका मानना थ कि प्रारंभ में जाति प्रथा नहीं थी। समाज के कुछ स्वार्थी लोगों ने जो ऊँचे स्तर के थे, कमजोर लोगों से उनकी इच्छा के विरूद्ध जबरन काम करना प्रारंभ कर दिया जिसके कारण वे अशिक्षित रहे और दासता का जीवन जीने लगे। इस प्रकार ऊँच वर्ग ने जातिवाद को अपनाकर शूद्रों को अपंगकर दिया। तब उन्होंने कहा कि जातिप्रथा को नष्ट करने का एक ही मार्ग है– अन्तर्जातीय विवाह, न कि सहभोज। खून का मिलना ही अपनेपन की भावना ला सकता है , वे जातिप्रथा को हिन्दूधर्म की सबसे बड़ी खराबी मानते थे। वे जाति प्रथा को समूल नष्ट करना चाहते थे जिसमें उन्होंने काफी हद तक सफलता प्राप्त हुई।

डॉ. अम्बेडकर जानते थे कि अछूतों की वर्तमान स्थिति के लिए स्वयं अछूतवर्ग भी उत्तरदायी है अतः उन्होंने

इस बात पर बल दिया कि अछूतों द्वारा बुरी आदतों और हीनता की भावना का त्याग कर आत्मसम्मानपूर्ण जीवन की ओर प्रवृत्त होना चाहिए। अछूतों में स्वतंत्रता समानता और स्वाभिमान से जीवन बिताने और अत्याचार के विरूद्ध संघर्ष की आवाज उठाना चाहिए। अतः आज के परिपेक्ष में उनके विचार प्रासंगिक दिखाई दे रहे है।

उन्होंने इस बात पर बल दिया कि ब्रिटिश शासन द्वारा प्रतिनिधित्व के अन्तर्गत जिस प्रकार मुसलमानों, ईसाइयों और पंजाब में सिक्खों को पृथक प्रतिनिधित्व की स्थिति प्राप्त है उसी प्रकार दलितों को भी ऐसा ही पृथक प्रतिनिधित्व प्राप्त होना चाहिए जिसमें दलितों के प्रतिनिधि केवल दलितों द्वारा ही चुने जाये। डॉ. अम्बेडकर दलितों के लिए पृथक प्रतिनिधित्व के आधार पर उन्हें एक बड़ी राजनीतिक शक्ति का रूप देना चाहते थे उनका यह विचार स्वतंत्र भारत के आम चुनावों में देखने को मिलता है।

डॉ. अम्बेडकर ने 1930 में स्टार कमेटी के एक सदस्य के रूप में कुछ सिफारिशें की थी जो इस प्रकार है–

1. दलित छात्रों के वजीफों की संख्या बढ़ाई जाये।
2. दलित छात्रों के लिए छात्रावास की व्यवस्था की जाये।
3. उन्हें कारखानों एवं अन्य ट्रेनिंग के लिए वजीफे दिये जायें।
4. विदेश में इंजीनियरिंग पढ़ने के लिए वजीफा दिया जाये।
5. इन सभी कार्यों की देखभाल के लिए एक विशेष अधिकारी नियुक्त किया जाये।

अतः उन्होंने दलितों की स्थिति में सुधार के लिये अनेक कानूनी उपाय बताये जिसमें समानता का अधिकार प्रमुख है इसका परिणाम यह हुआ कि स्वतंत्र भारत के संविधान में अनुच्छेद 15–16 में समानता का अधिकार नागरिकों को कानूनी दृष्टि से प्राप्त हुआ जो उनके विचारों की सार्थकता सिद्ध करती है।

उन्होंने इस बात पर भी बल दिया कि अछूतों को सभी सार्वजनिक स्थानों के प्रयोग का अधिकार होना चाहिए इसके लिए उन्होंने महद तालाब, सत्याग्रह, गंगा सागर तालाब, काकाराम मंदिर प्रवेश एवं समता सैनिक दल की स्थापना संबंधी अनेक कार्य किये। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपने जीवन भर के अथक प्रयासों से जो कार्य किये उनके संबंध में कुछ विचार निम्नानुसार प्रस्तुत हैं–

1. मैं ऐसे धर्म को मानता हूँ जो स्वतंत्रता, समानता और भाईचारा सिखाता है।
2. जीवन लम्बा होने के बजाय महान होना चाहिए।
3. एक महान व्यक्ति एक प्रतिष्ठित व्यक्ति से अलग है क्योंकि वह समाज का सेवक बनने के लिए तैयार रहता है।
4. दिमाग का विकास मानव अस्तित्व का परम लक्ष्य होना चाहिए।
5. हम सबसे पहले और अंत में भारतीय हैं।
6. हिन्दू धर्म में विवेक, कारण और स्वतंत्र सोच के विकास के लिए कोई गुंजाइश नहीं है।
7. मनुष्य नश्वर है, ऐसे विचार होते हैं, एक विचार को प्रचार–प्रसार की जरूरत है जैसे एक पौधे में पानी की जरूरत होती है अन्यथा दोनों मुरझा जायेंगे और मर जायेंगे।
8. मैं एक समुदाय की प्रगति का माप महिलाओं द्वारा हासिल प्रगति की डिग्री द्वारा करता हूँ।
9. इतिहास बताता है कि जहाँ नैतिकता और अर्थशास्त्र में संघर्ष होता है वहाँ जीत हमेशा अर्थशास्त्र की होती है। निहित स्वार्थों को स्वेच्छा से कभी नहीं छोड़ा गया है जब तक कि बल लगाकर मजबूर न किया गया हो।
10. लोग और उनके धर्म, सामाजिक नैतिकता के आधार पर सामाजिक मानकों द्वारा परखे जाने चाहिए। अगर धर्म को लोगों के भले के लिए आवश्यक वस्तु मान लिया जायेगा तो और किसी मानक का मतलब नहीं होगा।

11. एक सफल क्रांति के लिए सिर्फ असंतोष का होना काफी नहीं है। आवश्यकता है राजनीतिक और सामाजिक अधिकारों के महत्त्व, जरूरत व न्याय का पूर्णतया गहराई से दोषरहित होना।
12. यदि हम एक संयुक्त एकीकृत आधुनिक भारत चाहते हैं तो सभी धर्मों के धर्मग्रंथों की संप्रभुता का अंत होना चाहिए।
13. यदि मुझे लगा कि संविधान का दुरूपयोग किया जा रहा है, तो मैं इसे सबसे पहले जलाऊंगा।

इस प्रकार डॉ. अम्बेडकर दलित समाज के लिए संघर्ष करने वाले अद्‌भुत योद्धा थे। इसी आधार पर उन्हें ''दलितों का मसीहा'' कहा जाता है। बाबा साहेब का जन्म अवश्य एक हिन्दू धर्म की महार जाति में हुआ था जिसे अछूता का दर्जा दिया गया था मगर आज आजादी के 68 वर्षों के बाद भी स्थितियाँ बिल्कुल से बदल गई हों ऐसा कतई नहीं है। आज भी हमारे समाज में जातिगत, धार्मिक आदि असमानतायें आज भी जारी है इसे हटाने के लिए डॉ. अम्बेडकर अपनी अंतिम सांस तक अनवरत लड़ते रहे और उनका यह संदेश आजादी के दौरान जितना प्रासांगिक लगता था आज उससे कही ज्यादा प्रासांगिक प्रतीत होता है।

संदर्भ सूची

1. मध्यभारती शोध पत्रिका, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर, जुलाई–दिस. 2014, पृ. 51
2. भारत दर्शन, हिन्दी साहित्यिक पत्रिका, दिल्ली 15 अप्रैल 2015, पृ.6
3. कृतिका शोध पत्रिका, लखनऊ, जनवरी–दिसम्बर, 2015, पृ. 296
4. Keer, Dnanonjay, Amebedkar Life and Mission, p.71
5. वर्मा डॉ. व्ही.पी., आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली 2013, पृ. 568
6. निम डी.आर., अम्बेडकर जीवन दर्शन, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली 2002, पृ. 97

❑❑

किसी भी रचनाकार की रचनाधर्मिता की परीक्षा कलात्मकता, सामाजिक उपादेयता और प्रासंगिकता की दृष्टि से होती है इसके साथ ही कृतिकार के रूपगत, शैलीगत, भावगत और शिल्पगत वैशिष्ट्य की दृष्टि से भी; क्योंकि एक श्रेष्ठ रचनाकार अपने जीवन जगत के प्रत्यावलोकन में रत होकर उन विविध जागतिक और सामाजिक दृश्यों–परिदृश्यों, घटनाओं, भाव–वैविध्यों और यथार्थ–सत्यों को अभिव्यक्त करता है जिसके जुड़ाव–घटाव, टूटन–घुटन में युग सत्यों का निर्माण होता है। साहित्य समाज का दर्पण ही नहीं, दीपशिखा भी है क्योंकि रचनाकार बाह्य परिवेश से जो अनुभव संचित करता है उसे वह अपने संचित ज्ञान की निकष पर चढ़ाकर जो निष्कर्ष निर्णीत करता है वे निष्कर्ष ही उनका चिन्तन बन जाते हैं। एक सफल कृतिकार देश, काल, वातावरण की गति और कला को ठुकराता हुआ ऐसा मौलिक सृजन करता है। जिसकी सामाजिक उपादेयता, सामाजिक सौद्‌देश्यता तथा मानव जीवन के कल्याण एवं विकास के लिये उसका अनुप्रयोग कितना है को दृष्टि में रखकर अपना निष्कर्ष निकालता है ऐसी ही रचनाओं की प्रासंगिकता बनी रहती है। इनकी विशिष्टता में ही इसे कालजयिता अर्थ–प्राप्ति की स्वीकृति भी दी जाती है क्योंकि इनका अनुभव रूपी ज्ञान किसी भी दशा में सत्यों एवं तथ्यों के आधार पर शत–प्रतिशत मौलिक होता है। डॉ0 रामकमल राय का सृजन इन्हीं सरोकारों के बीच से होकर गुजरता है।

❖ कृपया उपरोक्त विषय पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख भेजकर रचनात्मक सहयोग देने का कष्ट करें।

20

हिन्दी कविता में पर्यावरण की चिन्ता

डॉ0 ममता सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर–हिन्दी विभाग
आगरा कॉलेज, आगरा, उ.प्र.

लोक कल्याण की भावना के साथ लिखी जाने वाली रचना ही साहित्य की कोटि में आती है। पर्यावरण शब्द का अर्थ अत्यन्त व्यापक है जिसमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही समाहित है। 'परि' अर्थात् हमारे चारों तरफ और 'आवरण' का तात्पर्य है ढकना या आवृत्त करना। सम्पूर्ण सृष्टि क्षिति, जल, पावक गगन, समीर पाँचों तत्त्वों से आवृत्त है। यही पर्यावरण है। सीधे शब्दों में कहें तो जो भी हमारे चारों तरफ हैं और जीवन के लिये अनिवार्य है वहीं पर्यावरण है। पर्यावरण के समस्त तत्त्वों का संतुलन ही जीवन के लिये महत्त्वपूर्ण ही नहीं आवश्यक भी है। यही कारण है कि हमारी संस्कृति में प्रत्येक महत्त्वपूर्ण प्राकृतिक तत्त्व को देवता माना गया है और उनके संरक्षण की बात कही गयी है। जहाँ मानव का अस्तित्व पर्यावरण पर निर्भर है वहीं निरन्तर किये जा रहे पर्यावरण के साथ खिलवाड़ के कारण पर्यावरण मानव के लिये नित नये संकट उत्पन्न कर रहा है। यही कारण है कि आज मानव के भविष्य को लेकर सभी लोगों को चिन्ता सताने लगी है इसमें साहित्यकार भी सम्मिलित हैं। साहित्य व पर्यावरण अलग–अलग संस्थाएँ होने के बाद भी दोनों के केन्द्र में मानव ही है। यहाँ सब कुछ मनुष्य का, मनुष्य के लिये एवं मनुष्य द्वारा ही संचालित है। इसी तरह साहित्य भी मानव द्वारा मानव के लिये गढ़ा जाता है, साहित्यकार सामाजिक प्रचेतना के वर्ग में अग्रगण्य स्थान रखते हैं उनका दायित्व है कि प्रत्येक प्रकार के अनुशासन एवं उदात्त भावों का पुनः–पुनः स्मरण कराते रहें। अथर्ववेद में भी पर्यावरण को लेकर चिन्ता व्यक्त की गयी है 'जो सिर्फ भोग तथा अतिलिप्सा के कारण प्रकृति का दोहन व कर्तन करते हैं उनकी संतानें पशु व पक्षी मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

प्रसाद जी ने अपने अधिकांश काव्यों में प्रकृति परक रचनाओं के माध्यम से मानव जीवन में पर्यावरण का सम्बन्ध एवं महत्त्व दर्शाया है। अपने काव्य के माध्यम से प्रसाद ने पर्यावरण के प्रति जन जागरण का अथक प्रयास किया है। प्रकृति से वर्णित उनके अधिकतर काव्यों में पर्यावरण के प्रति रुचि एवं गंभीरता दृष्टिगोचर होती है। कामायनी की ये सुन्दर पंक्तियाँ।

जो अचल हिमानी से रंजित उन्मुक्त उपेक्षा भरे तुंग
अपने जड़ गौरव के प्रतीक वसुधा का कर अभिमान भंग।।
अपनी समाधि में रहे सुखी बह जाती है नदियाँ अबोध
कुछ श्वेत बिन्दु उसके लेकर वह स्तिमित नयन गत शोक क्रोध।
स्थिर मुक्ति प्रतिष्ठा में वैसी चाहता नहीं इस जीवन की।
मैं तो अबाध गत मरुत सदृश हूँ, चाह रहा अपने मन की।
जो चूम चला जाता अंग जग प्रति पग में कंपन की तरंग
वह ज्वलनशील गतिमय पतंगा।[1]

वेदों में स्थान–स्थान पर इसी तरह की चिन्ता को देखा जा सकता है।

आधुनिक साहित्य में भी विभिन्न प्रकार से पर्यावरण के विभिन्न पक्षों को दर्शाया गया

प्रकृति के सौन्दर्य और उसके मन मुग्ध करने वाले रूप का चित्रण भी हमें प्रकृति से प्रेम करना सिखाता है।

जिसके मण्डल में एक कमल खिल उठा सुनहला भर पराग।
जिसके परिमल से व्याकुल हो श्यामल कलरव सब उठे जाग

वह रम्य फलक पर नवल चित्र सी प्रकट हुई सुन्दबाला
वह नयन महोत्सव को प्रतीक अम्लान नलिन की नवल माला
सुषमा का मंडल सुस्मित सा बिखरता स्मृति पर सुराग सोया जीवन का तम विराग।[2]

जहाँ एक तरफ हिन्दी के साहित्यकारों ने प्रकृति सौन्दर्य का अद्‌भुत चित्रण कर मानव को पर्यावरण से प्रेम करने की प्रेरणा दी है वहीं पंत अपनी 'परिवर्तन' कविता में प्रकृति के रौद्र रूप का भी चित्रण करते हैं और एक तरह चेतावनी देते हुए प्रतीत होते हैं कि यदि पर्यावरण से छेड़छाड़ हुई तो प्रलय अनिवार्य है।

स्वर्ग की सुषमा जब साभार, धरा पर करती थी अभिसार। प्रसूनों के शाश्वत श्रृंगार, स्वर्ण मृगों के गंध विहार गूँज उठते थे बारंबार। परन्तु प्रलय के बाद की स्थिति कितनी भयावह है देखिये–

अह दुर्जेय विश्वजित
नवाते शत सुखर नर नाथ
तुम्हारे इन्द्रासन तल माथ
घूमते शत–शत भाग्य अनाथ
सतत् रथ के चक्रों से साथ
तुम नृशंस से जगती पर चढ़ अनियंत्रित
करते हो संसृति को उत्पीड़न, पद मर्दित
नग्न नगर कर भग्न भवन, प्रतिमाएँ खंडित
हर लेते हो विभव कला कौशल चिर संचित
बह्नि, बाढ़, भूकम्प, तुम्हारे विपुल सैन्य दल
अहे निरंकुश पदाघात से जिनके विव्ह्ल
हिल ढुल उठता है टलमल
पद दलित धरातल।[3]

आज पर्यावरण के बढ़ते प्रदूषण के कारण प्रकृति समाप्त तो नहीं हुई हैं पर उसका रूप गुण गंध सौन्दर्य सब बदल गया है। अब कवि तारों भरे आसमान को देखकर मौन निमंत्रण' नहीं रच सकता है। हरे–भरे पेड़ों के न पाने पर छोड़ द्रुमों की मृदु छाया की उसे प्रेरणा नहीं मिलती। 'बासंती हवा' अब मन को नहीं लुभाती।

इसी भाव को व्यक्त करती हुई कवयित्री श्रुति सिन्हा कहती हैं –

मैंने इतना अवश्य देखा
कि सारी वासन्ती लालिमा नष्ट हो गई
हरियाली मुरझा गई
वातावरण में एक
चींखता शोर गूँज उठा
सर्वत्र प्रदूषण की
विषाक्त घुटन छा गई
और शांति, सौंदर्य
तथा अनुराग की
वह सुकोमल दिव्य आभा
जो भी–अभी सुशोभित थी
सहसा न जाने कहाँ खो गई।[4]

हमारे देश की संस्कृति को अरण्य संस्कृति के नाम से पुकारा जाता था। पर्यावरण के छेड़छाड़ से पर्यावरण का संतुलन बिगड़ रहा हैं। इसके परिणाम स्वरूप प्राकृतिक विपदाएं घटित हो रही हैं– कवयित्री वाचक्नवी ने इस पीड़ा को यों उकेरा है। मेरे ह्रदय की कोमलता को। अपने क्रूर हाथों से। बेध कर। ऊँची अट्‌ालिकाओं का निर्माण किया। उखाड़ कर प्राणवाही पेड़ पौधे। बो दिये धुंआ उगलते कर कारखाने। उत्पादन के समान सज़ाये। मेरे पोर पोर को बींध कर स्तंभ गाड़े।

विधुत्वाही तारों के। जलवाही धाराओं को बांध दिया। तुम्हारी कुदालों खुरदियों फावड़ो। मशीनों, आरियों बुलडोजरों से कँपती थरथराती रही मैं। तुम्हारे घरों की नींव। मेरी बाँहों पर थी। अपने घर के मान में। सरोसामान में। भूल गये तुम........। मैं थोड़ा हिली। तो लो भरभरा कर गिर गये तुम्हारे घर। फटा तो ह्रदय मेरा ही। 5 भूकंप। कविता वाक्चक्नवी, बढ़ते औद्योगीकरण के कारण मनुष्य के लिये खतरे बढ़ रहे हैं। पृथ्वी का तापमान लगातार बढ़ रहा है, प्रेमशंकर मिश्र कहते हैं–

ताप के ताए दिन हैं। तोल तोल मुख खोलो मैना। बड़े कठिन पल छिन हैं। ताप के ताए दिन हैं। आँगन की गौरेया। चुप है। चुप है। पिंजरे की ललमुनिया। हर घर के चौबारे। चुप हैं। चुप हैं। जन अलाव की दुनिया। दुर्बल साँसों की धड़कन। बदले सूरज के दुर्दिन हैं, बड़े कठिन पल छिन हैं। [6]

घटते हुए बन, बढ़ती हुई जन संख्या, औद्योगीकरण नगरीकरण, आधुनिकीकरण की विभीषिका के कारण प्रदूषण निरन्तर बढ़ रहा है– जल, वायु, धरती सब प्रदूषित हो रहे हैं– बलदेव वंशी की कविता इसी ओर इशारा करती हैं–

– बहुत सी चीजें थीं वहाँ/मिट्टी के ढेर के नीचे दबी। वर्षो से समय की परतों को। हटाने पर देखा। महानगरीय कचरें में पंच महाभूतों के ऐसे ऐसे सम्मिश्रण। नये सभ्य उत्पाद, रासायनिक । और पॉलिथिन। धरती पचा नहीं पाई। इस बार। .....इतने वर्षों बाद भी। असमंजस, असमर्थ अपमान, में अपना धरती होने का धर्म। निभा नहीं पायी। मनुष्य जीवन के आधुनिक। आयामों के सामने।[7]

पर यहाँ कवि को पृथ्वी के धर्म पर विश्वास भी है कि फिर जीवन अपने पुरातन गौरव की ओर लौटेगा।

सूखी धरती के वक्षस्थल से भी हरी कोमल कोपले फूटती हैं। यही विश्वास हमें करना होगा पर साथ इस प्रकृति के गुण के अतिरिक्त उसके प्रति अपने कर्त्तव्य को भी हमें नहीं भुलाना होगा। मानव को पर्यावरण बचाए रखने में अपना कर्त्तव्य पूर्ण रूप से निभाना होगा।

संदर्भ सूची

1. जय शंकर प्रसाद, कामायनी, पृ0सं0–89
2. जय शंकर प्रसाद, कामायनी, पृ0सं0–90
3. सुमित्रानंदन पंत, परिवर्तन, (कविता)
4. श्रुति सिन्हा, स्मृतियों की गाछ, वासन्ती हवा (कविता), पृ0सं0–69
5. वाचक्नवी, भूकम्प (कविता), पृ0सं0–119
6. प्रेमशंकर मिश्र, ताप के ताए दिन हैं, पृ0सं0–7
7. बल्देववंशी, कूड़ा, कचरा और कॉंपले, पृ0सं0–147

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

21

सामाजिक परिस्थितिकी, पर्यावरण संरक्षण और हम

डॉ0 उत्तरा यादव
एसोसिएट प्रोफेसर–समाजशास्त्र विभाग
महिला पी0 जी0 कालेज, अमीनाबाद,लखनऊ

''पृथ्वी हर व्यक्ति की आवश्यकता की संतुष्टि के लिए पर्याप्त है, न कि हर व्यक्ति के लोभ को पूरा करने के लिए''

–महात्मा गाँधीजी

पर्यावरण (Environment) : पर्यावरण दो शब्दो से मिलकर बना है–'परि' यानी चारो तरफ तथा 'आवरण' यानी घेरा अर्थात प्रकृति में जो भी हमारे चारो ओर दिखाई देता है जैसे – वायु, जल, मृदा, पेड़–पौधे, पशु, प्राणी आदि– सभी पर्यावरण के अंग है और इन्ही से पर्यावरण की रचना होती है।

आज हम जितनी ही तीव्रगति से विकास की ओर बढ़ रहे है, उतनी ही तेज गति से विकास अवरोध हमारी तरफ बढ़ रहे है। मानवता के सामने यह एक बहुत बड़ा यक्ष प्रश्न है? समय रहते इसका सही समाधान कर लेना आवश्यक है। अन्यथा समाधान हमारे हाथ से निकल जाने पर सिर्फ विनाश ही अवशेष रहेगा।

आदि मानव अपने भोजन के लिए शिकार और तन ढंकने के लिए पत्तों का प्रयोग करता था। आज के प्रगतिशील युग में मानव ने अपने आकांक्षाओं की पूर्ति हेतु प्रकृति के साथ जो छेड़–छाड़ कर रहा है, उससे पर्यावरण दूषित हो रहा है।

बढ़ती जनसंख्या, उदारीकरण, निजीकरण एवं औद्योगीकरण के कारण परिस्थितिकी व्यवस्था में असन्तुलन पैदा हो रहा है, और यह किसी एक समाज राष्ट्र तक ही सीमित नहीं है बल्कि यह अन्तरद्वीपीय पर्यावरण सन्तुलन खराब कर रहा है। यदि भविष्य में मानव अपनी भौतिक अभिरूचि को कम नहीं किया तो प्रकृति द्वारा निर्मित पर्यावरण नष्ट हो जायेगा। ''मैन मेड ईको सिस्टम'' में मानव स्वयं अपने अस्तित्व को खतरे में डाल रहा है। जब जल, आकाश, पृथ्वी, वायु, ध्वनि आदि के प्रदूषण से एक दिन ऐसी स्थिति पैदा हो जायेगी कि मानव को स्वयं अपने कृत्यों से घुटकर समाप्त हो जाने की सम्भावनाएं दिखाई देने लगेंगी और अभी हाल ही में हम उत्तराखण्ड केदारनाथ की घटना से सीख ले सकते है जो 16 जून 2013 को घटित हुआ।

अतः परिस्थितिकी तंत्र एवं मानव समाज जो एक दूसरे पर निर्भर है, को बनाये रखना होगा और प्रकृति का दोहन न करने तथा इसके संरक्षण एवं सम्बर्द्धन हेतु विश्वव्यापी अभियान चलाने की आवश्यकता है, जिससे प्रकृति और सभी जीवधारी अपना कार्य परस्पर संतुलित रूप से करते रहे। मानव विकास के नाम पर प्रकृति पर नियन्त्रण की अज्ञानता को छोड़कर अपने आप को प्रकृति का अभिन्न अंग समझने का प्रयास करे, जिससे परिस्थितिकी तंत्र एवं समाज के बीच निरन्तर संतुलन बना रहे।

कोई भी जीवधारी एकल जीवन व्यतीत नहीं कर सकता। किसी भी स्थान पर निवास करने वाले जीव को दूसरे जीव के साथ सहवासिता अनिवार्य है। प्रत्येक जीव को उसका भौतिक पर्यावरण प्रभावित करता है। प्रत्येक प्राणी भोजन के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से पेड़–पौधों पर निर्भर है– जैसे–शेर का भोजन मांस है, वह प्रत्यक्ष रुप से पेड़–पौधों पर निर्भर नहीं है, लेकिन शेर का भोजन हिरण है और उसका भोजन पेड़–पौधे है, अर्थात अप्रत्यक्ष रुप से शेर वनस्पति पर ही निर्भर है। प्रकृति अपना कार्य संतुलित ढंग से तभी कर पाती है, जब भौतिक तथा जैविक दोनों अंश विद्यमान हो। जब दोनों में से कोई एक तंत्र असफल होता है, तो इससे पर्यावरण कुप्रभावित होता है।

पर्यावरण जीवों की अनुक्रिया को प्रभावित करने वाली समस्त भौतिक तथा जैवीय परिस्थितियों का योग है।

परिस्थितिकी–तंत्र

परिस्थितिकी तंत्र का प्रयोग सर्वप्रथम –ए.जी. टास्ले ने सन् 1933 में किया था। किसी भी समुदाय में अनेक जातियों के प्राणी रहते है और सभी जीव एक दूसरे को प्रभावित करते है और साथ ही अपने आस–पास के वातावरण को भी प्रभावित करते है। इस प्रकार ''संरचना'' एवं कार्य की दृष्टि से ''समाज'' एवं ''वातावरण'' एक तंत्र के रुप में अपना कार्य करते है। इसे ''परिस्थितिकी–तंत्र'' या ''ईको –सिस्टम'' कहते है।

जब से मनुष्य ने प्रकृति का अधिक दोहन करना शुरु कर दिया, तभी से परिस्थितिकी सन्तुलन बिगड़ना प्रारम्भ होने लगा। अब आवश्यकता इस बात की है कि परिस्थितिकी संतुलन को बनाये रखने के लिए ''विकास'' और ''प्रकृति'' के बीच संतुलन स्थापित करते हुए कार्य किया जाए। (परिस्थितिकी–प्रणाली को सरल भाषा में प्रकृति भी कहते है।) परिस्थितिकी तंत्र में समुदाय आपस में तथा अपने भौतिक वातावरण से ऊर्जा आदि का आदान–प्रदान करते है। आदान–प्रदान के अभाव में पृथ्वी पर जीवन और वनस्पति दोनों का बने रहना असम्भव है।

परिस्थितिकी तंत्र में जीव अपने आस–पास के पदार्थो को ग्रहण करके अपने शरीर की वृद्धि करते है और कार्बनिक पदार्थो का निर्माण करते है। ये कार्बनिक पदार्थ पुनः खण्डित होकर अकार्बनिक पदार्थो में बदल जाते है। इस प्रकार प्रकृति में यह क्रम निरन्तर चलता रहता है।

परिस्थितिकी–तंत्र और मानव

वर्तमान में मानव ने संसार के समस्त परिस्थितिकी –तन्त्रों और प्राकृतिक संतुलन को विज्ञान के चमत्कारों से प्रभावित किया है। आदिम समय में मानव का परिस्थितिकी–तंत्र में वही स्थान था, जो किसी अन्य जीव–जन्तु एवं पौधे का अपने परिस्थितिकी तंत्र में है। परन्तु मनुष्य आधुनिक समय में अपने को आत्मनिर्भर एवं प्रकृति पर नियंत्रण बनाने के लिए वातावरण को अपने अनुकूल बनाने में लगा हुआ है।

मानव ने भूमंडल के अधिकांश क्षेत्रों में प्राकृतिक संसाधनों को नष्ट कर अपने अनुसार दूसरे पौधों को लगाया। मानव ने शुष्क प्रदेशों में जल पहुँचाकर उसे कृषि योग्य बनाया। पृथ्वी पर जैवीय कारकों में सर्वाधिक प्रभावी कारक मानव है, जिससे सभ्यता के शुरु होने के साथ ही प्रकृति को प्रभावित करना प्रारम्भ कर दिया। प्रारम्भिक अवस्था में मानव, अकेले जंगली जानवरों की तरह रहता था। धीरे–धीरे उसका विकास होने लगा उसने परिवार एवं समुदाय में रहना सीख लिया। आज से लगभग 10,000 वर्ष पूर्व मानव नगर बसाकर रहने लगा था और पहले की अपेक्षा सभ्य भी हो गया था। बढ़ती जनसंख्या के कारण मानव ने अपने आवास एवं भोजन की सुगमता के लिए वृक्षों की कटाई शुरु कर दी, इससे वन क्षेत्र नष्ट होने लगे। मानव निरन्तर अपने विकास को गति प्रदान करने लगा और उसने बिना सोचे समझे हानिकारक कीटनाशकों, रसायनों, एवं रेडियोधर्मी पदार्थो का उपयोग किया, इससे प्राकृतिक सतुंलन बिगड़ना प्रारम्भ हो गया। अब इस प्रदूषित वातावरण में स्वयं मानव के लिए खतरा उत्पन्न हो गया है। मानव के द्वारा औद्योगिक विकास एवं शहरीकरण के प्रयासों के परिणाम स्वरूप वनस्पति क्षेत्रों में निरन्तर कमी आयी है। उद्योगों से प्राकृतिक जल स्रोतों में प्रदूषण बढ़ा है मशीनों और भौतिक संसाधनों के प्रयोग से वायु प्रदूषण और शोर प्रदूषण बढ़ा है।

इन्हीं सब समस्याओं को देखकर और परिस्थितिकी तंत्र के संतुलन में अपनी भूमिका का अनुभव करते हुए मनुष्य ने पिछले कुछ वर्षों से कदम उठाने प्रारम्भ कर दिये है। वनों के संरक्षण के लिए वन महोत्सव, सामाजिक वानिकी तथा मृदा एवं जल संरक्षण जैसे कदम उठाने लगे है।

संयुक्त राष्ट्र के अंतर्राष्ट्रीय संस्थान–जैविक कार्यक्रमों तथा शिक्षा विज्ञान एवं संस्कृति के संगठन ''यूनेस्को'' के मानव तथा जैव–मंडल कार्यक्रम जैसे अंतर्राष्ट्रीय कार्यक्रमों में परिस्थितिकी संबंधी समस्याओं पर शोध एवं अध्ययन

कार्य शुरु किये गये है।

पर्यावरण एवं पर्यावरण सम्बन्धी शब्दावली (Environment & Related Glossory)

1. पर्यावरण (Environment) : पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, सन् 1986 ई. के अनुसार 'पर्यावरण' के अन्तर्गत हवा, भूमि तथा जल, भूमि और हवा तथा मानवीय प्रणाली, अन्य जीवित प्रणाली, पौधें, सूक्ष्म जीवाणु तथा सम्पत्ति और उनके बीच विद्यमान अन्तर्सम्बन्ध सम्मिलित है।

2. मौसम (Weather) : एक विशेष स्थान और समय पर वातावरण की स्थिति यथा तापमान, वायु–दबाव, वर्षा, धूप इत्यादि (गर्म, ठंडा, आर्द्र, सुहावना, तेज हवाओं से भरपूर)।

3. वातावरण (Atmosphere) : ऐसी गैसों का मिश्रण, जो पृथ्वी को घेरे हुए हैं।

4. जलवायु (Climate) : किसी स्थान के मौसम का एक नियमित चक्र।

5. जलवायु विज्ञान (Climatology) : जलवायु का वैज्ञानिक अध्ययन।

6. ऑक्सीजन (Oxygen) : ऑक्सीजन एक रंगहीन गैस है, जो कि हवा और पानी में विद्यमान है। ऑक्सीजन मानव, जीव–जन्तुओं और पेड़–पौधों को जिन्दा रहने के लिए आवश्यक है।

7. ओजोन (Ozone) : यह एक जहरीली और तेज गंध वाली गैस है और ऑक्सीजन की ही एक प्रकार है।

8. कार्बन डाई ऑक्साइड (Carbon dioxide) : श्वसन प्रक्रिया के दौरान मनुष्य और जानवरों द्वारा फेफड़ों से छोड़ी जाने वाली यह गैस है तथा यह कार्बन को जलाने से उत्पन्न होती है।

9. कार्बन (Carbon) : यह एक रासायनिक तत्व है, जो कि सभी जीवधारियों में पाया जाता है। अपने शुद्ध रूप में यह हीरे, ग्रेफाइट और विचुमिन के रूप में पाया जाता है।

10. कार्बन साइकल (Carbon Cycle) : वह प्रक्रिया, जिसके द्वारा वातावरण में कार्बन एक रूप से दूसरे रूप से परिवर्तित होता है। यथा– पेड़–पौधे या जब लकड़ी या तेल को जलाया जाता है।

11. प्रकाश संश्लेषण (Photosyntesis) : वह प्रक्रिया जिसके द्वारा पौधे कार्बन डाई ऑक्साइड और पानी को सूर्य के प्रकाश की ऊर्जा से भोजन के रूप में परिवर्तित करते है।

12. ग्रीन हाउस (Green House) : पौधे उगाने हेतु एक ऐसी इमारत, जिसकी दीवारें और छत शीशे की होती है।

13. ग्रीन हाउस प्रभाव (Green House Effect) : पृथ्वी के वातावरण में शनैः शनैः वृद्धि, जिसका मुख्य कारण कार्बन डाई आक्साइड व अन्य गैसों द्वारा सूर्य की गर्मी को ट्रैप करना है।

14. भूमण्डलीय तापवृद्धि (Global warming) : पृथ्वी के वातावरण में तापमान की वृद्धि, जिसका मुख्य कारण कार्बन–डाई ऑक्साइड गैस एवं अन्य गैसों की वातावरण में वृद्धि होना है।

15. प्रदूषण (Pollution) : जब कुछ अनचाही गैसे जैसे– CO_2, CO_4, CFCSD और कुछ अवांछित पदार्थ वातावरण में चले जाते हैं। इसके कारण मनुष्य के स्वास्थ्य एवं पेड़–पौधों की वृद्धि पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। पिछले सौ वर्षों में उद्योगों में असीम वृद्धि और साथ ही जनसंख्या में वृद्धि के कारण प्रदूषण में बेतहाशा वृद्धि हुई है।

16. उत्सर्जन (Excretion) : गैसों का वायुमण्डल में निकलना उत्सर्जन कहलाता है। साढ़े छह लाख साल के दौरान वायुमण्डल में कार्बन का स्तर अभी सर्वाधिक है। औद्योगिक क्रान्ति के बाद से वायुमण्डल में कार्बन डाई ऑक्साइड की मात्रा में 40 प्रतिशत वृद्धि हुई है। इसका मुख्य कारण है आधुनिक जीवनशैली। आज भी हम भारी मात्रा में जीवाश्म ईंधनों और लकड़ी इत्यादि को जलाकर कार्बन डाई ऑक्साइड का उत्सर्जन करते हैं, जबकि जंगलों के लगातार कटान के कारण कार्बन डाई ऑक्साइड का अवशोषण कम हो गया है।

17. जलवायु परिवर्तन (Climate Change) : प्राकृतिक कारणों से जलवायु में हमेशा परिवर्तन होता है। उदाहरण के लिए 6.5 करोड़ वर्ष पहले धरती बहुत गर्म थी और इस पर डायनासोर विचरण करते थे। 10–11 हजार साल पहले हिम युग आया था। पूरी धरती बर्फ के गोले मे बदल गयी थी। लेकिन आज जलवायु में परिवर्तन मानवीय गतिविधियों के कारण हो रहा है। तापक्रम, बारिश, बर्फबारी के आंकड़ों के तुलनात्मक अध्ययन से इसे प्रमाणित किया जा चुका है।

18. पारिस्थितिकी (Ecology) : प्राणियों के साथ पर्यावरण के अध्ययन के शास्त्र को पारिस्थितिकी कहते हैं। जिससे परिवेश तथा वातावरण के साथ प्राणियों के सम्बन्ध का ज्ञान होता है।

19. ग्रीन तकनीकी (Green Technology) : ग्रीन तकनीकी से तात्पर्य तकनीक के ऐसे इस्तेमाल से है जिसमें वह प्रकृति को नुकसान पहुँचाने की बजाय उसके सहयोगी की भूमिका अदा करे। अम्ल वर्षा– प्रदूषण में बढ़ोत्तरी के कारण वायुमण्डल कई गैसें जैसे सल्फर डाई आक्साइड, नाइट्रोजन आक्साइड पानी से क्रिया करके अम्ल बनाती है जो वर्षा के साथ पृथ्वी पर अम्ल वर्षा के रूप में आती है।

20. आवास (Habital) : भूमि जल अथवा ऐसे स्थल जहाँ प्राणी व वनस्पति किसी न किसी रूप में बसे हैं, उनके आवास कहलाते हैं। पृथ्वी का प्रत्येक भाग विविध प्रकार के जीवों का आवास गृह है।

21. सुनामी (Sunami) : यह एक जापानी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है तट या हार्बर समुद्र के बीच जब अचानक बड़ी हलचल होने लगती है तो उसमें उफान उठने लगता है। इससे लम्बी और बेहद ऊँची लहरें तूफानी गति से आगे बढ़ती हुई समुद्र तटों पर तबाही का मंजर उपस्थित कर देती हैं। (जापान की सुनामी लहरें 480 मील प्रति घंटे की रफ्तार से किनारों से टकराई थीं तथी उनकी ऊंचाई 33 फीट के लगभग थी) सामान्य लहरों की तरह सुनामी चाँद, सूरज और ग्रहों के गुरुत्त्वाकर्षण के कारण नहीं आती बल्कि भूकम्प की वजह से, या जमीन धँसने, ज्वालामुखी फटने या आकाश से उल्कापात हाने की वजह से सुनामी आती है। इन्हें तटीय तरंगें (Harbour waves) भी कहा जाता है।

22. सतत् विकास (Sustainable Developement) : सतत् विकास वह विकास है जिससे भावी पीढ़ी की आवश्यकता की क्षमता पर बिना समझौता किये वर्तमान जरूरतों कोपूरा किया जा सके।

23. एल नीनों व लॉ नीनो (AL-NINO & LA-NINO) : प्रशांत महासागर में 3 से 7 साल के अंतराल में दक्षिण अमेरिका के निकट खासकर पेरू वाले क्षेत्र में यदि विषुवत रेखा के इर्द–गिर्द अचानक गरमी होनी शुरू हो जाए तो अल नीनो सिस्टम बनता है। कभी–कभी यहाँ पर इसके ठीक उल्टी भी घटना होती है जिससे समुद्र की सतह ठंडी होने लगती है जिसे लॉ नीनो कहा जाता है, इसका असर मानसून पर पड़ता है।

24. पृथ्वी का वातावरण (Atmosphere) : पृथ्वी के चारों ओर सैकड़ों कि.मी. की मोटाई में लपेटने वाले गैसीय आवरण को वातावरण कहते हैं। वायुमण्डल गर्मी को रोककर रखने में एक विशाल 'कांच घर' (Green House) का काम करता है, जो लघु तरंगों और विकिरण को पृथ्वी के धरातल पर आने देता है, परन्तु पृथ्वी से विकिरित होने वाली तरंगों को बाहर जाने से रोकता है। इस प्रकार वायुमण्डल पृथ्वी पर सम–तापमान बनाये रखता है। सामान्यतया वायुमण्डल को नीचे से ऊपर की ओर पाँच मण्डलों या स्तरों में विभाजित किया जाता है–

1. क्षोभमण्डल (Troposhere)
2. समतापमण्डल (Stratoshere)
3. मध्यमण्डल (Mesosphere)
4. तापमण्डल (Thermosphere)
5. बह्यमण्डल (Exosphere)

हमारी पृथ्वी ओर इसकी संरचना आइये इसकी रक्षा करें.....

25. जैव विविधता (Bio-Diversity) : जैव विविधता प्रकृति की अमूल्य निधि है। जैव विविधता से आशय पृथ्वी पर पाए जाने वाले समस्त जंतुओं, पेड़–पौधों, फफूंदों और सूक्ष्म जीवों की जातियों, प्रजातियों और किस्मों से है। इस शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम डब्ल्यू.जी. रासन ने 1986 में किया था। तब से आज तक यह शब्द काफी महत्त्वपूर्ण और प्रसिद्ध हो चुका है।

अनुमान है कि पृथ्वी पर पेड़–पौधों एवं जंतुओं की लगभग 50 लाख से 10 करोड़ तक किस्में हैं। अब तक खोजे गए 50 लाख जीव–जंतुओं में से केवल 20 लाख ही ठीक से पहचाने गए हैं। इसके लिए विशिष्ट वैज्ञानिकों की जरूरत होती है, जो वर्गीकरणवेत्ता कहे जाते हैं। खेद का विषय है कि आनुवंशिकी अभियांत्रिकी और जैव टेक्नोलॉजी जैसे अत्याधुनिक भारी–भरकम विषयों के चलते इन वैज्ञानिकों की जमात भी कम होती जा रही है। वर्तमान में जीव–जन्तु तो बड़ी तेजी से विलुप्त हो रहे हैं लेकिन इन्हें खोजने व पहचानने वाले वैज्ञानिक भी लुप्तप्राय की श्रेणी में आ चुके हैं।

कोई नहीं जानता कि पिछले तीन–चार सौ वर्षो में कितने जीव–जन्तु विलुप्त हो गए हैं। अनुमान है कि यह संख्या हजारों में है। आज स्थिति यह है कि अकेले पौधों की लगभग बीस हजार प्रजातियां विभिन्न कारणों से अपने अस्तित्व के संकट से जूझ रही हैं।

पृथ्वी पर विभिन्न प्रजातियों की अनुमानित संख्या में रीढ़ की हड्डी वाले जंतुओं की संख्या में तेईस हजार मछलियां, 8600 विभिन्न प्रकार के पक्षी, 7700 रेंगने वाले व 4200 स्तनधारी हैं। इसी तरह हमारे देश में लगभग पैंतालीस हजार विभिन्न प्रकार की वनस्पतियाँ पायी जाती हैं। इनमें से तीन हजार संकटग्रस्त घोषित की जा चुकी हैं। देश में खोजे गए पंद्रह हजार फूलधारी पौधों में से पाँच हजार से अधिक तो केवल केरल और पश्चिमी घाट में ही मिलते है। इनमें से 235 प्रजातियां इस क्षेत्र के अलावा कही और नहीं मिलती है।

जैव विविधता की दृष्टि से शीतोष्ण और गर्म, वर्षा वन सर्वाधिक सम्पन्न माने जाते हैं। दुर्भाग्य से ये ही वे इलाके हैं जहाँ वनों का विनाश सबसे ज्यादा हुआ है। मोटे तौर पर एक पौधे के साथ 19 जंतु जातियों का अस्तित्व जुड़ा होता है। जब एक पौधे के अस्तित्व पर खतरा मंडराता है तो उसके साथ कई जंतुओं के नष्ट होने का भय पैदा हो जाता है। यह भी एक तथ्य है कि पौधों के विलुप्तीकरण की दर उच्च श्रेणी के जंतुओं से ज्यादा है और यही बात हमारी चिंता का विषय है, क्योंकि पृथ्वी पर अन्य सभी जीव प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से पौधों पर आश्रित हैं।

वैसो तो विलुप्तीकरण के कई कारण हैं। प्राकृतिक कारणों से भी अतीत में जीवों का विलुप्तीकरण होता रहा है। जीवाश्मीय रिकार्ड से पता चलता है कि पूर्व में यह दर प्रति वर्ष लगभग चार थी और वर्तमान में मानवीय हस्तक्षेप के चलते यह लगभग प्रतिदिन एक प्रजाति है। कुछ वैज्ञानिकों का तो मानना है कि जिस रफ्तार से दुनिया में वनों का विनाश हो रहा है, प्राकृतिक आवास नष्ट किए जा रहें हैं, इस हिसाब से विलुप्तीकरण की यह दर सौ प्रजातियाँ प्रतिदिन होनी चाहिए, जो प्राकृतिक दर से एक हजार गुना ज्यादा है।

विलुप्तीकरण का एक कारण कुछ जीव–जंतुओं का अत्यधिक खूबसूरत होना भी है। तितलियाँ और आर्किड ऐसे ही जीव हैं, जिन्हें अपनी सुंदरता की कीमत चुकानी पड़ी है। हालात ये हैं कि जंतुओं और पौधों की 1,35,000 की हमारी संपदा में से लगभग 90 प्रतिशत संकटग्रस्त हैं। इनमें से कुछ तो हाल ही में लुप्त हुई हैं। जैसे चीता हमारे देखते–देखते गायब हो गया है, जिसके लिए हम किसी और को दोषी नहीं ठहरा सकते।

जीवों का संरक्षण केवल हमारे लाभ के लिए ही किया जाना चाहिए, ऐसा नहीं है। प्रकृति में जीवों के बीच ऐसे आश्चर्यजनक आपसी सम्बन्ध हैं कि लगता है, जैसे वह एक–दूजे के लिए ही बने हों। एक के बिना दूसरे का जीवन संकट में पड़ जाता है। एक जमाने में हवाई द्वीप में हाउकुवा हीवी के फूलदार पेड़ बहुयात से मिलते थें। इन्हें 1992 से ही लुप घोषित किया जा चुका है। ऐसा क्यों हुआ?जांच करने पर पता चला कि हनीफीशर नाम

के पक्षी इसकी ठीक उसी तरह सेवा करते थे, जैसे, मधुमक्खियां व तितलियाँ अन्य पुष्पीय पौधों की करती हैं यानी परागण से सहायता। बदले ही हनीफिशर को मधु मिलता था। दोनों जीवों का जीवन आराम से चलता रहा, परन्तु यूरोपीय लोगों के यहाँ आते ही स्थितियां बदली और पेड़ पक्षी के इस जोड़े का दुर्भाग्य शुरू हो गया। अतिदोहन के कारण इस सुंदर पक्षी की बत्तीस प्रजातियों में से सोलह पूर्णतः तुप्त हो गयीं, शेष सोलह संकटग्रस्त हैं। पक्षी के लुप्त होने से पेड़ों का परागण प्रभावित हुआ है। फलस्वरूप हाउकुवा हीवी की पाँच प्रजातियों में से दो लुप्त हो गयी है। शेष तीन गंभीर रूप से संकटग्रस्त हैं। जाहिर है, इन दोनों पर आए संकट के लिए मानव ही जिम्मेदार है।

दूसरा उदाहरण भी मानवीय कारगुजारी का शर्मनाक नमूना है। ये रिश्ता था डोडों पक्षी और डोडो पेड़ का। 'था' इसलिए कि मॉरीशस में पाए जाने वाले इस पेड़ के नए पौधे नहीं उगते। वास्तविकता यह है कि सन् 1680 में डोडो पक्षी के पूर्णतः लुप्त हो जाने के बाद से डोडो का एक भी नया पेड़ नहीं उगा। अत्यधिक शिकार के कारण पृथ्वी से डोडो का वंश ही समाप्त हो गया और फिर कहावत बनी 'डेड एज डोडो'। दोनों मॉरीशस के स्थानीय जीव थे, जो दुनिया के किसी अन्य भाग में नहीं मिलते। वर्तमान में डोडों पक्षी इस पेड़ के बीजों के अंकुरण में मददगार था। न रहा डोडो पक्षी, न उगे नये डोडो पेड़।

ये दोनो उदाहरण इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं कि प्रकृति में जीवों के बीज के आपसी रिश्ते बड़े विलक्षण और नाजुक हैं। एक के साथ खिलवाड़ दूसरे के जीवन के लिए खतरा बन सकता है। अतः जीवों का संरक्षण जरूरी है।

26. कार्बन फुटप्रिंट (Carbon Foot Print) : कार्बन फुटप्रिंट का मतलब किसी एक संस्था, व्यक्ति या उत्पाद द्वारा किया जाने वाल कुल कार्बन उत्सर्जन होता है। दूसरे शब्दों में इसका मतलब कार्बन डाई–आक्साइड या ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन भी होता हे। कार्बन फुटप्रिंट का नाम इकोलॉजिकल फुटप्रिंट विमर्श से निकला है। यह इकोलॉजिकल फुटप्रिंट का ही एक अंश हैं उससे अधिक यह जीवनचक्र आकलन (एलसीए) का हिस्सा है। किसी व्यक्ति, संस्था या वस्तु के कार्बन फुटप्रिंट का सबसे बड़ा कारण इंसान की इच्छा ही होती है। इसके साथ घर में इस्तेमाल होने वाली बिजली की जरूरत भी इसका बड़ा कारण है। वैज्ञानिकों के अनुसार इंसान की करीब सभी आदतें, जिनमें खान–पान से लेकर पहने जाने वाले कपड़े तक शामिल हैं, कार्बन फुटप्रिंट का कारण बनते हैं।

दूसरे शब्दों में हर काम के लिए ऊर्जा की जरूरत पड़ती है और इससे कार्बन–डाई–आक्साइड (सीओ2) गैस निकलती है, जो धरती को गर्म करने वाली सबसे अहम गैसे है। हम दिन, महीने या साल में जितनी सीओ2 पैदा करते हैं, वह हमारा कार्बन फुटप्रिंट है। इसे कम से कम रख कर ही पृथ्वी को जलवायु परिवर्तन के प्रकोप से बचाया जा सकता है।

ग्रीनहाउस गैसों में कमी लाने के कई तरीके हैं। सौ, पवन ऊर्जा के अधिक इस्तेमाल और पौधारोपण आदि से कार्बन उत्सर्जन में कमी लायी जा सकती है। कार्बन उत्सर्जन और अन्य ग्रीनहाउस गैसों का वातावरण में निकास जीवाश्म ईंधन, कच्चे तेल और कोयले के जलने से होता है। क्योटो प्रोटोकाल में कार्बन उत्सर्जन और ग्रीनहाउस गैंसो पर मसौदा पेश किया गया।

27. ई–प्रदूषण (E-Pollution) – पिछले कुछ दशकों में बिजली के उपकरणों के विकास ने जिंदगी को आसान और सुखद बना दिया है। ज्ञान की दुनिया के साथ ही मनोरंजन की दुनिया भी बदली है। रसोईघर भी अब पहले से ज्यादा आधुनिक हुए हैं। कपड़ों की धुलाई से लेकर घर को ठंडा रखने तक के नये इंतजाम हुए हैं और इन सबके पीछे है विद्युत और विद्युतीय उपकरण। लेकिन विज्ञान का यह वरदान अभिशाप भी बन सकता है, यह एहसास मनुश्य को अब होने लगा है। यह अभिशाप ई कचरे की शक्ल में आ रहा है।

विद्युतीकरण उपकरणों का इस्तेमाल पूरी दुनिया के साथ भारत में भी तेजी से बढ़ा है साथ ही इसकी दुनिया बहुत तेजी से बदल रही है। इस वजह से नये उपकरण जल्दी ही पुराने पड़ जाते है। तथा कई उपकरण खराब हो जाते हैं। इन सबका नतीजा है ई वेस्ट, यानी इलेक्ट्रॉनिक कचरा। इससे न सिर्फ हमारा पर्यावरण खतरे में है बल्कि लोगों के स्वास्थ्य के लिए भी गंभीर खतरा पैदा हो गया है। इस समय दुनिया में पैदा होने वाले कुल कचरे के बराबर ही है। ई कचरे में लगभ 1000 ऐसे पदार्थ होते हैं जो जहरीले होते हैं और जिनका निबटान अगर सही तरीक से न किया गया तो पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य को खतरा हो सकता है। इसे आधुनिकता का अभिशाप मानिए या नये उत्पाद लाने और बेचने की बाजार की जरूरत, यह एक ऐसी बुराई है जिससे बचने की कोशिश तो की जा सकती है, लेकिन इसकी अनदेखी अब मुमकिन नहीं। इसलिए अब जरूरी हो गया है कि ई कचरे से बचने और उसके सुरक्षित निबटान के तरीके ढूंढे जाएं और इसके लिए कायदे कानूनों पर सख्ती से अमल किया जाए।

सूचना क्रांति ने देश में ई–कचरें की समस्या को और गंभीर बना दिया है। इससे यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि भारत मे सूचना क्रांति के विस्फोट के साथ कितनी बड़ी संख्या में हार्डवेयर घरों और दफ्तरों में आ रहा है बिक्री बढ़ने के साथ ही पुराने पड़ गए कंप्यूटर कचरे में तब्दील होते जा रहे है और ऐसा सिर्फ कंप्यूटर के साथ ही नहीं है, लगभग सभी बिजली के उपकरणों के साथ ऐसा ही हो रहा है।

इलेक्ट्रॉनिक कचरे से अभिप्राय उन तमाम पुराने पड़ चुक बेकार बिजली के उपकरणों से है, जिन्हें उपयोग करने वालों ने फेंक दिया है। इनमें कंप्यूटर, टीवी, डीवीडी प्लेयर, मोबाइल फोन, एमपी–थ्री प्लेयर और तमाम दूसरे विद्युत उपकरण शामिल हैं। हालाँकि इलेक्ट्रॉनिक कचरे की कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं है लेकिन आमतौर पर इसका मतलब उन तमाम डाटा प्रोसेसिंग, दूरसंचार और मनोरंजन के विद्युतीय उपकरणों से है जिनका इस्तेमाल घर या दफ्तर में होता है।

❑❑

जलवायु परिवर्तन और भारतीय प्रयास

रमन प्रकाश
असि0 प्रोफेसर–भूगोल विभाग
भारतीय महाविद्यालय, फर्रूखाबाद

जलवायु परिवर्तन संकट हमारे समय की सबसे बड़ी वैश्विक चुनौती है। जलवायु परिवर्तन संकट यदि सीमा को पार कर जाये तो इससे पार पाना दुर्गम है। यह केवल मौजूदा पीढी के लिए ही नहीं बल्कि संपूर्ण भावी मानवता के लिए खतरा है। जलवायु परिवर्तन का प्राथमिक कारण है– वायुमंडल में ग्रीनहाउस गैंसो का बढ़ना। ग्रीनहाउस गैंसो का बढ़ने का कारण जैव ईंधन का उपयोग, खेतों से मीथेन और नाइट्रस आक्साइड का उत्सर्जन है। जलवायु परिवर्तन के फलस्वरूप औसत तापमान में बृद्धि के कारण विकासशील देशों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है क्योंकि उनके पास न तो क्षमता है और न ही संसाधन,ताकि वे मानव अस्तित्व के इस खतरे की चुनौती से निपट सकें। वैज्ञानिकों अध्ययनों ने साबित किया है कि वैश्विक वायुमण्डलीय सांद्रता में कार्बन–डाइ–आक्साइड,मीथेन, नाइट्रस आक्साइड जैसी ग्रीनहाउस गैसों की मात्रा में 1750 ई0 के बाद मानवीय गतिविधियों के कारण स्पष्ट रूप से बृद्धि हुई है।

हमारा देश दुनिया की चौथी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है। इसके साथ ही साथ विश्व का पांचवां सबसे बड़ा ग्रीनहाउस गैंसों का उत्सर्जक देश भी है। वैश्विक उत्सर्जन में पाँच फीसदी हिस्सा भारत का है। भारत में ग्रीनहाउस गैंसों का घनत्व मौजूदा समय में वैश्विक औसत से 20 प्रतिशत कम है (अमेरिका से 15 फीसदी और चीन से 40 फीसदी कम है)। ग्रीनहाउस गैंसों के घनत्व में गिरावट की मुख्य वजह –ऊर्जा क्षमता में बृद्धि, नवीकरणीय और परमाणु बिजली के उपयोग का बढ़ना, सार्वजनिक परिवहन का विस्तार और उर्जा मूल्य सुधार है।

वैश्विक स्तर पर विभिन्न देशों द्वारा उत्सर्जित ग्रीनहाउस गैंसों की मात्रा

क्रम	देश	उत्सर्जित ग्रीन हाउस गैंसों की मात्रा (प्रतिशत में)
1.	चीन	24.1
2.	सं0 रा0 अमेरिका	14.9
3.	यूरोपियन यूनियन	10.3
4.	भारत	5.7
5.	रूसी फेडरेशन	5.4
6.	जापान	3.0
7.	ब्राजील	2.6
8.	इण्डोनेशिया	1.9
9.	कनाडा	1.6
10.	ईरान	1.6
11.	मैक्सिको	1.6
12.	शेष विश्व	27.2

सन् 1850 ई0 से भारत का ऊर्जा संबंधी उत्सर्जन महज दो फीसदी था। सन् 1990 से 2005 के बीच भारत के उत्सर्जन में 65 फीसदी की बृद्धि दर्ज की गयी। माना जा रहा है कि 2020 तक 70 फीसदी की बृद्धि और हो सकती है।

भारत में विभिन्न क्षेत्रवार कार्बन–डाइ–आक्साइड का उत्सर्जन

क्रम	क्षेत्र	कार्बन–डाइ–आक्साइड का उत्सर्जन (प्रतिशत में)
1.	बिजली	38
2.	कृषि	18
3.	यातायात	7
4.	आवासीय	7
5.	सीमेन्ट	7
6.	लौह–इस्पात	6
7.	अन्य उर्जा स्रोत	5
8.	अन्य उद्योग	9
9.	अपशिष्ट	3

जलवायु परिवर्तन पर भारत की राष्ट्रीय योजनाओं की कार्यवाहियों का जिक्र वैश्विक जलवायु परिवर्तन सम्मेलनों में किया जाता रहा है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि हमारी सरकार देश में जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों से निपटने के लिए उचित उपाय कर रही है। हमारा देश यूएनएफसीसी और क्योटो प्रोटोकाल दोंनों का पक्षकार रहा है। इसके साथ ही भारत स्वच्छ विकास प्रणाली में प्रोटोकाल के मुताबिक भारत एक सक्रिय भागीदार हैं। हमारे पास 345 से ज्यादा पंजीकृत स्वच्छ विकास प्रणाली परियोजनाएँ हैं, यह किसी भी देश से ज्यादा ओर पूरी दुनिया की कुल परियोजनाओं का लगभग एक तिहाई है।

जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क कन्वेंशन के तत्वाधान में पक्षकारों (विकसित एवं विकासशील देश) का सम्मेलन साल में एक बार होता है तथा सम्मेलन का परिणाम बहुमत के आधार पर नहीं बल्कि आम सहमति पर निर्भर करता है। यही कारण रहा है कि 1992 से 2014 के मध्य हुए कुल 20 सम्मेलनों में 1997 में हुआ क्योटो प्रोटोकाल आम सहमति के आधार पर हुआ, बाकी सम्मेलनों में आम सहमति नहीं बन पायी। भारत ने विकासशील देशों के मुददों के साथ अपना पक्ष वर्श 2009 में रखा। परन्तु भारत की स्थिति का आकलन नये मुददों के साथ कर सकते हैं–

1. आम लेकिन अलग– अलग जिम्मेदारी : यह सिद्धान्त यह कहता है कि विकसित देशों को जलवायु परिवर्तन प्रयासों के प्रति ज्यादा अंशदान करना चाहिए।

2. शमन बनाम अनुकूलन : शमन से तात्पर्य उन उपायों से है जो ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को कम करता है जबकि अनुकूलन से तात्पर्य गरीब देशों पर जलवायु परिवर्तन प्रभावों को कम करता है। भारत व दूसरे विकासशील देश शमन के बजाय अनुकूलन को ज्यादा प्राथमिकता देते हैं।

3. वित्तीय व्यवस्था : भारत एवं अन्य विकासशील देश मांग कर रहे हैं कि विकसित देश जलवायु परिवर्तन के उपायों को लागू करने के लिए अपनी ऐतिहासिक जिम्मेदारी के आधार पर उन्हें पर्याप्त संसाधन मुहैया करायें। विकसित देशों ने ग्लोबल ग्रीन फंड के लिए 100 बिलियन डालर के अंशदान की प्रतिबद्धता जताई है।

4. विकास और टेक्नोलॉजी का हस्तांतरण : यह मुददा सबसे महत्वपूर्ण है। जीवाश्म ऊर्जा आधारित

अर्थव्यावस्था को हरित अर्थव्यावस्था में बदलने के लिए तकनीकि नवाचार और विकास की जरूरत है।गरीब देश यह आशा कर रहे हैं कि विकसित देश टेक्नोलॉजी के हस्तांतरण में तत्परता बरतेंगे। भारत ने स्वच्छ टेक्नोलॉजी के हस्तांतरण के लिए एक उदार बौद्धिक संपदा अधिकार व्यवस्था का आग्रह किया है।

5. प्रति व्यक्ति बनाम निरपेक्ष कार्बन उत्सर्जन : भारत एवं विकासशील देश प्रति व्यक्ति कार्बन उत्सर्जन पर बल दे रहे हैं जबकि विकसित देश निरपेक्ष कार्बन उत्सर्जन को आधार मान रहे हैं।

6. लॉस एंड डैमेज सिद्धांत : इसका उददेश्य गरीब विकासशील देशों को विशेश सहायता प्रदान करना है।

जलवायु परिवर्तन वार्ताओं में भारत ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के साथ अन्य विकासशील देशों के हितों और चिंताओं को भी बेहतर ढंग से रखा है। भारत ने जलवायु परिवर्तन के खतरों से निपटनें के लिए अनेक स्वैच्छिक कदम उठाए है। इन उपायों में सबसे उल्लेखनीय है जून 2008 में जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय मिशन का कार्यान्वयन, जिसमें निम्न आठ मिशन शामिल किए गए हैं, जो निम्न हैं–

1. बिजली उत्पादन और जीवाश्म ईंधन के विकल्प के रूप में इस्तेमाल के लिए सौर ऊर्जा का विकास और उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए राष्ट्रीय सौर मिशन की शुरूआत।
2. 2012 तक उपयुक्त टेक्नोलॉजीऔर अन्य उपायों द्वारा 10000 मेगावाट बिजली बचाने के लिए ऊर्जा क्षमता बढ़ाने के लिए राष्ट्रीय मिशन।
3. शहरी विकास और योजना के मुख्य घटक के रूप में ऊर्जा क्षमता को बढ़ावा देने के लिए टिकाउ पर्यावास पर राष्ट्रीय मिशन।
4. मूल्य और अन्य उपायों द्वारा जल उपयोग क्षमता में 20 फीसदी सुधार के लिए राष्ट्रीय जल मिशन।
5. हिमालयी क्षेत्रों में पारिस्थितिकी तंत्र को बिगड़न से रोकने के टिकाउ हिमालयी पारिस्थितिकी तंत्र के लिए राष्ट्रीय मिशन।
6. भारत में वनाच्छादन के प्रोत्साहन हेतु ग्रीन इंडिया राष्ट्रीय मिशन की शुरूआत।
7. कृषि में जलवायु अनुकूलन को समर्थन को टिकाउ कृषि के लिए राष्ट्रीय मिशन।
8. जलवायु विज्ञान में शोध और विकास को बढावा देने के लिए जलवायु परिवर्तन के लिए रणनीतिक ज्ञान पर राष्ट्रीय मिशन।

इन चुनौतियों के सन्दर्भ में देखें तो भारत को इन वार्ताओं में ज्यादा सक्रिय, अनूठा और कल्पनाशील दृष्टिकोण अपनाना होगा, क्योंकि वैश्विक समुदाय वर्तमान में जलवायु परिवर्तन व्यवस्था पर पूरी तरह से जोर दे रहा है। असली चुनौती है विकासशील दुनिया के हित को सुरक्षित करना, जिसमें वह अपना हित भी शामिल है। भारत अपनी विकास जरूरतों को नजरदांज नहीं कर सकता, लेकिन साथ ही साथ इस मोर्चे पर वह अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय से अलग थलग होने का दंश भी नही झेल सकता।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. www.google.co.in/search?q=ghgemission,date-30/11/16,time-09:59pm.
2. बाजपेयी,अरूणोदय,वर्ल्ड फोकस, नवम्बर–2015, पेज–50, 53, 54, 55, 57, 58।
3. The Hindu(2013),cabinet clears climate negotiation strategy,08 nov.2013.
4. Teri (2014) 'India,s position in climate change negotiations.
5. www.unep.org/newscentre/default.aspx?documentID=2818&articleID=11133.
6. Us environmental protection agency,data.

❑❑

23

वैदिक कालीन शिक्षा की वर्तमान में प्रासंगिकता

डॉ0 नीलम सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षक शिक्षा संकाय
हंडिया पी0जी0 कॉलेज, हंडिया, इलाहाबाद।

शिक्षा से श्रेष्ठ बालक का समाजीकरण होता है। शिक्षा इसी कार्य में निरन्तर निर्मल धारा की तरह प्रवाहमान है। यह कार्य किस सीमा तक सम्पादित हुआ, इसका प्रतिबिम्ब निर्मल धारा में दिखाई पड़ता है। यदि सच्चे मन से बात करें तो ऐसी शिक्षा को युग के प्रति ईमानदार की संज्ञा दी जानी चाहिए। समाज में व्यवस्था, स्थिरता, प्रवाह तथा जीवन्तता लाने का उत्तरदायित्व शिक्षा का ही है, किन्तु यह अपेक्षा तत्कालीन समाज की अनुकूल परिस्थितियों के मध्य ही सम्भव है। यदि समाज शिक्षा के प्रति अपने दायित्वों की पूर्ति में ईमानदार नहीं बन पायेगा, तो शिक्षा अपनी चैतन्यता के बीच चिन्तन प्रारम्भ कर देगी।

संक्षिप्ततः समाज तथा शिक्षा की अन्योन्याश्रिता एक दूसरे की जीवन्तता हेतु अपरिहार्य है। शिक्षा की स्थिति अतीत का चित्र प्रस्तुत करके सुरक्षित रखने तथा ज्ञान और शक्ति के वर्तमान संग्रह में वृद्धि करने तथा भविष्य को भूत से अच्छा बनाने की सम्भावना जैसे सर्वोत्तम कार्य के रूप में बनती है। शिक्षा की स्थिति किसी भी समाज में मस्तिष्क सदृश है, जबकि सुन्दर तथा आकर्षक काया अर्थहीन प्रतीत होती है।

समाज में शिक्षा के स्थान को अति संक्षेप में जीव वैज्ञानिक दृष्टि से शरीर में जीव द्रव्य सदृश माना जा सकता है। यदि उस क्षण का स्मरण करें जब समाज प्रथम श्वास की प्रक्रिया से गुजरा तो तत्कालीन क्षण से ही शिक्षा के योगदान को समझा जा सकता है।

इस प्रकार समाज के अनुकूलन बनाने सम्बन्धी उद्देश्य के अतिरिक्त व्यक्ति के मानसिक विकास, चारित्रिक, नैतिक विवेक सम्बन्धी विकास पर भी ध्यान देना अति आवश्यक होता है। अपना मूल्यांकन करने की क्षमता तथा वैचारिक दृढ़ता आज के संदर्भ में अत्यन्त समीचीन प्रतीत होते हैं। वास्तविक अर्थों में शिक्षा के केन्द्र मानव के व्यक्तित्व का विकास करना, व्यक्ति का समाजीकरण करना तथा उसको समाज की नैतिक तथा भौतिक संरचना के अनुकूल बनाने में है।

शिक्षा के व्यक्तिगत तथा सामाजिक उद्देश्यों पर व्यापक विचार–विमर्श के उपरान्त भी कोई पक्ष अपनी विचार शृंखला को धूमिल नहीं देखना चाहता, किन्तु व्यापक चिन्तन का विषय है – शिक्षा के उद्देश्य क्या होने चाहिए? इस विषय पर सर पर्सी नन् के अनुसार – ''शिक्षा का कोई सार्वभौमिक उद्देश्य नहीं हो सकता। शिक्षा का प्रयास मात्र व्यक्ति के लिए अवसरों को जुटाना है जिससे उसके व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास हो सके।''

वास्तव में किसी देश की प्राचीन या अर्वाचीन शिक्षा के सर्वांगीण स्वरूप को ठीक से समझने के लिए उस समय के परिस्थितिकीय आधारों को समझना अनिवार्य हो जाता है। वैदिक ऋषियों, मनीषियों की महान सोच के प्रताप स्वरूप तत्कालीन शैक्षिक परिस्थितिकी भी अपने में विशिष्ट थी। वैदिक शिक्षा ज्ञान, कर्म एवं भक्ति के समन्वित स्वरूप की अभिव्यंजना करती है।

वैदिक शब्द वेद से बना है। वेद का अर्थ होता है ज्ञान प्राप्त करना। वैदिक संस्कृति के निर्माता 'आर्य' थे। आर्य संस्कृत भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है 'श्रेष्ठ'। आर्य भाषा सूचक शब्द है, प्रजाति सूचक नहीं। आर्यों को सम्भवतः लिपि ज्ञान नहीं था अतः वे अपने ज्ञान को सुनकर एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाते थे। इसलिए वैदिक–साहित्य को श्रुति साहित्य भी कहा जाता है।

वैदिक संस्कृति के अध्ययन की सुविधा के लिए दो कालों में विभाजित किया गया है –

ऋग्वैदिक काल : इसकी समय सीमा 1500 ई0पू0 से 1000 ई0पू0 तक माना जाता है। यह समय वेदों की रचना तथा वेदों पर आधारित शिक्षा व्यवस्था का काल है। यद्यपि यह बात निश्चित नहीं हो पायी है कि वेद कितने पुराने हैं, लेकिन एक बात पूर्णतः सत्य है कि केवल हिन्दुओं के ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व का सर्वाधिक पुराना साहित्य है। वेदों को भारतीय जीवन दर्शन का स्रोत माना जाता है। वेदों का मुख्य विषय यज्ञ है। वेद निम्नवत् चार हैं–

1. ऋग्वेद, 2. सामवेद, 3. यजुर्वेद, 4. अथर्ववेद

भारतीय शिक्षा का बीजारोपण सुदूर अतीत में आज से लगभग 4000 वर्ष पूर्व हुआ था। किन्तु सुसम्बद्ध स्वरूप के दर्शन वैदिक काल के आरम्भ में होते हैं। इस काल में शिक्षा पर ब्राह्मणों का आधिपत्य था। अतः कुछ लेखकों ने वैदिक कालीन शिक्षा को ब्राह्मणीय शिक्षा और कुछ ने हिन्दु शिक्षा की संज्ञा दी।

''अनादिकाल से भारत में शिक्षा स्वयं के लिए नहीं अपितु धर्म के लिए प्राप्त की जाती थी। यह मुक्ति और आत्मबोध का साधन थी और जीवन का महान लक्ष्य मुक्ति था।''

2500 ई0पू0 से 500 ई0पू0 तक वैदिक कालीन शिक्षा– वेदों की रचना से लेकन बौद्ध धर्म के प्रसार तक भारतीय शिक्षा संस्थाएँ धर्म से प्रभावित रहीं। आर्यों की संस्कृति और सभ्यता में प्रथम परिवर्तन गौतम बुद्ध और महावीर स्वामी के धर्म प्रचार से लगभग 500 ई0पू0 से प्रारम्भ हुआ और प्रभाव स्वरूप प्रचलित शिक्षा व्यवस्था हुई। अतः इस बीच के काल को वैदिक काल की संज्ञा दी गयी है।

उद्देश्य :

- ईश्वर भक्ति तथा धार्मिकता की भावना का विकास
- चरित्र का निर्माण
- व्यक्तित्व का विकास
- नागरिक तथा सामाजिक कर्त्तव्यों का पालन
- सामाजिक कुशलता की उन्नति
- राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण तथा प्रचार
- ज्ञान व अनुभूति पर बल
- चित्त–वृत्तियों का निरोध
- धार्मिक भावनाओं का उत्कर्ष
- सांस्कृतिक तत्वों का विकास
- बौद्धिक विकास
- मानसिक विकास
- प्राणिक विकास
- सामाजिक विकास
- शारीरिक विकास
- नागरिकता, राजनीतिक व राष्ट्रीयता का विकास
- अन्तर्राष्ट्रीयता का विकास
- आध्यात्मिकता का विकास

इस तरह जगतगुरू के रूप में भारत ने विश्व मानव को जो संदेश आदि काल में दिए, उनका महत्व आज भी कम नहीं हुआ है। भौतिकवादी सभ्यता और पश्चिमीकरण की आँधी में प्राचीन भारत के कुंजों से गुंजित ''सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वेसन्तु निरामयाः'' जैसी अनेक लोक मंगलकारी भावनाओं की मार्गदर्शक स्थिति अपेक्षाकृत आज अधिक समीचीन हुई है। विकसित देशों की पंक्ति में भौतिक संसाधनों की दृष्टि से आज जो जितना आगे है, वास्तविक सुखा–शान्ति में उतना ही पीछे। समस्त सुख और सुविधाओं को अपनें घर में एकत्र कर लेने की होड़ और उसमें सफलता पा लेने के बाद भी न तो सुखानुभूति है और न ही चैन। शान्ति की खोज में वे भारतीय संस्कृति की ओर ही बरबस निहारते हैं। दरअसल भारतीय संस्कृति अमृतमय है। इसकी एक–एक बूंद से जीवन में आत्मिक सुख और दिव्य जीवन की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त होता है। प्राचीन भारतीय ऋषियों और मनीषियों ने अपने अद्वितीय ज्ञान तथा प्रज्ञा के आधार पर आश्रमों की संकल्पना की जिसमें ज्ञान–विज्ञान, लौकिक, पार–लौकिक, कर्म–धर्म तथा भोग–त्याग को अद्भुत समन्वय मिलता है। जीवन में चार पुरुषार्थों की स्थिति और प्राप्ति विधि भारतीय जीवन

दर्शन का केन्द्रीय तत्व माना जाता रहा है। इन सभी की प्राप्ति हेतु एक सुव्यवस्थित, सुविचारित एवं सुदृढ़ शिक्षा प्रणाली का प्रारूपण हुआ जिसके मौलिक तत्त्वों से जीवन के लौकिक तथा पारलौकिक विकास में सहायता मिलती है। शिक्षा के साधन के रूप में गुरुकुलों की स्थापना हुई जिसकी महत्ता सर्वविदित है। अध्येत्ताओं के लिए जीवन में प्रवृत्ति एवं निवृत्ति में समन्वय की विषद व्याख्या की गई। जीवन में चरित्र और शुद्धाचरण पर विशेष बल दिया गया। शिक्षा के ऐसे लक्ष्य निर्धारित किये गये जो अत्यन्त व्यापक होने के कारण काल एवं परिस्थितियों की आँधी में आज तक कभी धूमिल नही हुए। इसका आकर्षण देश–विदेश में प्राचीन काल से लेकर आज तक अविरल रूप से गतिमान है। भारत की यात्रा पर आये अनेकानेक यात्री लेखकों ने अपने संस्मरणों में भारतीय संस्कृति के मौलिक तत्त्वों की भूरि–भूरि प्रशंसा की है। प्राचीन भारत में ज्ञान और विज्ञान, कला और संस्कृति, परा और अपरा विद्या का ऐसा विकास हुआ कि भारत को जगत्गुरु के पद पर आसीन किया गया। यह व्यवस्था पूरी तरह सफल रही और कहना अतिश्योक्ति न होगा कि देश–विदेश तक तीव्रगति से प्रगति समाज में, प्राचीन शिक्षा उद्देश्यों की अद्यतन सफलता को कौतूहल से देखा जा रहा है।

अत्यधिक आधुनिक समाज में विज्ञान द्वारा प्रदत्त सारी सुख–सुविधाओं को एकत्र कर लेने के बाद भी वास्तविक सुख व शान्ति से वंचित आधुनिक भारतीय समाज में एक–दूसरे को पीछे छोड़ने की होड़ लगी है। तनाव और ईर्ष्या इतनी बढ़ी है कि पैसों की वृद्धि के अनुपात में अनिद्रा भी बढ़ी है। इस कष्ट के मूल को गोस्वामी तुलसीदास ने इस प्रकार चित्रित करने का प्रयास किया है – ''जो काहू के सुने लड़ाई, श्वास लेत जनु जूड़ी आई।'' दरअसल परस–ताप की भावना में हो रही वृद्धि ही सारे कष्ट का मूल है। किसी की प्रगति पर मुदित व्यवहार प्रदर्शन दुर्लभ हो रहा है, जबकि वास्तविक स्वास्थ्य, सुख, शान्ति की कुंजी यही मुदित मन है। भारतीय शिक्षा पद्धति अपने उद्देश्यों में व्यवहार की निष्कपटता अभिव्यक्ति को इसी कारण प्रमुखता देती है और वर्तमान समय में वैदिक शिक्षा के इन्हीं उद्देश्यों को समाज में शिक्षा में पुनः प्रतिस्थापित करने की आवश्यकता महसूस की जा रही है, क्योंकि वैदिक कालीन शिक्षा के उद्देश्य ऐसे उद्देश्य हैं जो समाज में व्याप्त कुरीतियों और अनेक समस्याओं से निजात दिलाने में सहायक सिद्ध हो सकती है। क्योंकि – वैदिक कालीन शिक्षा मात्र तत्कालीन आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली प्रक्रिया नहीं थी। वरन् यह एक वृहद चिन्तन थी। यह भारतीय संस्कृति की मूल थी। यही कारण है कि युगान्तरों में दीर्घ परिवर्तनों के पश्चात् भी उसकी मौलिक छाप आधुनिक शिक्षा क्षेत्र में दृष्टिगोचर होती है। वैदिक शिक्षा के जो प्रभाव क्षेत्र अभी तक स्थायी प्रभाव रखते हैं वे महत्वपूर्ण बिन्दु निम्न है –

- प्राचीन काल में स्त्रियों को यज्ञ आदि कार्यों में भाग लेने का अधिकार था जो कि आज तक समाज में व्याप्त है और प्रासंगिक भी है।
- वैदिक काल में बालिकाओं को नृत्य, संगीत, कला, काव्य रचना, वाद–विवाद की शिक्षा प्रदान की जाती थी।
- प्राचीन काल में ''यत्र नार्यस्तु पूज्यंन्ते रमन्ते तत्र देवता'' की सुक्ति प्रचलित थी। ये सुक्ति आज के आधुनिक युग में भी उतना ही प्रासंगिक है जितना तब थी। नारी का अपमान एवं उनका शोषण न हो इस पर कानूनी तौर पर विशेष बल दिया जा रहा है।
- विवरणों से ऐसा प्राप्त होता है कि वैदिक युग में स्त्री शिक्षा अपने चरम पर थी और आज के युग में भी स्त्री शिक्षा का चरमोत्कर्ष करने पर बल दिया जा रहा है।
- वैदिक काल में सह–शिक्षा का प्रचलन था। 30 अत्रेयशी ने लव–कुश के साथ बाल्मिकी आश्रम में शिक्षा प्राप्त की थी। सह–शिक्षा का प्रचलन वर्तमान युग में भी प्रासंगिक है।
- वैदिक काल में गुरूकुलों में जो शिक्षा प्रदान की जाती थी। वह निम्न आदर्शों एवं उद्देश्यों को समझकर निर्मित की गई –
- जो चरित्र–निर्माण में सहायक हो सके।

- शिक्षाा व्यक्तित्व का विकास कर सके।
- शिक्षा के द्वारा राष्ट्रीयता कुशलता में वृद्धि।
- ईश्वर भक्ति और धार्मिकता का समावेश।
- राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण व प्रसाद।
- प्राचीन भारतीय शिक्षा में नैतिक शिक्षा पर बल दिया गया था।
- वैदिक काल में व्यावसायिक शिक्षा के अन्तर्गत सैनिक शिक्षा, चिकित्सा शास्त्र की शिक्षा दी जाती थी जो कि यह शिक्षा वर्तमान में भी प्रासंगिक है।
- आचार्य कुल में रहते हुए धार्मिक व्रत का पालन करना विद्यार्थी हेतु अनिवार्य था।
- सत्य भाषण को प्रोत्साहित किया गया था।
- हिंसा और अहिंसा को उचित रूप से दिशा दी गई थी। ये सभी प्रवृत्तियाँ ईश्वर भक्ति तथा धार्मिक भावना को महत्व प्रदान करती थी।
- वैदिक कालीन मनीषियों ने चरित्र निर्माण तथा आचरण में पवित्रता को शैक्षिक उद्दश्यों में महत्वपूर्ण स्थान दिया। सच्चरित्रता को व्यक्ति का आभूषण माना गया तथा ऐसे व्यक्ति को अभिनन्दनीय की संज्ञा दी गयी। सहिष्णुता और सौहार्द, सत्यनिष्ठा और नैतिकता तथा सदाचरण और आदर्श मनुष्य के चारित्रिक उत्थान के प्रधान कारणभूत तत्त्व जो वैदिक शिक्षा में रखे गये थे उनकी आज वर्तमान समाज में बहुत ही आवश्यकता है और इन उद्देश्यों का नितान्त अभाव है।
- वैदिक शिक्षा का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य समाज के प्रति कर्त्तव्यों का ज्ञान प्रदान करना था। स्वार्थपूर्ण जीवन–यापन से दूर रहने की शिक्षा महत्त्वपूर्ण थी। एक पिता, पुत्र, पति या समाज का एक योग्य नागरिक बनने के लिए कर्त्तव्यों का बोध कराया जाता था।

इस तरह प्राचीन भारत में शिक्षा का जो व्यवस्थित स्वरूप लगभग 3000 ई0पू0 में देखने को मिलता है और वह भी विशेष रूप से शिक्षा के उद्देश्यों को लेकर, भारत ही नहीं सम्पूर्ण जगत में ऐसे उद्देश्यों की सुनिश्चितता एक चाहत बनी हुई है। यह गौरव का विषय है कि कम्प्यूटरीकृत अत्याधुनिक तीव्र गति को प्राप्त समाज में यही प्राचीन उद्देश्य आज भी व्यक्ति के वास्तविक सुख और शान्ति के निश्चायक बने हुए हैं। यह सब कुछ प्राचीन भारतीय संस्कृति के कारण है जो चरित्रशील, सदाशयता और शिष्टता को अपने अन्दर संजोये हुए है। ऐसे मौलिक तत्त्वों की चाहत कल की अपेक्षा आज और आवश्यक प्रतीत होती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. दीनानाथ वर्मा, शिव कुमार सिंह, विश्व इतिहास का सर्वेक्षण।
2. रमन बिहारी लाल – शिक्षा के दार्शनिक व समाजशास्त्रीय विचारधारा।
3. के0सी0 श्रीवास्तव – प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति।
4. पी0डी0 पाठक – भारतीय शिक्षा और उसकी समस्यायें।
5. डा0 राम शकल पाण्डेय – विश्व के सर्वश्रेष्ठ शिक्षाशास्त्री।
6. डा0 लक्ष्मी के लाल गोड़ – शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि।

❑❑

भारतीय शिक्षा में नवाचार – एक अध्ययन

संदीप कुमार सिंह
शोध छात्र–समाजशास्त्र विभाग
711/2 ए0बी0नगर, उन्नाव (उ0प्र0)

जयन्ती सिंह
एम0एड0द्वितीय वर्ष
वनस्थली विधापीठ, जयपुर राजस्थान।

"जयशंकर प्रसाद जी का जयघोष आज भी हमें सुनाई पड़ता है– 'हार बैठे जीवन का दांव, जीतते मरकर जिसको वीर' यही भारत की शिक्षानीति का वह ज्योति स्तंभ है, जिसके वैदिक प्रकाश में कविवर रवीन्द्रनाथ जी ने 'निर्भय कर स्वप्न भंग' रचा तथा नजरूल इस्लाम की 'अग्निवीणा' ने स्वर पैदा किये। इस ज्योति स्तंभ का प्रकाश जो वैदिक ऋषियों के आश्रमों तथा तक्षशिला, नालंदा जैसे विश्वविद्यालयों से होता हुआ आघुनिक भारत के माध्यम से सम्पूर्ण विश्व को ज्ञान का प्रकाश देने को सदैव तत्पर रहा हैं इसी प्रकाश–पुंज पर आघुनिक विश्व की सम्पूर्ण आशायें आज भी टिकी हुई हैं। आज की शिक्षा नीति के निर्धारण में सहज विवेक के साथ विकास की पहचान–परख की बात भी अनदेखी नहीं की जा सकती। क्योंकि ऐतिहासिक भारत में अकबर, शिवा जी, रणजीत सिंह जैसे व्यक्ति लगभग अनपढ़ होते हुये भी राष्ट्र के लिए इतना कुछ कर गये जिसे कर पाना एक उच्च शिक्षित–दीक्षित व्यक्ति के सामर्थ्य में नहीं है। अर्थात उच्च कोटि की व्यवहारिक शिक्षा आज की शिक्षा का अनिवार्य अंग बने, जिसमें नैतिकता, शांति एवं कर्तव्य निर्वाह के सद्गुण समावेशित हों। ताकि भारतीयों की भौतिक और मानसिक दोनों प्रकार की उर्जा का निरन्तर विकास होता रहे। भारतीय शिक्षा ने माता–पिता और गुरू को परम वंदनीय माना है। क्योंकि ये तीनों ही व्यक्ति के भौतिक और मानसिक शरीर के जन्मदाता हैं। जैसा कि सर्वविदित है कि वीर अभिमन्यु को अपनी माता के गर्भ में ही चक्रव्यूह में प्रवेश का ज्ञान प्राप्त हो गया था। आज वैज्ञानिक भी इस पौराणिक कथा के सत्य को पूर्ण रूप से स्वीकार करते हैं।" आज देश में जिस नालंदा अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय की पुर्नस्थापना की गयी है। वह प्राचीन भारत के मध्ययुग का प्रख्यात शिक्षा केन्द्र था। तथा संसार का सबसे बड़ा विश्वविद्यालय था जिसमें 10,000 विद्यार्थी और 1100 शिक्षक थे। छात्र और शिक्षक का यह अनुपात आज भी विश्व के किसी भी वि0वि0 में नहीं है।आज के विश्वविद्यालयों में आयोजित होने वाली प्रवेश परीक्षा प्रणाली का जन्म इसी ही वि0वि0 में हुआ था। नालंदा विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने की इच्छा रखने वाले विद्यार्थी को द्वार पर ही प्रवेशिका परीक्षा देनी पड़ती थी उत्तीर्ण होना प्रवेश की अनिवार्य शर्त होती थी। आक्सफोर्ड वि0वि0 भी इस तथ्य को प्रमाणित करता है। परन्तु नालंदा की शिक्षा–प्रणाली एकांकी थी मात्र पुस्तकीय ज्ञान दिया जाता था। वह भी विशेष रूप से बौद्धधर्म का जबकि आज स्थापित हो रहे नालंदा अन्तर्राष्ट्रीय वि0वि0 के पाठ्यक्रमों को तय करने में अमेरिका के पेले और जापान के क्योर्टो तथा नेशनल युनीवर्सिटी सिंगापुर से मदद ली है। सिंगापुर सरकार ने इस कार्य के लिए 50 लाख डॉलर धन भी दिया है। इस वि0वि0 की स्थापना से उस साझा संस्कृति के विकसित होने की उम्मीद है जो प्राचीन काल में स्थापित थी। विभिन्न धर्मों और संस्कृतियों के संगम से संवाद की नई पहल विकसित होने की संभावना है। जबकि प्रख्यात प्राचीन तक्षशिला वि0वि0 में शास्त्र और शस्त्र दोनों की शिक्षा दी जाती थी। चाणक्य तक्षशिला के विद्यार्थी थे। फिर वहीं पर अर्थशास्त्र एवं दण्डनीति के आचार्य बनें। बालक चन्द्रगुप्त को आचार्य चाणक्य पाटिलपुत्र से शिक्षा प्राप्ति हेतु तक्षशिक्षा ले गये थे। और उसे शास्त्र और शस्त्र दोनों की ऐसी उच्चकोटि की सफल व्यवहारिक शिक्षा दी कि भारत– विजय का सपना संजोये सिकंदर को घायलावस्था में भारत छोड़कर भागना पड़ा और रास्ते में ही 'बैविलान' में उसकी मृत्यु हो गयी। इन्ही गुरू–शिष्य के अथक् प्रयास और कूटनीतिक सफलता के कारण भारत पहली बार संप्रभुता संपन्न राष्ट्र के रूप में संगठित हो सका। चाणक्य को सफल राजनीति का सैद्धान्तिक और व्यवहारिक ज्ञान था। चाणक्य का 'अर्थशास्त्र' नामक ग्रन्थ इस विषय का

प्राचीनतम ग्रन्थ है। परन्तु मध्यकालीन भारत ने चाणक्य–चन्द्रगुप्त के राष्ट्र निर्माण कार्य के इस स्वरूप का विस्मरण कर दिया। आधुनिक भारत की शिक्षा क्षेत्र के सन्दर्भ में गुरू रवीन्द्रनाथ ठाकुर एवं राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने विशेष ध्यान दिया। कविवर रवीन्द्र नाथ जी ने शान्ति निकेतन में आश्रम जैसे वातावरण में कला, संगीत, नृत्य आदि विद्याओं को सहेज संवारकर शिक्षा देने का कार्य प्रारम्भ किया। गुरूदेव मानवीय भावनाओं के चितेरे कवि ही नहीं वरन् एक संवेदनशील कथाकार भी थे। उनका साहित्य, समाज, मानव प्रकृति व प्रवृत्ति, एवं मानव मनोंविज्ञान को अपने समग्र रूप में उभरता है शाँति–निकेतन उनका साधना– केन्द्र रहा है। जबकि गाँधी जी ने बुनियादी शिक्षा को प्रमुखता प्रदान की। तालिमी संघ नामक एक संस्था बनायी जिसके अध्यक्ष जाकिर हुसैन थे। सेवाग्राम में सन् 1945 में समग्र ग्राम–सेवा विद्यालय की स्थापना की जिसके प्राचार्य नरहरि भाई पारीख एवं उपकुलपति सरदार बल्लभ भाई पटेल थे। स्वतंत्र भारत में वि0वि0 अनुदान आयोग बना। इसी क्रम में सन् 1962 में वि0वि0 आयोग ने डॉ0 दौलत सिंह कोठारी की अध्यक्षता (1964–66) में एक आयोग का गठन किया यह देश का एकमात्र आयोग था। जिसमें प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा के विभिन्न रूपों का अध्ययन करने के उपरान्त सिफारिशें दी गई हैं। तब से लेकर आज तक अनेक सरकारें आयी और गयी परन्तु सिफारिशें आज तक पूर्ण रूप में लागू नहीं की जा सकी है। हाँ संस्तुति के आधार पर 1968 की नीति अवश्य बनी थी। सरकारें सदैव से ही शिक्षा के प्रति अपने दायित्व को निभाने से कतराती रही हैं। प्रो0 दौलत सिंह कोठारी ने कहा, विज्ञानाश्रित विश्व मे किसी भी देश की समस्त विकासात्मक प्रक्रिया में, उसके कल्याण, प्रगति और सुरक्षा के लिये शिक्षा और अनुसंधान का भारी महत्व होता है। क्या हमारी विश्वविद्यालयीन प्रणाली विज्ञानाश्रित विश्व को या उन सशक्त शक्तियो को पर्याप्त रूप से समझने में सहायक है जो मानव–नियति का निर्माण करती है? आज यह समझना आवश्यक है कि संसार कितनी तेजी से बदल रहा है, किन्तु विश्वविद्यालयीन प्रणाली इस प्रकार की समझ विकसित करने में कोई सक्रिय सहयोग नहीं देती। हम ऐसे पुनीत सत्यों को बनाए रखना चाहते हैं, जो अब सत्य नहीं है लेकिन फिर भी पुनीत बने हुए है। ज्ञान को ऐसे वायुरूद्व विभागों में बंद करे कि वे शिक्षा के अन्य विषयों से आने वाले प्रदूषण से मुक्त रहे। अनुशासन की पारंपरिक किंतु निरर्थक सीमा–रेखाओं का बड़े भावावेश के साथ समर्थन किया जाता इसका परिणाम यह होता है कि शैक्षिक शुद्विवाद की तो विजय हो जाती है, किंतु शिक्षा का वास्तविकताओं से संपर्क टूट जाता है। फिर भला उस सर्वभौम मानस का क्या होता है जिसके निर्माण की विश्वविद्यालय से अपेक्षा की जाती है ?

भारतीय संविधान के (अनु0 45) में कहा गया है, वस्तुतः राज्य को निर्देश दिया गया है कि संविधान लागू होने से दस वर्षों के भीतर सभी बच्चों के लिए अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था तब तक की जायेगी जब तक वे चौदह वर्षों के न हो जायें। वैसे तो अगस्त 2009 में अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा कानून 2009 बनाया गया है। सरसरी तौर पर यह कानून प्रगतिशील एवं महत्वकांक्षी दिखाई पड़ा। किन्तु यदि लक्ष्य देश के सारे बच्चों को शिक्षित करने का है तो यह अधिनियम अपर्याप्त है। क्योंकि शिक्षा का बढ़ता हुआ बाजार या बाजारीकरण वास्तव में बहुसंख्यक बच्चों को अच्छी शिक्षा से वंचित करने का काम करता है। आश्चर्यजनक है कि शिक्षा के बाजारीकरण एवं व्यवसायीकरण पर रोक लगाने वाले इस कानून को "शिक्षा अधिकार नियम का नाम कैसे दिया गया है ? जब कि वास्तविकता तो यह है कि सरकार शिक्षा के कानून के पीछे से देश में शिक्षा का मुक्त बाजार बना रही है। यदि हम गत दो दशकों में शिक्षा के बढ़ते बाजार और केन्द्रीय मानव संस्थान विकास मंत्री की घोषणाओं को एक साथ रखकर देखें (शिक्षा में निजी भागीदारी एवं पूँजी निवेश को बढ़ावा देना, निजी सरकारी सहयोग, विदेशी शिक्षण संस्थाओं को प्रवेश देना, कालेज में प्रवेश के लिये अखिल भारतीय प्रवेश परीक्षा लेना आदि) तो सरकारों की मंशा साफ हो जाती है।

वैसे तो मानव–संसाधन की ओर सर्वप्रथम ध्यान भूतपूर्व प्रधानमंत्री स्व0 राजीव गाँधी ने दिया और शिक्षा मंत्रालय को मानव संसाधन विकास मंत्रालय में परिवर्तित किया। इसका उद्देश्य मानव को विकास के नाभिकीय संसाधन के रूप में प्रयुक्त करना। नई शिक्षा व्यवस्था में विकास ही विशिष्ट धारणा बना है। पहले यह विकास

समावेशी होता था। अब विकास समावेशी नही है। यह बाजारोन्मुखी हो गया है। जिस पर निजी क्षेत्र का नियंत्रण है। नई शिक्षा व्यवस्था में यही घटित हो रहा है। शिक्षा में केन्द्र व राज्य सरकार का नियंत्रण कम होता जा रहा है। जबकि निजी क्षेत्र का विस्तार व्यापक होता जा रहा है। नई शिक्षा व्यवस्था बाजार के हितों को ध्यान में रखकर दी जा रही है। जो समृद्धि दायक तो है लेकिन मानवीय गुणों एवं संवेदनशीलता विरत है। शिक्षा क्षेत्र प्रशासनिक तथा नियोजन तन्त्र में गत् साठ वर्षों में तीव्र परिवर्तन हुये हैं। आज शिक्षा की सभी प्रमुख प्रशासनिक इकाइयाँ आई0ए0एस0 अधिकारियों के नियंत्रण में है।सन् 1970 व 80 के दशक तक राज्य शिक्षा मण्डल के अध्यक्ष और निदेशक जैसे पदों पर शिक्षाविद् पदारूढ़ होते हैं। अब तो शिक्षा सलाहकार भी आई0ए0एस0 या इसी सेवा से सेवानिवृत्त अधिकारी ही होते हैं। जैसे राज्यों के पाठ्य–पुस्तक निगम, माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राज्य शिक्षा अनुसंधान तथा प्रशिक्षण पर परिशद, राज्य शिक्षा निदेशालय इत्यादि सभी पद अब इन अधिकारियों के पास आ गये हैं। जबकि इन सभी पदो शिक्षाविद् पदारूढ़ होने चाहिऐ ।

भारत में अनेक विश्वविद्यालय अपने कर्तव्यों की पुरानी संकल्पनाओं से बँधे रहकर ही काम करते आ रहे है। यह स्थिति इस कारण से और भी बिगड़ गयी है कि हमारे विश्वविद्यालयो के अधिकांस लोग उच्च प्रतिष्ठा युक्त विदेशी आदर्शो पर अपनी दृष्टि लगाए रहते हैं। हममे से कुछ विदेशों में अपने सहकर्मियों के साथ तो कदम से कदम मिलाकर चलते है लेकिन दूसरी ओर राष्ट्रीय विकास के महत्वपूर्ण क्षेत्रों में निहित समस्याओं को विश्लेषणात्मक ढंग से समझने की दिशा मे अपनी शक्ति केंद्रित करने और उनका समाधान खोजने मे सर्वथा असफल रहते है। कृषि विज्ञान के क्षेत्र मे तो हमे कुछ उल्लेखनीय सफलता मिली है, किंतु यही बात अन्य अनेक शिक्षाओं के बारे में नहीं कही जा सकती है। जाहिर है कि इस प्रकार के उज्जवल पक्ष अन्यत्र भी कहीं–कहीं दिखाई देते है। अब संख्या की समस्या पर पुनः संक्षिप्त चर्चा करें जो एक विस्फोटक समस्या है। ज्यों–ज्यों हमारा समाज तकनीकी दृष्टि से अधिक जटिल बनता जाऐगा, हमारी प्रशिक्षित जनशक्ति संबंधी आवश्यकताएँ बढ़ती जायेगी और हमें अधिक उच्च शिक्षा संस्थाओ की आवश्यकता होगी परन्तु हमारी असल आवश्यकता ऐसी प्रशिक्षित योग्यताओ की है जिनमे समस्याओ का समाधान करने की सशक्त क्षमताएँ हो। हमे ऐसे डिग्रीधारी समूहों की जरूरत नही है जिनका शिक्षा के एक या अधिक क्षेत्रों से अस्पष्ट और अपर्याप्त परिचय भर हो। उच्चशिक्षा प्राप्ति के अधिकार को लेकर हमारे यहाँ काफी भ्रान्तियाँ हैं। इनमे उन लोगो के अस्पष्ट चिंतन और विवेक ही घोषणाओ और वृद्धि होती, जिन्हें इस संबंध में दूसरों की अपेक्षा अधिक जानकारी होना चाहिए। उच्च शिक्षा प्राप्ति का अधिकार. जैसी कोई चीज नहीं है, यह तो एक ऐसा विशेषाधिकार है जिसे कठोर उपलब्धि संबंध मानदण्ड पर पूरा उतरने पर ही अर्जित किया जा सकता हैं इस तत्व को स्वीकार कर लेना सामान्यता हमारी शिक्षा प्रणाली के लिये हितकर होगा राज्य समर्पित उच्च शिक्षा सस्थाओ में मुक्त द्वार नीति के लिये उठाई जाने वाली मांगो को जो राजनैतिक समर्थन मिला उससे हमारे शैक्षिक स्तर में गिरावट आई जिसकी बहुविधी प्रतिक्रियाएँ हुई इसके फलस्वरूप उच्च शिक्षा विस्फोटक बिन्दु तक पहुँच गई। यदि यह मानभी लिया जाए की विश्व विद्यालय मे जो प्रवेश दिए जाते हैं वेचयनात्मक हो तो चयनात्मक प्रवेश के लिये प्रयुक्त मानदंड न केवल वस्तुनिष्ठता होना चाहिये बल्कि उसकी वस्तुनिष्ठता दिखाई भी देनी चाहिये। हमें जब मालूम है जब इनका पलड़ा मौखिक तथा लिखित अभिव्यक्ति की ओर झुका होता है तो परिणाम कम और सामाजिक रूप से प्रतिगामी होते है। समस्या जटिल है कभी–कभी यह संकेत दिया जाता है कि चयन पद्धति में शारीरिक कोशल को पर्याप्त महत्व देकर अपवाद क्षेत्र का विस्तार किया जा सकता है। लेकिन क्या यह बहुत समय तक चल सकेगा? यह किसी बढ़ई या लोहार के पुत्र को तो लाभ पहुँचा सकता है? अकुशल खेतिहर–मजदूरो, मेहतरो ओर पत्थर फोंड़ने वालो की संतान क्या होगा? समस्या को इस रूप मे प्रस्तुत करना भी इस बात को मान्यतादेना है कि शैक्षिक असमान्यता के प्रश्न का समाधान अनुसूचित जातियो ओर जनजातियो के श्रेणियों के लोगो को प्रतिपूरक सुविधाएँ देकर नही किया जा सकता। इस प्रकार के कार्यक्रम उपयोगी और आवश्यक होते है विशेष रूप से ऐसे स्थानो पर अधिक, जहाँ किसी छोटे अल्पसंख्यक समुदाय को

असामान्य निर्योग्यताओं का शिकार बना लिया जाता है जैसे कि अमेरिका में काले या हिपोनिक लोगो के साथ होता है। भारत में स्थिति इसके विपरीत है। विगत लगभग सौ वर्षों के दौरान विशेषाधिकार यहाँ एक अल्पसंख्यक छोटे समुदाय में केंद्रित होकर रह गया है। अतः शिक्षा के क्षेत्र में प्रमुख राष्ट्रीय कार्य यहाँ विशाल बहुसंख्यक समुदाय के लिये कल्पानात्मक कार्यक्रमों की शुरुआत करना ही है। शिक्षा क्षेत्र के विचारशील प्रेक्षक इस बात पर सहमत है कि ऐसे अभियान के लिये जिस सशक्त प्रेरणा की आवश्यकता है वह सम्पूर्ण समाधान के एक अंश के रूप में आ सकती है और जो शिक्षा में उन विशेषाधिकारियों को निष्फल कर देगी जिन्हें पैसे से खरीदा जा सकता है। क्या वे शिक्षक ढाँचे, जिनका निर्माण विशेषाधिकारों के प्रसार और नवीनीकरण के लिये किया गया था। ऐसी स्थिति में नष्ट किये जा सकते है ? जब समाज का नेतृत्व भयंकर असमानताओं को बनाए रखने को ही हितकर समझता है?

सन्दर्भ– पुस्तके, समाचार पत्र, पत्रिकाये, शोधपत्र

1. Moh.Parvez.Privazation of teacher education in India, Learning Commuity.Research Journal.vol.3no.01.New Delhi Publishers.New Delhi April 2012.
2. शेफाली श्रीवास्तव, शिक्षा जगतस्तम्भ मे 'शिक्षातंत्र को अर्थतंत्र' में बदलने की मुहिम, 'आज' हिन्दी दैनिक समाचार पत्र कानपुर (संस्करण) अंक दिस0 09 2009।
3. प्रमोद जोशी, 'नये समाज में ज्ञान के रास्ते' 'हिन्दुस्तान' हिन्दी दैनिक समाचार पत्र कानुपर (संस्करण) अंक दि0 10 मार्च 2010।
4. अमित एवं जयश्री, शिक्षा जगत स्तम्भ में –'महज कानून से नहीं बदलेगी शिक्षा' 'आज' हिन्दी दैनिक समाचार पत्र कानपुर 'संस्करण' अंक 02 दिस0 2010।.
5. जगमोहन सिंह राजपूत, (पूर्व निदेशक एन0सी0ई0आर0टी0) शिक्षा की साख सबसे बड़ी चुनौती हस्तक्षेप में, राष्ट्रीय सहारा हिन्दी दैनिक पत्र लखनऊ संस्करण अंक 26 जनवरी 2010।
6. धर्मेन्द्र पाल सिंह उच्च शिक्षण संस्थानों विभाग की रेंकिंग राष्ट्रीय सहारा हिन्दी दैनिक पत्र लखनऊ संस्करण अंक 30 सितम्बर 2015।
7. अखिल सक्सेना, संडे नई दुनिया समाचार पत्र लखनऊ संस्करण दि0 4 दिस0 2011।
8. सम्पादकीय, योजना शिक्षा का पुर्नगठन राष्ट्रीय हिन्दी समाचार पत्रिका नई दिल्ली अंक सितम्बर 2009।
9. मुकेश चन्सौरिया भारत में उच्च शिक्षा की समस्याएँ एवं समाधान योजना राष्ट्रीय हिन्दी मासिक पत्रिका नई दिल्ली अंक सितम्बर 2010।
10. बी0 महेश शर्मा, "शिक्षा में है भ्रष्टाचार का सबसे विकृत रूप" अंक सितम्बर 2011 कैरियर्स 360 राष्ट्रीय हिन्दी मासिक पत्रिका नई दिल्ली।
11. भरत कुमार एन0एस0यू0आई0 उपाध्यक्ष सर्वे 2009।
12. रामरतन यादव–ज्ञानेन्द्र पाण्डेय, गरीबों की पहुँच से दूर होती प्रोद्योगिकी शिक्षा आज समाचार पत्र 27 मार्च सन् 2015 ई.
13. वैकल्पिक आर्थिक समीक्षा–2013, युवा संवाद प्रकाशन नई दिल्ली
14. इंसानुलहक, एज्युकेशन एण्ड इमर्जिन पैटर्न आफ पोलाटिकल ओरियेन्टेशन, रीडिंग इन इण्डियन सोसोलाजी, वैल0 3 पेज 23 शेज पब्लिकेशन्स नई दिल्ली 2014
15. अशोक बसु, एज्युकेशन सोसल स्ट्रक्चर एण्ड कल्चर, वैल0 5 पेज 10, 11 स्टडीयिंग इन इण्डियन सोसोलाजी शेज पब्लिकेशन्स नई दिल्ली 2014
16. मालिनी सेन एडिटोरियल हायर एज्युकेशन वैल0 2 2010 स्पेशल इस्यूटाइमस आफ इण्डिया नई दिल्ली
17. रेखा के0 जाधव, गुणात्मक उच्च शिक्षा और सामाजिक आर्थिक विकास, 40वां अखिल भारतीय समाजशास्त्री सम्मेलन नवम्बर 29 2014, वाराणसी उत्तर प्रदेश
18. ए0एस0 सुस्मिता कुमारी उच्च शिक्षा में पाठ्यक्रम दिसम्बर 26, 2013, 39वां अखिल भारतीय समाजशास्त्री सम्मेलन मैसूर कर्नाटक

❑❑

25

उत्तर आधुनिकतावाद : चिन्तन के क्रमिक आयाम

डॉ0 गीता शुक्ला
एसो0 प्रो0 संस्कृत विभाग
भ0दी0आ0क0स्नातकोत्तर महाविद्यालय, लखीमपुर–खीरी

उत्तरआधुनिकता की प्रथम परिकल्पना ऑर्नल्ड टायनबी ने की थी। उन्होंने अपनी एक पुस्तक[1] में सन् 1850 ई. से 1857 ई0स0 के बीच आधुनिक युग की समाप्ति की घोषणा की थी तथा 1918–1939 के बीच के समय के लिये उत्तर आधुनिक शब्द का प्रयोग किया था। टॉयनबी के अनुसार इसके मसीहा फ्रेडरिक नीत्शे थे।

उत्तरआधुनिकता आधुनिकता का चरमोत्कर्ष है। उत्तरआधुनिकता एक प्रवृत्ति अधिक है अपेक्षाकृत एक निश्चित विचार या दर्शन के। पृथक–पृथक क्षेत्रों में उत्तर आधुनिकता की चेतना के साथ पूर्व आधुनिकता की ओर देखना इसकी पहचान बनी रही।

औद्योगिक क्रान्ति के इस अद्भुत युग में समग्र मानव विचारधारा का परिवर्तन चक्र जिस तीव्र गति से घूमा है उस परिस्थिति की ओर जो ध्यानाकृष्ट करता है वह है उत्तरआधुनिकतावाद। यह शब्द परिभाषित होने की दृष्टि से अत्यन्त विवादास्पद है। चूंकि उत्तरआधुनिकता अनेक चिन्तकों के चिन्तन को अपने में समेटे हुए है अतः इसे परिभाषित करना असम्भव है।

उत्तरआधुनिकता की परिभाषा इसलिए भी नहीं हो सकती क्योंकि यह कोई दत्त वस्तु नहीं है। यह कला तथा साहित्य, वास्तुकला तथा नृत्य, दर्शन तथा भाषा खेलों में एक नहीं है। यदि सांख्य दर्शन[2] की शब्दावली का प्रयोग करें तो यह अदृष्ट या अव्यक्त, अव्याकृत तथा अप्रस्तुत की प्रस्तुति का प्रयास है।

उत्तरआधुनिकता के सूत्रों को समझे बिना हम अपने को नहीं समझ सकते क्योंकि वह न चाहने पर भी हमारे बोध में क्रियाशील है। अनेक विद्वान उत्तरआधुनिकता को तकनीक के दबाव से आगे मनुष्य के पराजय बोध का पर्याय मानते हैं तो कुछ पश्चिम का नया वैचारिक अस्त्र।

उत्तर आधुनिकता अन्तःसांस्कृतिक तथा अन्तर्सांस्कृतिक सम्बन्धों का मिश्रण है। उत्तर आधुनिकता में आधुनिक शब्द एक समाजशास्त्री[3] के अनुसार इस प्रकार है– ''आधुनिक बनने का अर्थ है विज्ञान को दुनिया को समझने का सर्वाधिक मान्य स्रोत मान लेना तथा पारंपरिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और प्रजातीय समुदायों के बीच के अन्तर को समाप्त कर देना।'' उत्तरआधुनिकता की स्थिति में किसी भी आदर्श एवं ज्ञान का आधार मानवता की आधुनिक चेतना होती है और यही उसे वैधता प्रदान करती है।

आर्नल्ड टॉयनबी के द्वारा लगभग सन् 1925 ई. तथा इहाव हसन के द्वारा सन् 1920 ई. के लगभग पूरे यूरोप में उत्तर आधुनिकतावाद को स्वीकार किया गया है। तत्पश्चात् ल्योतार, मिशन, फूको रोलवर्थ, जां बोद्रीला, ज कि देरिदा, पॉल डि मान तथा नीत्शे आदि विद्वानों के विचारों से अमेरिका में चर्चित होकर अमेरिकी विद्वानों के साहित्य माध्यम से भारत में आ गया है। बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में यह सभी भारतीय भाषाओं के केन्द्र में हो गया।

मेरे विचार से पाश्चात्य संस्कृति का भारतीय संस्कृति पर प्रभूत प्रभाव से होने वाला परिवर्तन ही उत्तर आधुनिकता है और इसका सूत्रपात तो बहुत पहले हो गया था परिवर्तन का तो यह नियम है कि वह संचीभूत होकर दृष्टिगत होता है।

'आधुनिक भारत उत्तर विद्रोह (Revolution of 1857) कालीन कृति कहा जाता है[4] परन्तु वस्तुतः आधुनिक युग का आरम्भ यदि भारत में रानी विक्टोरिया की घोषणा (1858) के उपरान्त ही माना जाय तो उचित रहेगा, जबकि

भारतीय इतिहास में आधुनिक युग का आरम्भ अंग्रेजों के आगमन से माना जाता है। महात्मा गाँधी ने पहले ही कहा था कि– 'अंग्रेज चाहे भारत में रह सकते हैं पर अंग्रेजी भाषा व अंग्रेजी वातावरण भारत से जाना चाहिए।' अंग्रेजों ने जो भी परिवर्तन किए बड़ी कूटनीति से किए परन्तु लार्ड मैकाले ने भारत में अंग्रेजी भाषा का बीजारोपण किया क्योंकि वह तो चाहता था कि– "भारत में एक ऐसा वर्ग उत्पन्न किया जाय जो रक्त में और रंग में तो भारतीय हो परन्तु रूचि, विचार, नीति और मेधा में अंग्रेज हो।"[5] और इस प्रकार अंग्रेजी भाषा प्रसार, यातायात के साधनों का विकास ईसाई धर्म का प्रचार, सरकारी नौकरियों का प्रलोभन, भारतीयों का पश्चिमी देशों से सम्पर्क तथा औद्योगिक व तकनीकी विकास जैसे साधनों ने पाश्चात्य सभ्यता का विधिवत् प्रसार किया।

कुछ विद्वानों के अनुसार भारत में अभी उत्तरआधुनिकता नहीं आई है परन्तु ऐसा नहीं है बहुत से ऐसे लक्षण विद्यमान हैं जो उत्तरआधुनिकता की दस्तक दे रहे हैं। मानव इतिहास के प्राचीन युग का लोप होने को है। आफिस, बैंक, सुपर मार्केट, हॉस्पिटल, स्कूल–विश्वविद्यालय, घर, धर्म, दर्शन सभी के पुराने पैटर्न चरमरा जाने से हमारी जीवनशैली बदल गई है जिसका कारण 'ग्लोबल पावर स्ट्रक्चर' है।

उत्तर आधुनिकतावाद – एक ऐसा आकस्मिक परिवर्तन, जिस की चाकचक्य में हर कोई भौचक्का है। भारत में तो समृद्ध पूँजीवाद देशों के द्वारा औद्योगिक, तकनीकी, कम्प्यूटरीकृत, इलेक्टॉनिक तथा इन्फॉर्मेशन बायोटेक्नालॉजी के साथ एक ऐसा आर्थिक तन्त्र नियुक्त किया जा रहा है जो समाज, संस्कृति, राज्य, राष्ट्र व राजनीति में परिवर्तन कर रहा है और इस परिवर्तन चक्र को मीडिया बल प्रदान कर रहा है। बाजारवादी, नीति के पश्चिमी देशों द्वारा राष्ट्र की समूची व्यवस्था बदलने वाले इस तन्त्र की पोल जब एक पत्रकार और समाजशास्त्री[6] ने एक पुस्तक[7] लिखकर खोलनी चाही तो उस पुस्तक को कुछ देशों ने प्रतिबन्धित कर दिया गया परन्तु भारत ने नहीं क्योकि भारत उत्तरआधुनिकता के इस युग में नव औपनिवेशिक गुलामी को तैयार है परन्तु यह चिन्तनीय है कि भूमण्डलीकरण, वैश्वीकरण, उदारीकरण आदि के पीछे सुपर–पावर देश आखिर चाहते क्या हैं? विकेन्द्रीकरण का शक्तितन्त्र इस धरती पर रक्त पात रहित अधिकार करने का एकाएक उत्पन्न नहीं हुआ है। बल्कि इसका एक कार्यकारण सम्बन्धों से युक्त श्रृंखलाबद्ध इतिहास है। अल्विन टॉफ्लर ने तीन पुस्तकें लिखकर आधुनिकतावाद को समग्रता में प्रस्तुत कर दिया है।[8] तीनों का विषय एक ही है। नवीन परिवर्तन।

परिवर्तन की प्रथम लहर कृषि क्रान्ति से, द्वितीय औद्योगिक क्रान्ति से और तीसरी तकनीकी एवं सामाजिक परिवर्तन से आ रही है। निश्चय ही गाँधीवादी विचार और स्वदेशी को समाप्त करने का प्रयास चल रहा है। कम्प्यूटर क्रान्ति क्या सन्देश दे रही है? ग्लोबलाइजेशन उदारीकरण के पीछे हाई टेक्नॉलॉजी वाले देशों का इरादा क्या है?चिन्तन का विषय हैं।

उत्तरआधुनिकता वाद के प्रवर्तक[9] के अनुसार उत्तरआधुनिकता वाद एक नया अर्थ अवश्य ग्रहण किए हैं परन्तु यह आधुनिकता के युग का ही नया विस्तार है। आधुनिकता की पुनर्व्याख्या ही उत्तरआधुनिकता है। एक अन्य विद्वान्[10] के अनुसार शब्द परम्परा तथा अर्थ परम्परा को संस्कृति का सहारा चाहिये अर्थात् शब्द या लेखन सांस्कृतिक कर्म का स्रोत है पर इस स्रोत तक पहुँचना कठिन काम है।

उत्तरआधुनिकतावाद ने संरचनावाद, प्रतीकवाद, फ्रायडवाद, मार्क्सवाद, सौन्दर्यशास्त्र, नई समीक्षा, अस्तित्वादी, विचार–दृष्टि, तथा मिथकीय आलोचना को नकार दिया है। जिसका पर्याय प्रभाव सिद्धान्त चिन्तन तथा साहित्य सृजन पर पड़ा है। उत्तर आधुनिकतावाद इन पूर्व सिद्धान्तों का विरोध करता हुआ अपने सिद्धान्त का निर्माण करता है।

उत्तरआधुनिकतावाद, एक व्यापक संश्टिलिष्ट अवधारणा है। मूलतः यह बींसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की नव पूँजीवादी, नवसाम्राज्यवादी, विचारधारा है। एक ऐसी चुनौती पूर्णविचारधारा है जो समस्त मानवीय चिन्तन, साहित्य व्यवस्था, विचाराधारा, धर्म, दर्शन, इतिहास, आन्दोलन, प्रवृत्तिवाद, सभ्यता, संस्कृति, मूलव्यवस्था सभी को 'उत्तर' घोषित कर रही है।

उत्तरआधुनिकतावाद के आधारभूत लक्षणों पर चिन्तन करने से निष्कर्ष निकलता है कि उत्तरआधुनिकतावाद के दशक के मुक्ति आन्दोलनों से उत्पन्न रेडिकल आन्दोलन है जो सभी पुरानी विचारधाराओं संस्थाओं, व्यवस्थाओं पर न केवल प्रश्नचिन्ह लगाता है। प्रत्युत् उन्हें आप्रासंगिक प्रमाणित कर दिया है। पुराना चिन्तन, साहित्य, कला, की शास्त्रीयता को महत्वहीन सिद्ध कर रहा है। मेडिकल ज्ञान की विशेषज्ञता को समाप्त कर भगवान माने जाने वाले डॉक्टर को व्यावसायिक बना रहा है।

नव उपनिवेशवाद से हमारी स्मृतिभ्रंश की सम्भावना है और स्मृति को नष्ट करके ही किसी को स्थाई रूप से गुलाम बनाया जा सकता है।

भारत में आधुनिकतावाद भी ठीक से आ पाये उससे पहले ही उत्तरआधुनिकतावाद का तूफान आ गया और इतना अनन्त विस्तार लिया कि फिल्म, फैशन, विचार, विज्ञापन, संस्कृति, इतिहास, धर्म, दर्शन, कला, साहित्य, मीडिया आदि सभी उत्तरआधुनिकतावाद का शिकार हो गये तथा गाँधीदर्शन का अन्त। परिणाम यह हुआ कि भारत में श्री भीमराव अम्बेडकर के दर्शन का उदय हुआ।[11]

उत्तरआधुनिकतावाद में प्रत्येक अवधारणा, अनिश्चयवादी है। एक प्रकार से उत्तरआधुनिकतावाद आधुनिकता पर ही पुनर्चिन्तन है। उत्तरआधुनिकतावादी दृष्टि सभी पुरानी समीक्षा दृष्टियों को अर्थहीन मानती है और समग्र शक्ति से अभिजात्यवादी चक्रव्यूह को भेदना चाहती है जिसमें अभिजात्य वर्ग द्वारा निर्मित वर्णव्यवस्था, मानवमूल्य आदि सार्वभौमिक प्रतिमान प्रतिष्ठित है।

हमें ग्लोबल बनाने का चक्रव्यूह रचता हुआ उत्तरआधुनिकतावाद पूर्व सिद्धांत दृष्टियों का विरोध कर अपने सिद्धान्त बना रहा है। इसने साहित्य चिन्तन की नवीन वैचारिक प्राविधियां, शैलियाँ एवं पद्धतियाँ पल्लवित की हैं। आज ललित कलायें इसी की नूतन प्रवृत्तियों को प्रदर्शित कर रही हैं और भारत में तहे दिल से इसका स्वागत किया जा रहा है मल्टीमीडिया, मल्टीचैनल व मल्टीनेशनल्स के माध्यम से।

उत्तरआधुनिकतावाद बाजारवाद के माध्यम से नई कम्पनियाँ खोलकर नौकरियों के नये अवसर प्रदान कर रहा है पर क्या हमने कभी सोचा है कि इसके पीछे इसका मतलब क्या है?

वर्तमान समय में हमारी राजनीति ने लोकतन्त्र की बहुलतावादी नीतियों को संकटापन्न कर दिया है। सब ओर जनतन्त्र राजनैतिक प्रदूषण से व्याकुल है चिन्तनीय है कि यह बहुलतावाद अराजकतावाद के रूप में प्रस्तुत हो रहा है।

उत्तरआधुनिकतावाद में दमित और दलित समूह चिन्तन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है क्योंकि उत्तरआधुनिकतावाद की यात्रा केन्द्र से परिधि की ओर है इसका कारण है केन्द्र वाद का विरोधी होना। पुराने एकीकृत केन्द्रों की जगह नए समीकरण ले रहे हैं संस्कृत और संस्कृति दोनों ही बाजार की वस्तु बन चुके हैं।

विकेन्द्रीयता का विभिन्नता से एक क्रियात्मक सम्बन्ध है अतः विभिन्नता अलग चिन्तन का एक विषय नहीं है। प्रत्येक श्वास के साथ 'कर्ता का अन्त'[12] करता हुआ उत्तर उत्तरआधुनिकतावाद इलेक्ट्रॉनिक मानव को यथार्थ रूप प्रदान कर रहा है। उक्त दोनों से सम्बद्ध ही एक और तत्त्व चिन्तनीय है और वह है स्थानीयता। मध्यप्रदेश और बिहार की जनजातियों पर ध्यानकृष्ट होना इसका उदाहरण है।

उत्तरआधुनिकतावाद के इस दौर में मानव आणविक विनाश की ओर अग्रसर है। प्रकृति से नाता तोड़कर उसे अपनी इच्छापूर्ति हेतु क्रीतदासी बनने में सफलता प्राप्त करना चाहता है।

इसी प्रकार अंतवाद अर्थात् प्राचीन महान् आदर्शों महान आख्यानों तथा महान् मूल्यों का अन्त चिन्तन का मुद्दा है क्योंकि ''अन्तवाद' एक स्थाई मनःस्थिति है यह वह मनोभूमिका है, जिसने पूरे युग पर अपना कब्जा बना लिया है।''[13] सभी महान् आख्यानों का अन्त, वाद, विचार, इतिहास, तथा रूपये की आत्मा का अन्त। यहाँ तक कि प्रतीकवाद, पूँजीवाद, मार्क्सवाद, आधुनिकतावाद, संरचनावाद आदि सब 'पोस्ट' (उत्तर) हो गये हैं और इतना

बड़ा रूपान्तरण हमारी संस्कृति सहन कर रही है।

युगल विपरीतता से अभिप्राय है– दो विपरीत समूहों का एक–दूसरे से इस प्रकार जुड़ा होना कि उन्हें एकाएक पृथक् न किया जा सके और इस युगल सम्बन्ध में एक दूसरे पर प्रभुत्ववाद को समाप्त करके नारीवाद को प्रतिष्ठा प्रदान कर रहा है। नारी–नारी के साथ रह सकती है अर्थात् समलैंगिकता को मान्यता देकर प्रकृति के साथ खिलवाड़ करना यह भी एक आयाम है। उत्तरआधुनिकतावाद पर चिन्तन का क्योंकि 'नारी' आज अपनी अस्मिता बनाने पर अमादा है। इसे स्वायत्तता भी कह सकते हैं।

उत्तरआधुनिकतावाद अभिजात्यवादी कला–संस्कृति को लोकप्रिय संस्कृति से कमतर आँकता है तथा ज्ञान–विज्ञान की पूर्वनिश्चित सीमाओं से पूरे अन्तर्विषयीय चिन्तन को बढ़ावा देता है साथ ही किसी प्रकार के पूर्णतावाद को नहीं मानता। इन्द्रिय सुख को सर्वोपरि सिद्ध कर रहा है। उपभोक्तावाद भारत को लालच दे रहा है। उत्तरआधुनिकतावाद यथार्थ को चिह्नवाद के रूप में परिभाषित करता है क्योंकि हम यथार्थ को चिह्नों से पहचानते हैं।

इस प्रकार उत्तरआधुनिकता ने सांस्कृतिक सीमाओं में घुसपैठ कर तकनीकी और भूमण्डलीकृत पूँजीवाद के द्वारा दुनिया के तमाम देशों की भौगोलिक सीमाओं को हिलाना आरम्भ कर दिया है। हमारे ज्ञान के उपकरण पुराने होने लगे हैं। धन एक भाषा या संवाद बन रहा है।

कुछ भी हो उत्तरआधुनिकता का एक सापेक्षिक महत्व है क्योंकि उत्तर आधुनिकता एक तुलनात्मक धारणा है। उत्तरआधुनिकता न तो अंग्रेजी शब्द पोस्टमार्डर्निज्म का पर्याय है और न ही आधुनिकता का विलोम। यदि हम इसे पूर्वमीमांसा व उत्तरमीमांसा[14] से तुलना के आधार पर समझें तो उत्तरआधुनिकता आधुनिकता के बाद की स्थिति है। इसने लोगों को प्रकृति और पारिस्थिति की ओर लौट चलने की स्थिति में ला दिया है। उत्तरआधुनिकता ने ज्ञान की समस्याओं से सत्तामीमांसाक समस्याओं का महत्व बढ़ जाने की स्थिति को बड़ी नाटकीयता से सामने रखा है।[15] उत्तर आधुनिकता ने भारतीय होने की भावना जगा दी है।

सन्दर्भ संकेत

1. ए स्टडी ऑफ हिस्ट्री।
2. भारतीय शड्दर्शन में एक। इसके प्रवर्तक आचार्य कपिल हैं।
3. अभिजित पाठक
4. ओमाली के शब्दों में।
5. लार्ड मैकाले।
6. ऑल्विन टॉफलर।
7. द वर्ड वेब
8. फ्यूचर शॉक, दि वर्ड वेब, पावर शिफ्ट।
9. जी फ्रांसुवाँ ल्योतार।
10. ज कि देरिदा।
11. अम्बेदकर और भारतीय समाज व्यवस्था डॉ0 कृष्ण दत्त पॉलीवाल।
12. मानव और मानव संवदेना को निरर्थक सिद्ध करना।
13. फ्रेंक कर्मोड।
14. भारतीय शड् दर्शनों में से एक युगल।
15. पोस्ट मॉडर्निस्ट फिक्शन पृ0 10

❑❑

हिन्दी साहित्य में साम्प्रदायिक सौहार्द की भावना

डॉ0. सुमन सिंह
एसो0 प्रोफेसर–हिन्दी विभाग
दयानन्द गर्ल्स पी0जी0 कालेज कानपुर

उत्कृष्ट साहित्य वही है जिसमें अपने समय की ज्वलंत समस्याओं का निराकरण किसी न किसी रूप में प्रस्तुत हो। भारतीय जीवन में साम्प्रदायिक वैमनस्यता बहुत पुरानी है और आज तक इस समस्या का कोई भी समाधान नही निकल पाया है। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी जैसे महान् नेता ने अपना सारा जीवन साम्प्रदायिक सौहार्द के लिए समर्पित कर दिया, परन्तु इसका कोई वैज्ञानिक समाधान निकलने की जगह साम्प्रदायिक वैमनस्य दिन–प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। आज धर्मान्धता, साम्प्रदायिकता और प्रादेशिकता का अभिशाप देश के किसी न किसी हिस्से को अपने चपेट में घसीट रहा है। कोई भी धर्म या जाति हो छोटी–छोटी बातों को लेकर मार–काट और आगजनी की घटनायें होती ही रहती है। देश के राजनीतिक दल भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में साम्प्रदायिक भावना को उभार कर आम चुनाव में अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए संकीर्ण राजनीतिक प्रवृति का परिचय देने से नही चूकते। हिन्दी साहित्य अनेक ज्वलंत समस्याओं के साथ साम्प्रदायिक भावना के नये–नये बिन्दुओं को उभारते हुए समाज के तार–तार हुए अस्तित्व को बेनकाब कर साम्प्रदायिक सौहार्द की भावना को प्रबल करता है, क्योंकि हर युग की हर करवट संस्कृतियों का प्रत्येक उतार–चढ़ाव मानव की समस्त जय–पराजय का इतिहास साहित्य से अछूता नही रहता है।

यह एक दुखद किन्तु वास्तविक तथ्य है कि नवें दशक में साम्प्रदायिकता और अलगाववाद नये सिर से फूटे हैं। खालिस्तान, राम–जन्मभूमि, बाबरी मस्जिद कश्मीर समस्या, उल्फा आन्दोलन, नक्सलवाद आदि एक के बाद एक मुद्दे और हैं। आज पूरे सामाजिक, राजनीतिक परिवेश पर जातिवाद व सम्प्रदायवाद हावी है। भगवान के पाखण्डी सन्तों, इमाम के फरमानों, अरदासों एवं जातीय संकीर्णता ने आतंकवाद साम्प्रदायिकता को बढ़ावा दिया। संवेदनशील रचनाकारों ने इस बात को बहुत गहराई से महसूस किया और नफरत की इस आग को ठंडा करने के लिए अपनी लेखनी को माध्यम बनाया। चाहे कहानी हो, उपन्यास या कविता सभी विधाओं में इस समस्या का वर्णन एवं समाधान कर जनमानस को एकसूत्र में बाँधने का जो प्रयत्न हिन्दी साहित्यकारों ने किया वे सराहनीय है। सन्त कबीर से लेकर आज तक के साहित्यकारों ने इस समस्या को जड़ से पकड़ा।

प्रेमचन्द्र साम्प्रदायिक वैमनस्य फैलाने का दायित्व दोनों जातियों के धार्मिक नेताओं को मानते हैं। वे धर्म की दुहाई देने वालों को सलाह देते हैं– ''पाँचों वक्त की नमाज पढ़िये, तीसो रोजे रखिये, देवताओं की जितनी पूजा चाहे कीजिए, जितनी संध्या चाहे कीजिए, हवन की सुगन्ध से देश को सुगन्धित कर दीजिए, मगर धर्म को राजनीति से गड़बड़ न कीजिये क्योंकि धर्म ईश्वर और मनुष्य के सम्बन्ध की वस्तु है हम तो यहाँ तक कहते हैं कि अगर आपके धर्म में कुछ ऐसी बातें है, जो राष्ट्रीयता की परीक्षा में पूरी नही उतरती, सार्वदेशिक हितों में बाधक होती है, तो उन्हे त्याज्य समझिये''[1] यही नही वे साम्प्रदायिक आधार पर सरकारी नौकरियों में आरक्षण के विरूद्ध थे। उन्होने सरकारी नौकरियों और साम्प्रदायिकता शीर्षक में इस नीति का विरोध करते हुए लिखा हैं–''नौकरियों को इस प्रकार के विभाजन से क्या होगा? साम्प्रदायिक द्वेष की मनोवृत्ति पनपेगी धर्मान्धता बढ़ेगी, ह्रदय ईर्ष्यालु होगे, योग्यता का मूल्य गिर जायेगा। हल मूल्य रहेगा साम्प्रदायिकता का । उसी का भयानक ताण्डव दृष्टिगोचर होगा, और यह राष्ट्र के लिए कितना घातक हो सकता है, यह किसी भी समझदार व्यक्ति की समझ से बाहर की बात नही है।''[2] प्रेमचन्द्र का दृष्टिकोण हिन्दू–मुस्लिम सम्बन्धों को लेकर बहुत ही तर्क संगत और वैज्ञानिक रहा है।

कायाकल्प, कर्मभूमि, सेवासदन और प्रेमाश्रम में साम्प्रदायिक दंगो की निराधारता, असंगति और बेतुकेपन का पर्दाफाश करते हैं और साम्प्रदायिक समस्या के समाधान के लिए चक्रधर और महमूद जैसे आदर्श पात्रों का चयन करते हैं।

कितने पाकिस्तान, झूठा–सच, आधा–गाँव और तमस जैसे अनेक उपन्यासों व कहानियों में साम्प्रदायिकता जैसे मुद्‌दों को उठाया गया है। जो हमारी विगलित मान्यताओं और गैर संस्कृति, रूढ़िवादिता को दर्शाती है। आधा–गाँव समाज की एक ऐसी मुकम्म्ल तस्वीर बनाता है,– ''जो छोटे लोगों के छुटपन को न नापकर छोटी समझी जाने वाली बातों में से उन बड़े और गम्भीर सवालों को उठाता है जो आज तक पूरे देश की जिदंगी में जहर घोल हुये है।''[3] यह उपन्यास हिन्दी साहित्य में मुस्लिम जीवन और संस्कृति को चित्रित करने वाला संभवतः पहला उपन्यास है। समय की कथा कहने के लिए जिन पक्षों को विस्तार से लिखा गया है उनमें सामाजिक धार्मिक आर्थिक एवं सामंती पक्ष के साथ साम्प्रदायिक एकता व सौहार्द तथा देश को स्वतन्त्र राज्यों की छोटी–छोटी इकाइयों में बँटे रहने का कुचक्र फैलाकर एक ओर साम्प्रदायिकता का विष बीज बोया और दूसरी ओर भारत की प्रगति में बाधा पहुँचाने का हर सम्भव प्रयत्न किया। हिन्दी साहित्यकारों की दृष्टि देश की इस विषमता की ओर गयी और उन्होनें मानवतावादी भूमिका पर साम्प्रदायिक विद्वेष की भावना को विनष्ट करने का स्तुत्य प्रयास किया। इस दृष्टि से रांगेय राघव का 'विषाद मठ' देवेन्द्र सत्यार्थी' कठपुतली उदयशंकर भट्‌ट का 'नये मोड़' तथा आचार्य द्विवेदीजी के बाण भट्‌ट की आत्मकथा व अन्य उपन्यास व कहानियाँ उल्लेखनीय है। साम्प्रदायिक और राजनीतिक विषमता के मध्य उदात्त मानवता को अभिव्यक्ति देते हुए रांगेव राघव ने विषाद मठ, की भूमिका में देश की खण्डित आत्मा के प्रति अपनी संवेदना इन शब्दों में प्रकट की है–''जब भारत की शक्ति खण्ड–खण्ड होकर एक दूसरे से लड़ रही थी, जब फूल के बल पर साम्राज्यवाद का भीषण पाप फैल रहा था, हिन्दुस्तान की जनता राहों पर कराह–कराह कर दम तोड़ रही थी। उस समय भी मनुष्य को अपनी सभ्यता पर गर्व था।''[5] कठपुतली में भी अतिशय संवेदना की भूमिका पर भारत विभाजन के उपरान्त साम्प्रदायिक दंगों से उत्पन्न विषमता का हृदयस्पर्शी चित्रण हुआ है। नायक सुनील इन साम्प्रदायिक क्रूरताओं के बीच अपनी कलात्मक अनुभूति की प्रतिष्ठा करता हुआ समाज को सौहार्द और मानवीयता की दिशा देता है। सुनील की चेतना वस्तुतः लेखक के व्यक्तित्व की चेतना है। जिसका विकास सम्पूर्ण राष्ट्रीय परिवेश में किया गया है। देश–विभाजन, साम्प्रदायिक दंगें, स्वार्थी प्रवृतियों के विकास, अन्याय, अतिचार ओर शोषण इन सबके मध्य संवेदनशील सुनील भटकता फिरता हैं और समाज की ये विघटनकारी प्रवृतियाँ उसकी आत्मा को झकझोरती रहती है। इसी तरह 'नये मोड़' व 'बाणभट्‌ट की आत्मकथा' में भी साम्प्रदायिक–विरोधी विचार प्रकट हुए है। 'नये मोड़' की नायिका शेफाली भी साम्प्रदायिकता सौहार्द बनाये रखने के लिए पुरजोर कोशिश करती हैं बाणभट्‌ट की भट्‌टनी साम्प्रदायिक विरोधी भावना को अभिव्यक्ति देती हुई कहती है ''तुम यदि किसी यवन कन्या से विवाह करो तो इस देश मे ंयह एक भयंकर सामाजिक विद्रोह माना जायेगा। परन्तु यह क्या सत्य नही है कि यवन कन्या भी मनुष्य हैं और ब्राह्मण युवा भी मनुष्य है।''[6] अर्थात सभी लोग धर्मान्धता को छोड़कर सच्चे धर्म मानव धर्म को समझे तो समाज मे साम्प्रदायिक सौहार्द की भावना बनी रहेगीः क्योंकि सत्य, प्रेम और न्याय ही मानवता का आधार है।

उपन्यास के अतिरिक्त साम्प्रदायिक वैमनस्य की समस्या को कहानियों के माध्यम से भी व्यक्त किया गया हैं। जिसमें क्षमा, न्याय सद्‌गति मन्दिर, दिल की रानी आदि कहानियों में साम्प्रदायिक द्वेष के साथ साथ धार्मिक आडम्बर को भी उकेरा गया है। धार्मिक उदात्तता के अन्तर्गत सर्व–धर्म में समभाव तथा अहिंसा का बड़ा महत्व हैं। अहिंसा के इस महत्व का प्रतिपादन प्रेमचन्द्र ने अपनी कहानी क्षमा में किया है। मुस्लिम शेख हसन का बेटा इसाई दाउद द्वारा मार दिया जाता है। फिर भी शेख उसको क्षमा कर देता है। क्योंकि इस्लाम में क्षमा और दया का आदर्श ही सर्वोच्चय है। वह दाउद से कहता है– ''दाउद मैंने तुम्हे माफ किया।........ विजय गर्व ने मुसलमानों की मति हर ली है हमारे पाक नवी ने यह शिक्षा नही दी थी, जिस पर आज हम चल रहे हैं। वह स्वयं दया और

क्षमा का सर्वोच्चय आर्दश है। मैं इस्लाम के नाम बट्टा नही लगाऊँगा।''[7] इसी तहर 'दिल की रानी में भी साम्प्रदायिक एकता के आदर्श की प्रतिष्ठा हुई है। मन्दिर और मस्जिद में कोई भेद नहीं, सभी ईश्वर की सन्तान हैं। इसी भाव को निराला ने 'अप्सरा' में व्यक्त किया हैं। उनकी मान्यता है कि– ''आदमी –आदमी है और ऊँचे शास्त्रों के अनुसार सब लोग एक ही परमात्मा से हुये है।''[8] बेचन शर्मा उग्र के चन्द्र हसीनों के खतूत तथा सरकार तुम्हारी आँखों में भी हिन्दू, मुस्लिम एकता का आदर्श स्थापित करने का प्रयास किया गया है।

साम्प्रदायिक द्वेष ने भारत को एक सुदृढ़ राष्ट्र बनने में बाधायें उत्पन्न की हैं। सात्यिकारों ने अपनी सशक्त रचनाओं के माध्यम से इन अस्वस्थ्य प्रवृतियों को समाप्त करने की दिशा में प्रयत्न किया और जनता को व्यावहारिक स्तर पर चिन्तन करने की प्रेरणा प्रदान की। इस दृष्टि से उदयशंकर भट्ट का नाटक ''दादर' सेठ गोविन्द दास का 'कुलीनता', हरि कृष्ण प्रेमी के 'रक्षा बन्धन', स्वप्न भंग और ' शिव साधना' आदि नाटकों में साम्प्रदायिक सौहार्द के आदर्श को विशेष महत्व दिया गया है। प्रेमी जी अपने समय के हिन्दू–मुस्लिम वैमनस्य से परिचित थे। उन्होने इतिहास के आधार पर लिखित अपनी इन कृतियों में इन दोनो सम्प्रदायों के बीच सद्भाव का आदर्श प्रतिष्ठित किया है। उपेन्द्रनाथ अश्क की एकांकी 'तूफान से पहले' इस सन्दर्भ में विशेष उल्लेखनीय है। इसमे अश्क जी ने साम्प्रदायिक जीवन की कटुता को अभिव्यक्ति दी है। एकांकी का नायक घीसू सात्विकता और मानवीयता का प्रतीक हैं उसकी मृत्यु उस मानवीयता की मृत्यु है, जिसे इन दिनों साम्प्रदायिकता के सर्प ने डस लिया था। फिर भी लेखक को विश्वास है कि साम्प्रदायिकता का यह विष इस समाज के जीवन में हमेशा घुला नही रहेगा। साम्प्रदायिकता को भेंट चढ़ने वाला घीसू अपनी मृत्यु के क्षणों में लेखक की सदाशयता को इस प्रकार अभिव्यक्ति देता है –''एक तूफान आ रहा है।, जिसमें सब दादे, ये गुण्डे, ये धर्म और जाति–पाति के दर्प, गरीबों का लहू पीने वाले पूँजीपति, ये भोले–भोले लोगो को लड़वाकर अपना उल्लू सीधा करने वाले नेता सब मिट जायेगे। नयी दुनिया बसेगी, जिसमें गरीबों का, मजदूरों का राज होगा, जहाँ हिन्दू मुसलमान न होगे, काले–गोरे न होगे, सब इन्सान भाई–भाई होगे।''[9] इसी प्रकार सेठ गोविन्ददास कृत नाटक 'पाकिस्तान में भी हिन्दू–मुस्लिम वैमनस्य को दूर करने का प्रयास हुआ है। इसमें व्यक्ति की मानवीयता को जगाने का प्रयत्न सराहनीय है।

इन विधाओं के अतिरिक्त कविता में भी साम्प्रदायिक सौहार्द की भावनाओं को अभिव्यक्ति मिलती है। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष भाव से कवियों ने इस समस्या पर दृष्टिपात कर इन अस्वस्थ्य प्रवृतियों और परम्पराओं का विरोध करते हुए साम्य भाव, संतुलन व सामंजस्यपूर्ण दृष्टि को विकसित करने की प्रेरण दी। मध्य युग के सभी भक्त कवियों ने समाज में बढ़ते हुए धार्मिक भेद–भाव को दूर करने और परस्पर विरोधी सम्प्रदायों के बीच एकता और सद्भाव की प्रतिष्ठा करने हेतु भरसक प्रयास किया । धर्म तथा जाति–भेद की पराकाष्ठा के दुष्परिणामों को देखकर इन सन्तों–भक्तो ने आध्यत्मिक भूमिका ''ऊँच –नीच सब गोरख धन्धे, सब हैं उस अल्लाह के बन्दे'' कहकर विभिन्न धर्मो और जाति के लोगों को एक स्थान पर जुटाने और आपस में सबको ईश्वर की सन्तान के नाते समान समझने की उदात्त भावना का विकास किया। कवि ने तो हिन्दू और मुस्लिम धर्म के कट्टर पक्षधरों को बहुत ही स्पष्ट और कड़े स्वर में फटकार लगायी। कवि रज्जब का मानना है कि हिन्दू और मुस्लिम का ईश्वर की दृष्टि में कोई भेद नही हैं उसकी कृपा अपने प्रिय जीवों पर समान रूप से होती है–

''हिन्दू पावैगा वही,वो ही मुसलमान।
रज्जब किणका रहम का, अनहद में बिसराम।।'

सन्त कवि गरीबदास जी का भी मानना है कि सभी प्राणी एक ईश्वर के बन्दे है। फिर साम्प्रदायिक या जातीय भेदभाव कैसा–

''कैसे हिन्दू तुरक कहाया। सब ही एकै द्वारे आया।''[10]

मध्यकालीन सन्त–भक्त कवियों ने सामाजिक धार्मिक ऊहापोह के बीच भिन्न–भिन्न और परस्पर विरोधी भावनाओं को एक सूत्र में लाने का जो प्रयास किया है वह स्तुत्य है। उससे ईर्ष्या, घृणा, द्वेष, अंहकार, हिंसा से

आपूर्ण वातावरण के बीच सामाजिक समरसता व साम्प्रदायिक सौहार्द को अंकुरित होने में अवश्य ही सहायता मिली है।

साम्प्रदायिक एकता तथा उदात्त मानवीयता का चित्रण इन पक्तियों में साकार हो उठा है—

''जिस मन्दिर मस्जिद गिरजे में कैद पड़ा इन्सान हो
आओ उसमें किरन किवारा खोल दो।
कुंकुम पत्रो। भारत की जय बोल दो।''[11]

युगवाणी में पन्त जी एक ऐसे नव संस्कृति की कल्पना करते हैं जहाँ मानव—मानव में कोई भेद न हो। 'युग उपकरण' इस दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण कविता है। इसमें भारतीय सांस्कृतिक आदर्शों के उदात्त स्वरूप की प्रतिष्ठा की गई है।

''नम्र शक्ति वह जो सहिष्णु हो,निर्बल को बल करे प्रदान,
मूर्त प्रेम, मानव—मानव हो, जिसके लिये अभेद्य समान,
वह पवित्रता, जगती के कलुषों से जो न रहे संत्रस्त,
वह सुख, जो सर्वत्र सभी के सुख के लिये रहे सन्यस्त,
....
ऐसे उपकरणों से हो भव मानवता का पूर्ण विकास।''[12]

आज पूरे सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक परिवेश पर अपराध कर्मियों का प्रभुत्व है। भगवान बने सन्तों, इमाम के फरमानों अरदासों एवं जातीय संकीर्णता राजनीतिक लाभ, व आतंकवाद जैसे जघन्य अपराध को बढ़ाने में सहयोग प्रदान करते हैं। आज संवदेनशील रचनाकारों ने इस बात को बहुत गहराई से महसूस किया और नफरत की इस आग को ठंडा करने के लिए अपनी कविता को माध्यम बनाते हैं

''मन को मन्दिर बन जाना था। मन को मस्जिद बन जाना था।
मुझको साहेब बन जाना था। मुझको गिरिजा बन जाना था।
मगर ऐसा हो पाया। हर मन में हैंवान बस गया।
हर मन में शैतान बस गया। नफरत की गर्मी से धरती झुलस गयी''[13]

सच्चे साहित्यकार हमेशा निःस्वार्थ, निडर एवं सच्चे लोक सेवक के रूप में कार्यरत रहते हैं। साम्प्रदायिक वैमनस्य की समस्या आज की नही है, अन्तर केवल इतना है कि इसका रूप पहले से कही अधिक वीभत्स हो गया है। तद्‌युगीन साहित्यकारो ने अन्याय के स्थान पर न्याय, शोषण के स्थान पर पोषण और भक्षण के स्थान पर रक्षण का अपने साहित्य में शंखनाद कर मानव मनोवृत्ति को परिवर्तित करने का स्तुत्य प्रयास किया है।

मानवता, दया, उदारता क्षमा, प्रेम, सदाचार आदि जीवन मूल्य के स्तम्भ है। जिसे अपनाकर ही मानव, मानव बनता हैं। साहित्य ने इन जीवन मूल्यों के संवर्द्धन में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। जो मानव—जीवन को दिशा प्रदान करने के साथ—साथ उनके स्वरूप को सुन्दरतम् रूप प्रदान करते है। कैलाश परिहार साम्प्रदायिक सौहार्द के लिए एकता की भावना पर बल देते हैं—

''मशाल एकता की जलानी चाहिए,
सिर आतंकवाद का कुचलना चाहिए,
बरकरार है शहीदों का सिलसिला,
सम्हल कर अब हमें चलना चाहिए''[14]

वर्तमान समय में ऐसे साहित्य सृजन की आवश्यकता है, जो न केवल प्रेम तथा आत्मीयता भरे सद्‌भाव का अंकुरण करे, अपितु सम्पूर्ण प्रकरणों को शांतिपूर्वक परिवेश में सुनिश्चित करने के लिए उस हिंसक मन को प्रेरणा दे ताकि समाज में भाई—चारे का भाव स्थापित हो सके ताकि—

''मस्जिद में गीता मिले, मंदिर मिले कुरान'
विश्व गुरू हो जायेगा, फिर से हिन्दुस्तान''

जिस साम्प्रदायिक सौहार्द की कामना हमारे साहित्यकार करते हैं उसकी अनूठी मिशाल समाज में देखने को मिल ही जाती है। भले ही उसकी संख्या कम हो। उत्तर प्रदेशके औरैया के गाँव महतेपुर में सौहार्दपूर्ण आस्था की जो गंगा बह रही है, उसमें हिन्दू आचमन और मुस्लिम वजू एक साथ कर रहे है। ''यह गाँव कई पीढ़ियों से साम्प्रदायिक सौहार्द का मिसाल बना है। यहाँ दोनो सम्प्रदाय के लोग गंगा –जमुना सभ्यता को आत्मसात कर सभी त्योंहार आपस में मेल मिलाप के साथ मनाते है।''[15]

एक शायर का शेर उन तमाम लोगो के लिए नसीहत है जो मजहब के नाम पर दीवार खड़ी करने से बाज नहीं आते–

''होती नही फिरकापस्ती परिंदो में क्यूं ,
कभी मन्दिर पे जा बैठे, कभी मस्जिद पर जा बैठे।।''

ऐसे साम्प्रदायिक सौहार्द के अनूठी मिसाल है, कानपुर नवाबगंज के जान मोहम्मद और फर्रूखाबाद के अशोक कश्यप। जान मोहम्मद बरतल मन्दिर में पुजारी हैं,

तो अशोक कश्यप दरगाह कुरत उल्लाहशाह में गद्दी नशीन। ऐसे ही सामाजिक समरसता, भाईचारे और साम्प्रदायिक सौहार्द की मंगलकामना हिन्दी साहित्य में स्पष्ट लक्षित होती है। साहित्यकार की अन्तश्चेतना में अपने देश, समाज और अन्ततः मानव कल्याण की कामना रही है। ये जीवन के उच्चतर आदर्शों से प्रेरित रहे हैं। और उन्होंने सृष्टि में मानवीय संवदेना और सौहार्द का विस्तार करना चाहा है। पन्त जी की ये पक्तियाँ जैसे इस युग जीवन में प्रतिबद्ध प्रत्येक साहित्यिक की सात्विक आंकांक्षा को वाणी प्रदान करती है–''

''मै प्रेमी उच्चादर्शों का
संस्कृति के स्वर्गिक स्पर्शों का
जीवन के हर्ष विमर्शों का
लगता अपूर्ण मानव जीवन
मैं इच्छा से उन्मन उन्मन''

सन्दर्भ संकेत

1. प्रेमचन्द्र विविध प्रसंग भाग–2 हंस प्रकाशन, इलाहाबाद 1962, पृ.366
2. वही,पृ. 433
3. वर्तमान साहित्य जनवरी 2007, पृ,21
4. आधा–गाँव राही मासूम रजा– पृ, 174
5. विषाद मठ–रांगेय राघव भूमिका, पृ, 5–6
6. बाणभट्ट की आत्मकथा हजारी प्रसाद द्विवेद–पृ, 278
7. मानसरोवर प्रेमचन्द्र–पृ, 208
8. अप्सरा–निराला– पृ,
9. तूफान के पहले, उपेन्द्रनाथ अश्क –पृ,45
10. हिन्दी के कवि और काव्य, पृ. 240
11. लेखनी वेला, वीरेन्द्र मिश्र, पृ, 173
12. युगवाणी, पन्त, पृ, 17
13. आंका सूरज नांका सूरज केदारनाथ अग्रवाल–पृ ,40
14. अन्तराष्ट्रीय आतंकवाद और साहित्य –सं डॉ. नागेन्द्र, पृ, 94
15. दैनिक जागरण –23 सितम्बर 2010, पृ. 9

❑❑

27

उलटवंशी शैली और संत साहित्य

डॉ0 मंजुला श्रीवास्तव
असि0प्रो0–हिन्दी विभाग
दयानन्द गर्ल्स पी0जी0 कालेज, कानपुर।

'कबीर दास की उल्टी बानी, बरसै कम्बल भीगे पानी' वाली उक्ति लोक में प्रायः हम सुनते आ रहे हैं। कुछ लोग इसका स्रोत वेद से मानते हैं तो कुछ सिद्ध एवं नाथों की परम्परा से। इस शैली की परम्परा बहुत प्राचीन है। वेद, उपनिषद, सिद्ध, एवं नाथ से होती हुई, यह परम्परा संत साहित्य में दृष्टिगोचर होती है। डॉ0 रमेश चन्द्र मिश्र ने 'उलटवांसी' शब्द का अर्थ लोक क्रम के विपरीत जीवन व्यतीत 'उलट +वास' प्रतीत करने वाले साधक की वाणी, अनहदनाद 'उलट+वांशी–उलटवांसी–उलटवंशी –उलटवंसी–उलटवां+सी' प्रतीत होने वाली वाणी किया है। उलटवांसी काव्य शैली का वह रूप जिसमें साधकों ने अपनी गहन अनुभूतियों और विचारों को ऐसे ध्‍ ानीभूत प्रतिकात्मक माध्यम द्वारा अभिव्यक्त किया है जो वाह्य रूप से असम्बद्ध, असम्भव प्रतीत होता है किन्तु मूल रूप में सुसम्बद्ध और चमत्कारिक अर्थ का बोधक होता है। उलटवांसी शैली की रचनाओं को नाथ व संत साहित्य में उलटी चर्चा, उलटविद, उलटी, उलटी रीति, उलटी बात, विपर्यय आदि कई संज्ञाएँ प्राप्त हैं। उलटवासियों की चर्चा करते समय कुछ लोग उन्हें संधयभाषा अथावा 'संधाभाषा' नाम से भी सूचित करते है। 'संध्याभाषा' का अभिप्राय उस अस्पष्ट भाषा से है जो गोधूलि बेला की भाँति, कुछ प्रकाश एवं अंधकार से मिश्रित रहा करती है अर्थात् जिसकी बातों को प्रत्यक्षतः कुछ न कुछ समय लेने पर भी उसमें निहित रहस्य प्रायः अज्ञात ही रहा करता है। 'संध्याभाषा' शब्द का प्रयोग हमें सर्वप्रथम बौद्ध साहित्य में मिलता है। बौद्धों के प्रभाव से सिद्धों ने भी इसका प्रयोग किया है। 'संध्याभाषा' से उनका अभिप्राय सांकेतिक और परिभाषिक भाषा से था।

उलटवांसियों में जिन सांकेतिक शब्दों का प्रयोग होता है वे एकार्थक होते हैं, अतएव 'श्लेष' से भिन्न है। उलटवांसियों में विरोध मूल कथन होते है, जिनमें अर्थान्तर द्वारा विरोध का परिहार होता है। अतः विरोधाभास और उलटवांसियां भी एक नहीं होतीं। उलटवांसियों में प्रतीकों का विधान अनिवार्य रूप से होता है, क्योंकि प्रतीक साम्प्रदायिक होते हैं सार्वदेशीय नहीं। किन्तु नहीं। किन्तु प्रत्येक प्रतीक विधान उलटवांसी नहीं होता। प्रतीकों में विरोध अनिवार्य नहीं वे सादृश्यमूलक भी हो सकते हैं। उलटवांसियों में केवल विरोधमूलक प्रतीकों को ही स्थान मिलता है सादृश्यमूलक प्रतीकों को नहीं। गोरखनाथ ने उलटवांसी के लिए उलटी चरचा शब्द का प्रयोग किया है । कबीर ने उलटा वेद कहा है। संत सुन्दरदास ने उलटी बात संज्ञा से अभिहित किया है तथा 'विपर्यय कौ अंग' नामक शीर्षक से अपनी रचनाएं संगृहीत की है। 'संत पलटू साहब की बानी संग्रहों में उलटवांसी के स्थान पर' उलटावती' शब्द का प्रयोग मिलता है। पलटू साहब के उलटवांसी विषयक् अधिकांश पदों में 'अकथ कहानी' शब्द का प्रयोग हुआ है।

उलटवांसी ऐसी उक्ति है जो सामान्य प्रचलित लोक धारणा के विपरीत होती है और अपने अभिधार्थ में विरोधपूर्व और असम्भव प्रतीत होती है, किन्तु वस्तुतः यह किसी गूढ़ अर्थ की व्यंजना करती है। यह निरर्थक और बेतुकी नहीं होती।

संतों की उलटवांसियाँ सिद्धों और नाथों की उलटवांसियों से नितान्त भिन्न है। सिद्धों और नाथों ने अपनी साधना को सर्वबोधगम्य न बनाने के लिए केवल साधनापरक उलटवांसियाँ का प्रयोग किया है, कबीर आदि सतों की उलटवांसियाँ आध्यात्मपरक है। उसमें आध्यात्मिक रहस्य के संकेत हैं, जिनसे वे जनसामान्य को अवगत कराना

चाहते थे। उनकी उलटवांसियाँ में आनुभूतिक अभिव्यंजना है। कबीर आदि संतों की उलटवांसियाँ पढ़ने से ऐसा लगता है कि वे कुछ छिपाना नहीं चाहते।

कबीर की उलटवांसियाँ अपने अभिधार्थ में बेतुकेपन जैसी लगती हैं किन्तु उसके प्रतीकात्मक अर्थ बोध से कबीर की प्रतिभा का पता चलता है। उनकी एक ऐसी उलटवांसी द्रष्टव्य है–

एक अचंभा देखा रे भाई, ठाढ़ा सिंघ चरावै गाई।
पहलै पूत पीछै भई माई, चेला के गुरू लागै पाई।।
जल की मछली तरवर व्याई, पकरी बिलाई मुरगै खाई।
बैलहि डारी गूँनि धरि आई, कुता कूँ लै गई बिलाई।।
तलि कर साषा उपरि करि मूल, बहुत भांति जड़ लागै फूल।
कहै कबीर या पद को बूझै, तॉकू तीन्यूत्रिभुवन सूझै।।

संकेतार्थ–सिंध–मन। गाई–इन्द्रियां। पूत–जीव। माँई–माया। चेला–विनम्रता। गुरू–अहंकार। जल–विषयवासना। मछरी–मनोवृति। तरवर––उच्चतम रहनी की दशा। बिलाई–एकाग्रता। भाषा–इंन्द्रियां। उपरि–उपर मस्तिष्क। मूल–जड़, विचार। तीन्यूत्रिभुवन–इन्द्रिय, मस्तिष्क, ह्रदय ।

संत दादूदयाल ने कबीर के समान उलटवांसियों की रचना की है। पी अन्तर यह है कि इनकी उलटवांसियाँ अधिक स्पष्ट एवं सुबोध हैं। कबीर ने जहाँ अप्रस्तुत विधान का प्रयोग उलटवांसियों में किया है। वहाँ ये अप्रस्तुत विधान का प्रयोग उलटवांसियों में करते हैं–

मूनैं येह अचंम्भौ थाये।
कीड़ी ये हस्ती विडाश्यो, तेन्हैं बैठी खाये।।
जाण हुतौ ते बैठो हारे, अजाण तेन्है कर को साहैं।।
पांगुली उजाबा लाग्यौ, तैन्है कर तो साहैं।।
नान्हौ हुतौ ते मोटो थयौ, गगन मॅडल नहिं भाये।
माटेरौ विस्तार भणीजै, तेतो केन्हे जायै।।
ते जाणै जे निरखी जौवै, खोजी ने बलि माहैं।
दादू तेन्हौं मरम न जाणै, जे जिभ्या विहूणी गाये।

यद्यपि कि संत यारी साहब के साहित्य में उलटवांसी अत्यंत अल्पमात्रा में है। उनकी उलटवांसियों में अरबी फारसी के शब्दों का बाहुल्य है। कबीर की भॉति इनकी उलटवांसियों को समझने के लिए ज्यादा दिमागी कसरत की आवश्यकता नहीं है। यारी साहब की एक उलटवांसी द्रष्टव्य है–

जमी बरखै असमान भींजै, बिन बातिहिं तेल जलाइये जी।
जहॉ नूर तजल्ली बीच है रे, बेरंगी रंग दिखाइये जी।।
फूल बिना जदि फल हौवै, तदि हीर का लज्जत पाइये जी।
यारी कहै यहि कौन बुझै, यह का सों बात जनाइये जी।।

संकेतार्थ – जमी–मूलाधार चक्र से निकलने वाली कुण्डलिनी। असमान–ब्रह्मरन्ध्र। नूर–प्रकाश। तजल्ली–प्रकाश। हीर–गूदा।

उलटवांसी साहित्य को ध्यान पूर्वक देखने से विदित होता है कि इसमें प्रायः आत्मा, परमाप्मा, माया, ज्ञानग्नि, मन की चंचलता, ब्रह्मानन्द, काम क्रोधादि मायाभूत शत्रुओं के विनाश, संसार की असारता, परमपद का स्थायित्व

आदि प्रसंगों को लेकर अधिकांश रचनाएँ की गई हैं। इसीलिए प्रतीकात्मक शब्द प्रायः रचनाओं में समान ही मिलते हैं। इन उलटवांसियों के द्वारा सिद्धान्त का प्रचार तथा उसके प्रति जनमानस का आकर्षण बढ़ता है। संत रज्जब की एक विलक्षण उलटवांसी प्रस्तुत है–

संतों यहु गति उलटी जानी।
मूरति माहिं देहुरा आया, सुनि सतगुरू की बानी।
बीज माहै वृक्ष समानी, हाड़ी कण में पाकी।
कूँआ भरै कुंभ में पानी, कहत न आवै ताकी।।
ब्रह्म बूंद में घटा समानी, बाह बीजुली सेती।
अवनि अकाश गए ताही में, चपल चातकहि लेती।।
अक्षर माहै पोथी बैठी, बंचक बीज बिलाना।
जन रज्जब यहु अगम अगोचर, गुरू मुखि मारग जाना।।

संकेतार्थ – मूरति–जीवात्मा। देहुरा–माया ग्रस्त ब्रह्माड। हाड़ी–माया। कण–जीवात्मा। बीज–जीवात्मा। वृक्ष–संसार या माया। कुआं–माया। कुंभ–धट। ब्रह्मबूंद–जीवात्मा। घटा–माया। बाह–प्राणवायु। बीजुली–मन की चंचलता। अवनि–जड़माया। आकाश–आत्मा। चातक–तृषित मन। अक्षर–जीवात्मा। पोथी–मायाच्छादित विश्व। बंचक–माया। बीज–जीवात्मा।

संत सुन्दरदास ने उलटवांसी साहित्य को अपनी प्रतिभा से नया आयाम दिया। उन्होंने अपने जीवन के प्रयोगशाला में अनुभूति के आधार पर नये प्रतीकों का प्रयोग कर उलटवांसी की थकी हुयी गति को वेग प्रदान किया। संत साहित्य में सुन्दरदास की उलटवांसियों का अप्रतिम स्थान है। उन्होंने अपनी उलटवांसियों को 'विपर्यय कौ अंग' में प्रस्तुत किया है–

कीडी कुंजी कौं गिलै स्याल सिंह को षाइ।
सुन्दर जल ते माछली दौरि अग्नि में जाइ।।

x x x x

सुन्दर बरिषा अति भई सूकि गये नदि नार।
मेर बूडि जल में रह्यौ लाग्यौ इकसार।।

भाव–भाषा एवं आध्यात्मिक साधना के धरातल पर संत पलटू साहब का स्थान हिन्दी संत–साहित्य में अद्वितीय है। अपनी ओज एवं विद्रोहपूर्ण वाणी से द्वितीय कबीर के नाम से जाने जाते हैं। इनके साहित्य में उलटवांसी शैली की प्रमुखता है। प्रतिभा के धनी संत पलटू की एक उलटवांसी दृष्टव्य हैः–

एक अकथ कहानी मेरी है, कोई बूझै सखीरी।।
आगि में मीन नीर में जंगल, सिंह चरावै छैरी है।।
पर्वत उड़त आकाश में देखा, ससा स्वान को धेरी है।।
उलटा कूप गगन के बीचे, नीचे बसै पनिहारी है।।
अमावसी को चंदा देखा, पूर्नी रात अंधेरी है।।
सांप कैहां एक मेढक पकरै, काल्हू कैहां तिल पेरी है।।
पलटू दास कहैं संतन से, ऐसी मति अब मेरी है।।

संकेतार्थ–आगि–मनोविकार। मीन–जीवात्मा। नीर–आत्मा। जंगल–विषयवासनाएँ। सिंह–मन। छेरी–इन्द्रियां।

पर्वत–मन। ससा–अविवेक। श्वान–विवेक। उलटाकूप–ब्रह्मरंध्र। पनिहारी–इड़ा पिगला, कुण्डलिनी। अमावसी–विषयवासना। चंदा–ज्ञान। पूर्नी–जीवात्मा। अंधेरी–अज्ञान। साँप–ज्ञानेन्द्रियां। मेढ़क–विषयासक्ति। कोल्हू–शरीर। तिल पेरी–अंतःकरण।

उच्च कोटि की महिला उदासीन संत सुवचनदासी ने अपने साहित्य में उलटवांसी शैली का प्रयोग किया है। भोजपुरी भाषा में मिठास से सिक्त इनकी उलटवांसियां सहज ग्राह्य हैं। दासीजी ने अपने साहित्य में 'योग' वर्णन बड़े ही रोचक ढंग से किया है। इनकी एक उलटवांसी प्रस्तुत है–

हम देखा एक अचरज भाई। नइया में नदिया डूबल जाई।
बकुला के पकड़ सिधरिया खावै। रूधिर में गोता सिधरिया लगावै।
सिधरी जाल को भछन किया। उलटि मल्लाह को मुसुक दिया।
सिधरी अमर होइ सागर सोखी। आगि लहर में आप गये सूखी।
जगी जती सिध तपी सन्यासी। सिधरी खाय बिना रहत उदासी।
गुरू नानक हीरा सुबचन दासी। जुगुल किशोर चारों भए सुख रासी।

संकेतार्थ–नइया–शरीर। नदिया–जीवात्मा। बकुला–साधक। सिधरिया–माया। रूधिर–विषयासक्ति। जाल–विवेक। मल्लाह–साधक। मुसुक–जाल बांधना। सागर–ज्ञान । आग–ज्ञान विरह। लहर–विवेक।

संतो की उलटवांसियाँ सामाजिक विकृतियों पर पड़े हुए पर्दे को खोलकर रख देती हैं। उलटवांसी शैली से अशिक्षित या अर्द्धशिक्षित संतों के प्रतिभा एवं आध्यात्मिक शिखर का अन्दाज लगाया जा सकता है। डॉ0 परूषोत्तम अग्रवाल ने ठीक ही कहा है – ''अर्थ ऐसा खुलापन सम्भव करने वाली उटवांसियों को परिभाषित शब्दाली के व्यायाम के रूप में नहीं, जीवन, समाज, सत्ता और समय की विसंगतियों को देखने के न्यौते के रूप में पढ़ जाना चाहिए।

संदर्भ सूची

1. डॉ0 रमेश चन्द्र मिश्र, हिन्दी संतों का उलटवांसी साहित्य, पृ0 8–9
2. आ0 परशुराम चतुर्वेदी, कबीर साहित्य की परख, पृ0 180–81
3. आ0 परशुराम चतुर्वेदी, संतकाव्य, भूमिका, पृ0 80
4. उलटी चरचा गोरख गावै। गोरख वानी, पृ0 142
5. है कोई जगत गुरू ग्यॉनी, उलटि वेद बूझै। – कबीर ग्रंथावली, पृ0 141
6. सुन्दर कहत विचारि करि उलटी बात सुनाई । – डॉ0 रमेश चन्द्र मिश्र, सुन्दर साखी ग्रंथ, विपयर्य कौ अंग, 122/1
7. पलटू साहब की बानी, भाग–1, पृ0 74
8. एक अकथ कहानी मेरी है, कोई बुझै सखी री। – पलटू साहब की शब्दावली, पृ0 20/65
9. डॉ0 श्यामसन्दर दास, कबीर ग्रंस्थावली, पृ0 72/11
10. दादूदयाल की बानी, भाग–2, पृ0 85/213
11. यारी साहब की रत्नावली, पृ0 20/11
12. डॉ0 ब्रजलाल वर्मा, संत कवि रज्जब संप्रदाय और साहित्य, पृ0 304
13. डॉ0 रमेशचन्द्र मिश्र, सुन्दर साखी ग्रंथ, विपर्यय कौ अंग, साखी–4, 18
14. पलटू साहब की शब्दावली, पृ0 20/65
15. सुवचनदासी, अनुभव प्रकाश, पृ0 36

❑❑

राष्ट्रीय आंदोलन पर हिन्दी काव्य का प्रभाव

(09–01–1915 से 15–08–1947 तक)

डॉ0 श्याम शंकर सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
राजीव गाँधी विश्वविद्यालय,दोइमुख–791112 (अरुणाचल प्रदेश)

राष्ट्रीय आंदोलन से अभिप्राय

राष्ट्रीय आंदोलन मुक्ति प्राप्ति हेतु घटित हुआ था। इसमें राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, नैतिक, धार्मिक, साहित्यिक (शिक्षण संस्थानों में आधुनिक भारतीय भाषाओं को शामिल करवाने हेतु), भाषा संबंधी (राज्यभाषा, राष्ट्रभाषा संबंधी हुए प्रयत्न), लिपि संबंधी (राज्य लिपि, राष्ट्रलिपि), उपचार की देशज प्रामाणिक पद्धतियाँ, न जाने कितने मुद्दे थे।

एक मनीषी के अनुसार मुक्ति का अर्थ हैः 'समूचे व्यक्तित्व के विकास के लिए पूर्ण सुविधाओं की प्राप्ति और व्यक्तित्व–रोधी समस्त बाधाओं की समाप्ति'।[1]

राष्ट्रीय आंदोलन और अरुणाचल

राष्ट्र के कई–एक अंचलों के संदर्भ में राष्ट्रीय आंदोलन की लहर की अवधि को राजनीतिक स्वतंत्रता की प्राप्ति की पूर्व संध्या तक सीमित करना ज्यादा दूर तक सार्थक न होगा। पं.जवाहरलाल नेहरू ने स्वाधीनता तिथि में प्रविष्ट होने के अवसर पर जो भाषण दिया था, उससे यही स्पष्ट होता हैः

है पूरी होना जीवन मुक्ता, डोर, ।3 1954 तक फ्रांसीसियों से और 1961 तक पुर्तगालियों से कुछ क्षेत्रों को मुक्त कराया जा सका। 16 मई, 1975 तक सिक्किम को मिलाने के समर्थन में सफलता मिली।

स्वतंत्रता संग्राम के प्रारंभिक चरण में अरुणाचल में घटित जनजाति प्रतिरोध की गाथाओं का उल्लेख आवश्यक है। लोहित सीमांत मंडल में 1854 में 2 धर्म प्रचारकों– क्रिक और उसके सहकर्मी डॉ. बोरी की हत्या कर दी गयी थी। फरवरी, 1855 में इस विद्रोह का शमन किया गया।तिरप सीमांत मंडल के नीनू गाँव में फरवरी 1878 को जयपुर के सहायक आयुक्त लेफ्टिनेंट होलकोंब और उसके साथ के 8 आदमियों पर आक्रमण कर हत्या कर दी गई और अन्य 50 घायल हुए। इस विद्रोह के शमन में 24 महीने लगे। सियांग सीमांत मंडल में दिसम्बर, 1893 में असंतुष्ट आदी समूह ने [3] ब्रिटिश सैनिकों की हत्या कर दी थी। एक सिपाही की राइफल लूट ली गयी थी। जनवरी, 1894 में इस विद्रोह का शमन किया गया। इसमें ब्रिटिश पक्ष से 40 लोगों की मृत्यु हुई और 40 ही घायल हुए थे। ये हत्याएँ संचार सुविधा के लिए स्थापित की गई एक आरक्षित चौकी पर हुए एक सामूहिक हत्याकांड में हुई थी।

31 मार्च, 1911 में सहायक राजनीतिक अधिकारी एन. विलियम्सन को एक गाँव में दौरा करने के लिए आमंत्रित किया गया। लेकिन उसे उसके साथियों समेत मार दिया गया। इससे एक दिन पहले ही तिनसुकिया चाय बागान का एक चिकित्सक डॉ0 ग्रियर्सन उसके साथ गया था, कुछ बीमार भारवाहकों की चिकित्सा के लिए थोड़ा पहले ही रूक गया था। उसे भी मार डाला गया। विलियम्सन के साथ जाने वाले 52 लोगों में से 6 लौटे। 9 दिसम्बर, 1911 में इस विद्रोह का शमन किया गया।[4]

स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् प्रशासन अंग्रेजों के हाथ से निकला।केन्द्र सरकार के अन्तर्गत प्रशासनिक ढाँचा

त्वरित गति से विकसित हुआ।राजकीय शिक्षण संस्थान विकसित हुए। मिशनरियों के निजी स्कूलों ने भी योग दिया। प्रशासनिक संस्थाओं का ढांचा चरणबद्ध रूप से विकसित हुआ। दिसम्बर 1986 में 52वां संविधान संशोध ान बिल पारित हुआ। इस प्रदेश को 24वें पूर्ण राज्य के रूप में पहचान मिली। स्वाभाविक था कि समाज का स्वरूप परिवर्तित होता। प्राथमिक शिक्षा में मातृभाषा को एक भाषा के रूप में शामिल करना, लेखक फोरम, भाषा संगम, प्रथागत विधियों एवं देशी औषधियों का सूचीकरण, जल, जंगल, जमीन, जलवायु और खनन के प्रति विवेक दृष्टि विकसित हुई। आस्था–विश्वास को धर्म संस्थान के रूप में विकसित करने का प्रमाण दोञ्यी–पोलो, रंग फ्राह और नाने इन्त्या इत्यादि में दिखता है। इसे हिन्दी साहित्य के द्विवेदीयुगीन कवि नाथूराम शर्मा 'शंकर' की इस फब्ती से मिलाकर देखने से भी 'स्वधर्म' के मुद्दे के मर्म को भलीभाँति समझा जा सकता हैः 'ईश गिरिजा को छोड़ि ईशु गिरिजा में जाए।' महिला संस्थाएँ और लेखिकाएँ महिला जागृति की प्रमाण हैं। साहित्य में जनजागरण के चित्र सुलभ हैं। उदाहरणार्थ, राष्ट्रीय आंदोलन में दहेज प्रथा की बुराइयों के प्रति सजगता का भाव जागृत करना भी कार्य योजना का अंग रहा। साहित्य में भी यह उपलब्ध है। लुम्मर दाई कृत 'कन्या का मूल्य' (अनूदित) उपन्यास इसका उदाहरण है। प्रदेश के कई एक स्थलों पर कन्या को जो पशुधन दिया जाता है वह कई– एक सोने की सिकड़ियों के बराबर हो सकता है। इससे पशुधन में भी कमी आई है जिससे पर्यावरण में एक प्रकार का असंतुलन उत्पन्न हुआ सा दिखता है।येशे दोरजी थोङ्ची कृत 'सोनम' उपन्यास एक जनजाति में प्रचलित रही बहुपति प्रथा की कहानी कहता है जहाँ यदि अविभाजित संपदा है, पशुचारणिक समुदाय है तो प्रेम की तारतम्यता के भंग होने जैसी विडंबना है, द्विविभाजित प्रेम है। लोक साहित्य के अन्तर्गत दोञ्यी देवता की स्तुति को लिपिबद्ध कर दस्तावेजी रूप दिया गया है इससे धार्मिक अस्मिता को चिह्नित करने में सहायता मिली है।

राष्ट्रीय आंदोलन के स्मरण का महत्व

राष्ट्रीय आंदोलन कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण रहा। इसने लोगों को स्वाधीनता प्राप्ति के लिए एकजुट किया, आज के भारत को एक सुसंगठित राष्ट्र का रूप प्रदान किया। राष्ट्रीय आंदोलन का स्मरण आत्मावलोकन के लिए प्रेरणा प्रदान करता है। इसमें शामिल लोगों की शहादत, बिछोह, परिवार को प्राप्त कष्ट, असह्य यातना, कर्मयोग, जुनून, सेलल्युलर जेल इत्यादि की गाथा को सामने लाता है। ऐसे में राष्ट्रीय आंदोलन पर हिन्दी काव्य के प्रभाव को समग्रता में प्रस्तुत करना उचित एवं सार्थक रहेगा।

चीनी आक्रमण के समय भी राष्ट्र आंदोलित हुआ और रामधारी सिंह 'दिनकर' की ओजस्वी वाणी से 'परशुराम की प्रतीक्षा' जैसी काव्य कृतियाँ सामने आई। पन्द्रह अगस्त (15 अगस्त 1947) कविता में गिरिजाकुमार माथुर लिख चुके थेः'पहरूए, सावधान रहना।' कारण रू देश के द्वार खुले हुए हैं, युग बंदिनी हवाएँ रूकती नहीं हैं, पथ कठिन है। 'शत्रु हट गया, लेकिन उसकी छायाओं का डर है।'

आंदोलनकर्मी और साहित्य

राष्ट्रीय आंदोलन पर हिन्दी कविता के प्रभाव का विवेचन करते समय यह उल्लेखनीय है कि साहित्य के प्रभाव की प्रक्रिया सूक्ष्म और शनैः शनैः होती है, न कि राजनीति की तरह स्थूल और त्वरित। आधुनिक चेतना की परंपरा आत्मिक स्तर को अपने में समेटे हुए थी। रवींद्रनाथ ठाकुर उस परंपरा की परिणति थे। आत्मिक स्तर रवींद्र काव्य में लक्षित हुआ। इसके पश्चात् मोहनदास करमचंद 'गाँधी' में और फिर छायावादी कहे जाने वाले कवियों में। रवींद्र के 'एकला चलो रे'(1905) अर्थात् 'अकेले चलो!' गीत में गाँधी जी को सत्याग्रह का मूल मंत्र दिखा था। अपनी कहानी में गाँधी जी ने लिखा हैः मेरे जीवन पर गहरा प्रभाव डालने वाले आधुनिक पुरुष तीन हैं रू 'रायचंद भाई ने अपने सजीव संपर्क से, टॉल्सटॉय ने 'वैकुंठ तेरे हृदय में है' नामक अपनी पुस्तक से और रस्किन ने 'अन्टु दिस लास्ट'– सर्वोदय–नामक पुस्तक से मुझे चकित कर दिया। कवि रायचंदभाई ने उनकी स्त्री दृष्टि को नवीनता प्रदान की। गाँधी उनके व्यापक शास्त्र ज्ञान, शुद्ध चरित्र और आत्म–परिचय से मुग्ध हो गए थे।

प्रभाव का एक रूप दिखता है जब मार्च 1919 में चक्रवर्ती राजगोपालाचारी के निवास–स्थान पर तमिल कवि सुब्रह्मण्य भारती गाँधी जी से मिले और भावी राष्ट्रीय आंदोलन के सफल नेतृत्त्व हेतु आर्शीवाद देकर लौट चले। इससे 2 वर्ष पूर्व भी एक घटना घटी थी। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के इन्दौर अधिवेशन में गाँधी जी सभापति थे। जब पं. रामनरेश त्रिपाठी के बोलने की बारी आई तो गाँधी जी ने पूछा– 'कितना समय लेंगे?' उत्तर मिला– 'कम से कम डेढ़ घंटा'। इस पर गांधी जी बोले रू '45 मिनट'। इस पर कवि ने 2 मिनट पहले ही अपनी बात को पूर्ण रूप में प्रस्तुत किया और कहा–'दो मिनट मैं महात्मा गाँधी को भेंट करता हूँ।' गाँधी जी ने कहा– 'आज यह दो मिनटों का दान, जो मुझे मिला है, यह सब दानों से श्रेष्ठ है। इस देश में मुझे मिनटों का दान किसी ने नहीं दिया था।'[5]

राजनीति और साहित्य का अन्तःसंबंध

प्रेमचंद ने अपने एक भाषण में और समीक्षक रामचंद्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' लिखने के क्रम में जो बातें क्रमशः कहीं और लिखीं उनसे बौद्धिक की स्थिति स्पष्ट हो जाती है। प्रेमचंद ने सचेत करते हुए कहा था कि साहित्यिक "देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई भी नहीं, बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सचाई है।"[6] रामचंद्र शुक्ल ने यों सूत्रबद्ध किया हैः "साहित्य को राजनीति के ऊपर रहना चाहिए, सदा उसके इशारों पर ही न नाचना चाहिए।"[7] उक्ति के उत्तरार्ध में 'सदा' शब्द साभिप्राय प्रयुक्त है।

रवींद्र के 'जन–गण–मन' ने जहाँ राष्ट्र का रूप प्रत्यक्ष करने में योग दिया, वहीं 'आमार सोनार बाङ्ला'(1906) अर्थात् 'मेरा सोने जैसा बंगाल' ने राज्य का। एक में उन्होंने राष्ट्र को वाणी दी तो दूसरे में राज्य को।साहित्यकारों ने साहित्य के अवदान, अनुसरण एवं प्रेरणा के स्तर पर राष्ट्रीय आंदोलन पर प्रभाव डाला।

सन् 1915 ई. के पहले की आधुनिक हिन्दी कविता

राष्ट्रीय आंदोलन के बीजवपन काल में ही आधुनिक हिंदी के जनक 'भारतेंदु' हरिश्चंद्र ने 'पै धन विदेश चलि जात यहै अति ख्वारी' जैसी पंक्ति लिखते हुए आर्थिक राष्ट्रवाद को वाणी देकर उस कर्त्तव्य का भली–भाँति निर्वाह किया जो औपनिवेशिक देश के कवि से अपेक्षित था। नाटकों, जिनमें अधिकांश मंचन के गुण से परिपूर्ण थे, में उन्होंने देश की दशा को व्यक्त किया। गौरवपूर्ण अतीत, पतनोन्मुख वर्तमान और चिंता उत्पन्न करते भविष्य को कविता में ढाला। मिस्र में जब भारतीय सेना जीती थी, उस अवसर पर उन्होंने 'विजयिनी विजय वैजयंती' नामक लिखी और 'कलंक की राशि' को धोने के लिए अपनी कसमसाहट इन शब्दों में व्यक्त की– धोवहु यह कलंक की रासी। 'नील देवी' नाटक में वे करुण स्वर में पुकारते हैं– कहाँ करुणानिधि केशव सोए? ध्वजागत नाहिं अनेक जतन करि भारतवासी रोए। वे यह देख चुके थे जब तक स्वराज्य नहीं होगा तब तक अंधाधुंध मची रहेगी– अंधाधुंध मच्चौ सब देशा। मानहुँ राजा रहत विदेसा।'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल' कह कर भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने भाषा, अस्मिता और प्रगति के अन्तः संबंध को व्यक्त किया। पं. प्रताप नारायण मिश्र ने 'सर्वसु लिए जात अंगरेज हम केवल लेक्चर को तेज' जैसी उक्ति लिखकर जागृति फैलाई।उपाध्याय प. बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' देश की राजनीतिक परिस्थिति पर नजर रखते थे। वे कांग्रेस के अधिवेशन में भाग लेने जाते थे। इंग्लैण्ड में दादा भाई नौरोजी को जब 'ब्लैक'(Black) कहा गया तो उन्होंने इस शब्द को लेकर बड़ी 'सरल और क्षोभपूर्ण' कविता लिखी। उनकी राष्ट्रवाणी यों थीःयहै असीस देत तुमको मिलि हम सब कारे।ध सफल होहिं मन के सबही संकल्प तुम्हारे। उन्होंने दादा भाई नौरोजी के ब्रिटिश संसद का सदस्य होने के अवसर पर कविता लिखी। दादा भाई नौरोजी ने इंग्लैण्ड द्वारा भारत के आर्थिक दोहन की बात रख जनता को सजग किया था। राष्ट्रीय आंदोलन में अनेक मुद्दे थे। इसलिए जब नागरी को कचहरी में प्रवेश मिला और प्रयाग में सनातन धर्म महासम्मेलन हुआ तब भी इन्होंने कविताएँ लिख भाव प्रकट किए। महारानी विक्टोरिया की हीरक जुबली के अवसर पर कविता लिखने के क्रम में देश की स्थितियों का 'सिंहावलोकन' किया। वे सुधार आंदोलनों की परख रखते थे। कहीं कुछ सफलता मिलती तो खुशी व्यक्त करते

थे और बुरे लक्षण दिखने पर क्षुब्ध व खिन्न।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने नागरी प्रचारिणी सभा के गृह प्रवेशोत्सव के अवसर पर अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' की इन पंक्तियों को 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में उद्धृत किया हैः

चार डग हमने भरे तो क्या किया।
है पड़ा मैदान कोसों का अभी।।[7]

हिन्दी भाषाभाषी कवि भाषा के स्तर पर दो रास्तों पर चल रहे थे और हिन्दी भाषा का मानक रूप भी नहीं था जबकि हिन्दी को 'हिन्द स्वराज' के लेखक राष्ट्रनायक राष्ट्रभाषा का पद प्रदान कर चुके थे। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भाषा को मानकीकृत रूप देकर खड़ी बोली काव्यभाषा को प्रोत्साहित किया। उन्होंने लिखाः 'कोई कारण नहीं कि हम लोग बोलें एक भाषा और कविता करें दूसरी भाषा में।'[8]

'हरिऔध' ने पौराणिक पात्रों को युग के आवरण में प्रस्तुत किया। 'प्रियप्रवास' के कृष्ण लोकरक्षक नेता के रूप में चित्रित हुएः विपत्ति में रक्षण सर्वभूत का,६ सहाय होना असहाय जीव का६ उबारना संकट से स्वजाति का,६ मनुष्य का सर्वप्रधान धर्म है।[9] मैथिली शरण गुप्त की 'भारत–भारती' 1912 में प्रकाशित हुई। इस समय बंग–भंग के समय का आंदोलन जैसा वातावरण समाप्त हो चुका था। यह कृति 'स्वदेश की ममता से पूर्ण नवयुवकों को बहुत प्रिय हुई।' 'साकेत' में अपने समय के आंदोलनों की गूंज है, यथा युद्ध प्रथा मीमांसा, राजव्यवस्था में जनता का अधिकार, मानववाद। महाराणा प्रताप को आदर्श बनाकर 'हल्दीघाटी' नाम से लिखे 17 सर्गों के महाकाव्य में'वीर काव्य के अंधड़ कवि' श्याम नारायण पांडेय ने अपनी 'ओजस्विनी प्रतिभा' का पूर्ण परिचय दियाः तलवार वीर की नाव बनी, चटपट उस पार लगाने को।६ बैरी दल की ललकार गिरी, वह नागिन सी फुफकार गिरी।६ था शोर मौत से बचो–बचो, तलवार गिरी, तलवार गिरी।६ क्षण इधर गई, क्षण उधर गई, क्षण चढ़ी बाढ़ सी उतर गई।६ था प्रलय चमकती जिधर गई, क्षण शोर हो गया किधर गई। 'हल्दी घाटी' कवि की दृष्टि में, 'स्वातंत्र्य संग्राम और सर्वस्व बलिदान की कथा है।'

जनांदोलन के दौर की हिन्दी कविता

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने 1916 ई. में 'जूही की कली' मुक्त छन्द में प्रस्तुत कर कविता में मुक्ति के स्वर का शंखनाद किया। 'छायावाद' में पायी जाने वाली आत्माभिव्यंजना व्यक्ति की स्वतंत्रता की व्यंजना करता है। जयशंकर 'प्रसाद' कृत 'आँसू', निराला कृत 'सरोज–स्मृति' और 'वन–बेला', सुमित्रानंदन पंत कृत 'उच्छ्वास' और 'आँसू से' तथा महादेवी वर्मा के गीत इसके उदाहरण हैं। छायावाद युग की कविताओं से स्त्री स्वातंर्त्य का स्वर सुलभ होने लगता है। कवयित्रियों की अभिव्यक्ति में इसके चिह्न देखे जा सकते हैं। प्रसाद की 'कामायनी' में श्रद्धा का प्रेम, निराला की 'प्रेयसी' कविता की युवती का प्रेम और पंत की 'आँसू' और ग्रंथि की 'उच्छ्वास' कविता में चित्रित युवक युवती के मध्य पनपता सखा भाव इसके उदाहरण हैं। महादेवी के काव्य में 'असीम चेतन का क्रन्दन' व्यक्त हुआ है।

राष्ट्रीय आंदोलन की अपेक्षाओं के अनुरूप ही प्रसाद और निराला की कविता में शक्ति का स्वर प्राप्त होता है। 'कामायनी' में 'शक्तिशाली हो,विजयी बनो' का गान है तो 'राम की शक्तिपूजा' में 'शक्ति–पूजा' का प्रसंग। 'कामायनी' में श्रद्धा का उद्बोधन इस प्रकार हैः शक्ति के विद्युत कण, जो व्यस्त विकल बिखरे हैं, निरुपायय६ समन्वय उसका करे समस्त६ विजयिनी मानवता हो जाए।' यहाँ मानव मात्र की विजय के लिए शक्ति को नियोजित करने का आह्वान है। 'राम की शक्ति–पूजा' में समस्या यह है कि 'अन्याय जिधर, है उधर शक्ति!' इसके लिए शक्ति की 'मौलिक कल्पना' की संस्तुति की गई है। कविता के अंत में कवि ने उल्लेख किया है कि महाशक्ति जय के आशीष के साथ 'पुरुषोत्तम नवीन' के वदन में लीन हो जाती हैं। इस तरह अपने भीतर की शक्ति के जागरण का संदेश दिया गया है। प्रसाद के नाटकों में पाए जाने वाले गीत राष्ट्रीय जागरण के प्रसार में योग देते है : (1) हिमालय

के आंगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार (स्कंदगुप्त) (2) अरुण यह मधुमय देश हमारा। जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।(चन्द्रगुप्त) (3) हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती–स्वयं प्रभा समुज्जवला, स्वतंत्रता पुकारती–। 'पेशोला की प्रतिध्वनि' में अतीत के माध्यम से समकालीन की व्यंजना हुई हैः साधना पिशाचों की बिखर चूर चूर हो के, धूलि–सी उड़ेगी किस दृप्त फूत्कार से? 'शेर सिंह का शस्त्र–समर्पण' में शेर सिंह की उक्ति है : किन्तु यह विजय प्रशंसा भरी मन की–एक छलना है!' निराला की 'छत्रपति शिवाजी का पत्र' का उद्देश्य हैः 'दासता के पाश कट जाएंगे।' 'जागो फिर एक बार' (2) में क्रमशः शूरवीर सिक्खों और गीता–वाणी का स्मरण कराया गया है : (1) शेरों की माँद में आया है आज स्यार (2) मुक्त हो सदा ही तुम....तुम सदा हो महान, है नश्वर यह दीन भाव। 'तुलसीदास' कविता की चिन्ता के केन्द्र में है– भारत का सांस्कृतिक सूर्यास्तः भारत के नभ का प्रभापूर्य, शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य, अस्तमित आज रे– तमस्तूर्य दिङ्मंडल।' 'परिवर्तन' में पंत लिखते हैः कहाँ आज वह पूर्ण पुरातन, वह सुवर्ण का काल?, भूतियों का दिगन्त छविजाल।

सुषुप्त चेतना को जगाने का स्वर 'जाग री!' (प्रसाद) 'जागो फिर एक बार।' (निराला) और' प्रथम रश्मि' (पंत) जैसी कविताओं में प्राप्त होता है।

चले पड़े जिधर दो पग डग में
चल पड़े कोटि पग उसी ओर —सोहनलाल द्विवेदी

मोहनदास करमचंद 'गाँधी' ने सन् 1917 ई. में बिहार के चंपारण में 'सत्याग्रह' की कार्य– पद्धति को अपनाते हुए 'अहिंसा देवी का साक्षात्कार' किया। उनके व्यक्तित्व में प्रामाणिकता थी। उन्होंने जन आंदोलन का प्रवर्त्तन करते हुए, उसमें शामिल रहते हुए, नेतृत्त्व प्रदान किया। साहित्य में गाँधी चिन्तन को पद्य एवं काव्य रूप में प्रस्तुत कर स्वाधीनता आंदोलन में शामिल जनता की भावनाओं को लक्ष्योन्मुखी बनाना, रचनात्मक बनाना कवियों का उद्देश्य रहा।

रामनरेश त्रिपाठी के सत्याग्रह गीत की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं – सत्य कहने से न रुकती जीभ है, काँपते क्यों हो? इसे ही काट लो। मैं कलम हूँ, एक मेरी जीभ सेध क्या करोगे जब बढ़ेगी सैकड़ों। 'पथिक' के चरितनायक में गाँधी की छवि है। मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' के राम में गाँधी का व्यक्तित्व प्रतिबिंबित हुआ है। राम की उक्तियों में इसे लक्षित किया जा सकता हैःनर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया। गाँधी की सेवा भावना का प्रतिबिंबन इन मानवतावादी भावना से युक्त इन पंक्तियों में इस प्रकार से हुआ है– सुख देने आया, दुख झेलने आया। मैं यहाँ जोड़ने नहीं, बांटने आया। सुख–शांति हेतु मैं, क्रांति मचाने आया। विश्वासी का विश्वास बचाने आया! मैं आया उनके हेतु कि जो तापित हैं, जो विवश, विकल, बलहीन, दीन, शापित हैं, संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया, इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया। साकेत में सत्याग्रह, शासनतंत्र में जनता का अधिकार, युद्ध–प्रथा मीमांसा ये सभी तत्व समकालीनता की गूँज को समोए हुए हैं। स्वराज्य और रामराज्य में शासक की यह विशेषता समान रूप से पायी जाती हैः 'नियत शासक लोक–सेवक मात्र' या 'राज्य में दायित्व का ही भार'। इन पंक्तियों में न्यासिता की गूंज हैः 'प्रजा की थाती रहे अखंड'। गाँधी चिन्तन के स्वर को अनेक कवियों ने व्यक्त किया। इनमें सर्वप्रमुख स्वर है सियारामशरण गुप्त का। 'आर्द्रा' संकलन की 'डाकू' कविता में हृदय परिवर्तन निरूपित है। 'नृशंस' में दहेज–प्रथा पर चोट है। 'एक फूल की चाह' अंतिम जन की कथा है। 'खादी की चादर' में गांधी चिन्तन व्यक्त हुआ है। 'पाथेय' में गाँधी जी को समर्पित कविता है जिसमें उन्हें 'विप्लव का हुंकार' कहा है – सत्य, अहिंसा निखिल प्रेम में गूंज उठा तेरा जयगान। 'बापू' में कवि ने गाँधी जी को महान आत्माओं की परंपरा में रखते हुए उन्हें नया आलोक बिखेरने वाला बताया है। उनसे नया सृजन संभव है, वे नये भव्य जीवन के आधार हैं।

गाँधी एवं इरविन के मध्य हुए समझौते से उत्पन्न रिक्तता ने हरिवंश राय 'बच्चन' आदि की कविताओं को संभव बनाया। इन कविताओं में छायावादी कविता में चित्रित 'महामानव' की जगह 'साधारण मानव' चित्रित है।

निश्चय ही यह राष्ट्रीय आंदोलन में जनता की बढ़ती हुई भागीदारी का सूचक था। 'लहरों का निमंत्रण' कविता के इस निम्नलिखित अंश को विजयदेव नारायण साही ने 'लघु मानव के बहाने हिन्दी कविता पर एक बहस' (छायावाद से अज्ञेय तक) में युग के मिजाज को पकड़ने के क्रम में उद्घृत किया हैःरात का अंतिम प्रहर है, झिलमिलाते हैं सितारे / वक्ष पर युग बाहु बाँधे मैं खड़ा सागर किनारे,ध्वेग से बहता प्रभंजन केश–पट मेरे उड़ाता, / शून्य में भरता उदधि–उर की रहस्यमयी पुकारें / इन पुकारों की प्रतिध्वनि हो रही मेरे ह्रदय में, / है प्रतिच्छायित जहाँ पर सिन्धु का हिल्लोल–कंपन।/ तीर पर कैसे रूकूँ मैं, आज लहरों में निमंत्रण!..../ लौट आया यदि वहाँ से तो यहाँ नव युग लगेगा,/ नव प्रभाती गान सुनकर भाग्य जगती का जगेगा,/ शुष्क जड़ता शीघ्र बदलेगी सरस चौतन्यता में,/ यदि न पाया लौट, मुझको लाभ जीवन का मिलेगा / पर पहुँच ही यदि न पाया व्यर्थ क्या प्रस्थान होगा? / कर सकूँगा विश्व में फिर भी नये पथ का प्रदर्शन / तीर पर कैसे रूकूँ मैं, आज लहरों में निमंत्रण! ह्रदयवादी कविताओं में विरोध शैली विद्यमान् हैः बैर बढ़ाते मस्जिद–मंदिर, मेल कराती मधुशाला।

सन् 1943 ई0 में 'तारसप्तक' के प्रकाशन से 'लघु मानव' वाली आधुनिक भावबोध से युक्त काव्य का प्रारंभ होना माना जाता है। इसमें प्रयोगशील युवा कवि– गजानन माधव मुक्तिबोध, नेमिचंद्र जैन, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर बलवंत माचवे, गिरिजा कुमार माथुर और संकलन के संपादक सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' शामिल थे। प्रयोग के स्तर पर गाँधी चिंतन और 'तारसप्तक' स्वर में समानता दिखती है। गाँधी की आत्मकथा का शीर्षक है 'सत्य के साथ मेरे प्रयोगों की कहानी' वहीं अज्ञेय ने प्रयोग को 'सत्य को जानने का साधन' कहा है। प्रयोगशील कवियों में वाद विरोधी स्वर मिलता है। उधर गाँधी चिंतन के अनुसार There is no such thing as Gandhism" आत्म अनुभूति दोनों जगह अपेक्षित है। साहस और जोखिम जैसे तत्वों की भी यही स्थिति है। नैतिकता का आयाम गांधी और साहित्यिक को समान भूमि पर ला खड़ा करता है। गाँधी वाङ्मय 104 खंडो में प्राप्त है। इससे गाँधी जी की लेखनी की शक्ति का प्रमाण प्राप्त होता है। उनकी आत्मकथा से श्रेष्ठ आत्मकथा अब तक नहीं लिखी गयी है। इसका रहस्य उनकी साहित्य दृष्टि में है। वे शुद्ध जीवन, आंतरिक अनुशासन, आत्म–त्याग, सहानुभूति एवं पारदर्शिता को आवश्यक जानते थे। इन गुणों से संपन्न होने पर प्रभाव की सृष्टि होती है। गांधी जी ईसा को श्रेष्ठतम कलाकार मानते थे और कुरान को अरबी साहित्य की पूर्ण कृति। यज्ञमय जीवन को कला की पराकाष्ठा मानने वाला लेखनी और लेखक को मिलाकर देखेगा। राष्ट्रीय आंदोलन में गाँधी जी ने जिन तत्वों की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट किया वे महान साहित्यिक संवेदना से अछूते न थे। कार्य योजना में चरखा शामिल करना साभिप्राय था। राजनीतिक तानाशाही से बचने के उपाय भी उन्होंने बताए। गाँधी चिंतन से लोगों के मन में यह विश्वास जागा कि सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्वतंत्रता तथा समानता की प्राप्ति संभव है। निःस्वार्थ सेवा, त्याग और आत्मानुभूति से शोषणमुक्त समाज संभव है। ह्रदयपरिवर्तन को भी वे संभव मानते थे। सत्याग्रह, सविनय अवज्ञा, संयम, स्वराज्य, सर्वोदय, स्वदेशी, असहयोग, भेदभाव राहित्य, ऊँचनीच की भावना और छुआछूत से मुक्त समाज, महिला उत्थान, न्यासिता ये सभी तत्व साहित्यकार और आंदोलनकर्मी गाँधी के व्यक्तित्व में एकत्रित है।

शहीदों को चिताओं पर जुड़ेंगे हर बरस मेले।
वतन पर मरने वालों का यही बाकी निशाँ होगा।। –जगदंबा प्रसाद मिश्र 'हितैषी'

आधुनिक हिन्दी कविता का आरंभ भारतेन्दु की उन पंक्तियों से होता है जिसे '1857' कहकर पुकारा जाता है – कठिन सिपाही द्रोह अनल जा जल बल नासी।/जिन भय सिर न हिलाय सकत कहुँ भारतवासी।। अंग्रेजों ने द्रोह को इस तरह दबाया था कि मानस में भय व्याप्त हो और पुनः सिर उठाने का दुःसाहस न हो। देशवासियों के मन में भी 1857 की स्मृति बनी रही। अंग्रेजों ने इसे गदर कहा था। 20वीं शती के दूसरे दशक के पूर्वार्ध में आप्रवासी भारतीयों ने भारतीय गदर पार्टी बनाई। 1915 में इसका प्रभाव भारत में व्याप्त हुआ। यह स्वर कठोरता

लिए हुए था। तीसरे दशक में हुए क्रांतिकारी आंदोलन के सदस्य भगत सिंह गदर पार्टी से संबद्ध रहे, करतार सिंह सराभा को अपना आदर्श मानते थे और उनकी हिन्दुस्तानी जुबान में लिखी गजल अक्सर गुनगुनाते रहते थे। क्रांतिकारी आंदोलन से जुड़े एक अन्य सदस्य पण्डित रामप्रसाद 'बिस्मिल' की हिन्दुस्तानी जुबान में लिखी गजल और गीत ने अपार लोकप्रियता प्राप्त की। 'बिस्मिल' की गजल ने इकबाल के 'तराना–ए–हिन्दी' (1905) की ही तरह जनमानस को भारी प्रेरणा दी। 'बिस्मिल' ने अपनी शहादत से पहले मुकदमें के दौरान अदालत में अपने साथियों के साथ अपना यह संबोधि गीत गाया था :

सरफरोसी की तमन्ना अब हमारे दिल में है।
देखना है जोर कितना बाजुए–कातिल में है?

इस तमन्ना में आत्मोत्सर्ग की भावना व्यक्त हुई है। भगत सिंह फाँसी के लिए चलने से पहले 'बिस्मिल' साहित्य का पाठ कर रहे थे। फंदा पहनने से पहले उन्होंने 'बिस्मिल' की इस रचना को गुनगुनाया था :

मेरा रंग दे बंसंती चोला ओये, रंग दे बसंती चोला
मोय रंग दे बसंती चोला

क्रांतिकारी आंदोलन में भाग लेने वालों में सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' का नाम उल्लेखनीय है। उनकी कविता में यह स्वर व्यंजित हुआ है। 'विकल्प' में माँ से प्रश्न हैः 'पूजा को ठहरें या समर–क्षेत्र को जाएँ।' 'क्रान्ति–पथ' में कवि की कामना हैः 'धधक उठे अन्तस्तल में फिर क्रान्ति गीतिका की झंकार।' सदानीरा भाग 1 में बद्ध, जीवन–दान, बन्दी और विश्व, बन्दी–गृह की खिड़की, 'रक्तस्नात वह मेरी साकी' इसी कोटि की कविताएँ हैं। 'घृणा का गान' का स्वर प्रगतिशील है जो कि क्रांतिकारी साहित्य की मुख्य प्रवृत्ति रही।

रामधारी सिंह 'दिनकर' कृत 'रेणुका', 'हुंकार', और 'कुरुक्षेत्र' इसी श्रेणी के अन्तर्गत आती हैं। दिनकर सरकारी नौकरी में रहते हुए भी लेखक–धर्म का निर्वाह कर रहे थे। उनकी कविताओं ने स्वाधीनता प्राप्ति की इच्छा रखने वालों के मन में उत्साह का संचार किया।

अनेक हिन्दी कवियों ने स्वाधीनता संग्राम में भाग लेने के क्रम में राजनैतिक बन्दी के रूप में कारागार की यात्राएँ की। इनकी कविताओं ने स्वाधीनता संग्राम में राष्ट्रीय भावना का संचार किया। 'एक भारतीय आत्मा' माखन लाल चतुर्वेदी की 'पुष्प की अभिलाषा'में पुष्प स्वयं को उस पथ पर तोड़ कर फेंक दिए जाने की अभिलाषा व्यक्त करता है जिस पर से वीर भारतमाता के लिए अपना शीश न्यौछावर करने के लिए चला जा रहा होः

मुझे तोड़ लेना, वनमाली, उस पथ में देना तुम फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जाएँ वीर अनेक।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के 'विप्लव' का संदेश शीर्षक में ही निहित हैःकवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल–पुथल मच जाए,/..पाप–पुण्य सद्सद भावों की धूल उड़ उठे दायें–बायें,/..एक कायरता काँपे, गतानुगति विचलित हो जाए,/...अंधे मूढ़े विचारों की वह अचल शिला विचलित हो जाए।/..शांति–दण्ड टूटे सावधान! मेरी वीणा में चिंगारियाँ आन बैठी हैं/झाड़ और झंकार दग्ध हैं– इस ज्वलंत गायन के स्वर से/..आज देख आया हूँ– जीवन के सब राज समझ आया हूँ–विलास में महानाश के पोषक सूत्र परख लाया हूँ। 'प्रभातफेरी' में नरेन्द्र शर्मा ने निर्दयता और अन्याय को देखकर समाज को श्मशान में रूपान्तरित कर देने की प्रार्थना की हैः

नाचो, शिव, इस निर्दय जग में पर, अन्यायी के आडंबर पर,
ज्वाला के भूधर से नाचो, पहन चिता के चपल लपट पट
निखिल विश्व हो अवघट, मरघट, नाचो, रूद्र, नृत्य प्रलयंकर,
नाचो तांडव नृत्य भयंकर

राम नरेश त्रिपाठी ने अपनी कविता के माध्यम से 'चाहिए केवल स्वत्व समान' और 'चाहिए केवल घर का रूल' के स्वर को मुखरित किया। 'मिलन', 'पथिक' और 'स्वप्न' में 'स्वतंत्रता प्राप्ति और उसकी रक्षा के लिए जूझने वाले' चरित्र है।

'तोड़ती पत्थर'

उर्दू साहित्यकार रघुपति सहाय 'फिराक गोरखपुरी' ने प्रगतिशील चेतना का संबंध नवजागरण से जोड़ा है। नामवर सिंह ने अपने व्याख्यान 'प्रगतिशीलता और आधुनिकता'में इस ओर ध्यान दिलाया है। अर्थात् यह वही दौर है जब राष्ट्रीय आंदोलन विभिन्न संगठनों और उनके क्रियाकलापों में दिख रहा था। सन् 1871 ई. में आधुनिक भारतीय नवजागरण के प्रथम केन्द्र कलकत्ते से एक समूह के द्वारा 'अन्तर्राष्ट्रीय कार्मिक संगम' या 'प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय' की भारतीय शाखा को संगठित करने के संबंध में कार्ल मार्क्स से संपर्क स्थापित करने की बात कही जाती है। लेकिन यह प्रयत्न तक ही सीमित रहा।

उधर किसान आंदोलन और विद्रोह की परंपरा चली आ रही थी। भारतेंदु ने 'कवि वचन सुधा' में 'दुष्काल' का विवेचन करने के क्रम में जनता का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया कि कैसे आने वाले अंग्रेज 'प्रायःदरिद्र' आते हैं, और 'कुबेर' होकर जाते हैं। उपाध्याय पं. बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने अपने लेख में 'कर के कारण जो क्लेश किसानों को' सहना पड़ रहा था, उस ओर जनता का ध्यान आकृष्ट किया। महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'संपत्तिशास्त्र' (1908) नामक पुस्तक में किसानों की गिरी दशा का उल्लेख किया।'साकेत' में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने किसानों और मजदूरों के हृदय से अपना हृदय मिलाया है। तुलसीराम शर्मा 'दिनेश' ने अपने काव्य में समकालीन भावों की व्यंजना कराई। कृष्ण उद्धव द्वारा गोपियों को यह संदेशा भेजते हैं? दीन दरिद्रों के देहों को मेरा मंदिर मानो।ध् उनके आर्त उसासों को ही वंशी का स्वर जानो। द्वारका के दुर्ग पर बैठे हुए बलराम का ध्यान किसानों की हालत की ओर इस तरह से आकर्षित करते हैं रू आज कृषक वह पिसा हुआ है इन प्रमत्त भूपों द्वारा। सरदार पूर्ण सिंह ने 'मजदूरी और प्रेम' (मार्च 1912) में कर्म सौन्दर्य को प्रस्तुत किया। सितम्बर सन् 1912 ई. में 'माडर्न रिव्यू' में मार्क्स–एंगेल्स के नामों का उल्लिखित होना बताया जाता है। क्रांतिकारी आप्रवासी भारतीय लाला हरदयाल ने 'कार्ल मार्क्स– ए माडर्न ऋषि' नाम से जीवनीपरक लेख लिखा।आर. रामकृष्ण पिल्लै ने सन् 1914 ई. में पहली बार भारतीय भाषा में कार्ल मार्क्स की जीवनी प्रस्तुत की। उधर कार्मिकों के संगठनों का उदय हो रहा था। इसके साथ ही वे संगठित रूप से विरोध प्रदर्शन की परंपरा की नींव भी रख चुके थे। इसी अवधि में देशवासी सन् 1917 ई. की रक्तिम रूसी अक्टूबरध्नवम्बर क्रांति की घटना से अवगत हुए। इसने श्रमजीवियों, इच्छित कार्य दिवस से वंचित कार्मिकों, श्रम का अवमूल्यन झेल रहे कार्मिकों, शोषण और भेदभाव के शिकार लोगों, विकास की गति में पिछड़ गए लोगों, दबे–कुचले–उत्पीड़ित वंचित, ऊँच–नीच की भावना के अन्तर्गत सामाजिक असमानता का व्यवहार झेल रहे लोगों के मन में आशा का संचार किया।

रामनरेश त्रिपाठी की सन् 1921 ई. में प्रकाशित कविता'देश का दुखी अंग' 'कृषकों पर होने वाले अत्याचारों के विरोध में तथा उनमें राजनीतिक चेतना विकसित करने के उद्देश्य' से प्रकाशित हुई थी। 'भिक्षुक' में 'निराला' ने उपेक्षित को स्वर दिया है। कवि 'भिक्षुक' के लिए संकल्प व्यक्त करते हुए कहता है : अभिमन्यु जैसे हो सकोगे तुम। तुम्हारे दुःख मैं अपने हृदय में खींच लूँगा। 'सरोज–स्मृति' में कवि अपनी युवा पुत्री का तर्पण 'गत कर्मों के अर्पण' से करता है, इस स्वीकारोक्ति के साथ 'धन्ये, मैं पिता निरर्थक था। कुछ भी तेरे हित न कर सका।' निराला का स्वर व्यक्ति और जन के मिलने से बना है। वे वीणावादिनी से वर मांगते हुए कहते हैं – प्रिय स्वतंत्र रव अमृत–मंत्र नव /– भारत में भर दे। / काट अन्ध–उर के बन्धन–स्तर।'तोड़ती पत्थर' में श्रमजीवी स्त्री बड़े हथौड़े से बारंबार प्रहार करती हुई चित्रित की गई है जिसके 'सामने तरुमालिका अट्टालिका प्राकार' है और जो 'देखा मुझे उस दृष्टि से / जो मार खा रोई नहीं' और बोली, 'मैं तोड़ती पत्थर' अर्थात् 'पत्थर हृदय'। 1924 में प्रकाशित बादल

राग (6) में कवि 'ऐ विप्लव के बादल।' संबोधित करता हुआ अपनी विचारणा प्रस्तुत करता है कि 'विप्लव रव से छोटे ही हैं शोभा पाते।' 'ऐ जीवन के पारावार।' को बताया गया है, कि 'चूस' लिया है उसका सार,। हाड़ मात्र ही है आधार। कवि की कामना है कि शोषकों पर बिजली गिरे और शोषित जीवन रस से सिंचित हों। 'आवाह्न' में कवि आह्वान करता है कि 'एक बार बस और नाच तू श्यामा।' 'कितने ही हैं असुर, चाहिए कितने तुझको हार?' पंत 'परिवर्तन' कविता में परिवर्तन को स्वाभाविक प्रक्रिया के रूप में रूपायित करते हैं। 'पतझर' कविता में वे 'द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र।' की कामना करते हुए 'नवयुग' का आह्वान करते हैं।

देश में 'प्रगतिशील लेखक संघ' के उदय के पश्चात् प्रगतिशीलता को काव्य मूल्य के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। हालांकि, लेखक स्वभावतः प्रगतिशील होता है– यह बात प्रेमचंद कह चुके थे। उनका संकेत प्रगतिशील परंपरा की ओर था।

अपनी लेखनी से वैज्ञानिक समाजवाद के लक्ष्य को सहृदय तक संप्रेष्य बनाने का उद्देश्य लेकर चलने वालों में गजानन माधव मुक्तिबोध के नाम का उल्लेख सबसे पहले होता है। 'लिख न सका हूँ' में कवि को अहसास होता है कि 'बाहर की बातें ही घिर–घिर आ जाती हैं। सहज रोक देती है मन के/अन्दर के स्वर।''दूर तारा' में कवि 'प्रत्येक मनु पुत्र पर विश्वास करने की भावना व्यक्त करता है।''खोल आँखें' में आत्म विस्तार की आकांक्षा व्यक्त की गई है और अनेकों सत्य के शिशु/नव हृदय के गर्भ में द्रुत/आ चलेंगे।''पूंजीवादी समाज के प्रति' की इस उक्ति में सार तत्व इस रूप में रखा गया हैः 'केवल एक जलता सत्य देने टाल।''नाश–देवता' में नाश–देवता का आह्वान किया गया हैः तभी सृजन की बीज–वृद्धि हित/जड़ावरण की मही फटेगी। कवि की भावी कविताओं में प्रकट होने वाला आत्म संघर्ष 'अन्तर्दर्शन' में दिखता हैः मेरा जग से द्रोह हुआ पर मैं अपने से ही विद्रोही।/ गहरे असंतोष की ज्वाला सुलग जलाती है मुझको ही। 'मैं उनका ही होता' में कवि की आकांक्षा है : 'मैं उनका ही होता, जिनसे/मैंने रूप–भाव पाए हैं।' 'लाल सलाम' में कवि की विचारणा हैः 'दुनिया के मजलूमों का वह जलता एक चिराग।' 'जन–जन का चेहरा' के शीर्षक में संदेश व्यंजित है।' 'मध्य वित्त' में 'एक साथ दो विरुद्ध अश्वों पर आरोहित'[10] वर्ग की पहचान की गई है। 'मुझे पुकारती हुई पुकार' में उस पुकार का वर्णन है जो 'प्रभात भैरवी जगी अभी अभी' की तरह है।

वासुदेव सिंह 'त्रिलोचन' शास्त्री की 'धरती' काव्य–संग्रह की समीक्षा करते हुए मुक्तिबोध ने लिखा हैः 'कवि की प्रगतिशीलता.... जीवन–संघर्ष से मंज–घिसकर तैयार हुई है।'[11] मुझमें जीवन की लय जागीध्मैं धरती का हूँ अनुरागी,/जड़ीभूत करती थी मुझको/वह संपूर्ण निराशा त्यागी। कवि में आत्मसंघर्ष का स्वर पाया जाता है : पर मैं– मेरे मन, तुम बोलो– क्या करता हूँ' अथवा 'क्या मेरा जीवन जीवन है'। मुक्तिबोध ने कवि में पायी जाने वाली नैतिकतामूलक धारा की ओर भी ध्यान दिलाया हैः 'जिनका कदम–कदम जीवन की जय यात्रा का प्रिय प्रतीक है/मैं सगर्व सोल्लास निरन्तर उन लोगों का गुण गाता हूँ।' किसानों पर कविता लिखते समय त्रिलोचन 'गीति–प्रधान भाव–स्थिति' में जा पहुँचते है– इसे मुक्तिबोध ने लक्षित किया थाः उठ किसान ओ, उठ किसान ओ,/बादल घिर आए हैं.....। वेदना को व्यापक संदर्भों में प्रस्तुत किया गया है। 1, आज मैं अकेला हूँ /अकेले रहा नहीं जाता/2, जीवन मिला है यह।/ रतन मिला है यह/धूल में/कि/फूल में/मिला है/तो/मिला है यह/मोल–तोल इस का/अकेले कहा नहीं जाता /3,३ सुख–दुख एक भी अकेले सहा नहीं जाता/4,३ ओखी धार दिन की/ अकेले बहा नहीं जाता। कवि को गति की चाहत है, क्योंकि : 'पत्ते केवल पतझर आने पर ही नही झरा करते हैं'। 'चंपा काले–काले अच्छर नही चीन्हती' में ध्वनि हैः चंपा काले–काले अच्छर चीन्ह ले। चंपा सुंदर, कर्मठ, अच्छी, चंचल, नटखट और कभी–कभार उधम मचाने वाली किशोरी है। काले–काले अक्षरों के प्रति उसमें बालसुलभ जिज्ञासा है, कभी वह कवि का कलम चुरा कर रख देती है, तो कभी कागज गायब। कागज का गोदा जाना भी उसे पसंद नहीं। गाँधी बाबा पढ़ने–लिखने की बात करते हैं, जबकि कवि तो उनको अच्छा कहता था! कवि जब

दूसरा तर्क प्रस्तुत करता है कि जब वह संभावित प्रवसत्पतिका–प्रवत्स्यपतिका रूप में होगी तब चिट्ठी पत्री लायक लिखाई–पढ़ाई में यह उपयोगी होगा। इस पर वह कवि को झूठा ठहराती है– इतना पढ़ा–लिखा व्यक्ति और इतना झूठा। यदि यही नियति है तो वह अविवाहिता रहेगी और ऐसा नहीं हो सकाः 'तो मैं अपने बालम को संग साथ रखूँगी। कलकत्ता मैं कभी न जाने दूंगी। कलकत्ते पर बजर गिरे।' नामवर सिंह के शब्दों में, 'शहर के खिलाफ गाँव, पैसे के खिलाफ इंसानी रिश्ता।' इस कविता की अर्थ संपदा देखते ही बनती है– लोक संवेदना से अनुप्राणित कृति है यह, सहज बोध से संपन्न, पारदर्शी, भोली, समय से असंपृक्त युवती का अधूरापन है–समय असंपृक्ति। निश्चय ही बालसुलभ जिज्ञासा इस अधूरेपन को दूर करेगी। संकल्पित कवि प्रकृति सौन्दर्य को मनुष्य तक व्याप्त देखने का अभिलाषी है रूक्या कभी / मैं पा सकूँगा / इस तरह / इतना तरंगी / और निर्मल / आदमी का / रूप सुंदर! / धूप सुंदर!

शमशेर बहादुर सिंह ने 'यह शाम है' में ग्वालियर की एक खूनी शाम का भाव–चित्र उकेरा है जिसमें है लाल झण्डे, जिन पर रोटियाँ टंगी थी, लिए हुए श्रमजीवियों के जुलूस पर रोटियों के बदले शोषक सत्ता पक्ष ने गोलियाँ खिलाई। सुलगते हुए हृदय से उठ रहे धुआँ को इस तरह रूपायित किया गया हैः य'शाम है' कि आसमान खेत है पके हुए अनाज का। / लपक उठीं लहू–भरी दरातियाँ। / दृ कि आग है, / धुआँ–धुआँ / सुलग रहा / ग्वालियार के मजूर का हृदय। 'बात बोलेगी' में निम्न वित्त श्रमजीवियों के घर का हाल बयान किया गया हैः दीनतारूपी दानव विद्यमान है, काल का भीषण रूप है, क्रूर स्थितियाँ हैं, बुद्धि का दिवालियापन है। लोग दुखी हैं। इस दुख के अनेक कारण हैं। इनके लिए एकता ही हमेशा हमेशा के लिए बना रहने वाला वरदान है। सच्ची स्वतंत्रता प्राप्ति तब मानी जाएगी जब सभी स्तरों पर स्वतंत्रता प्राप्त होगी। 'वाम वाम वाम दिशा' में समय को साम्यवाद के पक्ष में बताया गया है और दिशा को वाम के।

वैद्यनाथ मिश्र 'नागार्जुन'(मैथिली में 'यात्री') ने 'सिंदूर तिलकित भाल' शीर्षक से अपनी पत्नी के लगाव से संबंधित कविता लिखी। 'यह दंतुरित मुस्कान' आत्मज के वत्सल भाव से संबंधित है। 'रजनीगंधा' के साहचर्य में राजनीतिक बंदी कवि के मन का भाव इस तरह व्यक्त हुआ हैः पुलकित होते तन–मन जगती है वाणी। जय जय जय जय कल्याणी। 'कालिदास' और 'बादल को घिरते देखा है' जैसी कविताओं में अनुभव पर जोर दिया गया है। 'उनको प्रणाम' प्रयत्नरत को समर्पित है। 'कल्पना के पुत्र हे भगवान'[12] में कवि ने भगवान को कल्पना पुत्र कहा है। कवि ने यह जीवन धर्मी शाप चाहा हैः जलन, संताप, अशांति, संदेह, उलझन, भ्रांति, बेचौनी, क्रोध, उद्दंडता, ईश्वर का नाम विस्मरण, अभय, संशयराहित्य, मृत्यु के भय से मुक्ति। कवि नहीं चाहता कि उसे अपने बाप–दादों की तरह घोर अपराधी के समान, वदन झुकाकर, चुप–चाप दोनों कान पकड़कर मंदिर की देहली पर नाक रगड़नी पड़े। कवि देखता है कि लोगों ने वाद्य–यंत्र बजाकर, शंखनाद से पूजा–अर्चना की–मगर मूर्ति पिघली नहीं। उसके बाल सुलझाते–सुलझाते न जाने कितना समय बीत गया। मूर्ति ठोस है या खोखली– अंधेरे में लोग टटोलते ही रह गए। उसके चिंतन में तर्क और अनुमान सूख गए। कवि को धर्म की सीमा संकीर्ण लगती है, वह घुटन महसूस करता है, यम–नियम की फाँस ने गले को जकड़ सा रखा है, पुरातन आचार–विचार ने स्वच्छंद मन की गति को अवरूद्ध कर रखा है। ऐसे में व्यक्ति के मन में प्रासाद को छोड़कर खोह ढूंढने की इच्छा बलवती हो उठती है। गुरुजन भी तो इन्हीं सब गुणों की अपेक्षा रखते थेः मूल से चिपटे रहना, सज्जन, सुशील, विनीत, हार में जीत, क्रोध का अक्रोध से अंत, आदर्श मानव संत, रक्त में लेश मात्र भी उष्णता न रहना। कवि वितृष्णा से कहता है कि आँते सड़ गई है, फिर भी दाँत दिखाए जा रहे है। यह टूटा–फूटा पुरातन सड़ा–गला समाज निःसंकोच और निर्लज्ज भाव से अपशब्दों को उच्चरित कर रहा है। लेकिन कवि ने तो बंधन खोल कर, नियति के आलेख को मिटाकर मुक्ति–पथ का साक्षात्कार कर लिया है। अब नदी पार कर लेने के बाद–नाव को पीठ पर लाद कर ले चलने का कोई औचित्य नहीं है। संसार सामने शतरंज की तरह फैला पड़ा है जिसमें हैः भव–निर्वाण, तन–मन, प्राण, जड़–जंगम,

सचेतन–अचेतन हर्ष–विषाद, चिंता–क्रोध, संभावना, अनुमान, स्मृति–विस्मृति। इसे छोड़कर कहीं निस्तार नहीं, उद्धार नहीं। कवि की कामना है कि उसे स्वजनों परिजनों, इष्ट मित्रों–पड़ोसियों की याद आती रहे। भगवान को लेकर निरर्थक दलील का सहारा लिया जाता रहा है। कवि को तो आँखें मूंदकर शून्य में ध्यान केन्द्रित करना भी अभीप्सित नहीं। इस तरह इह लौकिक जीवन की ओर ध्यान आकृष्ट करना इस कविता का उद्देश्य है। यह भारतीय भौतिकवादी परंपरा की उद्घोषणा है। काल–प्रवाह ने इसे उभारा है। उल्लेखनीय है कि नागार्जुन संस्कृत काव्य परंपरा में भी स्मरण किए जाते हैं। जिस तरह भक्तिकाल की मधुर रति रीतिकाल में रति मात्र रह गयी उसी तरह इस कविता में धर्म की रसात्मक अनुभूति को बाहर नहीं आने दिया गया है–इसकी आवश्यकता नहीं थी।

केदारनाथ अग्रवाल की 'युग की गंगा''सूखी खेती सिंचेगी ही' के संकल्प के साथ प्रकाशित हुई। यह गंगा युग की है।'दो जीवन' कविता में 'कठोर जिन्दगी' जीने वाले को आदर्श बताया गया है। 'जनता का जीवन' इस तरह चित्रित हैः अधिकांश जनता का रद्दी की टोकरी का जीवन है/ संज्ञाहीन, अर्थहीन। बेकार चिरे फटे टुकड़ों सा पड़ा है/ देरी है–एक दिन, एक बार आग के छूने की/ राख हो जाना है।' इस आग में कवि की आस्था है। 'आदमी का बेटा' में गंदी आबादी के नालों को पाटने का दृश्य है। 'डाँगर' में कामचोर, आरामतलब, भारी–भरकम मोटे तोंदियल, हट्टे–कट्टे, डकार कर ऊँघ रहे डाँगर का वर्णन है जो नीच प्रकृति, भ्रष्ट बुद्धि शोषित श्रमजीवी के आजाद विचरने के दुश्मन हैं। 'बसंती हवा' के स्वच्छंदता की नवीनता देशकाल संबद्धता में है।

हिन्दू तथा तुम सब चढ़े हो एक नौका पर यहाँ,

–राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त

राष्ट्रीय आंदोलन में सांप्रदायिक भाव–विचार से बचना–बचाना एक बड़ी चुनौती थी जिसका सामना शक्ति भर किया गया। सियारामशरण गुप्त ने 'आत्मोत्सर्ग' में गणेश शंकर विद्यार्थी के बलिदान की कथा लिखी। गाँधी जी ने इस काव्य के आशीः वचन ने लिखाः 'गणेश शंकर विद्यार्थी को ऐसी मृत्यु मिली जिस पर हम सबको स्पर्धा हो। उनका खून अंत में दोनों मजहबों को आपस में जोड़ने के लिए सीमेंट का काम करेगा।'[13]

क्या तुम डिहबार! क्या हमारे नेता! जो एक घाव भी ठीक न कर पा रहे हो।

भारतीय समाज के पंचम वर्ग के कवियों ने आत्माभिव्यंजना के माध्यम से अपने समुदाय को जागृत कर राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल होने के लिए प्रेरित किया। अनुसूचित (पीछे जोड़ी गई सूची में स्थान मिला) अथवा परिगणित (अच्छी तरह गिने गये, विशिष्ट उद्देश्य से स्थान विशेष के आधार पर एक–एक करके गिने गये) अनुभव में जैसे जैसे कमी आती गयी स्वाधीनता संग्राम में शामिल होने वाले लोगो की संख्या बढ़ती गयी। सामाजिक स्वाधीनता प्राप्त होने पर राजनीतिक स्वाधीनता प्राप्त करने के प्रयत्न में शामिल होना स्वाभाविक है।

ऊपर उद्धृत पंक्तियाँ 20वीं शती के प्रथम दशक की है जिसके रचयिता 'निर्धिनराम' हैं। इसमें छूत को घाव कहा गया है। गाँधी जी से इसका उपचार होता नहीं दिख रहा था। अंतिम जन के उद्धार संबंधी प्रयत्नों को देखकर कवि के मन में पहले श्रद्धा जगी थी और लिखा था : गाँधी में गुन बहुत हैं सदा लीजै नाम/दीन दुखी दरिद्र भगावै और बनावै काम। गाँधी के प्रति अपना लगाव व्यक्त करते हुए लिखते हैं गांधी के नाम सुन हुलसेल जियरबा/ गाँधी बाबा से लागल अनुराग/ दिन दुपहरिया में निरखेवा नयनवा/गांधी बाबा के आवन राह। कवि को लगता है कि उससे तो समय ही रूठ गया है : हमही के बेरिया निठुर भइले बनवारी।... एहि चरन से अहिला के तरलङ सेहु गौतम के नारी! विप्र सुदामा के दरिद्र हटवल..

20वीं शती के दूसरे दशक के आरंभ में हुए स्वामी अछूतानंद का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने शिक्षण संस्थाओं के विकास में योग दिया, सहयोगियों के साथ संगठन बनाया, पत्र–पत्रिकाएँ संपादित की और हरिजनों में 'आदि हिन्दु' होने का भाव जागृत किया। अपनी कविताओं से उन्होंने दलितों की सुषुप्त चेतना को जगाया–तज नींद अब तो जागिए। उन्होंने द्विजेतर वर्ण को भी संबोधित किया– शूद्रो गुलाम रहते, सदियां गुजर गई हैं।ध्जुल्मों सितम

को सहते, सदियां गुजर गई हैं।/अब तो जरा विचारो सदियां गुजर गई हैं।/अपनी दशा सुधारो सदियां गुजर गई हैं। हीरा की कविता 'अछूत की शिकायत' में पंचम वर्ग की अनुभूतिपरक चेतना की सम्यक् अभिव्यक्ति हुई है। यह कविता दस्तावेज है : हमनी के राति दिन दुःखवा भोगत बानी,/३ हमनी के दुःख भगवनओं न देखताजे,.... हमनी के कबले क्लेसवा उठाइबि।...../डोम जानि हमनी के छुए से डरेइले।।/ हमनी के राति दिन मेहनत करीलेजां,/दुइगो पइ रुपयवा दरमहा में पाइबि।/ ठाकुर के सुख सेत घर में सुतल बानीं,/हमनी के जोति जोति खेतिया कमाइबि। हीरा की ईमानदारी और स्वाभिमान द्रष्टव्य है : बभने के लेखे हम भिखिया न मांगबजां,/ ठाकुरे के लेखे नहिं लडरि चलाइबि/सहुआ के लेखे नहि डाड़ी हम मारबजां,/ अहिरा के लेखे नहि गइया चोराइबि (चराइबि) भंटउ के लेखे न कबित हम जोरबजां,/ पगड़ी न बान्हि के कचहरी में जाइबि/ अपने पसिनबा के पइसा कमाइबजां, घर–भर मिली जुली बांट–चोंटि खाइबि।। ऊपर उद्धृत पंक्तियों में 'चोराइबि' के बगल में 'चराइबि' शब्द कोष्ठक में रखा गया है। यदि यह कवि का शब्द नहीं है तो परिवर्तन अनुचित है। बिहारीलाल 'हरित' की निम्नलिखित काव्य पंक्तियाँ भी उद्दरणीय है जिसमें शोषक भूस्वामी महाजन चित्रित हैः दादा का करजा पोते से नाम उतरने पाया/ तीन रुपये में जमींदार के सत्तर साल कमाया।[14]

सनातनी समाज की परंपरा से परिचित व्यक्ति ऊपर उद्धृत कविताओं को लोक साहित्य की परंपरा को साहित्य परंपरा के अंतर्गत रखकर देखेगा इस वर्ग के द्वारा लिखी गई कविता के प्रारंभिक दौर में ऐसा होना स्वाभाविक था धीरे–धीरे इस परंपरा का विलय साहित्यिक परंपरा में हो गया। आज के दलित कवियों की कवि–कर्म इसका प्रमाण है।

अबला जीवन, हाया! तुम्हारी यही कहानी,
आँचल में है दूध और आँखों में पानी। —मैथिलीशरण गुप्त

महिलाओं ने राष्ट्रीय आंदोलन में हिस्सा लिया था। पहली बार जब इलाहाबाद की सड़कों पर महिलाओं का जुलूस, छोटे पैमाने पर ही सही, निकला था, तब, जवाहर लाल नेहरू जैसे दूरदर्शी नेताओं ने शीघ्र ही यह भाँप लिया कि 'इतिहास ने जबर्दस्त अंगड़ाई' ली है और 'तेजी से छूटते हुए अग्नि बाण की तरह आकाश में दौड़ चला' है। साहित्य में भी उनकी छवियाँ चित्रित हुईं। छायावादयुगीन कवि ठाकुर गोपाल शरण सिंह 'मानवी' संग्रह में अभागिनी को संबोधित करते हुए कहते हैं 'तेरे मन की दुख ज्वालाएँ मेरे मन में आ छंद हुईं।' मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' और 'यशोधरा' में उपेक्षिता को वाणी मिली है। विष्णुप्रिया और विधृता पर भी राष्ट्रकवि की दृष्टि गयी। उर्मिला को एक चरित्र का रूप दिया गया है।

कई कवयित्रियों ने स्वाधीनता आंदोलन में भाग लेने के क्रम में राजनीतिक बन्दी के रूप में कारागार की यात्राएँ कीं। इनमें महादेवी वर्मा और सुभद्राकुमारी चौहान का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। महादेवी वर्मा कृत 'मैं नीर भरी दुख की बदली' में आत्मदान की भावना व्यक्त हुई है : रज–कण पर जल–कण हो बरसी/नव जीवन–अंकुर बन निकली। सुषुप्त चेतना को जगाने का स्वर 'चिर सजग आँखे उनींदी आज कैसा व्यस्त बाना।' जैसी कविताओं में प्राप्त होता है। सुभद्राकुमारी चौहान ने 'राष्ट्रभाषा' की भूमिका को यों उजागर किया था : तू होगी आधार, देश की/पार्लमेंट बन जाने में/तू होगी सुख सार देश के/ उजड़े क्षेत्र बसाने में तू होगी व्यवहार देश के/ बिछड़े हृदय मिलाने में/ तू होगी अधिकार, देश भर/ को स्वातंर्त्य दिलाने में। लेखनी की भूमिका के बारे में उन्होंने लिखा : जरा ये लेखनियां उठ पड़ें / मातृभू को गौरव से मढ़ें/करोड़ो क्रान्तिकारिणी मूर्ति/पलों में निर्भयता से गढ़े। कहीं–कहीं उनकी लेखनी के स्वर दिव्य भाव से अनुप्राणित हो उठे हैं पन्द्रह कोटि असहयोगिनियां/दहला दें ब्रह्मांड सखी/भारत–लक्ष्मी लौटने को/रच दें लंकाकांड सखी। इसी की अगली कड़ी थी 'झांसी की रानी' और 'वीरों का कैसा हो वसंत' जैसे वीर भाव वाले काव्य। 'खूब लड़ी मर्दानी वह तो/झांसी वाली रानी थी।' में 'मर्दानी' शब्द को स्त्री–दृष्टि से समझने पर पता चलेगा कि उक्त पद में लिंग आधारित भेद–भाव

व विषमता को नकारा गया है। यह कविता वीर गाथाओं की परंपरा में है। इतना कहने से बात अधूरी रहेगी। सुभद्रा स्वयं देश प्रेमी, साहसी और वीरांगना थीं। सुधा चौहान ने अपनी टिप्पणी में ठीक ही लक्षित किया है कि : यह उक्ति कवयित्री की प्रेरणास्रोत, कविता एव कवयित्री तीनों पर ही चरितार्थ होती हैः तेरा स्मारक तू ही होगी/तू खुद अमिट निशानी थी। सुधा चौहान ने लिखा हैः "जब कवयित्री जोशीले स्वर में कहती थीं बूढ़े भारत में भी आयी फिर से नयी जवानी थी/गुमी हुई आजादी की कीमत सबने पहचानी थी /दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी। तो पता नहीं, फिरंगी को अपने देश से दूर करने का प्रण न जाने कितने मनों में ठन उठता होगा। 'झांसी की रानी' की कविता वह मशाल थी, जिसके प्रकाश की किरणों से गुलामी का अंधेरा कट रहा था। सुभद्रा के हृदय का देश–प्रेम इस कविता के माध्यम से न जाने कितने दिलों में भी देश–प्रेम की लौ जला देता था। सुभद्रा के विषय में बोलते हुए एक बार भदंत आनंद कौसल्यायन ने बताया कि अपने बचपन में जब वे पंजाब में विद्यार्थी थे, तब पहली बार उन्होंने 'झांसी की रानी' पढ़ी थी। उस कविता ने उस किशोर मन को इतना प्रभावित किया कि वे चाहते थे कि हाथ में कड़े पहन कर, एक लकड़ी से उन्हें बजाते हुए वे 'खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी', गाते हुए गाँव गाँव में घूमें, वैसे ही जैसे वहाँ के लोकगीत गायक अपने गीतों को गाते हुए घूमते हैं।[15] 'वीरों का कैसा हो वसंत?' में दलित–त्राण के लिए उठे 'वीर' में कैसी व्यापकता विद्यमान हैः आ रही हिमाचल से पुकार है उदधि गरजता बार–बार,/प्राची, पश्चिम, भू, नभ अपार, /सब पूछ रहे हैं दिग्–दिगंत,। 'बालिका का परिचय' में कवयित्री ने मानव धर्म की रसात्मक अनुभूति को लौकिक धरातल पर प्रस्तुत किया है। अपनी 'गोदी की शोभा' और 'सुख सुहाग की लाली' के बारे में कवयित्री लिखती हैः मेरा मंदिर, मेरा मसजिद/काबा–कासी यह मेरी।/ पूजा–पाठ, ध्यान–जप–तप है/घट–घट–वासी यह मेरी।/ ....कृष्णचन्द्र की क्रीड़ाओं को/ अपने आँगन में देखो।/कौशल्या के मातृमोद को/अपने ही मन में लेखो।/... प्रभु ईसा की क्षमाशीलता/नबी मुहम्मद का विश्वास।/जीवदया जिनवर गौतम की / आओ देखो इसके पास।। 'माता का दिल' ही 'बालिका का परिचय' दे सकता है! 'कदंब का पेड़' मातृहृदय से निःसृत है। इन्हें लिखते समय : 'मिलकर उसके साथ स्वयं मैं भी बच्ची बन जाती हूँ।' अंतिम जन को वाणी देते समय भी वे ऐसा ही करती हैं 'प्रभु तुम मेरे मन की जानो'।

उपसंहार

राष्ट्रीय आंदोलन का लक्ष्य मुक्ति प्राप्ति था और यह मुक्ति बहुआयामी थी। राजनीतिक मुक्ति इसका एक आयाम था। ब्रिटिश राज के सत्ता हस्तानांतरण के साथ यह पूर्ण हुआ, लेकिन इसका अहसास सर्वत्र होना शेष था। काल के साथ यह अहसास भी निष्पन्न होता चला। कहीं–कहीं राजनीतिक मुक्ति संकीर्ण विचारों के साथ घुल–मिलकर विपथगा भी हुई। शनैः शनैः यह भारतीयता की परिधि में आ रही है।

साहित्यकारों ने अपनी राष्ट्रीय भूमिका का परिचय सम्यक् रूप से दिया। राष्ट्रीय नेतृत्व के राष्ट्रभाषा विषयक उद्देश्यों की प्राप्ति कराने में उन्होंने यथाशक्ति योग दिया। गाँधीवादी आंदोलन की वैचारिक पृष्ठभूमि को साहित्य में प्रस्तुत कर राष्ट्रीय आंदोलन के भावात्मक–वैचारिक आधार को परिपुष्ट किया। राष्ट्रीय आंदोलन में क्रांतिकारियों के प्रयत्न स्तुति योग्य हैं। इनके रास्तों ने लोकप्रियता की चरम ऊँचाई को छूते हुए राष्ट्रीय मानस में स्वाधीनता प्राप्ति की पूरी–पूरी ललक जगाई। इसी क्रम में स्वाधीनता सेनानी साहित्यकारों ने मन, वचन और कर्म की एकता का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया। उनका व्यक्तित्व पारदर्शी था। साहित्यिक अभिव्यंजना और कर्म में दो मुँहापन न था। छायावादी कविता, प्रगतिशील कविता और प्रयोगधर्मी कविता की विवेचना से यह स्पष्ट होता है कि साहित्य में समाज की अभिव्यक्ति सूक्ष्म रूप से होती है। छायावादी कविता जहाँ व्यक्ति स्वातंर्त्य की प्रथम सांकेतिक अभिव्यक्ति है वहीं उसमें सामाजिक रूढ़ियों के प्रति विरोध का भाव दिखता है। प्रगतिशील काव्य आंदोलन ने भारतीय समाज में परिवर्तन की अनिवार्यता को रेखांकित किया। यह परिवर्तन ऐसी कामना लिये था जो क्रांतिकारियों की तरह सर्वतोमुखी क्रांति की भावना से परिचालित होता था। भारत जैसे प्राचीनत्तम समाज को

इसकी तुरंत आवश्यकता थी। पहली बार पुरातन आध्यात्मिक लोक से बाहर समकालीन भौतिक जगत में ला पटकने का श्रेय इसे है। सनातनी दृष्टि को इसने देशकाल में परिसीमित किया। वैज्ञानिक दृष्टि, वर्ग विभक्त समाज, द्वंद्व, अंतर्विरोध आदि न जाने कितने तत्व थे जिन पर ध्यान देने से समाज प्रगति की ओर उन्मुख हो सकता था। इसी क्रम में प्रयोगधर्मी कवियों के आत्म सत्य पर विचार किया गया है।

इस बात पर ध्यान देने की आवश्यकता है कि स्वतंत्रता आंदोलन के दौर में किस प्रकार के संकल्प लिये गए थे। संकल्प लेने वालों का जीवन किस प्रकार बीता। उनमें से कितने संकल्प पूरे हुए और जो नहीं पूरे हुए उन्हें पूरा करने के लिए जो प्रयत्न हुए उसमें कहाँ तक प्रगति हुई या प्रयत्न हुए ही नहीं ?

यह राष्ट्रीय आंदोलन की ऊर्जा थी जो कवियों में कविता के रूप में सामने आई। उस दौर की कई कविताएँ ऐसी हैं जो लोकप्रियता में सबसे ऊँचाई पर स्थित हैं। उस काल की सैकड़ों कविताओं में अर्थ गौरव और विराटता है। कुल मिलाकर, इस दौर की हिन्दी कविता को पढ़ने से ऐसे अनेक रत्नों के पाने की संभावना शेष है जिसे ध्यान में लाकर मानव समाज अपना भविष्य सँवार सकता है।

संदर्भ सूची

1. नामवर सिंह : छायावाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम पेपर बैक सं. 1993, पृ. 79
2. विपनचंद, अमलेश त्रिपाठी और वरुण देः स्वतंत्रता संग्राम (अनु. रामसेवक श्रीवास्तव) नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, 8वी. आवृत्ति 1991, पृ. 1
3. आधुनिक काव्य संग्रह : सं. रामवीर सिंह, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2002, पृ. 226
4. एल.एन. चक्रवर्ती : अरुणाचल का आदिकालीन इतिहास (अनु. सच्चिदाननंद चतुर्वेदी) नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, पहली आवृत्ति, 2006, पृ. 56,41–42, 91
5. ले. डॉ. इंदरराज बैद 'अधीर' रामनरेश त्रिपाठी, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, द्वि.सं.1993, पृ. 14
6. उद्धृत, रामस्वरूप चतुर्वेदी : हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. 1986, पृ. 224.
7. रामचंद्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी संशोधित एवं परिवर्धित, बाईसवां संस्करण संवत् 2045, पृ. 365
8. हरिऔध : ले. मुकुंददेव शर्मा, साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली, प्रं.सं. 1984, पृ. 52
9. महावीर प्रसाद द्विवेदी : ले. नंदकिशोर नवल, साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली, प्र.सं. 1981, पृ.83
10. उद्धृत, चन्द्रकांत देवताले : मुक्तिबोध : कविता और जीवन–विवेक, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प.सं. 2003, पृ.140
11. गजानन माधव मुक्तिबोध : धरती : एक समीक्षा, त्रिलोचन के बारे में, सं. डॉ. गोबिन्द प्रसाद, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ.सं. 1994, पृ. 30
12. 'द्वन्दात्मकता के विन्यास की कविता' नामक लेख में नामवर सिंह ने इसकी तात्त्विक विवेचना की है
13. सियारामशरण गुप्त : ले. प्रेमशंकर, साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली, प्र.सं.1993, पृ.19
14. रजतरानी 'मीनू' के प्रकाशित शोध प्रबंध हिन्दी दलित कथा साहित्य : अवधारणाएँ और साहित्य से उद्धृत
15. सुधा चौहान : सुभद्राकुमारी चौहान, साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली, द्वि.सं. 1990, पृ. 21

❑❑

29

हिन्दी साहित्य में दलित कहानियों का स्याह यथार्थ

डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव
अध्यक्ष–हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,लखनऊ 226017

हजारों हजार वर्षों के सामाजिक–सांस्कृतिक अलगाव की वजह से दलित समाज अपनी साहित्यिक अभिव्यक्ति से वंचित रहा । इससे भारत की सामाजिक–सांस्कृतिक विकास की स्वाभाविक प्रक्रिया में अवरोध पैदा हुआ । सदियों से यह परम्परावादी ताकतें दलितों की साहित्यिक अभिव्यक्ति रोकने में सफल रहीं, पहले नाथों–सिद्धों और फिर मध्ययुगीन निर्गुण संतों–कबीर–रैदास आदि ने परम्परावादी साहित्य–संस्कृति के खिलाफ आवाज उठाकर इस गतिरोध को तोड़ा। अब दलित साहित्यकार अपनी रचनाओं के माध्यम से परम्परावादी संस्कृति का पोषण करने वाले हिन्दुत्व के दर्शन पर सीधा प्रहार करके उसे समूल नष्ट करने की कोशिश कर रहे हैं, तब कहीं जाकर जातियों और वर्गों में विभाजित भारतीय समाज के जातिहीन और वर्गहीन समाज में बदलने की प्रक्रिया शुरू हुई है। यह प्रक्रिया दलित साहित्यकारों के दखल के बाद तेज हुई है क्योंकि पूरे भारत में दलित साहित्यकारों ने एक साथ अपनी सामाजिक–सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का इज़हार किया है। वर्तमान में दलितों की साहित्यिक–अभिव्यक्ति को अब किसी भी सूरत में रोका नहीं जा सकता है, क्योंकि दलित साहित्यकार इसके प्रति सजग और सतर्क ही नहीं हैं बल्कि दृढ़ संकल्प लिए हुए हैं।

वर्तमान का दलित साहित्य दलित समाज की वास्तविक पहचान कराने वाला साहित्य है। वह परम्परावादी चेतना के विरुद्ध दलित चेतना का प्रचार–प्रसार करता है। सनातनी परम्परावादी व्यवस्था एक मिथ्या चेतना के विरुद्ध जिसके आधार पर आज हिन्दुत्ववादी ताकतें हिन्दुत्व का दर्शन विकसित करने की कोशिश कर रही हैं। यह मिथ्या चेतना ब्राह्मण–पुराण और उपनिषदों के आधार पर विकसित की गई हैं। वर्णव्यवस्था और जातिवाद जैसी घृणित प्रथा का वैचारिक ढ़ाँचा भी इन्हीं मूल्यों के आधार पर खड़ा किया गया है ताकि दलित समाज विभिन्न जातियों में बंटकर अलग–थलग पड़ा रहे।

कमलेश्वर के अनुसार, ''दलित साहित्य की कहानियाँ हमारे मानस संसार को बदल रही हैं और जड़ संस्कृति तथा न्याय–अन्याय की परिभाषा बदल रही हैं। रमणिका गुप्ता के शब्दों में कहें तो ये बौखलाये हुए आदमी की कहानियाँ नहीं हैं, उन सताए हुए समाज की कहानियाँ हैं जो मनुष्यता का दावा करना सीख गयी हैं और बराबरी का हक मांग रही हैं।.....उसके लिए धर्म, भगवान, भाग्य, परम्पराएं, रूढ़ियाी, अंधविश्वास सब निरर्थक हैं। वह इन सबके विरुद्ध खड़ी हो गयी हैं।''[1] डॉ0 सूर्यनारायण रणसुभे तथा डॉ0 कमलाकर गंगावणे के अनुसार ''दलित–कहानी का शिल्प उलझा हुआ नहीं है। शिल्प के स्तर पर यह कहानी प्रयोगात्मक नहीं है। शिल्प और भाषा के स्तर पर जूझने के बजाय यह मात्र संवेदना के स्तर पर भी जूझना पसन्द करती है। अधिकतम दलित–कहानियाँ आकार में छोटी और Pointed हैं। अनुभूति के एक ही बिन्दु पर से वे विकसित होती है। बिना किसी पृष्ठभूमि, वातावरण तथा अन्य औपचारिकता के वह सीधे पाठकों को पात्रों की भयावह स्थिति से पाठकों को गुजारती हैं। यह सच है कि यह कहानी प्रतीकात्मक, सांकेतिक और सूक्ष्म नहीं है। स्थूलता ही उसकी प्रकृति है। यह स्थूलता कथ्य की विशिष्ट प्रकृति से उभरी है, कहानीकार की प्रतिभा की मर्यादा के कारण नहीं। व्यक्ति तब शिक्षित, सुसंस्कारी और आर्थिक दृष्टि से समृद्ध होते हैं तभी इस प्रकार की सूक्ष्म संवेदनशीलता की बात कही जा सकती है। परन्तु जहाँ जीवन ही नारकीय, कष्टप्रद, अज्ञान और अन्धश्रद्धा से भरा हुआ होता है वहाँ स्थलता ही प्रकृति बन जाती है।''[2]

दलित जीवन के यथार्थ को रेखांकित करती हुई महत्त्वपूर्ण कहानियाँ प्रभाकर गजभिये की 'लाठी', डालचन्द्र

गौतम की 'विद्रोही' तथा स्वरूपचन्द्र की 'आजादी' आदि रचनाएं हैं। पहली रचना में बम्बई में हुए दलितों के नरसंहार के विरोध में निकले जुलूस पर पुलिस के लाठी चार्ज की घटना पर अखवारों की जातिवादी राजनीति का खुलासा किया गया है तो 'विद्राही' में रोम के प्रमुख गुलाम स्पार्टाकस के लिए विद्रोह, बुद्ध के विद्रोह के बाद डॉ0 अम्बेडकर के विद्रोह का संक्षिप्त वर्णन मिलता है। लेकिन 'आजादी' में जरूर दस साल तक रजनीकान्त परिवार में घरेलू नौकरानी के रूप में काम करते हुए दलित युवती नथनी दलित विरोध सहती रहती है। पर 'मण्डल आयोग' की घोषणा के बाद उसमें जातीय स्वाभिमान जाग उठता है और वह आक्रोश में कह उठती है कि 'मेरी कौम को गाली मत देना। हम हलालखोर हैं, हरामखोर नहीं।' इसके साथ ही मण्डल विरोधी संघ के विरुद्ध विद्रोह करके रिक्शा चालक भालेकर से शादी करके 'आजादी' की सांस लेती है।एक बात सार्थक यह है कि वर्तमान में दलितों में जागृति एवं परम्पराओं को नकारने का साहस पैदा हो रहा है। प्रस्तुत कहानियों के माध्यम से यह देखा जा सकता है। भारत के लगभग 80 प्रतिशत लोगों का निवास स्थान गाँव ही है, इसमें कोई दोराय नहीं कि इनमें से अधिकांश सदियों से शोषित एवं दयनीय स्थिति के गरीब तबके के लोग हैं जो निम्न स्थान पर ढ़केल दिये गये हैं। साथ ही सदियों से इन्हें पठन–पाठन से वंचित रखा गया है। इन लोगों का जीवन–यापन (रोजी–रोटी) लघु एवं कुटीर उद्योग ही रहे हैं। हमें यह स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं है कि इनमें श्रम करने की कोई गहन तकनीकी नहीं होती है। इसीलिए इसमें रोजगार के अधिकतम अवसर सहज रूप में उपलब्ध हो जाते हैं जो दलित वर्ग को अधिक लाभ प्रदान करते हैं। अर्थात् इसके द्वारा दलितों को अधिक से अधिक रोजगार मुहैया होता है। सरकार की नई आर्थिक नीति में एक साजिश के तहत इन निकायों को निजी हाथों में सौपा जा रहा है, जो समाज के एक वर्ग विशेष तक ही सीमित है। यह ध्रुव सत्य है कि जिस वर्ग ने सदियों से दलित वर्ग का दमन–शोषण किया, वह क्यों चाहेगा कि अपने निजी पैसे (व्यवसाय) से उनको लाभ पहुँचाये। आरक्षण की तो हम कल्पना ही नहीं कर सकते। यदि ऐसा होता है कि दलित वर्ग इसमें कार्य करे तो उनमें अनेक तरह की कमियाँ निकालकर (उनकी कुशलता पर प्रश्नचिह्न लगाकर) बाहर का रास्ता भी तैयार कर सकते हैं।[3]

कुछ मामलों में धार्मिक कर्मकाण्ड, अन्धविश्वास, भूत–प्रेत और औझाई से सवर्ण समाज ही ग्रस्त नहीं है बल्कि दलित समाज भी उसी तरह ग्रस्त है। अजय यतीश ने 'ओझा का अनुष्ठान' कहानी में दलित समाज में व्याप्त अन्धविश्वास और भूतप्रेत के बहाने होने वाले नारी के यौन शोषण की करुण कथा कही है कि किस तरह चमलेवा का जटु भगत और उसका साथी जंगी औझाई की आड़ में यौन शोषण करते हैं। अन्त में लेखक सार्थक टिप्पणी करता हुआ लिखता है। कि इसमें 'भूत उतारने वाले पता नहीं कौन–सा भूत उतारकर चले गए थे?' अजय यतीश ने इसमें दलित समाज की सामाजिक समस्याओं की गहराई से जाँच–पड़ताल करके समाधान देने की कोशिश नहीं की है बल्कि अन्धविश्वासों में जकड़े दलितों की तीव्र आलोचना भी की है।

दलित साहित्य में दलित चेतना की विद्रोही प्रकृति ही उसका मुख्य स्वर नहीं है बल्कि मानव, मानव–स्वभाव और मानवीय–सम्बन्धों की नयी व्याख्या भी उसका प्रमुख अंग बन चुका है। मानवीय–सम्बन्धों के गतिशील पक्षों को भी वे पहचानने लगे हैं। इस दृष्टि से तेजपाल सिंह 'तेज' की कहानी 'निरा आदमी' दलित कहानियों से अलग हटकर अपनी सार्थकता बनाए रखती है। इसमें लेखक ने स्त्री–पुरुष के सामाजिक सम्बन्धों को नये परिप्रेक्ष्य में देखने की ईमानदाराना कोशिश की है कि किस प्रकार दो अजनबियों में आत्मीय सम्बन्ध बनते हैं और बिछुडने पर दुःखदायी स्थिति को जन्म देते हैं।

सूजी की अपनी दुनियाँ है। वह पति को छोड़कर अकेली रहती है। कथावाचक में उसे पति की शक्ल दिखाई देती है, उस पति को जिसे वह बहुत प्यार करती है पर उसके लिए धन्धा नहीं कर सकती थी। सूजी की धारणा है कि निरा आदमी कमीना नहीं हो सकता। निरापद पाकर वह उसकी ओर झुकती है। दोनों के बीच सेक्स नहीं, एक–दूसरे की मानवीय पीड़ाएँ एकाकर हो गयी थीं। स्त्री–पुरुष के बीच कम होती दूरी नये सन्दर्भों को जन्म देती हैं। घर–परदेश का अन्तर मिट जाता है। एक–दूसरे का अलेकापन उन्हें और नजदीक लाता है। एक तरफ परदेस

का डर तो दूसरी तरफ 'उसकी पीड़ा और अपनत्व' उसे अपनी ओर खींचता है इसलिए वह असमंजस की स्थिति मे था कि सम्बन्धों को और आगे बढ़ाया जाय कि नहीं। ऐसे सम्बन्धों की परिणति वह अच्छी तरह जानता था। वह नहीं चाहता कि 'तुम्हें मेरी याद जीवन भर सताती रहे। मुझे आज की नहीं–तुम्हारे कल की चिंता है। थोड़ी–सी दूरी तुम सह नहीं पातीं। जीवनभर की दूरी कैसे सहोगी?......मुझे नहीं लगता कि तुम्हें कभी भुला पाऊँगा, फिर तुम कैसे भुला पाओगी मुझे।' इसलिए आसपास रहते हुए भी वे एक–दूसरे की दुनिया से दूर अकेलेपन में जीने लगते हैं।

आखिर 'मैं' के शहर छोड़ने का वक्त आ ही गया। अब तक खुली रखी जाने वाली खिड़की आखिर बन्द करनी पड़ी। खिड़की बन्द करने का अर्थ था–सम्बन्धों की इतिश्रीः। सूजी आंसू बहाती सामने थी पर 'मैं चाहकर उससे कुछ न कह सका। उससे आँख मिलाने की हिम्मत नहीं हो रही थी मेरी। सिर्फ हाथ उठाकर अलविदा की और चलता बना।' मानवीय–सम्बन्धों के अलगाव की यह पीड़ादायक स्थिति कितनी 'मार्मिक' होकर सामने आती है जिसमें अनुभव का दर्द भरा है।

वर्तमान समय में दलित साहित्यकार दलित समाज की समस्याओं को, उसके विभिन्न पक्षों को विविध आयामों में अभिव्यक्त करने की ईमानदारभरी कोशिश कर रहे हैं। इससे उम्मीद बंधती है कि ये अपने जीवनानुभवों को और विस्तृत करते हुए, कलात्मकता की नयी ऊँचाईयों को छूते हुए दलित साहित्य को और समृद्ध करेंगे, क्योंकि साहित्य में कला की अपेक्षा चोट करने की क्षमता यदि अधिक हो तो यह अधिक सार्थक होता है। दलित साहित्य आनंद के लिए नहीं बल्कि परिवर्तन के लिए लिखा जा रहा है। सार्थक कहानी के लिए कलात्मकता की बजाय हकीकत; दृष्टि; दिशा एवं वर्तमान व्यवस्था की सड़ांध के प्रति घृणा आवश्यक है, तभी उसमें एक ऐसी सृजनात्मक शक्ति उत्पन्न होगी, जिससे एक नई संस्कृति और नई दुनिया की पृष्ठभूमि तैयार होगी। पुरानी लकीरों को पीटने से संतुलन भले ही हिल–डुल जाए, पर परिवर्तन नहीं होगा। दलित कहानी पुरानी लीक से हटकर चलने की मुहिम चलाने को कटिबद्ध है।'[4]

हिन्दी के दलित कथाकारों के पास मराठी दलित कथा साहित्य की एक सुदृढ़ पृष्ठभूमि तो है ही, उसे और अधिक पुख्ता किया हिन्दी के अदलित कथाकारों के दलित चेतना सम्पन्न कथा साहित्य ने और अब हिन्दी में दलित कथाकारों की एक पूरी पीढ़ी सक्रिय है। जिनकी कहानियाँ पिछले तीन–चार दशकों से समकालीन भारतीय साहित्य, हंस, पहल, कथानक, संचेतना, इन्द्रप्रस्थ भारतीय, हम दलित, अंगुत्तर, युद्धरत आम आदमी आदि पत्रिकाओं तथा नवभारत टाइम्स, लोकमत समाचार आदि दैनिक पत्रों में प्रकाशित होती रही हैं और व्यापक पाठक समुदाय का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर रही हैं। इनमें से कुछ प्रमुख कहानियाँ इस प्रकार हैं।

ओमप्रकाश बाल्मीकि एक ऐसे दलित कथाकार हैं जिसकी कहानियाँ पिछले कई दशकों से निरन्तर पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हो रही हैं और उन्होंने अब अपनी एक अलग पहचान बना ली है। उनकी कहानियों में– बैल की खाल, सलाम, ग्रहण, कहाँ जाए सतीश महत्त्वपूर्ण कहानियाँ हैं। आपकी कहानियाँ एक ऐसा वातावरण रचती हैं, जिसमें बहुत ही सूक्ष्मता से दलित उत्पीड़न की मानसिक, शारीरिक, सामाजिक या आर्थिक स्थितियाँ खुलकर सामने आ जाती हैं। यह उनकी परिपक्व समझ का ही परिचायक है। 'सपना' उनकी एक ऐसी ही कहानी है। जिसका नायक 'गौतम' फैक्ट्री के पास पड़ी जमीन पर मन्दिर बनाने के लिए कुछ लोगों के कहने पर तन–मन से चन्दा पूरी निष्ठा से करता है। लेकिन जब मन्दिर में मूर्ति की प्राण प्रतिष्ठा का समारोह होता है तो उस पंडाल में गौतम के परिवार को आगे की पंक्ति में बैठा देखकर परम्परावादी सहन नहीं कर पाते और उन्हें वहाँ से उठाने के लिए घुमा–फिराकर बार–बार प्रयत्न किए जाते हैं और जब वह वहाँ से उठने को तैयार नहीं होते तो अन्ततः नटराजन गौतम के मित्र ऋशिराज से कह ही देता है–'ये गौतम......एस.सी. है। नटराजन ने आखिरी चाल चल दी। 'तो इससे क्या फर्क पड़ता है......श्री नटराजन जी...।' ऋशि ने व्यंग्य से कहा। 'फर्क पड़ता है.....पूजा अनुष्ठानों में उन्हें आगे नहीं बैठाया जा सकता है। यह रीत है। शास्त्रों की मान्यता है।' नटराजन ने गहरे अवसाद में भरकर

कहा, 'तो यह बात है......मिस्टर नटराजन यह ज्ञान आपको आज ही प्राप्त हुआ है कि गौतम एस.सी. है। जब यह दिन–रात अपना खून–पसीना बहा रहा था, इस मन्दिर को खड़ा करने में, तब आप नहीं जानते थे कि वे एस.सी. हैं। तब आपने क्यों नहीं कहा कि जो एस.सी. है, वह मन्दिर के काम में हाथ न बटाएं। इसके चूने–गारे में अपने जिस्म का पसीना न मिलाए। क्यों नहीं आपने ऐलान किया कि जो ईंट किसी एस.सी. ने बनाई है या पकाई है, ट्रक में चढ़ाई है या उतारी है, वह ईंट इस मन्दिर में नहीं लगेगी। उस वक्त भी तो सोचना चाहिए था....।' ऋशि ने अपनी पूरी शक्ति से विरोध किया। और इस विरोध में धक्का–मुक्की शुरू हो जाती है, भगदड़ मच जाती है तथा प्राण प्रतिष्ठा का समारोह ध्वस्त हो जाता है। ऋशिराज और गौतम को मारपीट करने तथा अशांति फैलाने के आरोप में गिरफ्तार कर लिया जाता है। लेकिन यह कहानी दलितों के लिए एक सन्देश छोड़ जाती है गौतम के इस कथन के रूप में कि–''चलो भाई, हम लोग घर चलते हैं। ऐसे अनुष्ठानों में बैठकर क्या होगा जहां आदमी को आदमी की तरह न समझा जाए।'' इस पर टिप्पणी करती हुई डॉ0 रमणिका गुप्ता का कहना है कि ये बौखलाए हुए आदमी की कहानियाँ नहीं हैं ये उस सताए हुए समाज की कहानियाँ हैं जो मनुष्यता का दावा करना सीख गया है और बराबरी का हक माँग रहा है। वे लोग अब दूसरी दुनिया के यथार्थ को अपनी नियति मानने को तैयार नहीं हैं।''[5]

डॉ0 प्रेमशंकर की कहानी 'बित्तेभर जमीन' आत्मबोध की कथा है। दलितों में एक आम कहावत प्रचलित है कि–''चमार का चूल्हा तो टोकरी में ही रहता है।'' उसकी न जमीन होती है, न धन और न ही सम्मान। यह बित्ताभर जमीन भी इस कथा नरेटर (लेखक) के परिवार वालों को अस्सी साल पहले जमींदार ने यूँ ही बता दी थी, बिना किसी लिखा–पढ़ी के। जिस पर उन्होंने अपना घेरा बना लिया था। पहले यह जमीन गांव के बाहर थी, तो इसकी कीमत कुछ नहीं थी, लेकिन अब यह जमीन गाँव के बीच में आ गई तो इसकी कीमत लाखों रुपये की हो गयी। अतः इसे खाली करवाने के लिए जमींदार ने हरिजनों की पूरी बस्ती में आग लगवा दी और जब किसी तरह एक दलित पत्रकार ने यह खबर अखवार में छपवा दी, तो इलाके के भूतपूर्व एम.एल.ए. पंडित हरप्रसाद ने उसे नौकरी से निकलवा दिया। बाद में अशांति फैलाने के आरोप में पत्रकार तथा उसके घरवालों को पुलिस पकड़ लेती है। इस कहानी से स्पष्ट होता है कि दलित उत्पीड़न कभी धर्म के कारण होता था, लेकिन अब राजनीति और प्रशासन का गठजोड़ इसका महत्त्वपूर्ण कारण है। यह आत्मबोध की कहानी इसलिए कही जाती है कि इस कहानी में तीन पीढ़ियों का चित्रण हुआ है। पहली पीढ़ी ने अस्सी साल पहले से जमींदार के यहां काम किया। लेकिन उनके पास एक बीघा खूड़ (जमीन) भी नहीं है। दूसरी पीढ़ी में चेतना जागी है जिसका प्रतिनिधि है–पत्रकार (लेखक) जिसे डकैती और गलत रिपोर्टिंग के आरोप में बन्द कर दिया जाता है। साथ में बन्द एक डकैत की सलाह पर कि सुरक्षित सीट से जयकिशन एम.एल.ए. है, उनसे मिल लो। तो वह कहता है–''वह तो गांधीवादी हैं, हमें तो बित्ते भर जमीन चाहिए गांधीवादी नहीं।'' तीसरी पीढ़ी का प्रतिनिधि है, लेखक का भतीजा, जिसमें आत्मबोध पूरी तरह उद्‌बुद्ध हुआ दृष्टिगोचर होता है। वह कहता है–''चाचा, माँ की कसम खा के कह रहा हूँ, शामू को कुछ हो गया तो गाँव भर को फूंक दूंगा। हमें छोटी जात के समझ लिए, तो क्या ताकत में भी छोटे ही समझ लिए।'' यह घटनाक्रम प्रमाणित करता है कि अब दलितों में भी आत्मबोध जाग रहा है, अब उसका जाति का छोटा होना उसके पुरुषार्थ में और अधिक समय तक अवरोध उत्पन्न नहीं कर पाएगा। इस दृष्टि से यह एक महत्त्वपूर्ण कहानी है। ओमप्रकाश बाल्मीकि का मानना है कि जहाँ एक ओर दलित अपनी पीड़ा को आक्रोश में बदलकर साहित्यिक अभिव्यक्ति को एक नया रूप दे रहा है, वहीं दूसरी ओर आमबोध की कहानियाँ भी रच रहा है। डॉ0 प्रेमशंकर की 'बित्ते भर जमीन' ऐसी ही कहानी है।[6]

शिक्षा व्यवस्था में व्याप्त दुर्गणों को रेखांकित सुरंग कहानी वर्तमान के यथार्थ को रेखांकित करती है। डॉ0 दयानन्द बटोही अपनी कहानी 'सुरंग' में इस तस्वीर को दूसरा रुख प्रदान करते हैं कि जब दलित युवक इन बाधाओं को पार कर विश्वविद्यालयों में पहुँचकर शोध जैसी उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहता है, तो वहाँ पर

विभागाध्यक्ष, कुलपति और शोध निदेशक जो अपने हिसाब से विश्वविद्यालयों में वर्णव्यवस्था स्थापित किए हुए हैं। कैसे दलित शोधार्थी के मार्ग में अवरोध खड़े करते हैं। यह कहानी शिक्षा तन्त्र में व्याप्त भ्रष्टाचार का पर्दाफाश करती है।

बी.एल. नय्यर की कहानी 'चतुरी चमार की चाट' सरकार और परम्परावादी समाज की उन समस्त घोषणाओं को बेनकाब करती है– जिनमें बताया है कि अब भारत में किसी प्रकार की कोई छुआ–छूत नहीं है, सब सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक स्तर पर समान हो गए हैं। चन्दन चौबे जब देखते है कि गाँव में साहे बगैरह खत्म हो गए हैं, तो वह शहर में जाकर चाट बेचने लगता है। अपनी ठिलिया पर 'चन्दन चौबे की चाट' लिखवा कर वह जिस चौराहे पर चाट बेचते हैं, वहाँ एक चाय की दुकान है, जिस पर बराबर बहस चलती रहती है। एक दिन इसी बहस में चौबे सुनते हैं कि–''देखो, हिन्दू लोगों में कितना बदलाव आ गया है। अयोध्या के मंच पर श्री रामचन्द्र जी के साथ–साथ अम्बेडकर भी अवतरित हो गए। राम के साथ उनका भी चित्र लगाया गया। गौरतलब बात यह कि राम के मुकाबले अम्बेडकर का ज्यादा गुणगान किया गया।'' आगे एक दिन चौबे ने अखबार पढ़ते उन्हीं लोगों से सुना–''देखो हिन्दुओं में कितना सुधारवाद आ गया है। मकर संक्रान्ति के दिन हिन्दू नेताओं ने दलितों को गले लगाया। उनके साथ सहभोज का आयोजन किया गया। समाज में अब भेदभाव कहाँ रह गया है।'' तीसरी बार चौबे ने जो कुछ सुना उससे वे फूले नहीं समा रहे थे। बैन्चों पर बैठे लोगों की बतकही में उन्होंने सुना–''भैया अब कौन सी कसर बाकी रह गई है। अब और कौन–सा सुधार चाहिए। बनारस में हिन्दुओं ने एक डोम के घर की बनी पूड़ियां तक खा लीं। ऊँच–नीच सब खत्म। अब तो सचमुच रामराज्य आ गया है।'' तभी उसे लगा कि क्यों न वह गाँव से चतुरी को बुला ले, इससे उसे कुछ आराम भी मिल जाएगा और चतुरी को दिया गया उसका कर्ज भी चुकता हो जाएगा। अतः वह तार देकर गाँव से चतुरी को बुला लेता है। और ठिलिया लेकर चतुरी को ठिकाने पर भेजता है। लेकिन जातीय हीनता के कारण चतुरी को लगता है कि उसकी जाति जानकर लोग उसे अपमानित करेंगे। अतः वह 'चन्दन चौबे की चाट' की जगह 'चतुरी चमार की चाट' लिखवा कर जैसे ही तिवारीयन टोले के तिराहे पर आता है तो थोड़ी देर बाद वहाँ कुछ नवयुवक आते हैं और चतुरी का धमकाते हुए कहते हैं–''क्यों बे साले चमरे। तेरी हिम्मत कैसे हुई यहां चाट लगाने की। हम तो समझदार हैं, तो बच जाएंगे। लेकिन बेचारे बच्चे क्या जाने। तेरी चाट खाकर सब बेदीन हो जाएंगे। आज तेरा पहला दिन है इसलिए बख्शे दे रहे हैं। कल से यहाँ शक्ल दिखाई दी तो खैर नहीं। जल्दी फूट यहाँ से।'' अपमानित–भयभीत चतुरी, लौटकर कमरे पर आता है और चौबे को पूरी दास्तां कह सुनाता है। दुःखी स्वर में चौबे कहता है–''चतुरी तुम वापस गाँव चले जाओ। वहीं जाकर मेहनत–मजदूरी करो। अभी तुम्हारी चाट बिकने का समय आने में देर है।'' यह कहानी एक ओर नाथ द्वारा मन्दिर प्रवेश के सत्य से जुड़ती है कि वहां कोई दलित वैसे रोज आए, किन्तु वह घोषणा करके वहां नहीं जा सकता कि वह दलित है। दूसरी ओर उस धार्मिक साजिश की ओर भी संकेत करती है, जिसने जातियों के पेशे तक निर्धारित कर दिए हैं। जो भारतीय लोकतंत्र के पचास वर्षों बाद भी खत्म नहीं हुए हैं। चतुरी चमार की चाट जाति और अर्थ (धन) के अन्तर्सम्बन्धों को उद्घाटित करने वाली सशक्त एवं सफल कहानी है। डॉ0 एन0 सिंह इस पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि चतुरी चमार की चाट सवर्ण जातियों के मन में बसी दलित–जातियों के प्रति घृणा को नंगा करती है।[7]

इतिहास इस बात का साक्षी रहा है कि समाज में दलित वर्ग को अपमान और उपेक्षा की पीड़ा का दंश उन्हें बराबर झेलना पड़ा है मनुष्य के सामान्य प्राकृतिक अधिकारों, आवास, भोजन, चिकित्सा आदि की सुविधाओं से दलित पीढ़ी आरम्भ से ही उपेक्षित रही है। कहीं न कहीं यह उपेक्षा आज भी प्रबुद्ध दलित पीढ़ी के आन्दोलन का कारण है। हमारी सामाजिक अवधारणा इस बात की पुष्टि करती है कि दलित समाज सदियों से शोषण का शिकार है और उसके शोषण के अनेक माध्यम हैं। यह आरम्भ से ही माना गया है कि अनपढ़ व्यक्ति बैल के समान है और यही हाल दलितों का भी रहा है। दलित शोषण का एक बहुत बड़ा कारण अशिक्षा और भेदभाव था। लेकिन

यह सत्य है कि शोषण और अन्याय की पीड़ा को आज के परिवेश में राजनीति का आधार बनाया जा रहा है। लेकिन यह गलत है। यदि आज के परिवेश में हम दलित–चिंतन के नाम पर कुछ करना चाहते हैं तो हमें ऐसे वातावरण का निर्माण करना होगा, जिससे दलित विकास के बारे में सोचा जा सके।[8]

समसामयिक परिवेश की बात की जाए तो मोहनदास नैमिशराय की कहानी 'हारे हुए लोग' शिक्षित दलित, जो अधिकारी भी हैं, को भी शहरी समाज में किराए का मकान मिलने में जाति के कारण दिक्कत होती है। इस समस्या को यह कहानी बड़ी शिद्दत के साथ उठाती है। मि0 कुरील का स्थानान्तरण दूसरे शहर में हो जाता है और वह एक पंडित के यहाँ मकान देखने जाते हैं। यह 'पंडित शूद्र संवाद' शिक्षित दलित जीवन के सम्पूर्ण संत्रास को उभार देता है। देखिए रामनारायण द्विवेदी के इस कथन में कितनी घृणा है–''अजी हमें क्या मतलब आप कलट्टर भी हैं। नौकरी करने से आदमी की जात तो नहीं बदल जाती। रहता तो वही है।'' उसे आघात लगता है। तभी भीतर से कोई जनाना स्वर उभरता है ......''अजी कौन आया है? जाने किस जात के हैं, ऊँची जात के होते तो फौरन बतला देते। अब हमने क्या ठेका ले लिया है हर किसी को घर में घुसाने का। आजकल वैसई भरस्त हो गया सब कुछ।'' उसके कानों में लगता है जैसे मनु के किसी वंशज ने पिघला हुआ शीशा डाल दिया हो। यह कहानी पूरी शिद्दत के साथ दलित आक्रोश को अभिव्यक्ति देती है तथा हिन्दुत्व की असमान व्यवस्था पर जोरदार चोट करती है। ओमप्रकाश बाल्मीकि के अनुसार हारे हुए लोग ''दलितों को किराए का मकान मिलने में आनेवाली परेशानियों और जात–पांत की भावना में उपजे तिरस्कार की कहानी है। दलित अधिकारी को नए शहर में जाने पर किराए का मकान ढूंढ़ने में जिस पीड़ा और अपमान बोध से गुजरना पड़ता है, वह कोई भुक्तभोगी ही समझ सकता है।''[9] इक्कीसवीं सदी एवं वैश्वीकरण का दम भरने वाले प्रगतिवादियों पर प्रस्तुत कहानी करारा व्यंग्य करती है और परम्परा से चले आ रहे जाति–पांति का समर्थन कर उसे बढ़ावा देने की कोशिश करती है।

प्रेम कपाड़िया की कहानी 'हरिजन' भारत के मन्दिरों में अभी भी देवदासियों की समस्या को उठाती है। ये देवदासियाँ अशिक्षा, गरीबी और धार्मिक अंधविश्वास के कारण दलित परिवारों से ही आती हैं। 'हरिजन' कहानी के नायक प्रेम के ससुर इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि–''मध्यप्रदेश के तमाम बड़े मन्दिरों में आज भी देवदासियाँ बनाई जा रही हैं......व्यवस्था और शासन–सभी लोग इन गरीब हरिजन महिलाओं का शोषण करते हैं।'' दरअसल ये देवदासियाँ धर्म के नाम पर बनाई गई वैश्याएं हैं, जो पुजारियों की वासना पूर्ति का साधन तो बनती ही हैं, ये पुजारी दलालों की तरह इन्हें ग्राहकों को सप्लाई भी करते हैं। यह रहस्य तब खुलकर समाज के सम्मुख आता है, जब स्कूल में बच्चे प्रेम को हरामी कहते हैं और वह घर आकर अपनी माँ से अपने बाप का नाम पूंछता है। तब उसकी माँ परबतियां उसे बताती है कि–''बेटा....ये हमारी बदनसीबी है कि तेरे बाप का पक्का पता नहीं. ...जो औरत रोज नए मर्द के साथ सोती हो....उसके बाप का नाम कैसे पता चल सकता है।'' यह कहानी हिन्दू धर्म के उस घृणित चेहरे को बेनकाब करती है, जो हरिजन महिलाओं को धर्म के नाम पर वैश्याएं बनाता है। दरअसल यह कहानी इस सनातनी धर्म से दलितों की मुक्ति का सन्देश देती है। परबतियाँ की मुक्ति इसका प्रमाण है। ''भारत राष्ट्र का सांस्कृतिक एवं सामाजिक सूत्र जितना सबल है उतना ही दुर्बल है। 'सर्वे भवन्तु सुखिन, सर्वे सन्तु निरामयः' के पोषक विश्वबन्धुत्व का नारा लगाने वाला भारत की राष्ट्रीय एकात्मकता में कब बिखराव उत्पन्न कर बैठे आहट ही नहीं हुई। एक तरफ ऊँचाईयों को छूता परम्परावादी वर्ग तो दूसरी ओर पतन की गर्त पड़ा हुआ, वेदनाओं के कीचड़ में फंसा बेचारा 'दलित'। 'दलित' केवल हरिजन नहीं गांव के बाहर रहने वाली सभी अछूत जातियाँ, आदिवासी, भूमिहीन खेत मजदूर, श्रमिक आदि दलित शब्द से व्याख्यायित होते हैं।''[10] जो सनातनी समाज एवं धर्म की गलीज रूढ़ियों एवं परम्पराओं का शिकार होते रहते हैं।

रत्नकुमार सांभरिया की कहानी 'क्षितिज' जमींदारों द्वारा दलित महिलाओं के यौन शोषण की कथा बंया करती है। लेकिन यह प्रतिशोध की कहानी है। जब जमींदार नानक सिंह कथानायक सोमा की पत्नी रेवती की अस्मत खेत में लूटने का प्रयास करता है, तो वह उसके नाक पर खुरपा दे मारती है। लेकिन इसका परिणाम रोंगटे खड़े

कर देने वाला है। सोमा और रेवती को गाँव से भागकर शहर में मजदूर बन जाना पड़ता है। गाँव में उनकी माँ भूख तथा जमींदार के अत्याचार से पीड़ित होकर दम तोड़ देती है। और अन्ततः भूख और ठंड से तड़पकर एक दिन सोमा भी दम तोड़ देता है। पुलिस रेवती को सोमा की हत्या के आरोप में गिरफ्तार कर अपमानित करती है। यह दलित उत्पीड़न की एक सशक्त कहानी है जो यथार्थ की जमीन तलाशती नजर आती है। डॉ0 कुसुम मेघवाल की कहानी 'समय के शिलालेख' एक अन्य स्थिति को प्रस्तुत करती है। अब दलित उच्च शिक्षा प्राप्त कर प्रशासनिक सेवाओं में भी आने लगे हैं। अब कोई दलित प्रशासन की सर्वोच्च कुर्सी पर बैठता है, तो उसके प्रति परम्परावादी किस प्रकार का दृष्टिकोण रखते हैं। जिले में जब नया कलक्टर आया तो यह जानकर कोटड़ा का ठाकुर कहता है–''क्या कहा चमट्टा है।' लेकिन फिर यही ठाकुर पहले अपने आदमियों को दावत देने भेजता है। मना करने पर फिर स्वयं जाता है। उसका एक मुकदमा भी गाँव के दलितों के साथ चल रहा है। इस पर कलक्टर साहब की न्यायप्रियता भी दांव पर लगी है। अन्ततः कलक्टर दलितों के पक्ष में उचित निर्णय देता है। कहानी से यह सन्देश मिलता है कि दलितों को उस समय तक न्याय नहीं मिल पाएगा जब तक कि वह उच्च कुर्सियों तक नहीं पहुंचेंगे जहाँ पर निर्णय किए जाते हैं। और उन्हें क्रियान्वित किया जाता है। दलित साहित्य आन्दोलन प्रगति के उच्चतम सोपानों को तभी छू सकेगा जब इसके लिए शिद्दत के साथ लोग जुड़ेंगे। इसके लिए आवश्यक है कि दलित उत्पीड़न रोकने के लिए एक तो हमें दलित मीडिया की स्थापना करनी होगी। दलितों में बहुत से लोग धनवान हैं, उन्हें अखबार, पत्रिकाएँ और टी0वी0 चैनल स्थापित करने चाहिए। इसके अतिरिक्त अच्छे–अच्छे अंग्रेजी स्कूल–कॉलेज और शिक्षा संस्थाओं की स्थापना करनी चाहिए। दलित जातियाँ आपस में भले ही बेटी (विवाह) का सम्बन्ध न जोड़ें, उन्हें आपस में रोटी का सम्बन्ध अवश्य जोड़ना चाहिए। यदि दलित जातियों में एकीकरण स्थापित कर सकें, तो दलित उत्पीड़न निश्चय ही रुक जायेगा।[11]

कुल मिलाकर संक्षेप में कहा जा सकता है कि हिन्दी की दलित कहानियाँ समाज परिवर्तन की दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने के साथ ही अपना सार्थक प्रभाव भी छोड़ रही हैं।

सहायक सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. दूसरी दुनिया का यथार्थ, संपादक–रमणिका गुप्ता–भूमिका–कमलेश्वर, पृ0–6
2. दलित–कहानियाँ, पृ0–20
3. जन–सम्मान,जून–2006, बदलते आर्थिक परिदृश्य में दलितों के समक्ष चुनौतियाँ–डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव, पृ0–20
4. दलित चेतना : साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार, डॉ0 रमणिका गुप्ता, पृ0–103
5. दलित चेतना : साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार, डॉ0 रमणिका गुप्ता, पृ0–98
6. दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र, पृ0–115
7. मेरा दलित चिंतन, पृ0–83
8. दलित विमर्श : चिन्तन एवम् परम्परा, नवम्बर–2005, सम्पादक–डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव, पृ0–44
9. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृ0–112–113
10. दलित विमर्श : चिन्तन एवम् परम्परा, सं. डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव, पृ0–54
11. हंस, अगस्त–2004, पृ0–227

❑❑

30

शिवमूर्ति की कहानियों में स्त्री चेतना

डॉ0 सियाराम
एसोसिएट प्रोफेसर–हिन्दी विभाग,
तिलक महाविद्यालय, औरैया।

साम्प्रतिक हिन्दी साहित्य का धरातल दलितों, शोषितों, उपेक्षितों विशेषतः स्त्रियों के प्रति जिस प्रकार का लेखन हो रहा है वह निश्चय ही स्वागत योग्य सराहनीय पहल है। प्रत्येक समाज में स्त्रियों की स्थिति, आदर्श और मूल्य एक समान नहीं पाये जाते हैं। प्रायः भिन्न–भिन्न समाजों में इनकी स्थिति, इनके कार्यों एवं आदर्शों के आधार पर निर्धारित होती है। समकालीन कहानीकारों में अपनी अलग पहचान बनाने वाले शिवमूर्ति अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज में स्त्रियों की यथार्थ स्थिति से पाठकों का साक्षात्कार कराते हैं। कहानी–कथन का सीधा, सच्चा व मार्मिक कौशल शिवमूर्ति को वर्तमान परिवेश का समर्थ कहानीकार सिद्ध करता है। सामाजिक यथार्थ व विसंगतियों को मात्र विमर्शों तक केन्द्रित न रखकर वर्तमान में जी रही शोषित–उपेक्षित स्त्रियों की त्रासदी को वे अपनी कहानियों का केन्द्रीय विषय बनाते हैं। स्त्री जन्मतः भेदभावपूर्ण व्यवहार का शिकार होती है, यह भारतीय समाज का कटु यथार्थ है। स्त्री जीवन के इस परिदृश्य को लक्ष्य करके ही शिवमूर्ति ने अपनी कहानियों की रचना की है। उनका रचना संसार बहुरंगी व वैविध्यपूर्ण है। वे सदैव स्त्रियों के सामाजिक सरोकारों और सम्बन्धों को गहराई से व्यक्त करते आये हैं। दुःख, निराशा, व्यथा, संघर्ष, कुछ करने का संकल्प और कार्य के पूर्ण न होने पर प्रतिसंघर्ष की भावना शिवमूर्ति की कहानियों के पात्रों के माध्यम से भारतीय समाज की संघर्षशीलता और जिजीविशा को व्यक्त करता है।

शिवमूर्ति जी की अधिकांश कहानियाँ नायिका प्रधान हैं। जहाँ वे केन्द्र में नहीं हैं, वहाँ भी उनकी भूमिका कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। उनकी कहानियों में शहरी वातावरण की अपेक्षा ग्रामीण परिवेश को प्रमुखता मिली है। यही कारण है कि उनकी सभी कहानियों में ग्रामीण परिवेश की महिलाओं का ही चित्रण है, जो अपनी विपरीत परिस्थितियों में संघर्ष करती हुई अपनी इच्छाओं–अभिलाषाओं और सपनों की पूर्ति के प्रति प्रतिबद्ध अपने जीवन जीने की दृढ़ इच्छा शक्ति बनाये रखती हैं। 'कसाईबाड़ा' की सनिचरी, 'अकाल दंड' की नायिका सुरजी, 'तिरिया चरित्तर' की विमली, 'केशर कस्तूरी' की केशर, 'सिरी उपमा जोग' की लालू की माई और 'भरत–नाट्यम' की ज्ञान की पत्नी, ये सभी पात्र अपने जीवन में 'संघर्ष' करते हुए जीवन जीने को दृढ़ संकल्पित हैं। इस संबंध में प्रसिद्ध कवि व आलोचक उमेश चौहान का कथन काबिलेगौर है–''शिवमूर्ति की कहानियाँ स्त्री विमर्श की कहानियाँ हैं। .... उनका स्त्री विमर्श समाज की उन निम्नवर्गीय औरतों के शारीरिक व आत्मीय सौन्दर्य, दैहिक ताप व उत्पीड़न, जिजीविषा, प्रतिरोध, राग–द्वेष, पारिवारिक क्लेश आदि पर केन्द्रित हैं जो दूर–दराज के गाँवों में घर–जँवार की सीमाओं में कैद होकर अपना जीवन गुजार रही हैं। इनमें अनपढ़, गरीब, विस्थापित बाल ब्याहता, श्रमिक शोशित व उपेक्षित वर्ग की साधारण स्त्रियों का जिंदगीनामा है जिसमें न हार की फिक्र है, न जीत की, बस संघर्ष ही संघर्ष है, वेदना ही वेदना है।''[1]

'कसाईबाड़ा' स्त्री शोषण की मार्मिक कहानी है। किस तरह समाज में स्त्रियों का पशुवत व्यापार किया जाता है, कैसे भोले–भाले ग्रामीणजनों को चालाक व धूर्त छलते हैं, इस विद्रूप का जीवंत उदाहरण है–'कसाईबाड़ा' की सनीचरी। सनचरी गाँव की बूढ़ी महिला है और उसकी बेटी के सिवाय उसका कोई नहीं है। वह सोचती थी कि

ग्राम प्रधान ने उसकी बेटी का विवाह करवाकर उस पर और गाँव के अन्य लोगों पर उपकार किया है। इसी कारणवश न केवल अपना गाँव में वरन् आस–पास तक के गाँवों में उन्हें देवता की तरह पूजा जाने लगा सनिचरी अपनी विवाहित बेटी को वापस लाने के लिए संघर्ष करती है। यह संघर्ष ग्राम प्रधान के विरुद्ध है, जिसने छल से गाँव की अनेक बेटियों को सामूहिक विवाह कार्यक्रम' के नाम पर बेंच कर धोखा दिया। गाँव के भोले–भाले ग्रामीणों से विश्वासघात किया। सनिचरी को जब यह पता चलता है कि ग्राम प्रधान ने उसकी बेटी का विवाह न कर उसे बेंच दिया है तो वह ग्राम प्रधान से बेटी की वापसी के लिए धरने पर बैठ जाती है–'गाँव में बिजली की तरह खबर फैलती है कि सनिचरी धरने पर बैठ गई है, परधान जी के दुआरे'। लीडर जी कहते हैं–''जब तक परधान जी उसकी बेटी वापस नही करते, सनिचरी अनशन करेगी, आमरण अनशन।''[2] जब से सनिचरी अनशन पर बैठी है, ग्राम प्रधान का घर से निकलना ही मुश्किल हो गया है। निकलते ही सनिचरी उनका पैर पकड़कर गोहार लगाती है–''मोर बिटिया वापस कर दे बेईमनवा, मोर फूल ऐसी बिटिया गाय–बकरी की नाई बेंचि के तिजोरी भरै वाले। तोरे अंग–अंग से कोढ़ फूटि कै बदर–बदर चूई रे कोढ़िया...........।''[3]

सनिचरी की ये गोहार ग्राम प्रधान के कानों तक पहुँचकर भी नहीं पहुँचती है और वो उसकी कोई भी सहायता करने से मना कर देता है। तब लीडर जी अपने वोट बैंक को बढ़ाने के चलते सनिचरी की सहायता के लिए आगे आते हैं। लीडर जी की यह सेवा भावना निस्वार्थ नहीं है। इसका मूल कारण है सनिचरी की दो बीघा खेत। सनिचरी गाँव की भोली–भाली अनपढ़ महिला है। लीडर जी उसकी इसी खूबी का फायदा उठाते हैं। वह सनिचरी की बेटी वापस दिलाने का झूठा आश्वासन देकर न सिर्फ उसे धरने पर बैठने के लिए राजी कर लेते हैं बल्कि धोखे से सादे कागज पर सनिचरी से अंगूठा लगवा लेते हैं। सनिचरी अंगूठा लगाते समय (अनपढ़ होने के बाद भी) अपनी तर्क–शक्ति का प्रयोग करती है। अँगूठा लगाते समय सनिचरी चोरबत्ती की रोशनी में कागजों को देखती है–''ई तौ कचहरी वाला कागद है बेटवा, ऊपर की ओर रूपैया जैसी छापी बनी है।''

बुढ़िया की नजर रात में भी उल्लू की माफ़िक तेज है।

पसीना चुहचुहा आया है लीडर जी के माथे पर।

''मुख्यमंत्री के पास तो वाटरमार्क वाली दरखास्त ही जाती है काकी, बिना कोर्ट फीस और टिकट वाली दरखास्त की कोई बैलू नहीं।''

''कुछ लिखौ नाहीं है, कोरा कागद।''

''इसमें मशीन से टाइप करवाकर लिखना होगा। हाथ की लिखाई नहीं चलेगी।''

सनिचरी अँगूठा निशान देती है।[4] ताकि उसकी दरखास्त मुख्यमंत्री तक पहुँचे और उसे न्याय मिल सके किन्तु ऐसा होता नहीं है। ग्राम प्रधान जहाँ जिले के उच्चाधिकारियों की उपस्थिति में छलपूर्वक गाँव की गरीब कन्याओं को सामूहिक विवाह के बहाने बेच देता वहीं लीडर जी धोखे से छलपूर्वक सनीचरी का खेत अपने नाम करवा लेता है। सनीचरी को न्याय के स्थान पर मृत्यु मिलती है, वह भी प्रधान–प्रधानिन द्वारा धोखे से। सनिचरी के माध्यम से शिवमूर्ति गाँवों फैले राजनीतिक भ्रष्टाचार को उजागर करते हैं। कैसे एक माँ अपनी बेटी को पाने के संघर्ष में अपने प्राणों की आहुति दे देती है और सभ्य कहे जाने वाले समाज में इसका कोई असर नहीं होता है। इस प्रकार यह कहानी स्त्री–शोषण को उजागर करती है।

'कसाईबाड़ा' की तरह 'तिरिया चरित्तर' कहानी में भी रचनाकार ने स्त्री शोषण के घृणित पक्ष को उजागर किया है। 'तिरिया चरित्तर' की नायिका विमली अपने जीवन में भूख–प्यास से, परिवार से, गाँव–समाज से संघर्ष करने के साथ–साथ अपने आत्म सम्मान, अपनी मान–मर्यादा सुरक्षित रखने के लिए भी संघर्षरत हैं किन्तु विमली

को पारिवारिक स्तर पर इसमें विफलता हाथ लगती है। विमली के लाख प्रयासों के बावजूद वह अपने को अपने ससुर की वासना से बचा नहीं पाती। वह ससुर के द्वारा किये छल का शिकार हो जाती है। विमली के शरीर में चेतना आते ही उसे रुलाई छूटने लगती है–''धोखा! छल! कहाँ–कहाँ से किन–किन खतरों से बचाती आई थी वह परायी अमानत! कितने बीहड़ ?कितने जंगल ?कितने जानवर ? कितने शिकारी! और मुकाम तक सुरक्षित पहुँचकर भी लुट गई वह! मेड़ ही खेत खा गई–छल से।.........''[5] अपनी दुर्दशा पर विमली रोती है और सोचती है कि उसके ससुर का सरल स्वभाव केवल दिखावे के लिए था उसने छल किया और आन–बान–शान से जीने वाली विमली की मान–मर्यादा को तार–तार कर दिया। वह सोचती है–''अपनी आन–बान से जीने वाली 'मादा' यहाँ 'मिट्टी' कर दी गई जबरन! लाड़–प्यार से नाकाम ? छुई–मुई पढ़वैया लड़की है वह ?कि चुपचाप जला दी जाएगी ?मार दी जायेगी ? उसके खून में मेहनत की आँच है उसे कोई 'दासी' बनाकर रख पाएगा ?''[6]

विमली अपने साथ हुए छल से दुःखी होती है। वह अपने ससुर को क्रोधाग्नि में ही मिट्टी का तेल डालकर जलाने का प्रयास करती है किन्तु सफल नहीं हो पाती क्योंकि उस समय उसका ससुर घर पर नहीं होता है। तत्पश्चात विमली घर से भागकर अपने पति के पास जाने का निर्णय लेती है। विमली का यह निर्णय साहसिक है क्योंकि वह सारे अत्याचारों को सहती है, पर टूटती नहीं। वह अपने हितार्थ विचार करती हैं और अनजाने शहर में अपने पति को ढूँढने के लिए निकल पड़ती है। विमली के जाने के पश्चात् गाँव में तरह–तरह की चर्चायें होती है।

कथाकार ने यथार्थ रूप में स्त्रियों की पारिवारिक एवं सामाजिक समस्याओं को वर्णित किया है। कहानियों में रचनाकार का स्त्री विषयक दृष्टिकोण दो रूपों में प्रतिफलित होता है–एक स्त्रियों द्वारा स्त्रियों की चर्चा तथा दूसरा पुरूष पात्रों द्वारा स्त्री संबधी दृष्टिकोण। विमली के घर से भाग जाने के पश्चात् उसका ससुर हल्ला करने लगता है–''दौड़ो रे भइया! अरे जगेसर भाई! ललई काका! ई तो हरजइया निरधन करके भाग गई हो। हे भगवान! कहाँ दौड़ी ?केका गोहराई ?

का भवा ?का भवा ? एक–एक करके इकट्ठा होने लगे है' टोले के औरत–मर्द–बच्चे! थोड़ी देर में पूरे गाँव में 'हल्ला' हो जाता है।

''बिसराम की पतोहू भाग गई, किसी के साथ !''

''हाँ, बिसराम ने रात किसी को झोपड़ी से निकलते देखा था सोचा बहू दिशा–मैदान के लिए निकली होगी।''[7]

इन बातों से स्पष्ट है कि बिसराम अपनी बहू को भगोड़ी सिद्ध करता है और अपने लिए सुहानुभूति अर्जित करता है। विमली के भाग जाने के बाद औरतों में भी चर्चा होती है और यह चर्चा फिर अपनी खार निकालने के लिए होने लगती है। डीजल की माँ मनतोरिया के लिए कहती है, ''अरे, मनतोरिया की माई भी तो अपनी भरी जवानी में पूरे गाँव को न्योतती घूमती थी। अपना 'पच्छ' सभी को भाता है।'' डीजल की महतारी हाथ फेंककर अचानक आवाज ऊँची कर देती है। ''टोले वालों के ताने सुनते–सुनते बिसराम के दिल में घाव हो गया था। झूठा अकलंक। बेचारे में रात–दिन एक करके अपने सोने के लिए अलग मँड़ई तैयार किया।'' बाल विधवा बिरजा कहती है।

''वही तो गलती हुई! ''डीजल की महतारी चीख–चीखकर बोलती है, ''न झूठा अकलंक मनतोरिया की माई लगाती, न बिसराम दूसरी मँड़ई छवाता, न बहू को खुलकर खेलन का मौका मिलता, न आज गाँव की नाक आध ो पर से कटती।''[8]

स्पष्ट है, औरतों की चर्चा में स्त्रियों के विषय में नाना प्रकार के आरोप–प्रत्यारोप लगते हैं और अनेक प्रकार की बातें होती है। गाँव के एक भट्ठे पर श्रमिक थी। वहाँ भट्ठे पर कार्यरत पुरूषों से प्रतिदिन ही उसका मिलना–जुलना होता था। वहाँ पर ट्रक डरेवर जी, ट्रेक्टर ड्राईवर बिल्लर, कुइसा मिस्त्री आदि से वह रोज ही मिलती

थी। यही कारण था कि जब विमली का ससुर उसे आसानी से प्राप्त नहीं कर पाता तो वह उसके चरित्र पर लाँछन लगाता है और कहता है कि ''बड़ी सती सावित्री बनती है ? सारा गाँव नहीं गन्धवा दिया था तूने ?''

''सारा नखड़ा घर में ही दिखाएगी तू?''

''डरेवरवा के साथ गुलछर्रे नहीं उड़ाती थी तू ?''

''झरिया–धनबाद की सैर करने मैं गया था ?''

''और बनारस की ठंडाई ? हुँह ठंडई! बड़ी पिलाई है साले ने, एकदम ठंड कर दिया है।''

''इतना कपड़ा–लत्ता, साड़ी–बिलाउज, गहना–गुरिया?सब बाप की कमाई है?लूले साले की? वह करेगा बेटी की दुकानदारी और तू यहाँ आकर ....''

''अच्छा बता, कइसा मिस्त्री से दो हजार रूपये में तेरी बिदाई का सौदा नहीं तय किया था तेरे बाप ने? उठा गंगा मैं अन्धा हूँ कि बहरा?''

''मेला देखेगी?जलेबी खाएगी?गंगा असनान करेगी?''

''डरेबरवा की दारू महकती है और मेरी गन्धाती है?नाक बन्द करती है?क्या–क्या बन्द करेगी?''

''गुलछर्रा उड़ाएगा दूसरा और खेत रेहन रखा जाएगा बिसराम का?''

''मुझसे बोलने में भी पाप लग रहा है रे ? तिरिया चरित्तर फैलाने से जान बचेगी?साली! कातिक की कुतिया।''[9]

उक्त कथनों से स्पष्ट है कि बिसराम, विमली को प्राप्त करने में असफल रहता है। वह अपने क्रोध के वशीभूत हो विमली पर अनेक प्रकार के लांछन लगाता है और खुद सही सिद्ध करने का प्रयास करता है। बिसराम यह लांछन केवल घर में ही नहीं लगाता वरन् वह विमली के साथ दुष्कर्म करने के उपरान्त भरी पंचायत में भी विमली को लांछित करता है। अपने तरह–तरह के लांछनों से वह विमली को एक चरित्रहीन महिला सिद्ध करने में सफल हो जाता है। वह पंचों को शीश झुकाता है और अरदास करता है, ''पंचो! पंचायत के बीच में जो जनाना बैठी है, मेरी पतोहू है सो आप सभी जानते हैं। मेरा लड़का 'परदेस' में है। गौना कराने की कोई जल्दी नहीं थी लेकिन लड़की के बारे में इसके नैहर से जो खबर मिलती थी उसे सुन–सुन कर कान पक गए थे। यह सोचकर कि नैहर छूटेगा तो सब ठीक हो जाएगा, गौना करा लिया। यहाँ आने पर गलत–सही बात देखने पर टोका–टाकी शुरू कर दिया। सो भी आप लोग थोड़ा–बहुत सुने होंगे। पाँच पंच की बात सुनकर मैंने अलग मँड़ई तैयार किया लेकिन यहीं गलती हो गई। नजर से दूर होने का नतीजा हुआ कि पतोहू हाथ से बेहाथ हो गई। डरेवर के साथ पहली बार नहीं भागी है यह। मेरी मरी मेहरारू का गहना–गुरिया हाथ से गया, इसकी चिन्ता नही है मुझको। जाँगर रहेगा तो फिर कमा लूँगा लेकिन इज्जत पर बट्टा लगा दिया, मेरे साथ–साथ गाँव की इज्जत पर। उसका क्या होगा? अब सारा मामला पंच के सामने है। जो चाहे उसको सजा दें। जो चाहे मुझको। हाँ, मेरा कसूर है कि मैं कथा–कीर्तन में रमा रहा। इसे 'रखा' नहीं पाया। चौकीदारी नहीं कर पाया। वैसे हम ई जरूर कहेंगे कि कथा–कीर्तन के कारण ही मेरी जान बच गई। नहीं तो अब तक मेरी जली हुई लहास पंचों के बीच में होती।''[10]

बातों से उसके बिसराम ने पंच परमेश्वरों को अपने झाँसे में ले लिया और स्वयं को दोशमुक्त करते हुए विमली को न केवल भरी पंचायत में लांछित किया अपितु अपराधी घोषित कर सामाजिक स्तर पर भी दाग दिया जाता है जो हमारे ही समाज के कलुशित रूप को उजागर करता है। न्याय के नाम पर उसे (विमली को) जो सजा दी जाती है, वह कहीं से भी न्यायोचित नहीं है किन्तु ग्रामीण परिवेश से जुड़ी यह घटना इसी हकीकत को बयां करती है कि स्त्री आज भी सुरक्षित नहीं है। वह बाहरी लोगों से तो खुद को एक बार बचा भी ले किन्तु भीतरी लोगों

से जो परिवार के, अपने या रिश्तेदार होते हैं, उनसे कैसे बचा पायेगी ?

'भरतनाट्यम' कहानी स्त्री चेतना से भरपूर है। इसके नायक ज्ञान की पत्नी, समाज की पुरुष प्रधान मानसिकता के कारण बेटे की चाहत रखती है, जबकि वह पहले से ही तीन बेटियों की माँ है। वह बेटा प्राप्त करने के लिए सही–गलत का विचार नहीं करती है और अपने जेठ से यौन सम्बन्ध स्थापित करती है। जब ज्ञान उसे भाई के साथ रंगे हाथ पकड़ता है तो वह स्वीकार करती है कि ''उनकी कोई गलती नहीं है। मैं ही उनका हाथ पकड़कर मँड़हे से लिवा लाई थी, बेटा पाने के लिए।''[11] किन्तु ज्ञान ऐसे यौन–सम्बन्धों को गम्भीरता से नहीं लेता है। अंततः बेटे की चाहत में उसकी पत्नी खलील दर्जी के साथ कलकत्ता भाग जाती है। इस प्रकारशिवमूर्ति जी ज्ञान की पत्नी के माध्यम से यह बताना चाहते हैं कि स्त्री देह और उसकी इच्छा पर उसका अधिकार होना चाहिए। वह सदियों से स्त्री की दबाई गई इच्छा को बिना किसी स्त्री विमर्श के हमारे समक्ष प्रस्तुत करते हैं। खलील दर्जी के साथ भाग जाना और अपने ही जेठ के साथ शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करना, सामाजिक रूप से अनैतिक है किन्तु बेटे के जन्म को लेकर बनाए गए सम्बन्ध ग्रामीण स्त्री नजरिये से अनैतिक नहीं है क्योंकि परिवार में एक बेटे की माँ होने का महत्त्व वह बहुत अच्छे से जानती है।

स्त्री संघर्ष और आत्मसम्मान पर केन्द्रित 'अकालदण्ड' कहानी में शिवमूर्ति ने सुरजी के माध्यम से स्त्री चेतना का चित्रण किया है। इस कहानी के द्वारा उन्होने यह दिखाने का प्रयास किया है कि स्त्री का संघर्ष केवल जीने के लिए ही नहीं है अपितु अपनी मान–मर्यादा को सुरक्षित रखने के लिए भी है। सुरजी सिकरेटरी बाबू के शोषण का शिकार होती रहती है। सिकरेटरी बाबू अपने ज्योतिशशास्त्र के माध्यम से भोली–भाली सुरजी को बहलाने का प्रयास करते हैं। वह सुरजी की हथेली देखने के बहाने उससे बदतमीजी करते हैं। ''सुरजी ने हथेली छुड़ाई तो सिकरेटरी बाबू का हाथ उसका सिर सहलाने लगा–लोगों का दुःख–दर्द समझो और दूर करो।

सिकरेटरी बाबू की गरम–गरम साँसे सुरजी के चहरे पर पड़ने लगीं। सर सहलाता हाथ उतरकर पीठ पर आया फिर बाँह पर आ गया। सुरजी को लगा आवाज के साथ–साथ सिकरेटरी बाबू की देह भी काँप रही है। देह में आया 'भूडोल'। 'सेवा का व्रत धारण कर लो। रानी बन जाओगी लेकिन फलित ज्योतिश' का 'फल विचार' सुनाने वाले को 'फलदान' की ही व्यवस्था दी गई है शास्त्रों में।'

इस व्यवस्था वर्णन के साथ सिकरेटरी बाबू के हाथ बाँह से आगे की यात्रा पर चला तो चिहुँककर सुरजी ने जोर से झटका दिया। डोलडाल का लोटा लुढ़कता खनखनाता जाकर खाई में गिरा।''[12]

इस घटनाक्रम के बाद सुरजी सिकरेटरी बाबू से डरने लगती है और दूर ही रहती है। यहाँ तक कि भीषण अकाल में वह अपने और बूढ़ी सास के लिए राहत लेने भी नहीं जाती। सिकरेटरी बाबू बात को जानकर एक रात उसके झोपड़े में घुसते हैं तो सुरजी उनसे कहती है–''काहे आपकी मती भरिस्ट भई है सिकरेटरी बाबू। ....हम गरीबन का भी दुनिया में इज्जत–आबरू के साथ परा रहे देव। हाथ जोड़ित है। चले जाव।''[13]

लेकिन सिकरेटरी बाबू पर उसकी बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता और वह कहता है–''तेरी अकिल पर जहालत का जाला पड़ा है पागल। मैं यह जाला साफ कर देना चाहता हूँ। 'पारसमणी' है तू जिसे छूकर लोहा भी सोना बना जाता है। अपने 'गुन' से वाकिफ नहीं है मैं तेरा उद्धार करूँगा।' 'उद्धार जाकर अपनी माई–बहिन कर कर दाढ़ीजार। उन्हीं को पढ़ा अपना यह 'परेमसागर'।' सुरजी उसका विरोध करती है तो वह उसे राशन पानी का लालच देता है और कहता है, ''तुम्हारी झोंपड़ी राशन–पानी से भर देंगे। सूरजकली। हम अभी तक 'गरभ–कुँआरे' हैं। तुम्हें गऊदान का पुन्न मिलेगा। तुम चाहो तो हम उमर भर के लिए हाथ पकड़ने को तेयार हैं।

सिकरेटरी बाबू की काली छाया आगे बढ़ती देख गुर्राती है सुरजी, 'ख–आन...... खबरदार जो आगे बढ़ा।'

वह दूसरे कोने की ओर बढ़ती जा रही है। मुँह झौंसि देब दहिजार के पूत।' वह उसे चार लात पिछवाड़े मारती है और कहती है, ''भलीमानसी चाहौ तो अब चुप्पै भाग जाव, नाही त अबही गोहार लगाय देब त तोहर भद्दरा (भद्रता) उतरि जाई।''[14]

सिकरेटरी बाबू के जाने के बाद झिलँगा खटिया पर गिरती है और फूट–फूट कर रोने लगती है। वह सोचती है कि इस गोरी चमड़ी और दप–दप जलती रूप–राशि का क्या करे वह ?दुर्दिन की मार भी जिसका तेज मन्द नहीं कर पा रही है।''[15]

सुरजी अपने रंग–रूप और अपनी युवावस्था के कारण बहुत दुःखी होती है क्योंकि इन्हीं के कारण इस भीषण अकाल में भी उसे शान्ति प्राप्त नहीं है। सिकरेटरी बाबू जैसे गिद्ध भीषण अकाल में भी सुरजी जैसे मांस को ढूँढ़ रहे हैं, अपना शिकार बनाने के लिए।

सिकरेटरी बाबू सुरजी को किसी भी प्रकार से पाना चाहते हैं। इसके लिए वे छल–बल कुछ भी करने को तैयार हैं। वह रंगीबाबू को तैयार करते हैं कि वह सुरजी का बयान संचालक जी के सामने करा दें। रंगीबाबू इसके लिए तैयार हो जाते हैं। वह सुरजी से बयान कराने की बात करते हैं तो उन्हें सुरजी के माध्यम से पूरे घटनाक्रम का पता चालता है। पूरी बातें जानने के बाद वह सुरजी को आश्वस्त करते है कि वह उसके साथ कुछ भी गलत न होने देंगे, बस वह सियरापार कैम्प चलकर संचालक जी के सामने ब्यान दे दे। सुरजी डरी हुई है फिर भी रंगीबाबू की बात मान लेती है। वह मन ही मन एक निर्णय करती है और घर से निकलने से पहले कमर में कोई चीज खोंसती है। वह रंगीबाबू के साथ सियरापुर कैम्प होते हुए रामपुर कैम्प पहुँच जाती है। वहाँ वह सिकरेटरी बाबू के अन्दर बुलाने पर निर्विरोध अन्दर जाती है और अन्दर जाकर सिकरेटरी से अपना बदला लेती है। ''अन्दर का दृश्य बड़ा भयानक है। सिकरेटरी बाबू पलंग पर नंग–धड़ंग पड़े छटपटा रहे हैं। सुरजी ने हँसिए से उनकी देह का नाजुक हिस्सा अलग कर दिया है और पिछवाड़े के रास्ते भागकर अँधेरे में गुम हो गई है।''[16]

उक्त घटनाक्रम से ज्ञात होता है कि सुरजी भले ही गाँव की अशिक्षित महिला है किन्तु वह अपने मान–सम्मान के लिए सजग है। इसी सजगता के कारण ही वह सिकरेटरी बाबू को उनके बुरे कर्मों के लिए दण्डित करती है। वह एक ऐसा निर्णय लेती है जिसकी सिकरेटरी बाबू ने कल्पना भी नहीं की थी। सुरजी सिकरेटरी बाबू को दंड देती है–एक 'अकालदंड'।

शिवमूर्ति जी की 'सिरी उपमाजोग' व 'केशर कस्तूरी' जैसी अन्य कहानियाँ स्त्रियों की पारम्परिक स्थिति पर आधारित हैं। 'सिरी उपमाजोग' की नायिका लालू की माई अपने पति को न केवल पढ़ने के लिए प्रेरित करती है अपितु घर का सारा कामकाज स्वयं करती है जिससे उसका पति पढ़–लिख कर अधिकारी बने। ऐसा होता भी है किन्तु इतना सब कुछ करने के बाद भी उसका पति दूसरा विवाह कर लेता है और वह परित्यक्ता की भाँति जीवनयापन करती है। लालू की माई अपने सम्मान की रक्षा हेतु जब अपने पुत्र को भेज कर सहायता माँगती है वह भी पुत्री के विवाह व पुत्र के भविष्य के कारण तब भी उसका स्वार्थी पति उससे विमुख ही रहता है। इसी तरह 'केशर कस्तूरी' में स्त्री की पारम्परिक छवि का अंकन है। स्पष्टतः इन कहानियों में स्त्री अपमान, प्रताड़ना, उनकी काम–वासना, पारिवारिक रिश्तों में जकड़न और उनमें विघटन, मान–सम्मान के प्रति संघर्ष, भूख–प्यास, वेदना, सभी कुछ, बहुत ही संवेदनशील और यथार्थ ढंग से हमारे समक्ष उपस्थित होता है। कहानियों में चित्रित स्त्रियों का यथार्थ रूप में हमारे सामने आता है। गाँव की सीधी–साधी स्त्रियाँ, उनके जीवन यापन का अपना तरीका, उनके सरल–सहज ग्रामीण संस्कार, उनकी अपनी मजबूरियाँ, उनके अपने स्वार्थ आदि बड़े ही प्रभावी ढंग से पाठकों तक पहुँचते हैं। पाठक इन्हें पढ़ते समय गहराई से जुड़ जाता है। ऐसा लगने लगता है जैसे वह भी इसी परिवेश

का हिस्सा है और यह सब उनके आसपास ही घटित हो रहा है। कहानीकार की इसी विशेषता को देखते हुए डॉ0 विश्वनाथ त्रिपाठी कहते हैं कि ''शिवमूर्ति किसान जीवन को अच्छे से जानते हैं। जानने का मतलब ग्राम्य संस्कृति को, वहाँ के समाज को, परिवार को, वहाँ के राजनैतिक तंत्र और ढाँचे को भली–भाँति समझते हैं। वह किसानों की कहानियाँ लिख रहे हैं पर समृद्ध की नहीं, वंचित की, शोषित की लिख रहे हैं। वह शोषण की नहीं, शोषित किसानों के जीवन की चुनौतियाँ लिख रहे हैं।''[17] इसी प्रकार शिवमूर्ति की कहानियों की प्रशंसा करते हुए सुधीर सुमन ने ठीक ही कहा है–''कथाकार शिवमूर्ति ने मनुष्य की आजादी, समानता और सम्मान के सन्दर्भ में जिन विपरीत परिस्थितियों की ओर पाठकों का ध्यान खींचा है वे ज्यादा विचारणीय हैं।''18 सारांशतः कहा जा सकता है कि शिवमूर्ति की कहानियाँ पठनीयता से भरपूर व स्त्रियों के पारम्परिक एवं आधुनिक जीवन के संघर्ष की बहुरंगी व वैविध्यपूर्ण चेतना से सम्पन्न हैं।

सन्दर्भ संकेत

1. लमही, अक्टूबर–दिसम्बर–2012, पृ0–57।
2. केशर कस्तूरी : शिवमूर्ति, पृ0–7।
3. केशर कस्तूरी : शिवमूर्ति, पृ0–8।
4. केशर कस्तूरी : शिवमूर्ति, पृ0–19।
5. केशर कस्तूरी : शिवमूर्ति, पृ0–110।
6. केशर कस्तूरी : शिवमूर्ति, पृ0–110।
7. केशर कस्तूरी : शिवमूर्ति, पृ0–113।
8. केशर कस्तूरी : शिवमूर्ति, पृ0–115।
9. केशर कस्तूरी : शिवमूर्ति, पृ0–106।
10. केशर कस्तूरी : शिवमूर्ति, पृ0–117–118।
11. केशर कस्तूरी : शिवमूर्ति, पृ0–77।
12. केशर कस्तूरी : शिवमूर्ति, पृ0–29।
13. केशर कस्तूरी : शिवमूर्ति, पृ0–33।
14. केशर कस्तूरी : शिवमूर्ति, पृ0–34।
15. केशर कस्तूरी : शिवमूर्ति, पृ0–34।
16. केशर कस्तूरी : शिवमूर्ति, पृ0–51।
17. लमही, अक्टबरू–दिसम्बर 2012, पृ0–240।
18. आजकल, अगस्त–2012, पृ0–51।

❑❑

31

कवि गंग की काव्य रचनाओं का अनुशीलन

डॉ0 आलोक कुमार सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर–हिन्दी विभाग
माँ मंशादेवी महाविद्यालय, चन्दौली

कवि गंग सम्राट अकबर के दरबार के प्रमुख कवि थे और उनका साहचर्य दरबार के प्रसिद्ध व्यक्तियों अब्दुर्रहीम खानखाना, राजा बीरबल, राजा मानसिंह आदि से था। अपने समकालीन सभी दरबारी कवियों में भी इनको प्रतिष्ठित पद प्राप्त था। उस समय के सभी साहित्यकार, रसिक सहृदय जन उनके प्रशंसक थे। शिवसिंह सेंगर ने इन्हें गंगा प्रसाद ब्राह्मण के नाम से संवत 1585 में उत्पन्न माना है। अपनी उपलब्ध सामग्री के आधार पर इन्हें इकनौर गाँव, जिला इटावा का निवासी बताया है।[1] मिश्र बन्धुओं ने गंगा प्रसाद ब्राह्मण नामक एक कवि का जन्म संवत 1585 में और इकनौर गाँव जिला इटावा का निवासी लिखा है।[2] गंग भट्ट ब्राह्मण थे। वे ब्रह्म भट्ट जाति के थे और उनका निवास स्थान इकनौर गाँव था। हिन्दी साहित्य के अन्य इतिहासकारों ने गंग को भट्ट ब्राह्मण ही लिखा है।[3] गंगराम पुरोहित जिनका रचना काल संवत 1744 है, रीतिकाल के एक साधारण कवि थे।[4] इनकी रचनाओं में गंग की छाप मिलती है। गंगा प्रसाद ब्राह्मण[5] नामक हिन्दी कवि संवत 1890 में हुए और इनकी गणना रीतिकाल के अच्छे कवियों में की जाती है। इन्होंने अपनी रचना 'दूती विलास' में अपना उपनाम गंग दिया है। 'ब्रह्म भट्ट दर्पण' नामक पुस्तक में प्रसिद्ध कवि गंग का नाम गंगाधर दिया गया है।[6] अकबर के दरबार में प्रतिष्ठा प्राप्त कवि गंग के छन्दों में जैसा काव्यगत चमत्कार, वाग्वैदग्ध्य, भाषा सौष्ठव विद्यमान है उनके प्रकाश में रीतिकालीन कवियों की रचनाओं की पृथकता स्पष्ट हो जाती है। कवि के दिए हुए कई छन्दों से उसकी दुरवस्था और दयनीय स्थिति का पता चलता है। जहाँगीर के शासन में राजकीय विरोध के कारण उसे बुरे दिन देखने पड़े। कवि हृदय तो था ही, उस समय उस पर जो कुछ बीता उसे उन्होंने सीधे साधे शब्दों में व्यक्त कर देना अनुचित नहीं समझा। यह इन छन्दों में वर्णित है –

एक दिनु ऐसो जामे सिविका गजादि रहे
एक दिनु ऐसो जामे सोयबो को सैसो है
एक दिनु ऐसो जामे गिलम गलीचा लागे
एक दिनु ऐसो जामे तामे को न पैसो है
एक दिनु ऐसो जामे भूपन सो प्रीति होत
एक दिनु ऐसो जामे दुश्मन को धैसो है
कहे कवि गंग नर मन में विचार देखु
आजु दिनु ऐसो जात कालहि दिन कैसो है[7]

उपर्युक्त छन्द में कवि गंग ने ऐश्वर्य और निर्धनता की विषमता का अनुभूतिजन्य चित्रण किया है। ऐसा ज्ञात होता है कि कवि को किसी मानसिक कष्ट में एक–एक दिन व्यतीत करना कठिन हो गया था। उसकी मानसिक दशा बहुत दुखदायी हो गई थी। गंग के अनेक छन्द भी जो जहाँगीर के सम्बन्ध में कहे गए हैं इस बात के सूचक हैं कि कवि गंग जहाँगीर के राज्यकाल तक रहा। जहाँगीर संवत 1662 में सिंहासनारूढ़ हुआ और उसने राज्य की सारी बागडोर संवत 1669 में नूरजहाँ के हाथों में दे दी थी। हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखक स्वर्गीय पं0 रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि कवि गंग किसी राजा अथवा नवाब की आज्ञा से हाथी के पैरों के नीचे कुचलवाये

गए।[8] कवि गंग की रचनाओं से स्पष्ट होता है कि वह कृष्णोपासक कवि थे। उनके कई छन्द इसकी पुष्टि करते हैं। कवि ने राम और कृष्ण दोनों की महिमा का गुणगान किया है किन्तु उनकी उपलब्ध रचनाओं में कृष्णभक्ति का अधिक विस्तार पाया जाता है। कृष्ण की बाल क्रीड़ा, राधा कृष्ण की केलि कमनीयता, उनकी रूप माधुरी, यमुना महिमा आदि के वर्णन कवि की कृष्ण भक्ति के परिचायक हैं। अकबर के दरबार में प्रविष्ट होने पर कवि गंग दरबार के अनेक विशिष्ट व्यक्तियों के संपर्क में स्वभावतः आए। सम्राट अकबर, रहीम, बीरबल, मानसिंह, टोडरमल, दानियाल, जहाँगीर (सलीम) की प्रशंसा सम्बन्धी छन्द अधिक संख्या में उपलब्ध होते हैं। उनके द्वारा गंग को यथेष्ट सम्मान भी प्राप्त हुआ। दरबार के अन्य जाने माने व्यक्तियों से भी गंग का संपर्क था जिनकी प्रशंसा में उनके स्फुट छन्द मिलते हैं। इनमें राजा रामदास, राजा जगन्नाथ, राजा रामचंद्र बघेला, दुराब खां, तुराब खां, कीर्ति सिंह, मंगद राय, प्रताप शाह आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। मिश्र बन्धुओं ने कवि गंग का रचना काल संवत 1620 के लगभग माना है।[9] नागरी प्रचारिणी सभा, त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट (सन 1930–34) में गंग रचित तीन ग्रंथों का उल्लेख मिलता है–गंग–पदावली, गंग–पच्चीसी, गंग रत्नावली। गंग–पदावली के कुल 22 पन्ने प्राप्त हुए हैं और यह एक संग्रह–ग्रंथ है जिसमें अन्य कवियों की रचनाएँ संग्रहीत हैं। गंग पच्चीसी में केवल 25 छन्द हैं। इसमें राधाकृष्ण का संवाद दिया गया है। गंग–रत्नावली में 1400 अनुष्टुप छन्द हैं। इसका संग्रह पं0 मया शंकर याज्ञिक और डॉ0 भवानी शंकर याज्ञिक द्वारा तैयार किया गया है। डॉ0 भवानी शंकर याज्ञिक के परामर्श से खोजकर्ताओं ने इसका नाम रत्नावली रख दिया था। कविवर गंग का अभी तक यही सबसे बड़ा संग्रह उपलब्ध था। 'महाकवि श्री गंग के कवित्त' नाम से पुरोहित हरिनारायण शर्मा बी0ए0, विद्याभूषण तथा मुंशी कन्हैयालाल माथुर, जयपुर ने गंग के छन्दों का एक संग्रह सन् 1944 ई0 में प्रकाशित किया। इसमें गंग के 273 छन्द दिये हुए हैं। 40 छन्द इसमें ऐसे हैं जो याज्ञिक जी द्वारा तैयार किये गये पूर्व संग्रह–ग्रंथ में नहीं मिलते। ये नवीन छन्द हैं। अतः गंग के उपर्युक्त 350 छन्दों को लेकर कवि गंग के छन्दों की संख्या 400 के लगभग पहुँचती है।

ब्रह्म–भट्ट–दर्पण ग्रन्थ में गंग कृत गंग–विनोद पुस्तक का परिचय मिलता है।[10] हिन्दी खोज की तृतीय त्रैवार्षिक रिपोर्ट में चतुर्भुज सहाय वर्मा (बनारस) ने गंग कृत 'खानखाना कवित्त' नामक ग्रन्थ का उल्लेख किया है। इसमें गंग के 42 अनुष्टुप श्लोक बताए गए हैं जो लगभग 10 कवित्त अथवा 14 सवैये की संख्या है। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण नामक ग्रन्थ में 'गंगा भाट' कृत 'चन्द छन्द बरनन की महिमा' नामक पुस्तक का परिचय दिया गया है।[11] त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट (1909–10–11) में उक्त ग्रन्थ की प्राचीन हस्तलिखित प्रति का वर्णन मिलता है। ग्रन्थ का रचनाकाल सम्वत् 1627 और लिपिकाल सम्वत् 1629 है।[12] इसी ग्रन्थ की पांडुलिपि की एक प्रति रायल एशियाटिक सोसाइटी लाइब्रेरी, कलकत्ता में सुरक्षित है। विदेशी शासन की लम्बी अवधि के पश्चात् अकबर ही एक ऐसा पहला शासक हुआ जिसने भारतीय कवियों को राज्याश्रय प्रदान किया। पहली बार संस्कृत और हिन्दी के कवियों को देशी–राजाओं की राजसभाओं के अतिरिक्त सम्राट के राजसमाज में सम्मिलित होने की मान्यता प्राप्त हुई।[13] इन सब कवियों में गंग को ही सौभाग्य से कवियों का सरदार बनने का गौरव प्राप्त हुआ।[14] सम्राट के दरबारी अथवा राजसभाओं के सभ्य सम्राट और राजा द्वारा सम्मानित होने के कारण किसी न किसी प्रकार का शासकीय अधिकार रखते थे। सम्राट की राजसभा के आश्रित कवि गण श्रृंगारिक साहित्य के अतिरिक्त एक और दूसरे प्रकार की साहित्य रचना करते थे, वह थी आश्रयदाता की प्रशस्ति। कवि गंग भाट थे। चारणों की भाँति अपने आश्रय दाताओं का यशगान उनके लिए साधारण बात थी। नायिका–भेद की परम्परा से अनुमोदित श्रृंगारिक रचनाओं के साथ–साथ फुटकर छन्दों में वे प्रशस्ति का गायन भी कर देते थे। गंग में ये दोनों प्रवृत्तियाँ विशेषतः पाई जाती हैं। श्रृंगार के क्षेत्र में तो गंग ने इतनी ख्याति अर्जित की कि कोई भी रसमय उक्तियाँ चुटीली पंक्तियाँ, भड़कीला छन्द उनके नाम से संयुक्त कर देने से निरापद समझ लिया जाने लगा था। श्रृंगार की अनूठी उक्तियों के लिए इतना अधिक समादार साहित्य के क्षेत्र में बहुत कम लोगों को प्राप्त हुआ है।

वर्ण्य–विषय–समीक्षा

गंग के जितने भी छन्द प्राप्त हुए हैं उनमें विषय की विविधता और काव्योचित मौलिकता स्थल–स्थल पर दृष्टव्य है। उन्होंने अपनी भक्ति भावना सम्बन्धी छन्दों में कृष्ण की महिमा, यमुना का महात्म्य तथा रामनाम की महत्ता दर्शायी है। संयोग शृंगार का वर्णन करते समय काम चेष्टाओं, हाव–भाव आदि के चित्रण में गंग ने प्रेम के प्राकृत रूप को नहीं भुलाया है। विप्रलम्भ की सूक्ष्म भावनाओं तथा अवस्थाओं के रूप में व्यक्त किए गए हैं। वीर–रस–चित्रण गंग का प्रधान क्षेत्र नहीं था और रौद्र रस का भी कहीं–कहीं सुन्दर चित्रण किया है। गंग का काव्य चित्रण सप्राण स्वाभाविक, सुन्दर और चित्ताकर्षक है। गंग यद्यपि हिन्दी के रीतिकालीन साहित्य के प्रारम्भिक समय के कवि थे तथापि रीतिकालीन कवियों की अधिकाँश मूल प्रवृत्तियाँ उनमें स्पष्टतः आ गयी थीं। इसका मुख्य कारण संस्कृत साहित्य को आधार बनाकर चलना था। महाकवि गंग का पूरा साहित्य उपलब्ध नहीं हो सका है तथापि जितना उपलब्ध है उसमें संयोग श्रृंगार का ही अधिक चित्रण है।

संयोग–शृंगार

शृंगार के मुख्य पाँच वर्ण्य माने गये हैं–रूप, उद्दीपन, अनुभाव, मिलन और परिहास। इन सबका परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। रूप वर्णन के अन्तर्गत ही नखशिख वर्णन में मानव शरीर के विभिन्न अंगों और अभिरूचि के अनुसार सौंदर्य का मनोहारी चित्रण हुआ है। नायिका की वेणी का वर्णन गंग के निम्नलिखित कवित्त में दृष्टव्य है–

कचन की लकुट कि लसत कसौटी लीक,
भौरन की माल किधौं अग्रवास लेनी है।
कहै कवि गंग किधौं बारी कारी कादंबिनी,
दामिनी सी कामिनी हवे मिलिछविदेनी है।
सुंदर सिंगार सूर–सुता की सी धार किधौं,
जोबन नदी धार कै सिवार सेनी है।
कराचोली काम की, कि शोभा करै स्याम की कि,
जिय ही की बैरिनि विराजमान बेनी है।[15]

नेत्रों के प्रसंग में आलम्बन और आश्रय के अनुभाव, संचारी भावों की छटा गंग के एक छन्द में दृष्टव्य है–

तन की बनक नहीं तनक कनक पूजै,
जोवत खनक जुवजन बिदलत है।
आलस की चालदल मंजुल मराल लखि,
लोपनि विसाल उर साल से सलत है।
कहै कवि गंग जुग कोए विकसित सित
तैसेई असित तारे चंचल चलत है।
ऐसी छबि छाजत छबीली अंखियन मनो,
छीरधि के छीर में छपद उछलत है।।[16]

शृंगार रस के सम्पूर्ण अवयवों से परिपूर्ण निम्नलिखित कविता में कवि ने आलंबन के उद्दीपक अंगों की छटा तथा आश्रय पर उसका प्रभाव और उसके ह्रदय में अनेक भावों का उदय एवं उसकी शारीरिक–मानसिक स्थिति का बड़ा ही ह्रदयग्राही चित्रण किया है–

अधर मधूक से बदन अधिकानी छवि,
विधि मानो विधु कीन्हों रूप को उदधि के।

कान्ह देखि आवत अचानक मुरछि परयो,
बदन छपाइ सखियनि लीन्हों मधि के।
मारि गई गंग दृग–सर बींधि गिरिधर,
आधी वित्रवानि में अधीन कीन्हों अधिकै।
बान सींधि बधिक बधे को खोज लेति फिरि,
बधिक बधू ना खेज लीन्हों फेरि बधिकै।[17]

गंग के वर्णनों में अधिकाँशतः सभी वस्तुपरक अलंकृत वर्णन ही आए हैं। भावपरक चित्रण का अभाव प्रायः खटकता है। उन्होंने नायिका अथवा नायक के जिस किसी अंग का वर्णन किया है, उसमें एक ही के लिए अनेक उपमाओं, उत्प्रेक्षाओं और अन्य अलंकारों की झड़ी लगा दी है। सहृदय व्यक्ति अलंकार–योजना के लिए एकत्रित किसी अंग–विशेष के एकाध सौन्दर्यात्मक गुण का संकेत करके झट से उसके चारों ओर अपनी अलंकृत शैली का ताना–बाना बुनना प्रारम्भ कर दिया है। फलतः जिसका वे सौन्दर्यबोध कराना चाहते हैं उसके सम्बन्ध में इतना तो पाठक जान लेता है कि वह अतीव सुन्दर होगा परन्तु उसकी सुन्दरता के अन्य गुणों के चित्रण के अभाव में उसका, पूर्ण ज्ञान नहीं होता। निम्नलिखित छन्द में कवि ने मुख–छवि का वर्णन किया है। इसमें चित्रण की यह कमी दृष्टिगोचर होती है–

एक समै पून जोत ससि को उदोत भयो,
सुनि कै गहन लोग देखैं सबै धाइ कै।
ज्योति की सी ज्वाल–बाल, इन्दु सो मुखारबिन्दु,
कहै कवि गंग में महल ठाढ़ी आइ कै।
चंद और चंदमुखी याहि गहि याही गहै,
ऐसे ही वचार राति सारी को बिताइकै।
चंद भयो अस्त, चंदमुखी निज मौन आई,
राहु गयो गेह निज हिये पछिताए कै।।[18]

''ज्योति की सी ज्वाल बाल'' के ''इन्दु सो मुखारविन्दु'' के कारण इतना बड़ा झमेला खड़ा करके अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णन से उसकी सौन्दर्याभिव्यक्ति करने की चेष्टा की गयी है बाला के चन्द्रमुख की कांति का केवल एक गुण इसमें आ सका, और कुछ नहीं। उपमान सभी परम्परामुक्त है तथापि कवि ने उनकी सजावट में अद्भुत कमाल कर दिया है। भावोद्रेक के सारे साधन एकत्रित हो गए हैं। परिसंख्या और यमक अलंकार की चमक और भावों की गमक के बीच नायिका की अद्भुत सुषमामयी सजीव प्रतिमा गढ़ने में निम्न छन्द में कवि को बड़ी सफलता मिली है। यहाँ अलंकार कलात्मक प्रदर्शन के लिए न होकर रस बोध में सहायक होकर आया है जिससे काव्यत्व की मात्रा में वृद्धि हुई है। दृष्टव्य है–

उरज कठोर, वाकी बानी न कठोर कछु,
मंद मंद गति होए, न मंदमति भाइयै।
जाकी भौंह कुटि, हिय मैं न कुटिलाई कहूं,
उदर तौ छीन, न नितंब छीन छाइयै।
चंचल नयन धै ना चंचल चरित्र ताको,
कारे केसपास, धै न कारे गुन गाइयै।

नाभि तौ गंभीर, पै गंभीर नाखन गेह,
कहै गंग कामिनी कहूंहि ऐसी पइयै।।[19]

नायिका–भेद के अनुसार स्वकीया, नवोढ़ा, वयः सन्धि, सुसरति, मध्या, सद्यः स्नाता, क्रीड़ा, आलिंगन, चुम्बन, दिवासुरति, विपरीति, सुरतांत परकीया तथा अष्ट नायिकाओं यथा खंडिता, कलहान्तरिता, स्वाधीनपतिका, प्रवत्स्यव्यतिका, आगत पतिका सभी का परम्परागत वर्णन किया है। स्वकीया नायिका की नायक को एकटक दृष्टि से देखते रहने की अभिलाषा को पड़ोसी जनों के भय से बहुत आघात पहुँचता है। लज्जारूपी बड़वाग्नि प्रेम–समुद्र की बाढ़ में बाधक हो रही है। नायिका की मनोभावना उसी के मुख से दृष्टव्य है–

जो चितंऊ तो रहे चित में चुभि यानी तें भूलि न दीठि उठाऊं।
प्यारे गोपालहि के बस बास कहाँ लगि आंचर आंखि दुराऊं।
गंग कहै हरि को मुख चंद बिलोकत ही मरि आनंद आऊं।
देखि सखी बड़वानल लाज ते प्रैम समुद्र न बाढ़न पाऊं।।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गंग की भाषा का मूल ढाँचा ब्रजभाषा का ही है किन्तु उसमें प्रसंग विशेष, अवसर और सम्पर्क के अनुसार फारसी, संस्कृत, अवधी आदि का मेल दिखाई पड़ता है। कवि गंग का साहित्य प्रारम्भिक दौर का साहित्य है, उनके भीतर खड़ी बोली की काव्य रचनाओं के बीज छिपे हुए हैं। कवि गंग की रचनाएँ जन मानस को आनंदित करने के साथ–साथ उन्हें प्रेरित भी करती हैं। गंग का साहित्य हिन्दी साहित्य के लिए ऐतिहासिक महत्व रखती है तथा हिन्दी साहित्य के काव्यजगत का दिशा–निर्देशन भी करती हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. शिवसिंह सरोज पृष्ठ–402
2. मिश्रबन्धु–विनोद, भाग–1 पृष्ठ–303
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ–245
4. मिश्रबन्धु–विनोद, भाग–2 पृष्ठ–240
5. शिवसिंह सरोज पृष्ठ–402, 403
6. ब्रह्म–भट्ट–दर्पण, पृष्ठ–19
7. कविवर गंग : जीवनी और काव्य, छन्द संख्या–309
8. हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ–245
9. मिश्रबन्धु–विनोद, भाग–1 पृष्ठ–276
10. ब्रह्म–भट्ट–दर्पण, नरसिंह दास पृष्ठ–19
11. हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का विवरण, भाग–1, पृष्ठ–32
12. खोज रिपोर्ट, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 1909–10–11, पृष्ठ–146,147
13. मुगल कालीन भारत, पृष्ठ–620–621
14. तुलसी गंग दुबो भये सुकविन के सरदार
15. कविवर गंग : जीवनी और काव्य, छन्द संख्या–185
16. कविवर गंग : जीवनी और काव्य, छन्द संख्या–194
17. कविवर गंग : जीवनी और काव्य, छन्द संख्या–194
18. कविवर गंग : जीवनी और काव्य, छन्द संख्या–208
19. कविवर गंग : जीवनी और काव्य, छन्द संख्या–38

इन पुस्तकों के अतिरिक्त डॉ0 सरयू प्रसाद अग्रवाल से दिनाँक 19 जनवरी 2007 को लिये गए साक्षात्कार के फलस्वरूप प्राप्त निष्कर्षों को भी इस लेख में सम्मिलित किया गया है।

❑❑

'निधान गिरि' कृत 'भक्ति मनोहर' महाकाव्य एक अध्ययन

डॉ0 अनामिका द्विवेदी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर–हिन्दी विभाग
आर्य कन्या महिला महा0वि0, खुर्जा (बुलन्दशहर) उ0प्र0

रीति साहित्य के उत्तरार्द्ध में महाकवि 'निधानगिरि' के आविर्भाव से अनेक क्रान्तिकारी एवं नवीन तथ्य सामने आते हैं जिससे पूर्व स्थापित मूल्यों एवं मान्यताओं में परिवर्तन की सम्भावना है 'निधानगिरि' के पूर्व रीति के उत्तरार्द्ध में अनेक धाराओं एवं पन्थों में विभाजित काव्यधारा को एक नया क्रान्तिकारी आलोक कवि के प्रदेय से प्राप्त होता है।

महाकवि 'निधानगिरि' कृत 'भक्ति मनोहर' की दुर्लभ प्रति झाँसी जनपद के 'एरच' प्राचीन ऐतिहासिक स्थल से नृसिंह मन्दिर से प्राप्त हुई थी। सम्प्रति यह प्रति राजकीय संग्रहालय झांसी में सुरक्षित है। एक दूसरी प्रति बांदा के चंददास साहित्य शोध संस्थान में संग्रहीत है। 'निधानगिरि' की अन्य कृति वैद्यक सिन्धु है जो हस्तलिखित प्रति के रूप में है इन ग्रन्थों के हस्तलेखों को पढ़ने उन्हें प्रतिलिपि करने तथा उन्हें संग्रहालयों तक पहुँचाकर सुरक्षित रखने की समस्या भी ज्वलंत है।

पाण्डुलिपियों के स्वामी प्रायः कम पढ़े लिखे लोग होते हैं अतः साम्प्रदायिक भावना से ग्रस्त होने के कारण आर्थिक लोभ के कारण वे ग्रन्थों को समुचित हाथों में जाने से रोकते हैं और असुरक्षा के कारण ऐसे ग्रन्थ काल कवलित भी हो जाते हैं।

मैं कई बार 'एरच' मोठ आदि की खोज यात्राओं पर गयी जिसके परिणाम स्वरूप कवि के ग्रन्थों के संबंध में, व्यक्तित्व एवं जीवन के सम्बन्ध में कुछ नई सूचनाएं भी मिली –

'निधानगिरि' का जन्म बुन्देलखण्ड के प्रतिष्ठित राजवंश गोसांई कुल में संवत् 1855 में हुआ था उनके पिता अनूपगिरि गोसांई बांदा वाले गोसांई कहलाते थे। निधारगिरि इन्हीं अनूपगिरि के पुत्र थे। अनूपगिरि को 'हिम्मत बहादुर' गोसांई के नाम से बुन्देलखण्ड के इतिहास में गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि पद्माकर ने 'निधानगिरि' के पिता अनूपगिरि की प्रशंसा में 'हिम्मत बहादुर विरूदावली' काव्य की रचना की थी। इनका व्यक्तित्व जनप्रिय, लोकप्रिय लोकहितैषी के व्यक्तित्व के रूप में था।

'निधानगिरि' कृत 'भक्ति मनोहर' महाकव्य की वस्तु का विभाजन चार प्रकाशों – भक्ति प्रकाश, ज्ञान प्रकाश, कर्म प्रकाश, दुर्ग प्रकाश तथा तीस अध्यायों में किया गया है। प्रथम में कवि ने भक्ति के प्रकारों एवं भक्ति के स्वरूप पर विस्तृत रूप से प्रकाश डालकर ग्रन्थ की पीठिका तैयार की है। भक्ति प्रधान होने के कारण कवि ने ग्रन्थ का नामकरण भी 'भक्ति मनोहर' किया है। हरि के अवतार का मुख्य प्रयोजन भी भक्ति का हेतु बताया है अतः भक्ति ज्ञान आदि को कवि ने प्रथम अध्याय में लेकर कथावस्तु में जो परिवर्तन किये हैं वे सोद्वेश्य हैं। तीस अध्यायों तक कुल आठ अवतारों की कथा का कवि ने संयोजन किया है। कल्कि और बुद्ध के अवतारों को छोड़कर शेष अष्ट अवतारों का वर्णन करके कवि ने वैष्णवीं दृष्टि का परिचय दिया है।

तुलसी ने ''सुरसरि कहं सबकर हित होइ'' का आदर्श स्थापित किया। 'निधानगिरि' भी अपने कवि कर्म को सुरसरिता की भांति सबके हित के लिए प्रवाहित करते हैं। निधानगिरि ऐसे कवि हैं जो केन्द्रीय मानवीय दृष्टि प्रेम जो भक्ति के रूप में है उसे काव्याभिव्यक्ति में उतारते है। उनके काव्य में भगवत् प्रीति का रस सर्वव्याप्त है। मानवीय मूल्य बोध उनकी कविता में अभिव्यंजित हुए हैं। पौराणिक कथाओं को नई संवेदना के साथ कवि संयोजित करता है उनकी वस्तु योजना कथा का रूप विधान भक्ति भावना से निर्मित होता चलता है। कविता में प्रसंग कुछ भी है, किसी अवतार का वर्णन हो, पर कवि की संवेदनीयता और भावव्यंजना प्रमुख रूप से पाठक को अभिभूत करती है।

जिन सार्वभौमिक मूल्यों को कवि स्थापित करना चाहता है चरित्रों का निर्माण करना चाहता है वे किसी एक युग, देश और काल के नहीं वरन् वह भक्ति के सोपानों से मनुष्य में श्रेष्ठतर रूचियों और संस्कारों को गढ़ना चाहता है। एक ओर दुर्बलताएँ हैं, मानवीय कमजोरियां हैं बर्बरता है उग्रता है, अनैतिकता है, दूसरी ओर संकल्पनाएं हैं ऊंचाइयाँ हैं, करूणा है और नैतिक मूल्यों के प्रति आस्था है। जीवन को त्रासदी से बचाकर आनंद की ओर ले चलने का प्रयत्न है।

'निधानगिरि' ने शंकराचार्य के अद्वैत दर्शन को लेकर अवतारवाद को हरि चरित्र से जोड़कर सभी भक्ति पंथों को एक–करने तथा जोड़ने का कार्य किया। निधानगिरि ने योग, ज्ञान, विज्ञान, कर्म, वैराग्य के बीच समन्वय स्थापित करते हुए भक्ति को सर्वोपरि महत्व दिया –

''जोग, ग्यान, विज्ञान पुन विविध कर्म वैराग्य।
भक्ति सवन सिरमौर है करहु प्रीति बडभाग।।''

भक्ति के विभिन्न भेदों उपभेदों का वर्णन करते हुए निधानगिरि ने भक्ति को एक ही स्वीकार किया –

''अस प्रकार इक भक्ति है भक्तन मनु अनुसार।
विविध भांति की लश परत सबकौ एक विसार।।''

निर्गुण साधना में संतों ने मुक्ति पर और सगुणोपांसक भक्तों ने भक्ति पर बल दिया है। निधानगिरि ने भक्ति द्वारा मुक्ति का उल्लेख करके मुक्ति और भक्ति की पृथक धाराओं को एकाकार कर दिया है कवि के शब्दों में –

(अ) भगवत चरित सुनह मन लाई। पावत भक्ति मुक्त हो जाई।

(ब) पहुँचावत है परम पर नहि संदेह गनाइ।

(स) सुमिरत नाम परमपद होई।

'को कर सकै विभाग' कहकर निधानगिरि ने भक्ति के अविभक्त स्वरूप का संकेत किया है। कवि ने भागवत की भक्ति को अनुराग वाली कहा है उसमें वेद, स्मृत, शास्त्र पुराण पंचरात्रियों की मान्यताओं का श्रीगणेश किया है।

''भगवत माहि परम अनुराग। यही भक्ति वरत बड़ नाना भगवत को स्वामी जिय जानै। आपुन दास भाव कर मानै।।'' निधानगिरि ने भक्ति के क्षेत्र में जीव और ईश्वर को परस्पर अवलम्नित बताया हैं। दोनों में समता, सखात्व, मित्रता का संकेत किया है, जो कवि क्रान्तिकारी चिंतन है –

''जीव बिना ईश्वरता नाहीं। ईश्वर बिना जीव कहुँ नाहीं।।''

तुलसी ने 'जिन गिरा पार्वान करन कारन राम जसु तुलसी कल्यों' कहकर अपनी वाणी को पवित्र करने का उद्धोष किया है, निधानगिरि ने 'पावन को पावन करन' कहकर पवित्र को भी पवित्र करने के लिए तथा सुजन समाज के लिए काव्य की साधना की है। निधानगिरि हरि यश को जग को पवित्र करने के लिए गा रहे हैं। एक अन्य स्थान पर कवि ने सकल लोक पावन करन, जिस सुरसरि की नीर' कहकर सम्पूर्ण लोक को भी पवित्र करने की बात कही है, इसी प्रकार निधानगिरि जन–जन को पावन करना चाहते है।

निधानगिरि ने एक ओर तत्कालीन समथर नरेश महाराज चतुरसिंह के लिए हरि चरित्र की नई रचना की थी, वहीं उनके काव्य का प्रयोजन सामान्य जन भी कवि ने काव्य प्रयोजनों का संकेत इस प्रकार किया है –

''चतुर सिंह महाराज जुत सचिव प्रश्न अस कीन।
हरि चरित्र वरनन करहु भक्ति भाव लवलीन।।''
''सुनहै सज्जन प्रीति जुत लहतिं भक्ति कौ धाम।''

'निधानगिरि' ने रस को काव्य का जीवन स्वीकार किया है। रसिको के समक्ष ही वे रस की बातें कहने का आग्रह करते हैं तथा बिना रस के फल का निःस्वादन बताते हैं –

''रस की बात निरस सुन रहउ। रसिक होइ ता आगै कहउ।।''
''बिन रस फल फीकौ लगे कहत पुरान मुनीस।''

'निधानगिरि' के काव्य की प्रेरक शक्ति मातृ शक्ति को स्वीकार किया है। महाकाव्य रचना की एक अन्य प्रेरक शक्ति के रूप में कवि ने समथर स्टेट के राजा महाराज चतुरसिंह को स्वीकार किया है –

''धन धन धन महिपाल मनि चतुर प्रश्न अस कीन।
चरित पुरातन हरि समझ चाहत किऐ नवीन।''

भाषा चिंतन में मानुषी, प्रगट अर्थ आखर सबकौ, सुलभ, सुहाइ जवान आदि पदों से कवि की काव्यशास्त्रीय अभिरूचियाँ दिग्दर्शित होती है। कवि ने इसे जुबान वाली भाषा भी कहा है। कवि निधानगिरि ने बुन्देली जैसी ग्राम्य बोली का उद्धार करके उसे साहित्यिक क्षेत्र में प्रतिष्ठित किया।

'निधानगिरि' ने वर्ण की मनोहारिता, अनुप्रास और यमक के सुस्ठ प्रयोग अलंकार रस एवं भाव विधान तथा हरि के संग से नाना गुणों से समलंकृत होने का संकेत किया है।

''प्रगटहिं वरन मनोहरताई। सुंदर अनुप्रास जमकाई।
अलंकार रस भाव विधाना। हरि जस संग उपज गुन नाना।।''

कवि ने कोटि–कोटि मनुष्यों के जीवन में रस का संचार करने कोटि मुक्ति की संज्ञा दी हैं इस प्रकार मुक्ति की अवधारणा को रस से अर्थात् प्रेम और आनन्द से जोड़कर कवि ने सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना में एक नया उल्लास पैदा कर दिया है।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि निधानगिरि की कविता शिव की भांति विषपान कराती है गंगा की भांति जन कल्याण करती है। उनकी कविता का मूल स्वर राष्ट्र मंगलम् का है। कवि ने जिन पात्रों एवं चरित्रों को रचा है वे मंगल की मूर्ति हैं तथा अमंगल का विनाश करते हैं। निधानगिरि के राम मनुष्यों के शर्दूल हैं तथा काल के कराल काल हैं एवं महामानवी सीता चैतन्य शक्ति है। वे कविता के क्षेत्र में क्रान्तिकारी एवं नई पहल करने वाले कवि है।

सन्दर्भ संकेत

1. चंददास साहित्य शोध संस्थान बाँदा से प्राप्त हस्तलिखित प्रति–निधानगिरि कृत 'भक्ति मनोहर' महाकाव्य
2. राजकीय संग्रहालय झाँसी से प्राप्त एक सर्वेक्षण
3. 'वैद्यक सिन्धु' निधानगिरि हस्तलिखित प्रति मोठ ,झाँसी
4. 'हरि भक्ति रसामृत सिन्धु' रूपागोस्वामी दक्षिण विभागे पंचमलहरी,पृ0 309
5. 'हिम्मत बहादुर विरूदावली' पद्याकर
6. आकाशवाणी छतरपुर द्वारा प्रसारित वार्ता–26 नवम्बर 2005
7. 'मूलगोसांई चरित' बेनीमाधव
8. श्रीरामचरितमानस तुलसीदास गीता प्रेस गोरखपुर
9. श्रीमदभागवत
10. 'भक्तमाल' नाभादास
11. 'सूरसागर' सूरदास
12. 'मनुस्मृति' मनु
13. 'काव्य प्रकाश' मम्मट
14. भ्रमरगीत सार सं0 रामचन्द्र शुक्त, पृ0 124
15. शोध छात्रा की खोज डॉ0 अनामिका द्विवेदी द्वारा यात्राओं का विवरण।
16. 'भ्रमरगीत परंपरा और सूर का भ्रमरगीत' डॉ0 हरिचरण शर्मा, पृ0 28
17. 'भ्रमरगीत एक मूल्यांकन' डॉ0 हरिचरण शर्मा, पृ0 91

❑❑

33

काव्य–सर्जन में मूल कारण

(संस्कृत–काव्यशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में)

डॉ0 तरुण कुमार शर्मा
प्रवक्ता, संस्कृत–विभाग,
अंतर्रा पी.जी. कालेज, अतर्रा (बाँदा)

संस्कृत–काव्यशास्त्रियों ने काव्य–सर्जन के सन्दर्भ में 'शक्ति' एवं 'प्रतिभा' का उल्लेख किया है, इसके साथ ही काव्य–हेतुओं के सन्दर्भ में उन्होंने 'व्युत्पत्ति' एवं 'अभ्यास' को भी परिगणित किया है। व्युत्पत्ति को व्याख्यात करते हुए राजशेखर ने इसे 'बहुज्ञता' एवं 'अनुचितानुचितविवेक' मम्मट ने लोकशास्त्र एवं काव्य के अवलोकन से होने वाली 'निपुणता', केशव ने 'नाना तन्त्रों का ज्ञान', अलंकारमहोदधिकार ने 'शास्राादि में प्राप्त प्रागल्भ्य', वाग्भटालंकार ने शब्द, अर्थ, धर्म एवं काम आदि शास्त्रों में होने वाली सामान्य प्रतिपत्ति तथा द्वितीय वाग्भट ने विभिन्न क्षेत्रों की 'निपुणता' कहा है भामह ने स्पष्टतया कहा है ऐसा कोई भी शिल्प, विद्या, कला एवं शास्त्र नहीं जो काव्य का अंग न हों।

आचार्य मंगलअभ्यास की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि यह निरन्तर परिशीलन का ही दूसरा नाम है। काव्यज्ञ से शिक्षा लेकर उनका परिशीलन ही मम्मट और वाग्भट के अनुसार 'अभ्यास' है। 'अलंकारमहोदधि में पुनः पुनः प्रवृत्ति को अभ्यास कहा गया है। वाग्भटालंकार ने इस सम्बन्ध में कहा है कि गुरुओं के पास बैठकर सादर काव्य–क्रिया में लगे रहना ही 'अभ्यास' है।

प्राचीन आचार्यो ने प्रतिभा, व्युत्पत्ति एवं अभ्यास तीनों को काव्य हेतुओं में परिगणित किया है तथा प्रतिभा को कवित्व का बीज माना है। भामह स्पष्टतया कहते हैं –

'काव्यं तु जायते जातु कस्यचित्प्रतिभावतः।[1]किसी प्रतिभावान् में ही काव्य की उत्पत्ति हो सकती है।

वामन ने प्रतिभान को कवित्व बीज कहा है। ''कवित्वबीजं प्रतिभानम्''।[2] आचार्य मम्मट ने शक्ति, निपुणता तथा अभ्यास इन तीनों के समुदित रूप को काव्य का हेतु स्वीकार किया है –

''इति त्रयः समुदिताः, न तु व्यस्ताः, तस्य काव्यस्योभ्दवे निर्माणे समुल्लासे च हेतुर्न तु हेतवः''।[3]

नाट्याचार्य भरतमुनि ने रस को काव्य रूपी वृक्ष का मूल माना है वे कहते हैं –

यथा बीजाद् भवेद् वृक्षो वृक्षात्पुष्पं फलं यथा।
तथा मूलं रसाः सर्वे तेभ्यो भावा व्यवस्थिताः।।[4]

जिस प्रकार वृक्ष के मूल में बीज स्थित है जिससे क्रमशः वृक्ष, पुष्प तथा फल होते हैं उसी प्रकार रस मूल है जिस पर भावों की स्थिति अवस्थित है।

ध्वनिवादी एवं रसवादी आचार्यों ने भी रस को ही काव्य का मूल माना है जो प्रतिभा का विषयीभूत है। आनन्दवर्धन कहते हैं –

सरस्वती स्वादु तदर्थवस्तु निष्यन्दमाना महतां कवीनाम्।
अलोकसामान्यमभिव्यनक्ति परिस्फुरन्तं प्रतिभाविशेषम्।।[5]

राजशेखर ने आनन्दवर्धन के मत को 'काव्यमीमांसा' में इस प्रकार उद्धत किया है –

'प्रतिभा व्युत्पत्त्योः प्रतिभा श्रेयसी इत्यानन्दः'।[6] अभिनवगुप्त भी 'प्रतिभान' को ही कवि की मूल शक्ति मानते हैं। वे कहते हैं –

'शक्ति : प्रतिभानं वर्णनीयवस्तुनूतनोल्लेखशालित्वम्' ।[7] शक्ति (प्रतिभान) वर्णनीय वस्तु के सम्बन्ध में नयी बात की उल्लेखशीलता है। ध्वन्यालोक लोचन के आरम्भ में नमस्कारात्मक मंगल में कला के उन उत्स पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कवि की 'प्रतिभा' को 'प्रख्या' और 'वर्णनाशक्ति' को 'उपाख्या' की संज्ञा दी है, वे कहते हैं – जो कारण–सामग्री के लेश के बिना अपूर्ववस्तु को उत्पन्न करता है, फैला देता है और पत्थर के समान नीरस जगत् को अपने रसभार से रसवान् बना देता है और क्रम से प्रख्या और उपाख्या के प्रसर हृद्य होता हुआ वस्तु जात को भासित करता है, वह कवि और सहृदय द्वारा आख्यात सरस्वती का तत्त्व विजयी है।[8]

प्रथम उद्योत के अन्तिम श्लोक में उन्होंने प्रतिभा को शिव की शक्ति की भाँति अपनी आत्मा में विश्रान्त होने का उल्लेख करते हुए कहा है –

यदुन्मीलनशक्त्यैव विश्वमुन्मीलति क्षणात्।
स्वात्मायतनयविश्रान्तं तां वन्दे प्रतिभां शिवाम्।।[9]

आचार्य मम्मट ने यद्यपि शक्ति, निपुणता, लोकशास्त्र एवं काव्यादि का अवेक्षण काव्यज्ञों द्वारा शिक्षा तथा अभ्यास सभी को काव्य हेतुओं के रूप में उल्लिखित किया है जैसा कि उन्होंने काव्यप्रकाश के प्रथम उल्लास में कहा हैं –

शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्र काव्याद्यवेक्षणात्।
काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे।।[10]

मम्मट ने सर्वप्रथम शक्ति का कथन किया है तथा यह कहकर कि व्युत्पत्तिकृत दोषों का संभरण शक्ति द्वारा हो जाता है। उन्होंने शक्ति की श्रेष्ठता मानी है शक्ति की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा है–

''शक्ति : कवित्वबीजरूपः संस्कारविशेषः यां विना काव्यं न प्रसरेत, प्रसृतं वा उपहसनीयं स्यात्'' ।[11]

पण्डितराज जगन्नाथ की प्रतिभा को ही काव्यं का हेतु मानते हैं –

''प्रतिभैव केवला कविगता हेतुः।[12]

जैन आचार्य हेमचन्द्र तथा वाग्भट भी प्रतिभा को ही काव्य सृजन का मूलरूप स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं –

व्युत्पत्त्याभ्याससंस्कृता प्रतिभाऽस्य हेतुः। प्रतिभैव च कारणम्।[13]

प्रतिभा या शक्ति को काव्य का मूल हेतु मानने वाले आचार्यों के मतों का उपस्थापन करने के साथ ही, हमें इस तथ्य को उपेक्षित नहीं कर देना है, कि कुछ आचार्य ऐसे भी हुए हैं जिन्होंने व्युत्पत्ति एवं अभ्यास को प्रतिभा से श्रेष्ठतर माना है। राजशेखर आचार्य मंगल का कथन इस सन्दर्भ में उद्धृत करते हैं –

'व्युत्पत्तिः श्रेयसीति मंगलः'

वे आगे कहते हैं – अभ्यास इति मंगलः। अविच्छेदेन शीलनमभ्यासः। स हि सर्वगामी सर्वत्र निरतिशयं कौशलमाधत्ते।[14] मंगल नामक विद्वान् का मत है कि काव्य निर्माण के लिए अभ्यास ही प्रधान कारण है निरन्तर अनुशीलन का नाम अभ्यास है अभ्यास सभी विषयों के लिए आवश्यक है और उसके द्वारा उत्कृष्टतम कुशलता प्राप्त होती है।

राजशेखर समाधि एवं अभ्यास को शक्ति का उद्भावक घोषित करते हुए कहते हैं –

'समाधिरान्तरः प्रयत्नों बाह्यस्त्वभ्यासः तावुभावपि शक्तिमुद्भासयतः।
'सा केवलं काव्ये हेतुः' इति ययावरीयः।[15]

वास्तव में समाधि या एकाग्रता आन्तरिक प्रयत्न है और अभ्यास बाह्य। समाधि और अभ्यास ये दोनों कवित्त्व को उत्पन्न करते हैं। यह शक्ति ही काव्य निर्माण में प्रधान होती हैं आचार्य दण्डी 'नैसर्गिकी प्रतिभा' श्रुत (व्युत्पत्तिद्ध एवं अभियोग (अभ्यास) तीनों को काव्य का कारण मानते हैं लेकिन इसके साथ वे यह भी कहते हैं कि जिस व्यक्ति में पूर्व वासनागुणानुबन्धी अद्भुत प्रतिभा न हो उसे निराशा नहीं होना चाहिए। यदि ऐसा व्यक्ति भी व्युत्पत्ति

प्राप्तिपूर्वक अभ्यास करता रहे, तो सरस्वती की कृपा उस पर होती है।

उपर्युक्त समस्त विवेचनों के आधार पर यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि कुछ अपवाद स्वरूप आचार्यों को छोड़कर प्रायः सभी ने प्रतिभा को ही कवित्त्वबीज माना है। अभ्यास एवं समाधि को शक्ति का जनक मानने वाले आचार्य राजशेखर भी अन्ततः यही मानते कि जिसे प्रतिभा नहीं है उसके लिए प्रत्यक्ष दीखते हुए भी अनेक पदार्थ परोक्ष से मालुम पड़ते हैं, और प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति के लिए अनेक अप्रत्यक्ष पदार्थ भी प्रत्यक्ष से प्रतीत होते हैं। कवि अपनी अलौकिक प्रतिभा से ही अप्रत्यक्ष भावों का प्रत्यक्ष के समान वर्णन करता है। राजशेखर ने प्रतिभा के दो भेद 1. कारयित्री प्रतिभा और 2. भावयित्री प्रतिभा करते हुए कहा है कि कारयित्री प्रतिभा कवि की उपकारक होती है। कारयित्री प्रतिभा के पुनः उन्होंने तीन भेद बतलाये हैं –

1. सहजा – पूर्वजन्म के संस्कारों से प्राप्त।
2. आहार्या – जन्म, शास्त्र एवं काव्यों के अभ्यास से उत्पन्न।
3. औपदेशिकी – मन्त्र, तन्त्र, देवता, गुरु आदि के वरदान से प्राप्त।

अन्ततः कहा जा सकता है कि भारतीय आचार्यों के अनुसार प्रतिभा कवित्व बीज है तथा व्युत्पत्ति एवं अभ्यास इसके संस्कार धर्म हैं। इस सन्दर्भ में कुन्तक का कथन उल्लेखनीय है –

क्तनानाद्यतनसंस्कारपरिपाकप्रौढ़ा प्रतिभा काचिदेव कविशक्तिः।[16]

पूर्वजन्म तथा अद्यतन वर्तमान जन्म संस्कारों से परिपक्व प्रतिभा ही कवि शक्ति कहलाती है तथा इसकी परिपक्वता में जन्मान्तरीय संस्कारों का होना तो अपेक्षित है ही अर्जित संस्कारों का योगदान भी अनिवार्य है। अर्जित संस्कार व्युत्पत्ति एवं अभ्यास से प्राप्त होते हैं।

प्रतिभा शब्द की व्युत्पत्ति पर भी हम विचार करें तो पायेंगे कि इसमें भाव और करुणा दोनों का रूप समाहित है 'प्रतिभा' शब्द की 'प्रति' उपसर्ग पूर्वक, दीप्ति अर्थ वाली 'भा' धातु एवं अङ् प्रत्यय के योग से हुई हैं अङ् प्रत्यय 'भाव' एवं कारण दोनों अर्थों में प्रयुक्त होता हैं इस दृष्टि से 'प्रतिभात्यर्थोऽनया सा प्रतिभेति' तथा 'प्रतिभानं प्रतिभेति' ये दो व्युत्पत्तियाँ हुई। पहली व्युत्पत्ति के अनुसार जिसमें पदार्थ को प्रतिभान हो वह प्रतिभा है वह दूसरे के अनुसार 'प्रकाश' या 'स्फुरण' ही प्रतिभा है। इस प्रकार प्रतिभा करण और भाव दोनों रूप हैं। यदि हम जन्मान्तरीय संस्कार को कारण रूप मानकर काव्योपजीवी शब्दार्थ स्फुरण को कार्य रूप भी मानते हैं तो यह तथ्य तो सिद्ध ही है कि दोनों प्रतिभा के दो पहलू हैं। अतः शक्ति को अगर हम प्रतिभा का कारण मानते हैं तो वस्तु स्थिति यह है कि प्रतिभा का ही दूसरा नाम है।

प्रतिभा और शक्ति को एक मानने वाले आचार्यों रुद्रट कहते हैं –

मनसि सदा सुसमाधिनि विस्फुरणमनेकथाऽभिधेयस्य।
क्लिष्टानि पदानि च विभान्ति यस्यामसौ शक्तिः।।[17]

प्रतिभा का स्वरूप – प्रसङ्गतः प्रतिभा के स्वरूप को जान लेना भी आवश्यक है। आचार्यों ने प्रतिभा को संस्कार विशेष तथा पुण्य कर्मों एवं दैवी कृपा से उद्भूत 'अन्तःस्फुरण' रूप प्रतिपादित किया है। वस्तुतः प्रतिभा की व्याख्या पर विभिन्न दर्शनों का प्रभाव है। प्रतिभा शब्द का प्रयोग अन्यत्र सहज समुद्भूत ज्ञान के रूप में तथा आगमों में 'पराशक्ति' के रूप में मिलता है।

रुद्रट, महिमभट्ट.., भट्टोत, राजशेखर एवं पण्डितराजगन्नाथ प्रभृति आचार्य प्रतिभा को 'स्फुरण' रूप मानकर इसी प्रकार का स्वरूप प्रतिभा का निरूपण करते हैं। रुद्रट के अनुसार 'शक्ति' उसे कहते है जिसके द्वारा सुसमाहित चित्त में निरन्तर अनेक प्रकार के अर्थ स्फुरित होते रहते हैं तथा अक्लिष्ट अर्थात् शीघ्र ही अर्थ प्रतिपादन में समर्थपदों का स्फुटन होता है।[18]

महिमभट्ट के अनुसार– रसानुगुणशब्दार्थचिंतास्तिमित चेतसः।
क्षणं स्वरूपस्पर्शोत्था प्रज्ञैव प्रतिभा कवेः।।[19]

भट्टोंत कहते हैं – प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता।
तदनुप्राणनाज्जीवद्वर्णनानिपुणाः कवि :।।[20]

नव–नव रूपों का उन्मेष करने वाली प्रज्ञा का नाम है प्रतिभा और ऐसी प्रतिभा से अनुप्राणित सजीव वर्णना में निपुण व्यक्ति का नाम है कवि।

राजशेखर प्रतिभा को परिभाषित करते हुए कहते हैं – प्रतिभा वह तत्त्व है जो काव्योपजीवी शब्द राशि अर्थ सम्पत्ति अलंकार–पुज्ज उक्तिमार्ग और उसी प्रकार की अन्य वस्तुओं को भी प्रतिभासित करती है।[21]

अभिनवगुप्त प्रतिभा का स्वरूप–विवेचन वर्णित करते हुए कहते हैं – 'प्रतिभा अपूर्ववस्तुनिर्माणक्षमा प्रज्ञा' प्रज्ञा शक्ति एवं प्रतिभा के स्वरूप–विवेचन से यह लक्षित होता है कि प्रतिभा के दो कार्य है एक तो यह कि वह परोक्ष वस्तुओं का भी अपरोक्ष की भाँति साक्षात्कार कर लेते हैं। यह साक्षात्कार लोकोत्तर होती है। तात्पर्य यह है कि कवि की आँखें वस्तु में निहित 'विशेष' का दर्शन कर लेती है जिसे अपूर्व या नव–नव जैसे शब्दों द्वारा घोषित किया जाता हैं दूसरा कार्य यह है कि कवि की प्रतिभा न केवल अर्थ को स्फुरित करती है वरन् उसके वाहक पद को भी अतः वस्तु के स्वरूप बोध का अर्थ है पदार्थ (पद अर्थ) बोध दर्शन एवं वर्णन ् की द्विविध शक्तियाँ प्रतिभा से ही अनुस्यूत हैं। आचार्य जगन्नाथ ने 'काव्यघटनानुकूलशब्दार्थोपस्थितिः' काव्य घटनानुकूल शब्द एवं अर्थ की उपस्थिति प्रतिभा का ही कार्य उल्लिखित किया है राजशेखर 'कारयित्री' और 'भावयित्री' को ही एक ही प्रतिभा के दो भेद मानते हैं। अर्थात् कवि भावक के रूप में दर्शन करता है और कारक के रूप में सर्जन करता है।

प्राचीन आचार्यों द्वारा की गयी प्रतिभा की व्याख्या से ज्ञात होता है कि उन्होंने सामान्य कवि को दृष्टि में रखकर प्रतिभा का स्वरूप निरुपित नहीं किया वरन् 'महाकवि' को दृष्टिपथ में रखकर किया। उनका कवि ऋषि कोटि का है तभी तो उसे प्रजापति ('आपरेकाव्यसंसारे कविरेकः प्रजापतिः') की संज्ञा से अभिहित किया है। ये स्पष्टतया कहते हैं कि कवित्व शक्ति एक प्रकार का संस्कार है जो 'प्राक्तनपुण्याभ्यास' के परिपाक से प्राप्त होता है। शक्ति को पुण्यलब्ध मानते हुए अग्निपुराणकार कहते हैं –

कवित्वं दुर्लभं लोके, शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा।
व्युत्पत्तिर्दुर्लभा तत्र, विवेकस्तत्र दुर्लभः।।

ध्वनिकार आनन्दवर्धन कहते हैं –

''येषां सुकवीनां प्राक्तनपुण्याभ्यासपरिपाकवशेन' प्रवृत्तिस्तेषां परोपचरितार्थ– परिग्रहनिःस्पृहाणां स्वव्यापारो न क्वचिदुपयुज्यते। सैव भगवती सरस्वतीस्वयम–भिमतमर्थमाविभवियति एतदेव हि महाकवित्वं महाकवीनामित्योम्'।[22]

जिन सुकवियों की प्रवृत्ति पूर्वजन्म के पुण्य और अभ्यास के परिपाक के कारण होती है। दूसरों के द्वारा रचित अर्थ के ग्रहण में निःस्पृह सुकवियों को अपना व्यापार कहीं नहीं करना पड़ता। वहीं भगवती स्वयं अभिमत अर्थ को आविर्भूत करती है यही महाकवियों का कवित्त्व है।

सारांशतः कहा जा सकता है कि साहित्यिक आचार्यों को प्रतिभा का 'स्वतः स्फुरित' रूप ही मान्य है जो दर्शन एवं वर्णन की द्विविध शक्तियों से युक्त हैं 'प्रात्तनाद्यतन' संस्कारों से परिपक्व प्रतिभा को कविशक्ति मानते हुए वे यह मानते हैं – कि बिना दैवी कृपा और पुण्य कर्मों के कोई 'सुकवि' या महाकवि नहीं बन सकता। राजशेखर ने काव्यमीमांसा में एक स्थल पर कहा है –

'बुद्धिमत्ता, काव्य एवं उसके अंगभूत विधाओं का अभ्यास तथा कवियों का उपनिषत् (शक्ति) ये तीनों एक स्थान पर अत्यन्त दुर्लभ है।'

प्रतिभा : दार्शनिक पृष्ठभूमि : न्याय, वैशेषिक एवं वेदान्त में प्रतिभा या आर्षज्ञान पर्याप्त रूप में प्रयुक्त है। 'योगकालतन्त्र' में इसे प्रज्ञा कहा गया है। व्याकरण दर्शन में प्रज्ञा एवं प्रतिभा दोनों का प्रयोग है वैयाकरणों के अनुसार जिसे पदार्थ का प्रतिभान हो वह प्रतिभा है। अन्तःकरण की बुद्धिनामक निश्चयात्मिका प्रवृत्ति को उन्होंने

प्रतिभा कहा है।

साहित्यशास्त्र में काव्योपयोगी 'प्रतिभा' का विचार दो दर्शनों के प्रकाश में मिलता है एक तो 'प्रत्यभिज्ञा दर्शन' और दूसरा 'जैन दर्शन' कश्मीरी आचार्यों ने कहीं कहीं प्रत्यभिज्ञा दर्शन के अनुसार प्रतिभा का विमर्श किया है।

महिमभट्ट ने प्रतिभा को शिव का तीसरा नेत्र कहा है ये मानते हैं कि प्रतिभा कवि की वह प्रज्ञा है जो वस्तु मात्र के प्रत्यक्षायमाण स्वरूप को स्पर्श करती हुई स्फुरित होती रहती है और प्रज्ञा भी कवि की वही है जो रसोपयोगी पदार्थ की चिन्तना में एक तान है। वह प्रज्ञा भगवान् चन्द्रमौलि की वह तीसरी आँख है जिससे निखिल त्रैकालिक पदार्थों का साक्षात्कार करते हैं।

व्यक्तिविवेक, द्वितीय अद्योत पृ. 390 विभिन्न दार्शनिक मान्यताओं के आलोक में प्रतिभा का स्वरूप विवेचित करने पर पहुँचते हैं कि इसकी व्याख्या दो धरातलों पर सम्भव है – 1. पारमार्थिक तथा 2. व्यावहारिक

पारमार्थिक धरातल पर ब्रह्म की स्पन्दमयी शक्ति ही प्रतिभा है क्योंकि मूल तत्त्व में स्पन्द होने से ही जगत् का निर्माण एवं ध्वंस होता है और वही संख्या का मूल हैं वैयाकरणों के ब्रह्मवाचक शब्द का अर्थ भी यही प्रतिभा है। व्यावहारिक धरातल पर कवि की शक्ति प्रतिभा है क्योंकि इसी के आधार पर वह अपूर्व वस्तुओं का दर्शन एवं नवीन वस्तुओं का सृजन करता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि जन्मान्तरीय संस्कारों से प्राप्त प्रतिभा अन्तश्चेतना की वह शक्ति है जिसके द्वारा अपूर्व अर्थ का भान एवं नवीन वस्तु का सृजन होता है तथा व्युत्पत्ति एवं अभ्यास द्वारा जिसे प्रौढ़ किया जा सकता है।

सन्दर्भ सूची

1. काव्यालंकार 1/25
2. काव्यालंकारसूत्रवृत्तिं 1/13/16
3. काव्यप्रकाश प्रथम उल्लास, कारिका 3 का वृत्तिभाग
4. नाट्यशास्त्र 6/39
5. ध्वन्यालोक 1/6
6. काव्यमीमांसा, प..म अध्याय
7. ध्वन्यालोकलोचन टीका
8. ध्वन्यालोक लोचन 1/1
9. ध्वन्यालोक1/11
10. काव्यप्रकाश प्रथम उल्लास कारिका 3
11. काव्यप्रकाश 1/3 वृत्ति
12. रसङ्गाधर पृष्ठ 9
13. काव्यानुशासन 1/2
14. काव्यमीमांसा चतुर्थ अध्याय
15. काव्यमीमांसा चतुर्थ अध्याय
16. वक्रोत्तिजीवितम् 1/29
17. काव्यालंकार 1/15
18. काव्यालंकार 1/15
19. व्यक्तिविवेक, पृ. 390
20. काव्यानुशासन, हेमचन्द्र में उ..त,पृ.3
21. काव्यमीमांसा, चतुर्थ अध्याय
22. ध्वन्यालोक, 4/17 वृत्तिभाग

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

जन संवेदना के कवि नागार्जुन

डॉ0 रेखा वर्मा
असि0 प्रोफेसर (हिन्दी)
डॉ0 भीमराव अम्बेडकर महिला राज0 स्ना0 महा0, फतेहपुर।

आधुनिक काल में छायावाद के अत्यंत सशक्त साहित्यांदोलन प्रगतिवाद है। प्रगतिवाद का मूल आधार सामाजिक यर्थाथवाद रहा है।

प्रगतिवाद काव्य वह है जो अतीत की सम्पूर्ण व्यवस्था के प्रति रोष व्यक्त करता है और उसके बदलाव की आवाज को बुलन्द करता है। नागार्जुन के काव्य में प्रगति के स्वर सर्वप्रमुख है सही अर्थों में नागार्जुन जनता के कवि है। वे एक मार्क्सवादी कवि है। अपनी कविता के माध्यम से उन्होंने मार्क्सवादी सिद्धान्तों का प्रचार भी किया है। उनकी कविता में अमीर–गरीब मालिक, मजदूर, जमीदार, कृषक उच्चवर्ग निम्नवर्ग के बीच द्वंद दिखाई देता है। गरीबी, भूखमरी, बीमारी, अकाल, बाढ़ जैसे सामाजिक यथार्थ का सूक्ष्म चित्रण कवि ने किया है। प्रगतिशील हिंदी कविता में सबसे अधिक संवेदनशीलता और लोकोन्मुख जनकवि नागार्जुन की विशिष्टता इसी बात में रही है कि उनकी रचनाओं और उनके वास्तविक जीवन में गहरा सामंजस्य है।

जनकवि नागार्जुन भारतीय समाज की वर्गीय संरचना की बारीकियों और जटिलताओं को जितनी स्पष्टता से पहचानते है उतनी ही सहजता निर्भीकता और पक्षधरता के साथ व्यक्त भी करते है।[1] नागार्जुन की कविताओं में हमारे आस–पास की जिंदगी के रंग दिखाई देते है। उन्होंने गरीबों के बारे में, जन्म देने वाली माँ के बारे में, मजदूरों के बारे में लिखा। कवि नागार्जुन के लिए पूरा देश उनके घर की तरह था। देश के विभिन्न इलाकों के साहित्यकारों कामरेडो और सामान्य जनता के पास उनसे जुड़ी बेहद आत्मीय और अंतरंग स्मृतियाँ है।

जनता मुझसे पूछ रही है क्या बतलाऊँ,
जन कवि हूँ मैं साफ कहूँगा क्यों हकलाऊ।

जन कवि नागार्जुन की ये पंक्तियाँ उनके जीवन दर्शन व्यक्तित्व एवं साहित्य का दर्पण है, स्वभाव से फक्कड़ और अक्खड़ बाबा नागार्जुन सच्चे अर्थो में जन कवि थे। वह बौद्ध भिक्षु भी रहे और कम्युनिस्ट प्रचारक भी किसानों के आंदोलन के साथ भी रहे और जय प्रकाश नरायण के छात्र आंदोलन के साथ भी। वह प्रत्येक आंदोलन और नेल के तभी तक समर्थक और अनुयायी रहे जब तक वह जनहित में रहा। जहाँ उन्हें लगा कि वह जनता को बरगलाया जा रहा है और देश को धोखा दिया जा रहा है वह तुरन्त पलटवार नेतृत्व पर टूट पड़े। जन संघर्ष में अडिग आस्था जनता से गहरा लगाव और एक न्यायपूर्ण समाज का सपना ये तीन गुण नागार्जुन के व्यक्तिव में ही नहीं उनके साहित्य में भी दिखते है।

जनता से जुड़े हर सवाल पर जनता का साथ देकर नागार्जुन ने जनकवि की उपाधि पाई। नागार्जुन की प्रतिबद्धता सदियों से दलित शोषित और उत्पीड़ित रही जनता के साथ थी। नागार्जुन को जहाँ कहीं यह महसूस हुआ कि राजनीति और व्यवस्था जनता के विरोध में है वे उस जन विरोधी राजनीतिक व्यवस्था पर टूट पड़ते है। एक सच्चे जनकवि के रूप में नागार्जुन हर राजनीतिक हलचल को अपनी पैनी नजर से देखते है। और अपनी कविताओं के माध्यम से उस पर बेलाग टिप्पणियाँ करते है। ''व्यक्तिगत दुख पर न रूककर वे बार–बार व्यापक दुख पर प्रकाश डालते है और यही सच्चे कवि की पहचान है। अतः धरती जनता और श्रम के गीतगाने वाले संवेदनशील कवियों में नागार्जुन का नाम सदैव अमर रहेगा।[2]

नागार्जुन की कविता में जन सामान्य की एक मुकम्मल बनावट के साथ पक्षधरता लिए है। यह पक्षधरता श्रमरत समाज की संघर्ष लोक चेतना से पृथक इसलिए नही है क्योंकि नागार्जुन की कविता आरोपित संघर्षशीलता को न स्वीकार कर जीवन के कहीं बहुत गहरे पैठे आक्रोश से अपना स्वरूप निर्मित करती है।[3]

नागार्जुन समाज में राजनीति की उपस्थिति की सीमा को बतलाते है। जो काव्य उपयोगिता और सामाजिक महत्व के प्रश्न का समाधान नही करता है वही सुन्दर है, सार्थक है, क्योंकि साहित्यकार राजनीतिकों से बहुत ऊँचा होता है समाज के निर्माण और उत्थान में उसका महत्वपूर्ण योगदान रहता है। साहित्यकार को चाहिए कि वह अपनी इस जिम्मेदारी को समझकर ही साहित्य में प्रवृत्त हो''[4] नागार्जुन ने इस जिम्मेदारी को समझा और अंत तक उसकी सार्थकता सिद्ध करने का प्रयास करते रहे। साहित्य को समाज की निमित्ति एक प्रमुख कारक मानते रहे। कबीर के बाद वो ऐसे कवि थे जो जन से सीधा संवाद करते है। श्रम का चित्रांकन करते है और जन संघर्ष के सहभागी बनते है। उनका काव्य सौन्दर्य भी नये ढंग का है। उनके काव्य का सौन्दर्य उससे नहीं बनता जो जीवन और समाज में आम तौर पर सुन्दर कहा जाता है। जीवन में जो उपेक्षित और असुन्दर कहा जाता है वही नागार्जुन के काव्य सौन्दर्य स्रोत है।[5]

यथार्थ जगत से उसका सीधा जुड़ाव है जहाँ से उनकी भाषा शक्ति ग्रहण करती है। वे मनुष्य होने के अभिप्राय पीड़ा और विडम्बना की अभिव्यक्ति के लिए जन भाषा को हथियार के रूप में ग्रहण करते है और पूरे आत्म विश्वास के साथ प्रतिरोध करते है। ''नागार्जुन जितना देखते है सुनते है और महसूस करते है उसे पूरा का पूरा और कई बार सम्पूर्ण अनगढ़पन के साथ कविता में कहने की अदभुत कला उनके पास है।[6]

नागार्जुन आधुनिक हिन्दी कविता के अप्रतिम व्यंगकार है। राजनीतिक एवं सामाजिक विषमता उनके व्यंग्यों की धुरी है। वे वस्तुवादी की तरह स्थितियों के यथार्थ पर दृष्टिपात करते है। उनके व्यंग्यों में त्वरा है, निर्भीकिता है। सामाजिक संदर्भो की समग्रता है, व्यापकता है, गहराई है। बेचैन करने का माद्दा है, देर तक आकुल रहने की क्षमता है। प्रतिरोध की दृढ़ता है। अपशब्द और गाली को सामाजिक हथियार बनाने का कौशल है। मनुष्य के उत्पीड़न के प्रति उनकी संवेदनशीलता उन्हें व्यंग्य का संस्कार देती है भ्रष्टाचार राजनीतिक कपट एवं शोषण ने उनके व्यंग्य को तीक्षण और धार दी है। यह वेफ्रिक कवि जनता के साथ नारे लगाता है, जेल जाता है, जनसभाएँ करता है, और मंच से वह कह देता है जिसे बोलने में बड़े से बड़े समाज सुधारक अथवा आदर्शवादी बगले झाँकने लगते है। व्यंग उनकी आत्मा का वह स्वर है जो जन वीणा पर बजा है। वह स्वर इतना सधा हुआ है कि उसका पिछलग्गू होना भी संम्भव नहीं है। उन्होंने सम–सामयिक घटनाओं पर विलक्षण कविताएँ लिखी है किन्तु वे तत्कालिकता की सीमाओं से पार है।[7]

व्यंग्य की इस विदग्धता ने ही नागार्जुन की अनेक कविताओं को कालजयी बना दिया है जिसके कारण वे कभी बासी नहीं हुई और अब भी तत्कालिक बनी हुई है।[8]

नागार्जुन की अधिसंख्य कविताए आधुनिक हिन्दी कविता की अग्निपथ है। जिन्हें कवि के अक्खड़ और स्वाभिमानी व्यक्तित्व ने मानवीय स्वानुभूति का आधार दिया है। उन्होंने जनतांत्रिक और वैज्ञानिक दृष्टि से यथार्थ को अपनाया है। जिस की अभिव्यक्ति संकेत और प्रतीक शैली में हुई है। कवि को यह ज्ञात है कि वर्तमान व्यवस्था और सामाजिक असन्तोष का कारण क्या है और उसका विकल्प क्या है। यह पूँजीवादी व्यवस्था और व्यक्तिवाद पर सीधा प्रहार है। 'प्रेत का बयान' कविता का कथा प्रसंग, कथोपकथन, मिथक, व्यंग्य व्यंजना और नाट्यशैली का सीधा संबंध स्वातंत्र्योत्तर भारत के समाजिक सरोकारी से है। सपाट बयानी ही इस कविता की कला है और गद्य के वक्तव्य की लय है। क्रिया व्यापार और रोजमर्रा के शब्द कविता को मर्मस्पर्शी बना रहे है। आड़े दिनों में जनता के दुख दर्द का साथ देने वाला यह कवि जनवाद का पक्षधर है।[9]

नागार्जुन का काव्य स्वातंत्र्योत्तर भारत का तापमापक है। वह उन परिवर्तनों, आशाओं, आंकाक्षाओं, संघर्षो

और विडम्बनाओं की गवाही है जो इस काल में घट रही थी। अंग्रेजों के जाने से लेकर देश में विदेशी पूँजी के अबाध आगमन का यह कालखण्ड नागार्जुन की कविता में अपनी तमाम आहटों और करवटों के साथ दर्ज है। अपने तमाम स्थानीय और वैश्विक लगावों के बावजूद यह देश भारत नागार्जुन की चिन्ता के केन्द्र में था। यहाँ के लोगों की हँसी –खुशी, दुख, संघर्ष तथा आशा एवं मोहभंग उनके मुख्य काव्य विषय थे। प्रो0 शम्भुनाथ ने ठीक लिखा है कि ''यदि बीसवीं सदी के प्रथम चार दशकों के भारत को जानना है तो प्रेमचंद्र को पढ़ना होगा और उत्तरार्द्ध के भारत को जानना हो तो नागार्जुन को।''[10]

अपनी कविताओं के माध्यम से नागार्जुन ने समय का वह चेहरा सामने रखा जो सत्ता की नजरों से ओझल था। सत्ता को बेनकाब करते हुए नागार्जुन अपने समय का ताप सही ढंग से माप रहे थे। श्रम के प्रति इसी प्रतिबद्धता के चलते नागार्जुन अपने समय की हर जनविरोधी घटनाओं हरकतों पर चुटकी लेने से बाज नहीं आते। नागार्जुन के अंदर एक संवेदनशील आदमी का मन है जो पंक्ति में सबसे पीछे खड़े आदमी के साथ बेहिचक खड़ा हो जाता है। शक्तिशाली एवं अग्रगामी व्यक्तियों के सामने सभी सिर झुकाते है लेकिन नागार्जुन का कवि मन तो खुलेआम प्रणाम करता है उस व्यक्ति का जो अपनी अप्रतिम सेवाओं के बाद भी हमेशा विज्ञापन से बचा और जब कभी उसका जिक्र आया वह झेपता नजर आया। नागार्जुन बेझिझक इस बात की घोषणा करते है कि जनकवि है और उनकी काव्य संवेदना जनसंवेदना से पूर्णतः भरी हुई है।

संदर्भ ग्रथ सूची

1. मैनेजर पांडेय (नागार्जुन चयनित कविताएँ पुस्तक की भूमिका)
2. डॉ0 प्रकाश भट्ट – नागार्जुन जीवन और साहित्य, पृष्ठ 48
3. आरंभ त्रैमासिक ई पत्रिका, जनपक्ष धरता के कवि बाबा नागार्जुन (जुलाई– सितम्बर 2016)
4. प्रेमलता दुआ – समाजवादी यथार्थवाद और नागार्जुन का काव्य (पृ0 67)
5. नागार्जुन काव्य में शिल्पगत प्रयोग– खगेन्द्र ठाकुर, आलोचना (अक्टूबर–दिसम्बर 2011 पृ0 59)
6. केदार नाथ सिंह, आलोचना ज0मा0अ0 जून 1985, पृ0 13
7. डॉ0 नरेन्द्र नाथ सिंह, जनकवि नागार्जुन की कविताओं की सम्प्रेषणीयता, पेज नं0 12
8. नामवर सिंह नागार्जुन की प्रतिनिधि कविताएँ, पेज नं0 09
9. विष्णु चन्द्र शर्मा – नागार्जुन एक लम्बी जिरह, पृ0 89
10. नागार्जुन : रचना प्रसंग और दृष्टि (सं0 राम निहाल गुजंन, पृ0 142)

❑❑

हरिकृष्ण 'प्रेमी' के नाटकों में शब्द योजना

डॉ0 आशा वर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
डी0बी0एस0 कॉलेज, कानपुर

लेखक अपनी रचना के विषय–चयन और उसे अभिव्यक्ति देने की लिए स्वाधीन होता है। वह उन उपादानों को जिसके सहारे वह अपने अन्तर की कृति को एक निश्चित रूप देता है, कई तरह जोड़कर व्यवस्थित करता है। किन्तु ऐसा अधिकतर सम्भव नहीं होता कि एक विषय को कई ढंगों या विधानों द्वारा प्रस्तुत किया जाए। इसका कारण है विचार तत्व का अभिव्यक्ति तत्व से अन्योन्याश्रय सम्बन्ध। भाषा काव्य अथवा पद्य का व्यवहार पक्ष है। साहित्य की रचना केवल विचार और भाव से नहीं हो सकती। वह तो अपनी रूपाकृति तब ग्रहण करेगी, जब भाव और विचार भाषा में अनुकूल ढंग से अभिव्यक्त हों। साहित्य का अंतिम विश्लेषण उसमें प्रयुक्त भाषा का सौन्दर्य है।[1] भाषा हृदय के भावों का मूर्त रूप है। अस्तु, साहित्य को भाषा में ही उन्मुक्त रूप से विचरण करने का अवसर मिलता है। भाषा साहित्य को आलोकित–विभूषित करने का कार्य करती है।

हरिकृष्ण 'प्रेमी' जी का शब्दकोश विस्तृत है। वे शब्द–चयन के कुशल शिल्पी थे। उनकी भाषा वातावरण के अनुकूल, पात्र के चरित्र के अनुसार नाना रूप धारण करके चलती है। वह नटी की तरह नाना प्रकार का रूप धारण कर पाठकों को लुभाती है। सार्थक शब्द–योजना से भाषा का अर्थ–सौन्दर्य देखते ही बनता है। 'शिवा–साधना' नामक नाटक में उदाहरण द्रष्टव्य है–

"शिवाजी : यह मैं जानता हूँ दादा जी। वह घटना स्वामी–भक्ति के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखी रहेगी, जब भूल से आपने हमारी वाटिका से एक आम तोड़ लिया था और बाद में उस अपराध में अपना हाथ काटने को तैयार हो गये। आपको पिताजी की चिन्ता होना अत्यन्त स्वाभाविक है।

कोंडदेव : केवल तुम्हारे पिता जी की ही नहीं, तुम्हारी भी। देखो भैया, जवानी के ज्वारभाटे को दैनिक जीवन का प्रवाह नहीं बनाया जा सकता। तुम्हें समझदारी से......?[2]

इन शब्दों के चयन से अर्थ–सौन्दर्य में भी चार चाँद लग गये हैं। एक उदाहरण नाटक 'प्रकाश–स्तम्भ' से–

पद्मा : और संभवतः आठ वर्षों से निरन्तर गूँज रहा है, तभी तो मुझे आश्चर्य होता था कि इस ग्वाले के अलगोजे से मुझे क्यों इतना रस मिलता है। नित्य ही तुम्हारे स्वरों को सुनने के लिए जल–विहार के बहाने सहेलियों सहित मैं आती हूँ। कितनी बार मेरा हृदय वीणा की तान से खिंचे मृग की भाँति तुम्हारी ओर भागा है। लोकलाज, कुल की परम्परा, जाति और पद की सीमाएँ पाँवों की बेड़ियाँ बन गई। आज तक मैं अपने आपसे झगड़ती रही हूँ।

बाप्पा : तो अब इन बेड़ियों को तोड़ डालो न।"[3]

हरिकृष्ण 'प्रेमी' की शब्द–योजना (भाषा) सौन्दर्यमयी अभिव्यंजना की दृष्टि से समृद्ध, हृदयस्पर्शिणी और लालित्यपूर्ण है। सफल भाषा के लिए भावानुसारिणी शब्द–योजना की संयोजना भी आवश्यक है। जहाँ तक शब्द–योजना का प्रश्न है, हरिकृष्ण 'प्रेमी' इस कसौटी पर खरे उतरे हैं। इनका शब्द–चयन अभीप्सित भावों को व्यक्त करने में पूर्णतया समर्थ एवं सफल है। यथा–

"मैं हूँ महाप्रलय की ज्वाला
चाहा जग ने मुझे दबाना,

चाहा मुझको राख बनाना,
चाहा पैरों से ठुकराना,
उसने मुझे नहीं पहचाना,
मैंने की प्रतिहिंसा हाला,
मैं हूँ महाप्रलय की ज्वाला।"[4]

यहाँ पर 'ज्वाला' शब्द का प्रयोग अत्यन्त सार्थक एवं भावपूर्ण है। इस शब्द से आक्रोश की भावनो को अभिव्यक्त किया गया है। 'स्वप्न–भंग' की 'रोशनआरा' का षड्यन्त्र में फंसा हुआ चरित्र आरम्भ से ही नाटक में भविष्य की प्रलयकारी घटनाओं का संकेत करता ज्ञात होता है। परन्तु यहाँ पर 'मैं हूँ महाप्रलय की ज्वाला' के 'ज्वाला' शब्द से षडयंत्र का स्पष्ट पता लग जाता है। इस प्रकार के गीतों के शब्द नाटककार के भाव–सौन्दर्य आवरणों से शोभित करके पाठकों और दर्शकों का अधिक से अधिक मनोरंजन करते हैं।

तत्सम् शब्द

हरिकृष्ण 'प्रेमी' ने संस्कृत के तत्सम् शब्दों का प्रयोग किया है। तत्सम् शब्दों का प्रयोग करके प्रेमी जी ने अपने नाट्य साहित्य को व्याकरणिक बनाने का प्रयत्न किया है, यथा–तृप्त, गणप्रमुख, पुत्री, पराक्रम, रक्त, पूर्णिमा, चन्द्र, प्रज्वलित, सम्राट, धृष्टता, संध्या, द्रोहिणी, त्रिशूल, स्मृति, क्षत्राणी, विद्यार्थी, धर्माभिमान, पद–मर्दिक, राजकोष, स्नेह, प्रचंड, स्वर्ण, चरमोत्कर्ष, षड्यन्त्र, मुक्त, कणिका, कर्तव्य, आशीर्वाद, आचार्य, प्रचण्ड, युद्ध, गणराज्य, प्रमाणित, मृत्यंजय, शवों, हृदय, रणकौशल पराक्रम, रक्षा, भविष्य, अमावस्या, प्रकाशमयी, रात्री, पंचनद, विध्वंस, बाह्य, पोषण, प्रतिहिंसा, मरघट, उपकिंचनता, वैभवहीनता, प्रभुत्ता–हीनता, अवस्थित, विस्मृति, विलीन, अर्थ, स्वय, वृक्ष, वर्षा, संपत्ति, ऐश्वर्य, सत्पुरुषों, सर्वदा, कृत्रिमात, शिखर, विषमता।

हरिकृष्ण 'प्रेमी' द्वारा अपने नाट्य साहित्य में दिये गये तत्सम् शब्दों के उद्धरण निम्नांकित हैं–

चाणक्य : "मैं तृप्त हुआ।

कणिका : कठ गणप्रमुख की पुत्री कणिका, काले नाग से तो क्या स्वयं काल से भी भयभीत नहीं होती।"5

कणिका : "नहीं आचार्य, भारत ने पद–पद पर शत्रु से प्रचण्ड युद्ध किया है। हमारे कठ–गणराज्य को ही ले लीजिए। जब सिकन्दर ने हमारी राजधानी साकल को घेरा तो हमने उसके छक्के छुड़ा दिए। रणकौशल और पराक्रम में कठ यूनानियों से दुर्बल प्रमाणित नहीं हुए। यदि सिकन्दर के कठिन समय में महाराज पुरू ने अपनी सेना लाकर उसकी रक्षा न की होती तो क्या वह जीवित यूनान जा सकता?तीस हजार मृत्यंजय कठ योद्धाओं के शवों पर पाँव रखता हुआ ही वह साकल में पाँव रख सका था। आचार्य। उस युद्ध–भूमि में मैं भी थी। चाहती थी कि मैं भी वीरगति पाऊँ किन्तु भविष्य की आशा ने मरने नहीं दिया। रक्त के घूँट पीती हुई मैं जी रही हूँ–इस आशा में कि एक दिन (तलवार की धार पर हाथ धरती हुई) अपनी शत्रु–रक्त की प्यासी असि को सिकन्दर के हृदय का रक्त पिलाऊँगी।"[6]

कणिका : "तब तो भारत के उद्धार की कोई आशा नहीं। यह अमावस्या की काल–रात्रि कभी प्रकाशमयी पूर्णिमा नही बनेगी।"[7]

कणिका : ". . .जैसी यह ऊषा लाल है वैसी ही यह पंचनद की भूमि भी लाल हो चुकी है– फिर भी क्या हम अपने भविष्य को समझने की बुद्धि नहीं पा सकें हैं?"[8]

चाणक्य : बेटी–निर्माण के गर्भ में विध्वंस जन्म लेने के लिए पोषण पाता है, उसे बाह्य आँख संभवतः नहीं देख पाती। भारत ने जो स्वर्ग देखा है वही इस नरक को लाया है।"[9]

चाणक्य : "(चन्द्रगुप्त से) .....लेकिन वह घायल सिंह है। प्रतिहिंसा की ज्वाला में उसका अंग–भंग सुलग रहा है। और भाग्य से मुझे यह बेटी मिल गई है जिसका ह्रदय भीतर ही भीतर प्रज्वलित ज्वालामुखी है।"[10]

शिवाजी : . . . मैं आदिलशाह के पैरों पर गिर कर पिता जी को बन्धन–मुक्त कराऊँगा।"[11]

जीजा : "देखो बेटा, यह ठीक है कि हिन्दू स्त्री के लिए पति ही लोक कर्तव्य स्वदेश–धर्म का पालना है।"[12]

बाप्पा : "कुटी में स्नेह–दीप जल सकता है।"[13]

पद्मा : "मैं तो राजमहल छोड़कर धूल में मरघट की ज्वाला में भी आसन लगाने को प्रस्तुत हूँ, किन्तु मैं चाहती हूँ कि मेरा प्रेमी धूल से ऊपर उठे, प्रचंड मार्तण्ड की भाँति प्रकाशित हो।"[14]

पदमा : लेकिन तुम्हें तो निश्चित रूप से अभाव, अकिंचनता, वैभवहीनता और प्रभुता–हीनता के तम–सागर को पार करके वैभव और सत्ता के आधार पर स्थित रत्नखचित स्वर्ण–मंदिर के उस कक्ष में पहुँचता है जिसमें तुम्हारी पद्मा अवस्थित है।"[15]

माला : "ओह महारानी जी। उन भयानक दिनों की याद क्यों दिलाती हों?उन दिनों की स्मृति मात्र से मेरा ह्रदय कांप उठता है। विस्मृति के अधेरे में उन घटनाओं को विलीन कर दीजिए।"[16]

कमलावती : संसार मेरा उजालापन नहीं देखेगा, माला। वह देखेगा मेरा काला दाग। एक भारतीय नारी, वह भी क्षत्राणी, तिस पर महारानी, विधर्मी और विदेशी के अंतःपुर में।"[17]

मौजीराम : "बस अर्थ। केवल अर्थ। आप तो सब जगह अर्थ–लाभ चाहते हैं। सुनिये पिता जी, मैं कह रहा था, नदियाँ अपना जल स्वयं नहीं पिया करतीं, वृक्ष अपने फल स्वयं नहीं खाते, बादल अपने लिए वर्षा नहीं करते, इसी प्रकार सत्पुरूषों की संपत्ति–ऐश्वर्य भी सर्वदा दूसरों के उपकार के लिए ही हुआ करती है।"[18]

श्रृंगारदेवी : "किन्तु विचारों का तारतम्य स्थिर रखने के लिए होश में रहना आवश्यक है।"[19]

रायमल : "तारतम्य स्वयं एक कृत्रिमता है। तुमने अरावली की पर्वत माला को देखा है, कैसी ऊँची–नीची है वे। कहीं खण्ड है, कहीं ऊँचे शिखर, कहीं सघन वन, तो कहीं सपाट चौगान, कितनी विषमता है उनमें और किसी प्रकार का नियम और तारतम्य नहीं है।"[20]

उपयुक्त उद्धरणों में दिये गये शब्दों के अतिरिक्त हरिकृष्ण 'प्रेमी' ने अपने नाट्य–साहित्य में और भी बहुत अधिक तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है। यथा–अखंड, अंग, अचंचल, अनंत, अनुग्रह, अनुराग, अप्रमेय, अन्दर, असुर, अक्षर, औषधि, उदित, उर, कोक, कोटिक, कपाट, जन्तु, जलचर, जीव, दान, दुष्ट, ध्यान, नीति, निधाना, पण्डित, प्रचण्ड, प्रतिदिन, पंथ, प्रिया, पल्लव, प्रश्न, वीर, विवेक, भुज, भुजदण्ड, भूप, भूषण, भय, मुख, मंजरी, मण्डल, मंदिर, मृदंग, मधुर, मन, मान, मनोहर, महा, महीप, रंग, रूप, राक्षस, ललना, वाक्य, वृन्द, विलाप, विष, वेष, विषम, संगति, सुंगन्ध, सुख, सुखद, सूत, सदा, सुन्दर, स्वरभंग, सुषमा, शत्रु आदि तत्सम् शब्दों का प्रयोग किया है।

तद्‌भव शब्द

हरिकृष्ण 'प्रेमी' के समस्त नाट्य–साहित्य में तद्‌भव शब्दावली का प्रयोग मिलता है। तद्‌भव शब्दों का प्रयोग करके प्रेमी जी ने अपने नाटकों की भाषा को व्याकरण सम्मत बनाया। यथा–आँखे, घर, सपना, सुन्दर, पानी, अवकाश, बाप, बेटा, आजु, कानन, किनारा, खुले, चक्कर, चाहिये, सिर, दर्द, महीने, माँ, जगति, झरोखे, झलनी, ठहराने, ढीली, त्यागि, दरद, नई, पुकारै, पाये, प्यास, मीत, साज, समझै, हाथ आदि।

इनमें से कुछ शब्दों के उदाहरण अग्रलिखित हैं।

यथा–

कृष्णा : (गीत) मैं उपवन की नवल कली।
अभी–अभी है आँखें खोली,
टूट पड़ी अलियों की टोली
गूंज उठी उनकी मृत्यु बोली,
मेरे मन को लगी भली।
मैं उपवन की नवल कली।"[21]

महारानी : "रमा, तेरे पिता जी तो घर पर नहीं होंगे।"[22]

राधा : "यह एक सुन्दर सपना है। जिन लोगों को रोटी–पानी के चक्कर से अवकाश नहीं है वे सामूहिक रूप से एक होकर खड़े हो सकेंगे यह असंभव बात है।"[23]

छत्रपाल : "इलाज। सम्राट राजपूत के पास सब रोगों की औषधि है, उसकी तलवार। जो न्याय का अपमान करता है, चाहे वह बाप हो, चाहे बेटा, इसे इसका वार सहना ही पड़ेगा।"[24]

लता : पिता जी। मेरे सिर में दर्द हो रहा है।"[25]

कला : छः महीने हो गए रजनीकान्त बाबू और अभी तक आप उसकी माँ का पता नहीं लगा सके। आखिर इसे तो माँ चाहिए ही।"[26]

देशज शब्द

हरिकृष्ण 'प्रेमी' के नाट्य साहित्य में देशज शब्दों का प्रयोग भी बहुलता में किया गया है। यथा–खेलता, खिलाड़ी, खेल, खड़ी, फाटक, घबराई, करूंगा, अमीर, मुट्ठीभर, आँगन, कपड़े, आँसू, मैले, नंगे, आँखे, टीका, थाल, अँगूठी, अंगीठी, कानि, क्वार, घुंघरू, घूटत, चटकीली, छल, ठगी, निहार, भाँति माँग, लपटै, दहाड़ता, मरोड़ दिया, गलियारा, पछाड़ खाना, घिसा हुआ आदि। हरिकृष्ण 'प्रेमी' ने उपर्युक्त शब्दों के अतिरिक्त अन्य बहुत से शब्दों को मूल अनुभूतियों में नाट्य–साहित्य में गतिमयता और मार्मिकता के साथ बिम्बित करने के उद्देश्य से शब्दों के संयोजन में विशेष सजगता का परिचय दिया है। यहाँ पर कुछ शब्दों के उदाहरण प्रस्तुत हैं। यथा–

रमाकान्त : "लेकिन, रजनीकान्त। विनोद अच्छा खिलाड़ी नहीं है। ईमानदारी का खेल नहीं खेलता। मैं एक ऐसे खिलाड़ी की तलाश में हूँ जो हारने पर भी बेईमानी न करे।"[27]

रजनीकान्त : "आप बैठिए तो सही–इस तरह घबराई हुई क्यों खड़ी है?"[28]

रजनीकान्त : "अप मुझे सम्पूर्ण परिस्थिति स्पष्ट बताइए– मुझसे आपके हित में जो भी संभव होगा, अवश्य करूँगा।"[29]

लता : आप बाहर का फाटक बन्द करवा दीजिए।"[30]

स्नेह : तो उसने ये साँप–बिच्छु क्यों बनाए, दूसरों को भूखा मारने वाले अमीर क्यों बनाए।"[31]

छाया : बेटी, लोक जब यह देखेंगे कि इतने बड़े साहित्य–सेवी और कलाकार की पत्नी और बच्चों को मुट्ठी–भर अन्न भी नहीं मिलता तो उन्हें दिल में तुम्हारे बाबू जी के प्रति अश्रद्धा होगी।"[32]

माया : 'धन्य भाग। आप आ गए। पाप के घर पुण्य आया, अंधकार के आँगन में प्रकाश आया।"[33]

राधा : "जब हमारे कपड़े मैले हो जाते है, हम दूसरे पहन लेते हैं, मैले उतार देते हैं।"[34]

माधव : लेकिन हमें नंगे होने का अधिकार तो नहीं है...।"[35]

सिकन्दर : "झूठ सरासर झूठ, नारी से मैं घृणा करता हूँ, ... अपने आँसू विजेता के बढत्रते हुए कदमों

में बिछाकर उसके मार्ग में पर्वत खड़े कर देती है।"[36]

"विमल दूज का दिन है आया,
रण के रंग में आँखे लाल,
करके आवें माँ के लाल,
हम टीका करने ले थाल,
आई, बन्धु सजा दे थाल।"[37]

उर्दू, फारसी शब्द

हरिकृष्ण 'प्रेमी' ने अपने नाट्य साहित्य में विदेशी शब्दों का प्रयोग खुलकर किया है। क्योंकि उनके अधिकांश नाटक ऐतिहासिक (मुगलकाल) है। उनमें उर्दू, फारसी, आदि शब्दों का प्रयोग स्वाभाविक हैं। यथा–मनसव, परदा, मुगलशाही, नौकरी, पुश्तैनी, बेशक, मगर, आसार, मदिरा, नशे, पैरवी, सुलतान, अफसोस, अज़दहा, क़ार, सत्ता, फर्ज, फर्जों, बे–खबर, जिंदगी, बेहोशी, कमजोरी, खामोश, बादशाह, आलिया, तौहीन, चॉय, चिराग, आसमान,, मुहब्बत, यकीन, इनसानियत, मुसकरा, कब्र, सल्तनत, हुक्म, रहम, बहिश्त, अजब, अरज, आखिर, कदम, खुदा, खूब, गजब, गुनाह, गम, गरीब, जवाब, जोर, जरूर, जहर, दरद, नग, पीर, बंदगी, फौज, बेगम, सलाम, हक्क, हुकुम, हुजूद आदि। इनमें से कुछ उद्धरण निम्नांकित दिये जा रहे हैं। यथा–

ज़ागीर : "लेकिन संतुष्ट रहूँ और यदि महत्वाकांक्षा नहीं मानती, पौरूष की परीक्षा लेने की इच्छा होती है, तो आदिशाही या मुगलशाही की नौकरी कर ऊँचे मनसब पाऊँ।"[38]

शिवाजी : भाइयों, भावी का परदा उठाकर किसने झाँका है?"[39]

गोपीनाथ : बेशक, तुम्हारे भाई ने पुश्तैनी धर्म को निभाया, और तुम भी निभा रहे हो।"[40]

मसीदखाँ : मगर आसार तो कुछ और ही दिखाई देते हैं।"[41]

सिकन्दर : (मदिरा का घूँट पीता है) तुम भी भरो अपना पात्र ताया। दोनों को समान नशे में होना चाहिए।"[42]

कमलावती : "कहीं सुलतान ने ही तो आपको सिखाकर अपनी तरफ पैरवी करने नहीं भेजा।"[43]

माहरू : ". . . . और एक अज़दहा मुझे भी सुलतान को भी–मेरे बेटों को भी निगल जाने के लिए मुँह खोल रहा है। अफ़सोस यही है कि सुलतान उसकी तरफ से अंधे हैं।"[44]

काफूर : काफ़र यदि विदेशी सत्ता के साथ है तो उसका अपराध उन व्यक्तियों के अपराध की अपेक्षा हल्का है।"[45]

आदमखान : "खामोश, तुम बादशाह आलिया की तौहीन करते हो।"[46]

तातारखाँ : कहाँ आसमान का चाँद और कहाँ झोपड़ी का चिराग।"[47]

आदमखान : "जो प्यार करता है वह अपने प्रेमी को अपना पालतू पंछी नहीं बनाता। वह उसे रात–दिन शराब और संगीत के नशे में मस्त रखकर......... आता है– बेहोशी, नादानी और कमजोरी बनकर नहीं आता।"[48]

हुमायूँ : ऐसा न कहो तातारखाँ। मुहब्बत और यकीन पर ही तो आसमान के तारे टिके हुए हैं इनसानियत के भरोसे पर ही वे अपनी जिंदगी मुसकरा रहे हैं।"[49]

हिन्दू बेग : बहादुरशाह को ही देखिए, एक भाई को कब्र में पहुँ चा कर दूसरे पर तलवार ताने खड़ा है।"[50]

हुमायूँ : ". . . बेटा हुमायूँ, अपने भाईयों पर रहम करना। अब तू ही इनका बाप है।" मेरे अब्बाजान–वे अब्बाजान, जिन्होंने मेरी मौत खुदा से अपने लिए मांग ली–उनका हुक्म मेरे लिए बहिश्त ही

सल्तनत से बढ़ कर है।"[51]

प्रेमी जी की शब्दा योजना बहुवर्णा एवं बहु प्रस्तीर्णा हैं उनके समस्त शब्द भंडार का विभाजन विश्लेषण तो यहाँ संभव नहीं है तथापि उक्त उदाहरणों के पश्चात् निसंदेह कह सकते हैं कि उन्होंने अपनी शब्द योजना के माध्यम से इतिहास, प्रकृति, संस्कृति समाज और कला विषयक अपनी रूचियों को सार्वभौमिक कर अपनी रचनात्मक क्षमता का परिचय देकर हिन्दी भाषा के सौन्दर्य सामर्थ्य में वृद्धि की है।

सन्दर्भ संकेत

1. दिनकर, पंत–प्रसाद और मैथिलीशरण गुप्त, पृ0 71
2. हरिकृष्ण 'प्रेमी', शिवा–साधना, रवीन्द्र प्रकाशन, ग्वालियर, पृ0 21
3. हरिकृष्ण 'प्रेमी' प्रकाश–स्तम्भ, आर्य बुक डिपो, करोल बाग, नई दिल्ली, पृ09
4. हरिकृष्ण 'प्रेमी', स्वप्न–भंग, आत्माराम एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, पृ0 11
5. हरिकृष्ण 'प्रेमी', अमृत–पुत्री, ज्ञान भारती, रूप नगर, दिल्ली, पृ0 6–7
6. हरिकृष्ण 'प्रेमी', अमृत–पुत्री, ज्ञान भारती, रूप नगर, दिल्ली, पृ0–9
7. हरिकृष्ण 'प्रेमी, अमृत–पुत्री, ज्ञान भारती, रूप नगर, दिल्ली, पृ0–11
8. हरिकृष्ण 'प्रेमी', अमृत–पुत्री, ज्ञान भारती, रूप नगर, दिल्ली, पृ0–11
9. हरिकृष्ण 'प्रेमी', अमृत–पुत्री, ज्ञान भारती, रूप नगर, दिल्ली, पृ0–12
10. हरिकृष्ण 'प्रेमी', अमृत–पुत्री, ज्ञान भारती, रूप नगर, दिल्ली, पृ0–13
11. हरिकृष्ण 'प्रेमी', शिवा–साधना, रवीन्द्र प्रकाशन, ग्वालियर, पृ0–33
12. हरिकृष्ण 'प्रेमी', रवीन्द्र प्रकाशन, ग्वालियर, पृ0–13
13. हरिकृष्ण 'प्रेमी', प्रकाश–स्तम्भ, आर्य बुक डिपो, करोल बाग, नई दिल्ली, पृ0–9
14. हरिकृष्ण 'प्रेमी', प्रकाश–स्तम्भ,आर्य बुक डिपो, करोल बाग, नई दिल्ली, पृ0–10
15. हरिकृष्ण 'प्रेमी', प्रकाश–स्तम्भ, आर्य बुक डिपो, करोल बाग, नई दिल्ली, पृ0–11
16. हरिकृष्ण 'प्रेमी', सांपों की दृष्टि, अंसल एण्ड कं0, दरियागंज, दिल्ली, पृ0–10
17. हरिकृष्ण 'प्रेमी',सांपों की दृष्टि, अंसल एण्ड कं0, दरियागंज, दिल्ल पृ0–11
18. हरिकृष्ण 'प्रेमी', रक्षा–बंधन, हिन्दी भवन, रानी मण्डी, इलाहाबाद, पृ0–38
19. हरिकृष्ण 'प्रेमी', कीर्ति–स्तम्भ, आत्माराम एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली,पृ0–41
20. हरिकृष्ण 'प्रेमी', कीर्ति–स्तम्भ, आत्माराम एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली,पृ0–41
21. हरिकृष्ण 'प्रेमी', विषपान, आत्माराम एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, पृ0–1
22. हरिकृष्ण 'प्रेमी', विषपान, आत्माराम एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, पृ0–13
23. हरिकृष्ण 'प्रेमी', विषपान, आत्माराम एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, पृ0–37
24. हरिकृष्ण 'प्रेमी', , स्वप्न–भंग, आत्माराम एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली,पृ0–42
25. हरिकृष्ण 'प्रेमी',ममता, आर्य बुक डिपो, करोल, बाग, नई दिल्ली, पृ0–22
26. हरिकृष्ण 'प्रेमी', ममता, आर्य बुक डिपो, करोल, बाग, नई दिल्ली, पृ0–69
27. हरिकृष्ण 'प्रेमी', ममता, आर्य बुक डिपो, करोल, बाग, नई दिल्ली, पृ0–21
28. हरिकृष्ण 'प्रेमी', ममता, आर्य बुक डिपो, करोल, बाग, नई दिल्ली, पृ0–29
29. हरिकृष्ण 'प्रेमी', ममता, आर्य बुक डिपो, करोल, बाग, नई दिल्ली, पृ0–29
30. हरिकृष्ण 'प्रेमी', ममता, आर्य बुक डिपो, करोल, बाग, नई दिल्ली, पृ0–29

31. हरिकृष्ण 'प्रेमी', छाया, आत्माराम एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, पृ0—26
32. हरिकृष्ण 'प्रेमी', छाया, आत्माराम एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, पृ0—26
33. हरिकृष्ण 'प्रेमी', छाया, आत्माराम एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, पृ0—44
34. हरिकृष्ण 'प्रेमी', सेवा मंदिर, आत्माराम एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, पृ0—10
35. हरिकृष्ण 'प्रेमी', सेवा मंदिर, आत्माराम एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, पृ0—10
36. हरिकृष्ण 'प्रेमी', अमृत—पुत्री, ज्ञान भारती,रूप नगर, दिल्ली, पृ0—99
37. हरिकृष्ण 'प्रेमी', आहुति, आत्माराम एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, पृ0—15
38. हरिकृष्ण 'प्रेमी', शिवा—साधना, रवीन्द्र प्रकाशन, ग्वालियर, पृ0—18
39. हरिकृष्ण 'प्रेमी', शिवा—साधना, रवीन्द्र प्रकाशन, ग्वालिय, पृ0—18
40. हरिकृष्ण 'प्रेमी', शिवा—साधना, रवीन्द्र प्रकाशन, ग्वालियर, पृ0—53
41. हरिकृष्ण 'प्रेमी', शिवा—साधना, रवीन्द्र प्रकाशन, ग्वालियर, पृ0—104
42. हरिकृष्ण 'प्रेमी', अमृत—पुत्री, ज्ञान भारती, रूप नगर, दिल्ली, पृ0—98
43. हरिकृष्ण 'प्रेमी', सांपो की दृष्टि, अंसल एण्ड कं0, दरियागंज, दिल्ली, पृ0—30
44. हरिकृष्ण 'प्रेमी', सांपो की दृष्टि, अंसल एण्ड कं0, दरियागंज, दिल्ली, पृ0—31
45. हरिकृष्ण 'प्रेमी', सांपो की दृष्टि, अंसल एण्ड कं0, दरियागंज, दिल्ली, पृ0—41
46. हरिकृष्ण 'प्रेमी', बादलों के पार, रूप—शिखा, आत्माराम एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, पृ0—93
47. हरिकृष्ण 'प्रेमी', रक्षा—बंधन, हिन्दी भवन, रानी मण्डी, इलाहाबाद, पृ0—93
48. हरिकृष्ण 'प्रेमी', बादलों के पार (रूप—शिखा), आत्माराम एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, पृ0—93
49. हरिकृष्ण 'प्रेमी', रक्षा—बंधन, हिन्दी भवन, रानी मण्डी, इलाहाबाद, पृ0—43—44
50. हरिकृष्ण 'प्रेमी', रक्षा—बंधन, हिन्दी भवन, रानी मण्डी, इलाहाबाद, पृ0—44
51. हरिकृष्ण 'प्रेमी', रक्षा—बंधन, हिन्दी भवन, रानी मण्डी, इलाहाबाद, पृ0—45

❑❑

भीष्म साहनी के नाटकों में सामाजिक मूल्यबोध

गिरजेश कुमार
शोध छात्र – हिन्दी विभाग
राजस्थान केंद्रीय विश्वविद्यालय, राजस्थान

रावलपिंडी पाकिस्तान में जन्मे भीष्म साहनी; 8 अगस्त 1915–11 जुलाई 2003 आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रमुख स्तंभों में से थे। 1937 में लाहौर गवर्नमेन्ट कॉलेज, लाहौर से अंग्रेजी साहित्य में एम ए करने के बाद साहनी ने 1945 में पंजाब विश्वविद्यालय से पी–एच.डी. की उपाधि हासिल की। भारत पाकिस्तान विभाजन के पूर्व अवैतनिक शिक्षक होने के साथ–साथ ये व्यापार भी करते थे। विभाजन के बाद उन्होंने भारत आकर समाचारपत्रों में लिखने का काम किया। बाद में भारतीय जन नाट्य संघ ;इप्टा से जा मिले। इसके पश्चात अंबाला और अमृतसर में भी अध्यापक रहने के बाद दिल्ली विश्वविद्यालय में साहित्य के प्रोफेसर बने। 1957 से 1963 तक मास्को में विदेशी भाषा प्रकाशन गृह ;फॉरेन लॅग्वेजेस पब्लिकेशन हाउस में अनुवादक के काम में कार्यरत रहे। यहाँ उन्होंने करीब दो दर्जन रूसी किताबें जैसे टालस्टॉय आस्ट्रोवस्की इत्यादि लेखकों की किताबों का हिंदी में रूपांतर किया। 1965 से 1967 तक दो सालों में उन्होंने नयी कहानियाँ नामक पत्रिका का सम्पादन किया। वे प्रगतिशील लेखक संघ और एफ्रो–एशियन लेखक संघ से भी जुड़े रहे। 1993 से 97 तक वे साहित्य अकादमी के कार्यकारी समिति के सदस्य रहे।

भीष्म साहनी को हिन्दी साहित्य में प्रेमचंद की परंपरा का अग्रणी लेखक माना जाता है।[;1द्व] वे मानवीय मूल्यों के लिए हिमायती रहे और और उन्होंने विचारधारा को अपने ऊपर कभी हावी नहीं होने दिया। वामपंथी विचारध ारा के साथ जुड़े होने के साथ–साथ वे मानवीय मूल्यों को कभी आंखों से ओझल नहीं कराते थे। आपाधापी और उठापटक के युग में भीष्म साहनी का व्यक्तित्व बिल्कुल अलग था। उन्हें उनके लेखन के लिए तो स्मरण किया ही जाएगा लेकिन अपनी सहृदयता के लिए वे चिरस्मरणीय रहेंगे। भीष्म साहनी हिन्दी फिल्मों के जाने माने अभिनेता बलराज साहनी के छोटे भाई थे। उन्हें 1975 में तमस के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार, 1975 में शिरोमणि लेखक अवार्ड (पंजाब सरकार) 1980 में एफ्रो एशियन राइटर्स एसोसिएशन का लोटस अवार्ड, 1983 में सोवियत लैंड नेहरू अवार्ड तथा 1998 में भारत सरकार के पद्मभूषण अलंकरण से विभूषित किया गया। उनके उपन्यास तसम पर 1986 में एक फिल्म का निर्माण भी किया गया था।

भीष्म जी के छः नाटक है हानूश, कबिरा खड़ा बाजार में, माधवी, मुआवजे, रंगबसंती और आलमगीर। इन नाटको का ताना बाना भीष्म जी ने लोक कथा, इतिहास और समसामयिक यथार्थ से सामग्री लेकर चुना। उनका पहला नाटक 'हानूश' 1977 में प्रकाशित हुआ। भीषम जी ने स्वयं कहा यह नाटक एतिहासिक नाटक नहीं है। न ही इसका अभिप्राय घड़ियों के अविष्कार की कहानी कहना है। कथानक के दो एक तथ्यों को छोड़कर लगभग सभी कुछ ही काल्पनिक है। नाटक मानवीय स्थिति को मध्ययुगीन परिप्रेक्ष्य में दिखने का प्रभाव मात्र है। 'हानूश' की दुर्घटना एक व्यक्तिगत दुर्घटना नहीं थी यह एक सामाजिक विड़म्बना है। 'कबिरा खड़ा बाजार में' (1981) हमें सत्य और न्याय के लिए शोषण और उत्पीड़न के खिलाफ लड़ने की शक्ति देता है और इसीलिए आज भी हमसे सार्थक रूप से जुड़ा हुआ है। कबीर की वाणी आज भी हमारें चारों ओर फैली हुई है, समय और परिस्थिति में। साहनी जी को उसमें कबीर का ही समय नहीं आज का समय भी ध्वनित होता महसूस हुआ और उन्होंने इस कालजयी कृति का निर्माण किया। निश्चित रूप से अगर भीष्म साहनी के समूचे नाट्य लेखन पर प्रकाश डालें तो

यह बात स्पष्ट हो जाती है की भीष्म जी एक सफल नाटककार के रूप में रंगमंचीय दुनिया में उभरते हैं। भीष्म जी के हर नाटक में उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता उभरकर आई है यह प्रतिबद्धता नाटक पर थोपी हुई नहीं लगती है।

मानवीय जिजीविषा का शानदार उत्सव मनाने वाले इस बड़ी रचना का फलक हमें अपनी जमीन और सांस्कृतिक धरोहर को पहचानने की शक्ति और प्रेरणा देता है। भीष्म जी के रचनात्मक व्यक्तित्व को देखते हुए इनके साहित्य का अध्ययन साहित्य की सामाजिक सार्थकता सिद्ध करता है।

नाटक की समाज शास्त्रीय समीक्षा में इस तथ्य को ध्यान में रखना होगा कि कोई नाटक किसी समस्या के प्रति सामाजिकता को किस सीमा तक सचेत, जाग्रत और क्रियाशील करता है, उसमें विश्लेषण और तटस्थ समीक्षा का विवेक पैसा करता है। समाजशास्त्रीय रेखांकित करता है कि नाटक ने व्यक्ति के सामाजीकरण, आत्म एवं उसकी अभिवृत्तियों के विकास और उसके सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों को किस प्रकार प्रभावित किया? वर्ग संगठन, वर्ग चेतना एवं वर्ग संघर्ष में उसका क्या योगदान हो सकता है? समाज के संगठन एवं व्यवस्था में उसके पड़ने वाले प्रभाव का विश्लेषण, सामाजिक संबंधों पर पड़ने वाले प्रभावों एवं उसके परिणामों का विवेचन करना, समाज व्यवस्था के नियमन, परिवर्तन एवं निर्माण में उस नाटक के योगदान का मूल्यांकन करना, सब बातें सामाजिक मूल्यों को दर्शाती हैं। भीष्म साहनी के नाटकों की समीक्षा एवं मूल्यांकन करने से पता चलता है कि उनके नाटकों में समाज के सारे तत्व हैं जो मानव जीवन के लिए एक आदर्श विषय के रूप में होता है। सामाजिक मूल्य बोध के कारण ही उनके नाटक अति प्रसिद्धी पाये हैं।

भीष्म साहनी जी ने एक जगह कहा है 'आज की सामाजिक और आर्थिक स्थिति के प्रति सचेत रहते हुए लेखक जितना अधिक जनजीवन से जुड़ पायेगा, उस जीवन की धड़कन को महसूस कर पयेगा, उतना ही उसके रचनाओं में सार्थकता आ पायेगी। जब जीवन की बिसंगतियाँ एक तड़प बनकर, लेखक के समूचे व्यक्तित्व को झकझोरती हुई, रचनाओं में उतरती है तो उनमें सच्चाई होती है, जिंदगी की तस्वीर सही होती है संघर्षरत मानव का चित्रण प्रेरणापद होता है। पर जहाँ वे मात्र बौद्धिक विश्वास और सिद्धांत के सहारे रचनाओं में आती है वहाँ नारेबाजी होती है, थोथा साहित्य पैदा करती है....साहित्य रचना एक सामाजिक क्रिया है उसका समाज में एक रोल है। भीष्म साहनी का कलाकार जिस दृष्टिकोण से जीवन समाज और उनके विभिन्न अंग प्रत्यंगों को देखता है तो उन्हें उसी रूप में जनता के समक्ष प्रस्तुत करता है। भीष्म जी के अपनें सिद्धांत और मान्यताएँ हैं वे समाज में क्रांति लाकर इसे नवीन रूप देना चाहते हैं। इनका जीवन दर्शन एवं सामाजिक मूल्यबोध मुख्यतः मार्क्सवाद और विभाजन के बाद की परिस्थितियों से प्रभावित है। उनके नाटकों में प्राचीन मूल्यों का अंत और नवीन मूल्यों का निर्माण होता है।

सन्दर्भ संकेत

1. Internet
2. सम्पूर्ण नाटक – भीष्म साहनी – सम्पादक कल्पना साहनी राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

❑❑

37

सामाजिक परिप्रेक्ष्य में लघुकथाओं का वैशिष्ट्य

डॉ0 अलका द्विवेदी
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
जुहारी देवी गर्ल्स पी.जी. कालेज, कानपुर

डॉ0 रानी अग्रवाल
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
जुहारी देवी गर्ल्स पी.जी. कालेज, कानपुर

"लघुकथा" अपने वर्तमान रूप में नव्यतर एवं आधुनिक विधा है । प्राचीन काल की छोटी कथाओं से इसका स्वरूप एवं शिल्प बिल्कुल भिन्न है । अनेक मोड़ों से गुजरने के उपरान्त यह अपने वर्तमान स्वरूप को प्राप्त हुई है । लघुकथा को परिभाषित करना कठिन कार्य है । पारिभाषिक शब्द कोशों में लघुकथा की परिभाषा का अभाव इस बात का सशक्त प्रमाण है कि लघुकथा हिन्दी–गघ–साहित्य की एक नवीन विधा है । प्राचीन बोध–कथाओं, नीति–कथाओं, जातक–कथाओं, पंचतंत्र–हितोपदेश आदि की कथाओं से यह नितान्त भिन्न है । हिन्दी साहित्य कोश में लधुकथा को इस प्रकार परिभाषित किया गया है – "सम्भवतः लघुकथा शब्द अंग्रेजी के श्शार्ट स्टोरीश शब्द का सीधा अनुवाद है । वैसे कहानी शब्द भी अंग्रेजी के शार्ट स्टोरी के लिए है । इस प्रकार लघुकथा और कहानी में तात्विक दृष्टि से कोई अंतर नहीं दीख पड़ता । व्यावहारिक दृष्टि से श्लघुकथाश कहानी के छोटे रूप (शार्ट स्टोरी) से अपना तात्पर्य रखती है । पर यह कहना कि लघुकथा लम्बी कथा का सार रूप है, नितान्त भ्रमोत्पादक है ।"[1]

विद्धानों द्वारा प्रदन्त परिभाषाओं के अन्तर्गत हम सर्वप्रथम डॉ0 ओमानन्द सारस्वत का मत प्रस्तुत करना चाहेंगे – "इस विधा को मात्र चौंकाने, गुदगुदाने, स्तब्ध करने या मनोरंजन देने तक ही सीमित करना एकांगी दृष्टिकोण है, इसमें ध्वन्यात्मकता या सांकेतिकता या व्यंग्यतीव्रता आदि के माध्यम से चेतना को हिलाकर सोचने को मजबूर करने की प्रक्रिया भी निहित है ।"[2] श्री विष्णु प्रभाकर जी का मानना है कि "इसकी शक्ति के पीछे सामाजिक परिवर्तन की पूरी प्रक्रिया है । यह अन्य विधाओं की तरह जीवन के यथार्थ को अंकित करती है और जीवन की आलोचना भी करती है – सूत्र–रूप में जीवन की व्याख्या करती है ।"[3]

डॉ0 सतीश दुबे का अभिमत है कि "लघुकथा मानव–मन की अभिव्यक्ति को कुछ शब्दों में प्रभावशाली ढंग से कह डालने वाली सशक्त विधा है । इसकी मारक शक्ति इतनी तेज तथा संवेदना के तन्तुओं को प्रभावित करने वाले तत्व इतने शक्तिशाली होते है कि उनका प्रभाव अभूतपूर्व होता है ।"[4]

डॉ0 शंकर पुणताम्बेकर लघुकथा की परिभाषा इस प्रकार करते है – "लघुकथा आकार में लघु किन्तु अपनी गहन अर्थगर्भी शैली के द्वारा समाज–व्यवस्था के व्यापक सन्दर्भो से जुड़ी ऐसी कथा है जिसकी सघन संवेदना चेतना को एकदम स्पंदित कर देती हे ।"[5]

डॉ0 कृष्ण कमलेश के मतानुसार – "लघुकथा एक सुगठित विधा है । सामान्यतः यह सीधी पैनी ओर कंडेस्ड होती है .... इसकी सार्थकता इसके विचार सम्प्रेषण में निहित है ।"[6]

कुलदीप जैन का कथन है, "लघुकथा क्षणिक आवेश एवं संवेग की चुस्त–दुरूस्त एक ऐसी लघु आकारीय कथा–सृजन है जो समाज में व्याप्त विसंगतियों की ओर न मात्र ध्यान आकर्षित करती है बल्कि पाठक के मन–मस्तिष्क में उसके समाधान हेतु एक छटपटाहट उत्पन्न कर देती है ।"[7]

निष्कर्षतः "वह लघुआकारीय गद्य–कथात्मक रचना जो आधुनिक मानव–जीवन में व्याप्त किसी विसंगति को व्यंग्यात्मक मुद्रा में प्रस्तुत कर पाठक को झकझोर कर रख दे, लघुकथा होगी ।"[8]

आज हमारा समाज कतिपय ऐसी विसंगतियों से भर गया है – उद्योगपतियों के काले कारनामें, पुलिस व

प्रशासक की निर्बाध अधिकार–भावना, राजनैतिक क्षेत्र के हथकण्डे जीवन की ऐसी सच्चाइयाँ हैं जिन्होंने विवेकशील प्राणीको जड़वत् कर दिया । ऐसी ही अनेक सच्चाइयों ने लघुकथा को जन्म दिया है "तंग वक्त, अधिक जरूरत और सतही विचारों ने जन्मा है लघुकथाओं को .... यह उस नंगी असलियत को बेपर्दा करती है, जिसे लोग अक्सर नजरअन्दाज कर देते हैं ।"[9]

सुनील कौशिक की ''जवाब'' में उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ में नवाब अपनी वाहवाही के लिये जाली सिक्के वनवाकर खुले हाथ से गरीबों में बॉटकर ''दानवीर'' का श्रेय लेता है । वजीर के गम्भीरतापूर्वक सचेत करने पर कहता है "तो इसमें फिक्र किस बात की है मुहर तो मेरे ही नाम की है न। तुम जाओं, अपना काम करों।"[10] यह लघुकथा उन उद्योगपतियों पर तीखा प्रहार करती है जो अपनी झूठी वाहवाही के लिये इसी प्रकार के हथकण्डे अपनाते हैं ।

देश बहुत गरीब है – स.रा. धरणीधर की लघुकथा कलेक्टर के भ्रष्ट होने की पोल खोलती है जो बराबर यह कहता रहता है कि देश बहुत गरीब है लेकिन रिश्वत लेने में कोई कसर नहीं छोड़ता । एक सूटकेस और होलडाल थामें जो शहर में पहली नियुक्ति पर आया था आज तबादला होने पर लोगों ने देखा – "इंतहा सामान से लदे ट्रक, जीपें और स्टेशन वैगनें कम्पाउंड से निकलकर अंधकार में गायब हो गई ।"[11]

शरन मक्कड़ की लघुकथा ''समाजवाद का अर्थ'' – समाजवाद पर करारा व्यंग्य करती है "मूर्ख समाजवाद दूसरों के लिये होता है । भाषण देने के लिये होता है, अपने लिये नहीं । ...... जिसका मतलब है, केवल अपने हितों की ओर देखो । हमारे हिसाब से यही समाजवाद का अर्थ है।"[12]

झूठे वादे करके भ्रष्ट उम्मीदवारों का जनता से वोट मॉगना और बाद में ठेंगा दिखाना – इस हकीकत को लेखक ने ''हरा चश्मा'' में बखूबी व्यक्त है किया – "मुझे तो जी सचमुच ऐसा लगता है कि जैसे हम लोकतन्त्री गाय हैं। वे हमारी आँखों पर उम्मीदों का हरा चश्मा लगाकर हमसे वोट ले जाते है और हम सूखे को हरियाली समझ लेते हैं।"[13]

महेश दर्पण की मतदान लघुकथा में लेखक ने राधे बाबू के माध्यम से उस व्यक्ति की पीड़ा को उजागर किया है जिसकों मतदान केन्द्र जाकर पता चलता है कि उसका वोट किसी अन्य ने डालकर उसके साथ धोखा किया है । प्रजातंत्र खतरे में (सुरेख उनियाल) ।[14] में भी प्रजातंत्र पर छाये खतरे को टालने के लिये बूथों पर कब्जा करके नकली वोट डलवाने और जरूरत पड़ने पर दो–चार की पिटाई करने को बेहतर उपाय बताया गया है। लेखक ''परिवर्तन'' में सोचने को विवश हो जाता है – "फ्रांस की क्रान्ति के समय में और आज में केवल इतना ही परिवर्तन हुआ है कि सत्ता आज अधिक चालाक हो गयी है और जनता अधिक मूर्ख।"[15]

इच्छा (यादवेन्द्र शर्मा ''चन्द्र'') में एक औरत का कथन आज के नेताओं पर कितना सटीक व्यंग्य करता है – "मैं अपने बेटे को नेता बनाऊॅगी, क्योंकि उसके लिये किसी क्वालिफिकेशन की जरूरत नहीं है। सिर्फ लफ्फाजी, आश्वासन देने का खुलापन और झूठ बोलना आना चाहियें।"[16]

समकालीन लघु कथालेखन न केवल सामान्य व्यक्ति की संघर्ष–चेतना को साथ लेकर चलता है, अपितु उस संघर्ष को जन्म देने वाली परिस्थितियों तथा उन मुखौटों को भी बेनकाब करता है । ''चलित न्यायालय'' के माध्यम से स.रा. धरणीधर ने न्यायालयों में लंबित पड़े मामलों और अदालतों की कार्यवाहीं पर तीखा प्रहार किया है। मुद्दतों इन्तजार के उपरान्त भी न्याय के आश्वासन का किसी ठोस व सही निर्णय में तबदील न हो पाना – अदालतों की कार्यप्रणाली की सच्ची तस्वीर प्रस्तुत करता है, यही वास्तविकता है।

आधुनिक लघुकथा की विशेषता है कि वह जीवन के यथार्थ का चित्रण करती है, जिन्दगी के कटु सत्यों से साक्षात्कार करवाती है। आज हमारा समाज कितना भी शिक्षित क्यों न हो गया हो, जातिगतभेदभाव जस का तस बना हुआ है । सुरेश उनियाल की ''रोटी का टुकड़ा'' में बच्चे का भोला कथन इसी भाव को अभिव्यक्त कर

रहा है – "मॉ, एक टुकड़ा उनके घर का खाकर क्या मैं भंगी हो गया ...... और जो काकू भंगी हमारे घर में पिछले दस सालों से रोटी खा रहा है तो वो क्यों नहीं बामन हो गया"[17]

एक सच्चा शहीद जो अपने देश के लिये मादक सपनों से भरा यौवन वार देता है उसकी समाधि उपेक्षित पड़ी रहती है, जहाँ हरदम मेला लगा रहना चाहिये । इस समाज में सच्चें त्याग की कोई कद्र नहीं । झूठ, फरेब का चारों ओर बोलबाला है । नौकरी के लिये इन्टरव्यू तक में औपचारिकता के नाम पर सिफारिश व भाव तय होते हैं । नरेन्द्र मौर्य की ''औपचारिकता'' में – "पहले तमाम औपचारिकताएं पूरी कीजिए । वे बिना किसी ह्रासमेंट के आपको शर्मा जी का नियुक्ति–पत्र बना देंगे ।"[18]

डॉ0 पुष्पा बंसल के कथनानुसार – "The Sense of hurt, the sense of horror and of course the stata of utter hopelessness this word is being projected in Laghu - Katha dressed in the game of and event, an episode."[19]

लघुकथा न ही उपदेश देती है और न ही इसमें आदर्श को स्थान दिया जाता है, इसमें तो मानव–जीवन की उन विसंगतियों का यथार्थ चित्रण होता है जो निराशा, हताशा तथा विवशता बोध कराती है । एक गरीब किसान कैसे पीढ़ी दर पीढ़ी अशिक्षित रहने की त्रासदी झेलता है इसका एक उदाहरण अशोक भाटिया की लघुकथा 'पीढ़ी दर पीढ़ी' में दृष्टव्य है–"उसके पिता ने उसको पढ़ाया नहीं था उसने सोचा मैं अपने बच्चे को जरूर पढ़ाऊँगा । उसने अपने बच्चे को स्कूल में प्रवेश दिलाया । ...... तीसरे दिन फीस न भरने पर उसका नाम काट दिया गया । वह बच्चा फिर कभी स्कूल नहीं गया । जब वह बड़ा हुआ तो उसने सोचा, मैं अपने बच्चों को जरूर पढ़ाऊँगा"[20]

गरीबी का चित्र अशोक भाटिया की 'व्यथा–कथा' में कितना सटीक बन पड़ा है । नगरनिगम के स्कूल में इंस्पेक्टर मुआयने के दौरान बच्चों से यह प्रश्न करता है कि सर्दियों में हमें कैसे कपड़े पहनने चाहिये तो एक बच्चा जवाब देता है – "जी, सर्दियों में फटें हुए कपड़े पहनते हैं। .... मेरी माँ ने बताया है जी !........ वो कहती हैं कि सर्दियों में फटे हुए कपड़े स्वेटर के नीचे छिप जाते हैं।"[21]

यह हमारे समाज में व्याप्त गरीबी का दंश है जो साठ प्रतिशत गरीब जनता झेलने को विवश है । गरीबी–अमीरी की यह असमानता कब और कैसे समाप्त होगी, इस पर हमें विचार करना चाहिये । इसी प्रकार दोस्तों से मिलने वाली निराशा ('विदाई' –सुरेश उनियाल), पुलिस का उत्पीड़न (दुकान – सुरेश उनियाल), अपनी शर्म और हया बेचने को मजबूर माँ ('औरत का गहना' घनश्याम अग्रवाल), बेईमान थानाध्यक्ष का आजादी के नाम पर जश्न मनाना ('जश्न–ए–आजादी' – हरीश नवल), आज के पढ़े लिखें बच्चों का पिता को बेवकूफ बनाकर प्रेम विवाह को राजी करना ('तर्क' – नरेन्द्र कोहली) – ये लघुकथायें पीड़ा, अपमान, दासता, थकान और खीझ को व्यक्त करती है । इसी कड़ी में मधुदीप की ऐलान–ए–बगावत – बॉस के अत्याचार व कर्मचारी की त्रासदी व घुटन को बखूबी बयॉ करती है । आज समाज में इस रिश्ते की त्रासदी आसानी से देखी जा सकती है । आज के युग में हर एक व्यक्ति दूसरे को धोखा देकर अपने को चतुर समझता है । श्यामनंदन खत्री की लघुकथा 'आज का युग' इसी चतुराई पर करारा व्यंग्य करती है – "हंसुली लेकर बुढ़िया चली तो सोचा मन में 'कैसा मूर्ख आदमी है यह' और उधर ठठेरा सोच रहा था, श्जरूर बुढ़िया को कम सूझता होगा ।श पर आज का युग कुछ ऐसा ही नहीं है क्या?"[22]

नरेन्द्र मौर्या की लघुकथा 'मद्यनिषेध' में प्रदेश के मघ निषेध विभाग का अध्यक्ष एक सभा में महापान की हजारों बुराइयॉ और शरीर पर उसके दुष्प्रभावों को अकाट्य तर्क के माध्यम से समझाता है और स्वयं अकेले में उसका सेवन करता है और कहता है–"मैं केवल इसलिये लेता हूॅ कि इसकी बुराइयों को भीतर तक जान लूॅ .. .. समाज की खातिर मैंने अपने जीवन को इस दारू की भट्ठी में झोंक दिया है । यह मेरा कितना त्याग है ।"[23]

समाजसुधार के नाम पर यह है घोर भ्रष्टाचार का नमूना । धर्म के नाम पर आज समाज में घोर अत्याचार हो रहे है । लघुकथाओं में इस त्रासदी पर करारे व्यंग्य किये गये है । ज्ञानप्रकाश विवेक की 'धर्म की रक्षा' में

बूट–पॉलिश करने वाला रामू कैसे धर्म की रक्षा के नाम पर बलि चढ़ता है – "हिन्दुओं ने समझा, वह मुसलमान है और मुसलमानों ने समझा कि वह हिन्दू है । दोनों सम्प्रदायों के लोगों ने यह तय किया कि उस लड़के को खत्म करना ही उनके धर्म की रक्षा है । .... मासूम बालक पर दोनों ओर से पथराव होने लगा । .... दूर मंदिर चुप खड़ा था और मस्जिद शांत थी ।"[24] वहीं यदुनाथदास महापात्र 'विष' के माध्यम से संदेश देते हे – "मनुष्य जाति की बरबादी से रक्षा के लिये यह आज अत्यंत आवश्यक है ।.......मनुष्य विषमुक्त हो, अमृत संतान हों । भगवान, गॉड, खुदा के बीच किसी भी तरह का फर्क न हो । बस, यही कामना है ।"[25]

हिन्दी में नव–प्रतिष्ठित यह विधा 'लघुकथा' तेज और तल्ख है, चोट कर सकती है और प्रभावित भी । इसमें जीवन की धड़कन के स्वर गुंजायमान होते है । आज मनुष्य का मनुष्य के प्रति इतना अविश्वास बढ़ गया है कि वह सच को झूठ ही मानने पर अड़िग रहता है । चित्रा मुद्‌गल की 'पहचान' में महिला का पर्स चोरी हो जाने पर टिकट चेकर का अविश्वास इन शब्दों से प्रकट होता है – "चरका देने की कोशिश मत कीजिए ।........ आप जैसी अपटुडेट लड़कियों के चोंचलों से मैं खूब वाकिफ हूँ । चार सौ रूपये की साड़ी लपेटे, मॉग भरे, लोगों की जेबें काटती फिरती है .... तस्करी करती है ....।" एक भले व्यक्ति द्वारा जुर्माना भरकर उसकी सहायता करने पर भी जुमला उछाला गया – "अरे, दल चलता है इनका .... एक पकड़ा जाये तो दूसरा छुड़वा लेता है ।"[26]

दहेज की प्रथा हमारे समाज का अभिशाप है । ऐसे सामाजिक परिप्रक्ष्य में चित्रा मुद्‌गल की लघुकथा 'ऐब' समाजसुधार के दृष्टिकोण से एक सराहनीय प्रयास है – "बहना, दान–दहेज पर न मुझे विश्वास है, न सुधीर को ही । भगवान का दिया सब कुछ है इस घर में । मुझे तो बस पढ़ी बहू चाहियें थी, सो मिल गयी । यही दान–दहेज समझों ।"[27] यदि समाज में सबकी ऐसी सोच हो जाये तो शायद ही कोई लड़की अविवाहित रहें ।

समग्रतः "लघुकथा आज के सामाजिक वातावरण की महती आवश्यकता है । आज जब जीवन ज्यादा व्यस्त–विकट, कर्मसंकुल, नाना प्रकार के घात–प्रतिघातों से आहत–प्रत्याहत, नाना प्रकार के प्रहारों से क्षत–विक्षत, क्लान्त–विपन्न, नाना प्रकार की दौड़–धूप, भागम–भाग, आपाधापी, कश्मकश व जद्दोजहद से जीर्ण–शीर्ण, उद्धिग्न–खिन्न होता जा रहा है तब हम लघुकथाओं के माध्यम से जीवन के नैराश्य–निशीथ में आशा के दीप व आस्था के संदीप जला सकते है । भ्रम–भ्रांति के घनघोर जंगल में चाँदनी खिला सकते हैं, दिशाहीनता के आकाश में ध्रुवतारा दिखा सकते है । लघुकथा के माध्यम से कीटाणुनाशकों का निर्माण कर जीवन को कीटाणुओं से मुक्ति दिला सकते है, लड़खड़ातें जीवन को लघुकथा का टॉनिक पिला उसे सरपट दौड़ा सकते है । यानी लघुकथा के माध्यम से हम हर तरह का Pain Killer, Healing balm, Syrup tablet, Capsule, Injection बना सकते हैं । यहाँ तक कि Surjery को विकसित कर अवांछित अंग को काट सकते है, पुरातन अंग को हटाकर नवीन अंग का प्रत्यारोपण कर सकते है । यानी लघुकथा को Physician o Surgeon दोनों रूपों में इस्तेमाल कर सकते है – जीवन को सर्वथा स्वस्थ, कीटाणुमुक्त, रोगमुक्त नीरोग बनाने के लिये ।" प्रो0 रवीन्द्रनाथ ओझा

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सं. धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश (भाग 1), द्वितीय संस्करण, पृ0 740–41
2. सं. सतीशराज पुष्करणा, लघुकथाःबहस के चौराहे पर, पृ0 1, 1983
3. वही
4. वही
5. वही
6. वही
7. वही
8. रमेश कुमार शर्मा, लघुकथाःसर्जना एवं समीक्षा, पृ0 20, 1989

9. हुमायूँ निसार फैजाबादी, लघुकथा बहस के चौराहे पर, पृ0 – 7
10. सं. बलराम, भारतीय लघुकथा कोश (भाग–2), प्रथम संस्करण, पृ0 243–244, 1990
11. वही, पृ0 96–97
12. वही, पृ0 77–78
13. वही, पृ0 80–81
14. वही, पृ0 111–112
15. वही पृ0 108
16. वही पृ0 137
17. वही पृ0 117
18. वही पृ0 152
19. Dr. Pushpa Bansal, M.D.U.R.J., Pg. 112
20. सं. बलराम, भारतीय लघुकथा कोश (भाग–2) प्रथम संस्करण, पृ0 298–299
21. वही, पृ0 299–300
22. वही, पृ0 67
23. वही, पृ0 148
24. वही, पृ0 211, 212
25. वही, पृ0 42–43
26. वही, पृ0 184
27. वही, पृ0 187
28. डॉ0 सतीशराज पुण्करणाा, लघुकथा : सर्जना एवं समीक्षा, पृ0 38 प्रथम संस्करण, 1990

❑❑

साहित्य और मानवता

डॉ0 ज्योति वर्मा
एसो0 प्रो0 / विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग
बुन्देलखण्ड कॉलेज, झाँसी।

''मनोः अपत्यम् मानव.'' मनु की सन्तान को मानव कहा गया है। संस्कृत में मानव की व्युत्पत्ति–मनु+अण् त्र मानव। मानव में तल् + टाप् प्रत्यय लगाने से मानवता शब्द निष्पन्न होता है। मानवता मनुष्य का वैशिश्ट्य है। केवल शारीरिक रचना से ही सही अर्थों में कोई मानव नहीं होता। मानव होने के लिए मानवता का वरण आवश्यक है। मानवता अर्थात मानवीय सद्गुणों का वह समूह, जिससे मनुष्य अपनी मनुष्यता को प्रमाणित करता है। साहित्य में मानव और मानवेतर प्राणियों को विभाजित करने वाला तत्व धर्म माना गया है। आहार, निद्रा, भय एवं सन्तानोत्पत्ति जैसे कर्म मनुश्य और पशु में समान होते हैं, केवल धर्म ही मनुश्य में विशेश होता है, जो उसे पशु से पृथक करता है :[1]

आहार निद्रा भय मैथुनं च सामान्यमेतद् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेशामधिको विशेशो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।।

यहाँ धर्म से अभिप्राय उस कर्तव्य से है जो सार्थक जीवन के लिए अनिवार्य होता है– ''धार्यते अनेन इति धर्मः'' अर्थात जो धारण किया जाए वह धर्म है[2] वैशेशिक दर्शन में भी धर्म को आत्मोन्नति एवं कल्याण का हेतु कहा है। ''यतोऽभ्युदय निःश्रेयस् सिद्धिः स धर्मः'' दोनों ही स्थितियों में धर्म आदर्श कर्तव्यों का प्रतीक है। मनु ने धर्म के स्वरूप निर्धारण में जिन दस लक्षणों की गणना की है, वे सभी आचार मूलक है और मानवता को परिभाशित करते हैं[3]–

घृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विया सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्।।

धैर्य, क्षमा, मन को सदा धर्म में प्रवृत्त कर अधर्म की इच्छा भी न करना, चोरी, छल–कपट, विश्वासघात न करना, तन–मन की पवित्रता, इन्द्रियों को वश में रखना, विद्या का अर्जन ताकि कुसंग से हटकर मन श्रेश्ठ कार्यो में लग सके, बुद्धि का परिष्कार हो सके, सत्य बोलना, क्रोध न करना ये दस लक्षण धर्म के स्वरूप हैं।

साहित्य में मानवता का वृहद् रूप दिखाई पड़ता है। सर्वत्र मानव की रक्षा, समानता, उदारता, सहनशीलता, धैर्य, विवेक, आस्तिकता, करूणा, त्याग, क्षमा, प्रेम, आदि प्रवृत्तियों के पोशक ग्रन्थ है। मानव धर्म के पालन में लोग किस प्रकार हंसते–हंसते अपनी लौकिक सुख समृद्धि की आहूति कर दिया करते थे। इसके सहस्त्रों उद्धरण संस्कृत साहित्य में भरे पड़े हैं।

वेद भारतीय तत्व ज्ञान के अजस्त्र स्त्रोत है। वेदों में मानव के सर्वोच्च हित का वर्णन है। मानव मात्र के कल्याण के लिये ऋषियों ने अपने आचरण और उपदेशों द्वारा मानवता का उत्कृष्ट आदर्श प्रस्तुत किया है। मनुष्य की प्रथम पाठशाला परिवार होती है। अथर्ववेद में प्रस्तुत मंत्र में कोटुम्बिक आदर्श का वर्णन मानवता की नींव रखता है[4]–

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या।।

ऋषि कहता है कि मैं सदुपदेश के द्वारा कुटुम्ब में सभी सदस्यों का हृदय सहृदय यानि परस्पर प्रेम सद्भाव

युक्त बनाता हूँ। समान भाववाला हृदय ही सहृदय कहा जाता है। जैसे अपना यह हृदय अपना अनिष्ट कभी नहीं करता। वैसे ही जो हृदय अन्यों का भी अनिष्ट न कभी चाहता है और न करता है, वह प्रशस्त समभाव वाला हृदय ही सहृदय हो जाता है। इस प्रकार मैं तुम्हें सांमनस्य का उपदेश देता हूँ। अर्थात तुम सब अपने मनों को अच्छे संस्कारों से, अच्छे विचारों से, अच्छे संकल्पों से एवं पवित्र भावना से सदा भरपूर रखो। जैसे गाय अपने सद्योजात वत्स के प्रति अत्यन्त स्नेह रखती है, वैसे ही तुम सब भी परस्पर विशुद्ध स्नेह रखो ओर निष्कपट विनम्र सरल स्वभाव बनाये रखो।

वाल्मीकि रामायण में राम चरित्र कौटुम्बिक आदर्श की स्थापना करता है। राम माता–पिता, गुरू भक्त है, शरणागत–वत्सल है, दया, प्रेम, क्षमा, समता, संतोष, शान्ति आदि मानवीय गुणों से परिपूर्ण है। वन भेजने वाली माता कैकेयी के प्रति उनके मन में कोई दोश नहीं है। शत्रुघ्न के मन में माता कैकेयी के प्रति रोश का भाव देखकर राम शत्रुघ्न को अपनी शपथ देकर क्रोध न करने को कहते हैं[5]–

मातरं रक्ष कैकैयी, मा रोशं कुरू तां प्रति।
मया च सीतया चैव शप्तोऽसि रघुनन्दन।।

सुमति ही मानव को सच्चा मानव बनाकर उसमें सद्गुणों का विकास करती है। जिस मनुष्य में सुमति नहीं होती है अपितु कुमति रहती है, वह मानव, मानव ही नहीं रहता, अपितु दानव बन जाता है और विविध विपत्तियों के गर्त में पड़कर दुःखी होता है। तभी वैदिक काल से ही ऋषि सुमति की प्रार्थना करता आ रहा है[6]– ''महस्ते विष्णों! सुमति भजामहे'' हे विशु तुम महान परमात्मा की सुमति का हम सेवन करते हैं। ऋशि आशीर्वाद देता है, ''हे शिष्य! तुझे उर्वी यानि उदार–विशाल सद्भाव वाली एवं गम्भीर सुमति प्राप्त हो– उर्वी गभीरा सुमतिष्टे अस्तु''[7]। गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में भी कहा है[8]– जहाँ सुमति तहं संपति नाना, जहॉ कुमति तह विपति निदाना। अर्थात सुमति ही विविध सद्गुण रूपी सम्पत्तियों की जननी है और कुमति विविध दुर्गण रूपी विपत्तियों की खान।

मित्र की दृष्टि सर्वदा प्रिय भावनायुक्त, शान्त एवं हितकर ही होती है। वह किसी भी प्रार्णी के प्रति अनिश्ट की भावना एवं ईर्ष्या द्वेशभाव नहीं रखती। सबके प्रति हमारा मित्रभाव तभी सिद्ध हो सकता है, जब हममें कपट, विश्वासघात, अनिष्ट चिन्तन, स्वार्थ सम्पादनादि दुर्गण न हो। हम अपने लिये जिन बातों को अच्छा नहीं मानते, वह आचरण हम दूसरों के प्रति भी न करें। जब हम पहले सबके प्रति मित्रभाव रखने के लिये प्रयन्तशील रहेगें, तभी वे सब हमारे प्रति मित्रभाव रखने को तैयार होगें और सर्वत्र स्वर्गीय आनन्द का निर्माण कर सकेगें। अर्थववेद में हमें ऐसी ही प्रार्थनाये मिलती है। ''सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु'' आशा यानि दिशायें–अर्थात समस्त दिशाओं में अवस्थित प्राणी मेरे मित्र हों।[9]

समस्त प्रदेशों में अवस्थित जन मेरे प्रति संताप एवं उपद्रव के भाव से रहित हो। कोई भी मानव हमारे प्रति द्वेशभाव न रखे। प्रत्युत प्रेम सद्भाव ही रखे।[10] असपत्नाः प्रदेशो मे भवन्तु, न वै त्वा द्विष्मो अभयं नो अस्तु।

कालिदास के काव्य में मानवता की पराकाश्ठा है। उनकी नायिका तो वृक्षों से भी सहोदर सा व्यवहार करती है। बिना उन्हें जल सिंचित किये स्वयं जल नहीं पीती, आभूशण प्रिय होने पर भी वृक्षों के पत्तों एवं फूलों को अपने श्रृंगार के लिये तोड़ती नहीं है। किसी वृक्ष के प्रथम पुष्प खिलने पर वह पुत्रोत्सव की तरह उत्सव मनाती है। इतना ही नहीं शकुन्तला की विदाई के अवसर पर ऋषि वृक्षों तक से विदा की अनुमति मांगता है। ''क्या आज तक किसी पिता ने अपनी पुत्री के विवाई के अवसर पर वृक्षों से भी अनुमति मांगी है–[11]

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युश्मास्वपीतेशु या,
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्,।

आद्ये वः कुसुम प्रसूति समये यस्याः भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सवैरनुज्ञायताम्।।

यह तभी सम्भव हो सकता है जब हमारी दृष्टि स्वार्थ से उठकर परार्थ पर लगे। मानस में तुलसीदास जी ने कहा है–[11]

परहित सरिस धरम नहि भाई, पर पीड़ा सम नहि अधमाई।
निज दुःख गिरि सम रज करि जाना, मित्रक दुःख रज मेरू समाना।।

अर्थात अपने पहाड़ जैसे दुःख को धूल के समान और मित्र के कण भर दुःख को सुमेरू पर्वत के समान जो देखता है वहीं सच्चा मित्र है। केवल अपने स्वार्थो की पूर्ति की चिन्ता पशुता है। मैथिलीशरण गुप्त लिखते हैं–

विचार लो कि मर्त्य हो, न मृत्यु से डरो कभी,
मरो परन्तु यों मरो, कि याद जो करें सभी।
हुई न यों सु–मृत्यु तो, वृथा मरे, वृथा जिये,
मरा नहीं वही कि जो, जिया न आपके लिये।
यही पशु प्रवृत्ति है कि आप ही आप चरे,
वहीं मनुष्य है कि जो मनुश्य के लिये मरे।

कैसे जीना है और कैसे मरना है ?ये दो प्रश्न समस्त मानवों के प्रति सदैव उपस्थित रहते है। जैसा जीवन–वैसा मरण, यह सामान्य नियम है। जिसका जीवन मधुर है, उसका मरण भी मधुर ही रहता है। जिसका जीवन कटुता से पूर्ण है उसका मरण भी कटु होता है। जो अपने जीवन की दिशा को उन्नत बनाता है, सद्भाव पूर्ण बनाता है उसका भविष्य स्वतः अच्छा बन जाता है। वैदिक उद्भावना है–[12]

मधुमन्मे निश्क्रमणं मधुमन्मे परायणम्।
वाचा वदामि मधुमद भूयासं मधुसदृशः ।।

अर्थात मेरी समस्त प्रवृत्तियाँ मधुर हो, निखिल निवृत्तियां मधुरता से युक्त हो, वाणी मधुर हो, भीतर बाहर, सर्वत्र मधुर दर्शन हो। ''सर्वेभद्राणि पश्यन्तु मां कश्चिद् दुःखभागभवेत'' विश्व मंगल के प्रति होने वाली सद्भावना मानवता का उच्चतम आदर्श है।

मूल्य निष्ठा मानवता की महत्वपूर्ण दिशा है। सत्य का पालन, न्याय का समर्थन व अन्याय का विरोध, रचनात्मक दृष्टि का स्त्रोत मूल्य निष्ठा है। मूल्य निष्ठा मानवता का ऐसा तत्व है जो व्यक्ति को किसी भी अग्निपरीक्षा के लिये तत्पर करता है, सत्य हरिश्चन्द्र का डोम के घर बिकना, महाराजा दिलीप की गौ सेवा, कृश्ण का रण से पलायन, महात्मा गांधी का असहयोग आन्दोलन सुभाष चन्द्र बोस द्वारा आजादहिन्द फौज का संगठन मूल्य निष्ठा का ही परिणाम है।

मानवता का परीक्षण विपरीत परिस्थितियों में होता है। मानवता के प्रति सच्ची निष्ठा रखने वाले किसी भी परिस्थितियों में विचलित नहीं होते। व्यापक मानवीय हित में गुरूगोविन्द सिंह ने अपने पुत्रों की बलि चढ़ा दी थी। महाराजा शिबि ने कबूतर की रक्षा के लिये उसके वजन के बराबर अपना मांस दान में दे दिया था। पन्नाधाय ने राजकुमार की रक्षा के लिये अपने पुत्र की बलि चढ़ा दी थी।

यद्यपि महत्वाकांक्षा के दांव पर मनुष्यता सदैव हारी है। चाणक्य ने कहा है– मानवता महत्वाकांक्षी व्यक्ति का साथ छोड़ देती है। किन्तु इतिहास गवाह है कि रावण अपने समय का सबसे बड़ा विद्वान था। ब्राह्मण कुलोत्पन्न होने पर भी मानवता के न होने के कारण उसे दानवराज कहा गया। कृष्ण ने दुर्योधन को बार–बार समझाया कि पाण्डवों को पांच–पांच गॉव ही दे दो, किन्तु मानवता के इस सहज धर्म को भी वह स्वीकार न कर सका, उसने

दंभ पूर्वक कहा है – ''जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः जानामि अधर्म न च मे निवृतिः'' दुर्योधन की यह घोषणा मानवता की चरम अवहेलना थी। जो अन्ततः समूल विनाश का कारण बनी।

अनादिकाल से मानवता की रक्षा के लिये समय समय पर देवताओं को भी अवतार लेना पड़ा है। भगवान कृष्ण ने गीता में उपदेश दिया है–[13]

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत,
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यमहम्।
परित्राणाय साधूनां विनाषाय च दुष्कृताम्,
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे–युगे।।

इस प्रकार साहित्य वह सुदृढ़ आधार है जहाँ से मानवता पुश्वित और पल्लवित हुई है। आज उसकी अनुगूंज इन्हीं संगोष्ठियों सेमीनारों एवं परिचर्चाओं के माध्यम से समाज को जाग्रत करने का कार्य कर रही है।

संदर्भ संकेत

1. हितोपदेश – 1/3
2. महाभारत – शान्ति पर्व
3. मनुस्मृति – 6/92
4. अथर्ववेद – 3/30/1
5. वा0 रामायण – 112/27/28
6. ऋगवेद – 1/156/3
7. ऋगवेद – 1/24/9
8. श्रामचरितमानस – सुन्दर काण्ड
9. अपर्व वेद – 19/5/6
10. अपर्व वेद – 19/14/1
11. अभिज्ञानशाकुन्तलम् – 4/9
12. अथर्ववेद – 1/34/3
13. गीता – 4/7, 8

❑❑

39

मेवाती लोकगीत : लोक जीवन और संस्कृति

सीमा खान
जे.आर.एफ., शोधछात्रा
हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय (जयपुर)

लोक साहित्य की प्रमुख विद्या लोकगीत है। लोकगीत लोक मानस से ही उत्पन्न हुए हैं। मानव जीवन की अनुभूतियों का प्रकाशन लोकगीतों में होता है। सामान्य जन समुदाय के रागाराग से पूर्ण भावानुभूतियां लोकगीत कहलाती हैं। लोकगीत लोक जीवन की श्रमशील परिस्थितियों, संघर्षों, प्रकृति, जन्म बाधाओं और सामाजिक आवश्यकताओं के बीच के यथार्थ से आविर्भूत हुए हैं। इनमें मानव मनोवृत्तियों, धार्मिक व सामाजिक अवस्थाओं तथा हमारी सांस्कृतिक चेतना का अमूल्य भण्डार छिपा हुआ है। ये लोकगीत प्राचीन समय से ही चले आ रहे हैं। सामूहिक चेतना के सहज उद्‌गार हैं। लोकगीत वेद पूर्ण सभ्यता के आदिम दस्तावेज हैं एवं लोक–जीवन के मध्य से उपजते हैं। लोकगीतों को जीवन से विलग नहीं किया जा सकता है। ये हमारे लोक जीवन के इतिहास का विकास भी हैं। लोकगीत से जुड़ना अर्थात् जीवन से जुड़ना है। मेवाती लोकगीतों में स्वाभाविक जीवन के यथार्थ चित्र देखने को मिलते हैं। मेवात क्षेत्र के लोग लोकगीतों के द्वारा लोकमानस में अपनी पहचान बनाये हुए हैं। असंख्य लोकगीत आज भी जनसामान्य में प्रचलित हैं। इन लोकगीतों में न कला है न भाषा सौष्ठव और न गीतकारों ने इनकी रचना बंद कमरों में की है। ये गीत तपते सूर्य के नीचे खेतों में काम करते हुए लोक मानव ने गाया है। चूल्हे पर कसार भूनती तथा दीपक जलाती नारी ने गुनगुनाये हैं जिस समय अन्तर को जो भी स्पर्श कर गया तुरन्त वही भाव बोलचाल की भाषा में गीत बन कर फूट पड़ा।

विषय विस्तार : मेवाती लोकगीत लोक सामान्य की भाषा है उसका नाद है उनके हृदय का स्वर और जन मानस की भावनाओं की संगीतमय अभिव्यक्ति है। मेवाती लोकगीतों में संस्कृति, रीति–रिवाज तथा संगीतमय इतिहास परिलक्षित होता है। मेवाती लोकगीतों में आंचलिक जनसमूह के काव्य, गीतों और संगीत का ब्यौरा निहित है। लोकगीत आंचलिक संस्कृति का विद्यालय है। जैसे वेदों का कोई लेखक नहीं है उसी प्रकार पारम्परिक लोकगीत किसके लिखे हुए हैं यह बताना कठिन है। मेवाती लोकगीत सतत् परम्पराओं में प्रचलित एवं पोषित होकर सदा जीवित रहे हैं।

किसी भी समाज और उसके लोक जीवन को समझने के लिए उस समाज के लोक साहित्य तथा लोक संस्कृति को समझना अत्यंत आवश्यक है क्योंकि लोक साहित्य की विधा लोकगीतों में लोक मानस की अभिव्यक्ति होती है। उसकी आंतरिक स्थितियाँ उसमें निहित होती है। संस्कृति और लोक जीवन का आपस में घनिष्ठ सम्बंध है। लोक जीवन का प्राण लोक संस्कृति है। एक के बिना दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती है। लोक जीवन को समझने के लिए वहाँ की लोक संस्कृति को समझना चाहिए। लोक संस्कृति में वहाँ का वनस्पति जगत, पशु जगत, मानव, मनुष्य निर्मित वस्तुएं परलोक, शकुन, अपशकुन, भविष्यवाणी, जादू–टोना, लोकगीत आदि अर्न्तभुक्त हैं। ये सारी चीजें लोक संस्कृति में आती हैं। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि लोक–जीवन के सभी रूपों को समझने के लिए हमें लोक–जीवन के मूल्यों को भी समझना होगा। उसे समझे बिना लोक जीवन को नहीं समझा जा सकता है।

इसी प्रकार लोक जीवन का एक पक्ष उक्त मेवाती लोकगीत के माध्यम से चित्रित किया है। जिसमें गाँव की गरीबी का यर्थात् चित्र उकेरा गया है और साथ ही एक बेटी अपने कष्टों का हृदय विदारक वर्णन अपनी माँ से करती है –

''माँ मेरो पीसणो कितनो पीसो री,
जितनी दगड़ा में रेत, जणी सू कहियो री,
माँ मेरो गूंदणो इतनो गूंदो री,
जितनी पोखर में कीच, जणी सू कहियो री,
माँ मेरो पोऊणो इतनो पोयो री,
जितनी पीपल में पात, जणी सू कहियो री,
खागी–खागी री, माँ ऊ मुर्गी की–सी डार
मोलू रहगी टिकिया एक, जणी सू कहियो री,
माँ मेरो छोटो देवर लाडलो, वा टिकिया बी लेगो छीन
माँ मैं भूखी सोगी री, जणी सू कहियो री।।''

अर्थात् बेटी माँ से कहती है मुझे नहीं मालूम मुझे कितना गेहूँ पीसना, गूँदाना पड़ता है, कितना पकाना पड़ता है, सबके खाने के बाद मेरी बारी आती है तब मुझे सबसे छोटी रोटी यानी टिकिया खाने को मिलती है उसको भी छोटा देवर ले लेता है। मुझे भूखा सोना पड़ता है।

लोकगीतों के जरिए किसी भी अंचल के सांस्कृतिक स्वरूप को समझा जा सकता है। मेवाती लोकगीतों में मेवात की सांस्कृतिक स्थिति की झलक अलग–अलग रूपों में दिखाई देती है। किसी भी संस्कृति का मूल तत्व उसके विचार दर्शन में दिखाई देता है। मेवाती लोक और उसकी संस्कृति को वहाँ के आचार–विचार, परम्पराओं, लोकविश्वास, वेश–भूषा आदि के द्वारा जाना जा सकता है। मेवात की स्त्रियाँ आभूषणप्रिय होती हैं वे कपड़े से अधिक जेवर चहाती है। इससे सम्बंधित मेवाती लोकगीत जिसमें एक मेवाती अर्थात् मेवणी को विविध प्रकार के जेवर बनवाने (घड़वाने) का वादा करता है –

''सुणियो गौरी बावली, मतवाले मन मैल,
सिरसू पैदा होंण दै, तोलू घड़वा दूंगो हमेल।।
तेरी भायेली पै सोने की जींज
बटण तोपे चाँदी की
ना चहिया तेरा झूमका, ना बाली, ना हार
रेशम की कुदती सिवा ऊपर बटण लगार।''

इस मेवाती लोकगीत में हमेल, जंजीर, बटण झूमका, बाली तथा हार का प्रयोग करके मेवाती संस्कृति को दिखाया गया है।

लोकगीत लोक मानस से उत्पन्न हुए हैं। मानव जीवन को अनुभूतियों का प्रकाशन लोकगीतों में होता है। यहाँ मेवाती लोकगीतों में लोक जीवन और संस्कृति के विविध पक्षों पर विचार किया जिसमें लोक जीवन की गरीबी के साथ–साथ एक बेटी की दाऊण स्थिति का चित्रण किया गया है और साथ ही मेवाती संस्कृति के अंतर्गत आभूषणों के विषय में चर्चा की गई है जिसमें मेवाती संस्कृति झलकी है।

सन्दर्भ संकेत

1. राजस्थानी और गढ़वाली लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ0 हेमा देवरानी, प्रतिक्षा पब्लिकेशन्स जयपुर, पृ. 42
2. मेवाती लोकगीतों में समाज और संस्कृति, डॉ0 माजिद मेवाती, नेहा प्रकाशन,दिल्ली, पृ0 16, 141
3. राजस्थानी लोकगीत, स्व. श्री जगदीश सिंह गहलोत सम्पादक–पूर्णिमा गहलोत, प्रकाशन–यूनिक ट्रेडर्स, जयपुर, पृ0 19, 20

❑❑

मुस्लिम कथाकारों का नारी विमर्श

यतीन्द्र सिंह कुशवाहा
असि. प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
डी.ए–वी. कॉलेज,कानपुर

एक समय में अरब में लड़कियों के जन्म लेते ही उन्हें जिन्दा जमीन में दफना दिया जाता था। फिर इस्लाम का जन्म हुआ और स्त्रियों को समानता का अधिकार प्रदान किया जाने लगा। पैगंबर मुहम्मद ने स्त्रियों को इतना सम्मान दिया कि वह अपनी बेटी के आ जाने पर उठ कर खड़े हो जाते थे। कुरान साफ शब्दों में कहता है मर्द और औरत दोनों एक दूसरे की सुरक्षा करने वाले दोस्त और अभिभावक हैं। कुरान में वस्तुतः कही लिंगभेद नही है किन्तु कुरान की कुछ आयतों का विश्लेषण सामाजिक तथा ऐतिहासिक संदर्भ से अलग करके की गई जिसके कारणवश यह भ्रम उत्पन्न हुआ। गोपाल राय अपनी पुस्तक हिन्दी उपन्यास का इतिहास में निम्नाकिंत निष्कर्ष देते है।

''अपने पहले रूप में वह सदियों से चलती आ रही शोषण और अत्याचार की स्थितियों की शिकार है। दूसरे रूप में वह नई परिस्थितियों से पैदा हुई समस्याओं से जूझ रही है और तीसरे रूप में आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी होने, परंपरागत नारी संहिता की जकड़न को चुनौती देने और राजनैतिक दृष्टि से सबलीकरण की दिशा में अग्रसर होने के लिए संघर्षरत है।''[1]

''सदी के अन्तिम दो दशकों में प्रकाशित उपन्यासों में हमारा साक्षात्कार स्त्री पात्रों से होता है जो अपने किसी निर्णय के लिए किसी पुरूष का मुँह नही जोहती। .... प्रश्न चाहे जीवन साथी चुनने का हो या कार्यक्षेत्र चुनने का, वे अपना निर्णय खुद लेती है। सजग आलोचना और आत्मनिर्णय से लैस होकर वे न केवल सामंती परिवेश और रूढ़ मर्यादाओं के गढ़ तोड़ती है बल्कि सकारात्मक ढ़ग से अपने व्यक्तित्व की रचना भी करती है।''[2]

सामान्य रूप से महिलायें अनेक बंधनों में जकड़ी हुई है। धार्मिक बन्धनों सामाजिक मर्यादाओं आदि ने औरत की छवि से सामान्य विरोधी प्रवृत्ति को समाप्त सा कर दिया है। महिला की छवि कष्ट, शोषण, अत्याचार को अनवरत सहने की कथा है। किन्तु 20वीं शताब्दी के अन्तिम दशकों तथा 21वीं शताब्दी के प्रारम्भ में कथाकारों ने इस छवि को तोड़ा है। उपर्युक्त दोनो ही कथनों से स्पष्ट है कि साठोत्तर कथाकारों के कथा साहित्य में स्त्री के चरित्र की परिवर्तनशीलता को स्पष्ट व्यक्त करते है। अतः यह शोध का विशय है कि क्या महिलाओं की वैचारिकता में परिवर्तन हो रहा है ? अतः शोध परिकल्पना है कि महिलाओं की वैचारिकता में परिवर्तन हो रहा है।

इस शोध के अन्तर्गत साठोत्तर कथाकारों के कथा सहित्य को शोध सामग्री के रूप में लिया गया है। मंजूर एहतेशाम कृत सूखा बरगद, दास्तान–ए–लापता, नासिरा शर्मा कृत ठीकरे की मंगनी, मेहरून्निसा परवेज कोरजा और अकेला पलाश आदि ने स्त्री पात्रों को बड़ी बेबाकी के साथ व्यक्त किया है। ठीकरे की मंगनी की महरूख, कोरजा की कम्मो, अकेला पलाश की तहमीना, नाहिद बाजी, दास्तान–ए–लापता की राहत, अनीसा, सूखा बरगद की रशीदा आदि ऐसे स्त्री पात्र है, जो स्त्रियों की परिवर्तित हो रही वैचारिकता को अभिव्यक्त करती है। ये स्त्री पात्र परंपराओं की छटपटाहट, जकड़न, घुटन को बर्दाश्त करने को तैयार नही है।[3]

दास्तान–ए–लापता की राहत आपने पति जमीर अहमद खान को तलाक देने की धमकी देती है, क्योंकि वह घर की जिम्मेदारियों से मुंह मोड़कर परस्त्री गमन में मस्त रहता है। राहत कहती है– ''हो सकता है मै दूसरी शादी करने के बारे में भी सोचूं। सोचूं क्या बल्कि करूं।''[4] जमीर अहमद खान को उपेक्षाओं से मजबूर होकर अंततः वह निर्णय लेती है।– मेरी बर्दाश्त की ताकत जवाब दे चुकी है और मै अभी मरना नही चाहती।[5]

ठीकरे की मंगनी की महरूख सोचती है कि ''हर औरत को शादी के बाद अपने को मिटा कर अपने वजूद की शौहर के वजूद में मिलाना पड़ता है।''[6] महरूख की इस चिंता की गहराई एवं निवारण हेतु यह पंक्तियों देखी

जा सकती है– ''उसे शौहर के साथ एक साथी की भी जरूरत होती है जो उसको हर शक्ल, हर साल में संभाल सके, समझ सके।''[7]

इसी प्रकार अकेला पलाश की तहमीना का पति जमशेद उम्र में अधिक बड़ा है तथा वह उसको यौन संतुष्टि नहीं दे पाता, उससे खीझ कर तहमीना कहती है कि– ''मै तुम्हारी पत्नी जरूर हूं और समाज ने मेरे शरीर के साथ हर प्रकार का खिलवाड़ करने की अथार्टी तुम्हें दे रखी है। इसका यह मतलब नहीं कि तुम रोज मुझे मारो, रोज मेरी मृत्यु हो''[8]

स्त्री पुरुष संबंधो की एक नई परिभाषा गढ़ने का कार्य दास्तन–ए–लापता को अनीसा करती है वह दोस्ती के संबध की पक्षधर है वह अपने मित्र जमीर अहमद खान से कहती है कि– ''तुम मुझे मेरे भाई की याद दिलाते हो यह अपनी जगह सही है, लेकिन मैने तुम्हें हमेशा एक दोस्त की हैसियत से समझा है एक दोस्त जिसे मै मर्द की हैसियत से जानने की इच्छुक हूँ।''[9]

किन्तु वह दोस्ती में भी अपने स्वंतत्र व्यक्तित्व की रक्षा के लिए सतर्क दिखती है, एक दूसरे पर वर्चस्व स्थापना का प्रयास नही करती है। समानता की भावना से प्रभावित होकर वह कहती है– ''सारे फैसले करने का हक एक तुम्हे ही थोड़ी हासिल है। कुछ पसंद और थोड़ा सा दखल हमें भी है या नहीं।''[10]

अनीसा संबधों में भ्रम की स्थिति नहीं चाहती है। वह जमीर अहमद खान को धिक्कारते हुए कहती है– ''मै भी तो इतने दिनों से तेरे साथ, दोस्त दोस्त कहने की कोशिश करती रही पर तुझे भी शायद वैसे मजा नहीं आएगा। तो जा अपनी राह ले, बहन मै तेरी बन नही सकती और साफ सुथरी दोस्ती के लिए तू तैयार नही।''[11]

'ठीकरे की मंगनी' की नायिका महरूख संघर्ष का रास्ता चुनती है– ''बिना दिमाग की हथियारबंद किए कोई लड़ाई नही लड़ी जा सकती।..... यह लड़ाई एक–दो दिन की नही, पूरी एक सदी तक लड़ी जाने वाली है जब सब बदलकर एकदम नई बुनियाद डाली जाएगी।''[12]

इस प्रकार महरूख सम्पूर्ण स्त्रियों के संघर्ष की गंभीरता को समझती है। वह जानती है कि सदियों से चला आ रहा यह शोषण एक या दो दिन में समाप्त होने वाला नही है और ना ही एक के आत्मनिर्णय लेने की शक्ति प्राप्त कर लेने से सब कुछ बदल जाने वाला है। किन्तु वह इस संघर्ष की घोषणा अवश्य करती है। वह इस पुरुष वर्चस्व वाली सामाजिक व्यवस्था को चुनौती प्रदान करते हुए अपनी नारी स्वातंत्र्य की चेतना की स्पष्ट घोषणा करती है– ''एक घर औरत का अपना भी तो हो सकता है, जो उसके बाप और शौहर के घर से अलग, उसकी मेहनत और पहचान का हो।''[13]

वक्त के साथ साथ शिक्षा के आलोक में स्त्रियों में अपनी स्थिति के प्रति एक चेतना विकसित होती रही और शिक्षा के साथ उनमें आयें आत्मनिर्भरता ने भी उनके रूढ़ियों और परंपराओं के प्रति विरोध करने का साहस पैदा किया। 'कोरजा' उपन्यास की कम्मों में भी आधुनिकता का संचार देखने को मिलता है। पढ़ी–लिखी होने के साथ–साथ वह आर्थिक रूप से भी समर्थ है कम्मो सारी रीति–रिवाजों और संस्कारों को गुलामी का प्रतीक मानती है। यहाँ तक की उसे चूड़ी पहनना भी बंधन सा लगता है। ''अरे यार, तू ही पहने रह, हमें यह चूड़ी–बूड़ी कभी अच्छी नही लगी, बंधन सा लगता है। अपन तो मस्त मौला हैं, कम्मो ने अपने पुराने अंदाज में आते हुए कहा।''[14] बल्कि वह अपने संघर्ष के रास्ते में अकेला चलना चाहती है, इसलिए वह अमित के सहयोग को भी अस्वीकार कर देती है– ''नहीं अमित, अभी अकेली चल सकती हूँ, अभी से सहारे की इतनी आदी मत बनाओ कि कल खुद अपने पैरों पर खड़ी न हो सकूँ।''[15] इन पंक्तिओं से यह स्पष्ट है कि नारी अब गुलामी छोड़ अपनी एक स्वतंत्र अवस्था में पहुँच चुकी है। और नारी अपनी एक स्वतंत्र छवि निर्मित करने में सक्षम हो पाई है। किन्तु ऐसा नही है कि नारी को इस आत्मनिर्भरता का मूल्य न चुकाना पड़ा हो। 'शाल्मली' उपन्यास में नरेश शाल्मली से कहता है कि वह नौकरी छोड़ दे परन्तु वह इसके लिए तैयार नही है। परिणामस्वरूप घर में आशन्ति हो जाती है क्योंकि नरेश इसके लिए मानसिक रूप से तैयार नही है। वह कहता है ''तुम औरतें अपने आपकों को जाने क्या समझती हो ? बाहर नही निकलोगी तो संसार के सारे काम ठप हो जायेगें.... मेरी भावनाओं के मूल्य पर नही बल्कि इस घर के मूल्य पर

कर रही हो।''[15] और इतना ही नही उसे बाहर के कार्य के साथ घर के कार्यो को भी पूर्ण उत्तरदायित्व के साथ निभाना होता है शाल्मनी के घर पर मेहमान आये हुये है परन्तु घरेलू कार्यो में उसकी सहायता नही करता।

वह यौन संबधों में स्वीकृति चाहती है। वह बिना इच्छा के यौन संबंधो का विरोध करती है। ठीकरे की मंगनी में महरूख अपने सहपाठी रवि द्वारा उससे यौन संबंध स्थापित करने में उतावलेपन को धिक्कारती तो है लेकिन इस विचार के साथ कि– ''उसके किस बर्ताव से रवि ने उसे इतना हल्के किरदार की लड़की समझ किया ?इजाजत तो ले सकता था। उसकी मर्जी जाने बिना यह भी कोई बात हुई ?''[16]

महरूख आधुनिक शिक्षित, आत्मनिर्भर महिला है। वह स्त्री स्वतंत्रता की वाहक बनकर स्त्री चेतना के मूलभूत प्रश्न को अभिव्यक्त करती है। ''औरतो की खुशकिस्मती और बदकिस्मती के कितने बंधे–बंधाए ढर्रे है। बरसों से चली आ रही यह सोच कब बदलेगी ? कब औरत की कीमत ठीकरों और कौड़ियो से नापना बंद होगा ? कब उसे मर्दो के सहारे के बना दुनिया जीते देखना पंसद करेगी ?कब उसे अपनी तरह जीने की आजादी मिलेगी आखिर कब?''[17]

ठीकरे की मंगनी उपन्यास में महरूख की पढ़ाने के प्रश्न पर उसकी अम्मी का कथन वर्तमान प्रगतिशील नारी के भावों को व्यक्त करता है– ''मै तो हकीकत बता रही हूँ। जमाने के साथ तो बदलना पड़ेगा अगर ज्यादा नही तो थोड़ा बहुत जरूर। हमारा वक्त गया। जैसी अच्छी बुरी पड़ी, मैनें खुदा का शुक्र करके काट ली। मगर यह बच्चे हमसे आगे के है।''[18]

''स्त्रियों की आचार संहिताएँ पुरूषों द्वारा निर्धारित की जाती है। स्त्रियाँ उनका पालन करते हुए घुटन का अनुभव करती है। वह मुक्त वातावरण में खुलापन अनुभव करती है। महरूख मित्रों के साथ पिकनिक पर जाती है वहाँ पर लड़के लड़कियों को शराफत के साथ बियर पीते हुए देखकर सोचती है 'सचमुच इस खुलेपन में कितना ठहराव है न झूठ है, न दुख है जो है सामने है।' उसके मित्र उसे डांस में जबरदस्ती शामिल करते है। वह झिझकते शरमाते शामिल हो गई, नाचते हुए उसे एक अजीब ताजगी का अहसास हुआ जैसे उसके जोड़ जोड़ की गिरहें खुल रही हों। दिल पर जमा भारीपन का गुबार किसी भाप की तरह खुलकर बिखर रहा हो और वह रूई को गोले की तरह हल्की होकर फिजा में उड़ रही है।''[19]

वर्तमान स्त्री मात्र व्यक्तिगत स्थिति पर कार्य नहीं कर रही है बल्कि वह आधुनिकता की चेतना से ग्रस्त है वह परंपरागत रूढ़ियों का भी विरोध करती है। महरूख को अनेंक पारिवारिक परंपराएँ भी उचित नहीं लगती है। वह इनका खुलकर विरोध करती है। उसके दृष्टिकोण में रीति रिवाज उतने ही आवश्यक है जितना स्वयं का तथा घर का ध्यान रखना। वह स्पष्ट कहती है '' घर की खस्ताहाली पर आप लोगों का ध्यान नहीं जाता है। दिन ब दिन छतों की हालत गिरती जा रही है। दो साल से पिछला ढ़ालान टपक रहा है। उसे पटवाने की जगह कभी कोलतार कभी प्लास्टिक डलवा दी जाती है। मगर रमजान में पचास लोगों को जरूर आफतारी मस्जिद में भेजी आपने, जबकि सिर्फ दस लोगो की अफतारी भेजने से काम चल जाता।[20]

पाश्चात्य वेशभूशा का प्रभाव भी तेजी से बढ़ रहा है। बुर्का पहनना छोड़कर स्त्रियाँ भी आधुनिक पश्चिमी परिधान अपना लेती है– एक दिन जाने कैसे फुरसत निकालकर खुद रफत भाई ने जीन्स व स्की का जोड़ा उसे सालगिरह में दिया था। शाम को जब वह अपनी लम्बी काली चोटी के साथ स्की व जीन्स पहनकर निकली थी तो खुद रफत भाई आँख झपकाना भूल गये थे।........ और चट्टानों की आड़ में ठीक इंग्लिश मूवी की तरह रफत भाई ने उसकी कमर में हाथ डाला और पहला 'बोसा' उसकी गर्दन पर कन्धे के नजदीक रख दिया।[21]

इसी प्रकार शाल्मली भी विचार करती है कि ''नरेश ने तो जैसे तय कर लिया है कि उसके कर तर्क, हर कर्तव्य को अपने अधिकार की कुल्हाड़ी से चीर–चीरकर रख देना। सुबह–शाम की तरह एक ही बात को बोलते जाना कि वह उसका पति है।''[22]

'नरेश' उसके लिए कहीं भी आने जाने की बाध्यता लगाता है। 'शाल्मली' के रोने पर कहता है– ''यह नाटक बन्द करो।'' ''यह नाटक तब तक चलेगा जब तक मैं अपना अधिकार नहीं पा लेती हूँ।'' शाल्मली ने रोश में भरकर कहा, ''तुम्हें अधिकार देने वाला मैं हूँ समझी'' नरेश ने तड़पकर कहा। ''मुझे अधिकार देने वाला भले ही तुम अपने

को समझो, मगर याद रखो, कोई भी किसी को आसानी से उसका अधिकार नहीं देता है। अधिकार लेने वाला तो लड़कर उसे प्राप्त करता है।''[23] शाल्मली ने तड़प कर कहा।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि साठोत्तर कथाकारों के कथा साहित्य से यह प्रमाणित होता है कि स्त्रियाँ परंपरागत सामाजिक संरचना से विद्रोह कर स्वयं के लिए नई अवधारणाएं तथा लक्ष्य स्थापित कर रही हैं जो उनकी परिवर्तित होती मानसिकता का प्रतीक है।

इस शोध को स्पष्ट है कि औरत स्वातंत्र्य की ओर आये बढ़ना चाहती हैं। वह स्पष्ट रूप से अपने मंतव्य को व्यक्त कर रही है। इतना ही नहीं साहस के साथ अपने विचारों को सार्वजनिक रूप से व्यक्त कर रही है। वे मात्र स्वयं की स्वतंत्रता की बात नहीं करती है। अपितु सामाजिक बंधनों, रूढ़ियों की भी मुखालफत करने से नही हिचकती है। यद्यापि कथाकारों ने इस पक्ष को कम ही प्रस्तुत किया है किन्तु इतना स्पष्ट अवश्य कर दिया है कि स्त्री ही स्त्री को आगे बढ़ाने में कार्य कर रही है।

इस शोध के माध्यम से अनेक शोध संभावनएँ भी जन्म ले रही है। प्रसंग स्त्री की स्थिति को सामाजिक दृष्टि से भी आंकने की आवश्यकता है। द्वितीय, औरत की परिवर्तनशील मानसिकता के कारणों को भी जानने की आवश्यकता है। तृतीय, औरत की इस वैचारिकता को स्त्री एवं पुरुष किया गया है। चतुर्थ औरतों को विभिन्न आर्थिक स्थितियों के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता है। जिससे औरतों की स्थिति और स्तर में भी बदलाव हो सके जो बयार चलना प्रारम्भ हुई है वह इसको स्पष्ट रूप से औरतो की स्थिति को बेहतर बनाया जा सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गोपाल राय, हिन्दी उपन्यास का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण (2002) पृष्ठ संख्या 427
2. गोपाल राय, हिन्दी उपन्यास का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण (2002) पृष्ठ संख्या 427
3. मंजूर एहतेशाम, दास्तान–ए–लापता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण (1995) पृष्ठ संख्या 227
4. मंजूर एहतेशाम, दास्तान–ए–लापता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण (1995) पृष्ठ संख्या 231
5. नासिरा शर्मा, ठीकरे की मंगनी किताब घर, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण (1989) पृष्ठ संख्या 40–41
6. नासिरा शर्मा, ठीकरे की मंगनी किताब घर, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण (1989) पृष्ठ संख्या 137
7. मेहरून्निसा परिवेज़, अकेला पलाश, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली संस्करण (1997) पृष्ठ संख्या 81
8. मंजूर एहतेशाम, दास्तान–ए–लापता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण (1995) पृष्ठ संख्या 147
9. वही, पृष्ठ संख्या 149
10. वही, पृष्ठ संख्या 152
11. नासिरा शर्मा, ठीकरे की मंगनी किताब घर, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण (1989) पृष्ठ संख्या 164
12. वही, पृष्ठ संख्या 197
13. मेहरून्निसा परिवेज़, कोरजा, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली संस्करण (1997) पृष्ठ संख्या 89
14. वही, पृष्ठ संख्या 89
15. नासिरा शर्मा, शाल्मली, किताब घर, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण (1987) पृष्ठ संख्या 48
16. नासिरा शर्मा, ठीकरे की मंगनी किताब घर, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण (1989) पृष्ठ संख्या 48
17. वही, पृष्ठ संख्या 193
18. वही, पृष्ठ संख्या 41
19. वही, पृष्ठ संख्या 82
20. वही, पृष्ठ संख्या 141
21. नासिरा शर्मा, ठीकरे की मंगनी किताब घर, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण (1989) पृष्क्ठ संख्या 48
22. नासिरा शर्मा, शाल्मली, किताब घर, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण (1987) पृष्ठ संख्या 104
23. वही, पृष्ठ संख्या 105

❑❑

41

नाटक का विधागत वैशिष्ट्य : उसकी रंगमंचीयता

डा० रेखा पतसारिया
एसोसिएट प्रोफेसर–हिन्दी विभाग
आगरा कॉलेज, आगरा, उ.प्र.

साहित्य एवं अन्य कलाएँ जीवन से जुड़ी होने के कारण चाहे भावगत या विषयगत समानता रखती हों परन्तु इस समानता के बावजूद वे सब स्वरूपगत भिन्नता अवश्य रखती हैं और इसी स्वरूपगत भिन्नता के कारण सभी विधाएँ अपनी एक अलग शिल्पगत विशिष्टता से पहचानी जाती हैं। एक साहित्यकार का कर्त्तव्य अपने भावों, विचारों एवं दृष्टि को कल्पना के माध्यम से शब्दों का जामा पहनाने के बाद समाप्त हो जाता हैं। रचनाकार के मन से निकल कर कोई भी साहित्यिक रचना पाठक अथवा श्रोता तक सीधे पहुँच जाती हैं। जहाँ तक नाटक का प्रश्न है अपने लिखित आलेख में निश्चय ही वह साहित्यिक विधा के अन्तर्गत गिना जा सकता हैं, किन्तु वह रूढ़ अर्थ में साहित्यिक विधा न होकर पुनर्प्रस्तुति मूलक विधा है। पुनर्प्रस्तुति मूलक होने के कारण नाटक अन्य साहित्यिक विधाओं से अलग हो जाता है, क्योंकि इसका हेतु पाठक न होकर, दर्शक होता है, जो नाट्य कला में बराबर की हिस्सेदारी निभाता है और उस नाट्यानुभव का सहभागी बनता है। जिसे नाटक एवं रंचमंच ने मिलकर प्रस्तुत किया है।''[1] नाटककार के गर्भ से निकल कर नाटक निर्देशक की गोद में पलता और पोषित होता है। तदुपरान्त पूर्ण परिपक्व होकर वो दर्शक तक पहुँचता है।

इसलिये नाटक मात्र लिखा जाकर अन्य साहित्यिक विधाओं की भाँति पूरा नहीं हो जाता, उसे पुनर्रचित किया जाता है फिर वह नयी सजधज के साथ रंगमंच पर प्रस्तुत होता है जिसमें वे तत्त्व भी समाहित हो जाते हैं जो लेखन के समय रचनाकार उसमें न तो कल्पित ही करता हैं, और न समाहित करता है। दृश्य विधान, प्रकाश प्रभाव, संगीत प्रभाव, घ्वनि प्रभाव, अभिनय वेशभूषा, रूपसज्जा इत्यादि प्रभाव रचनाकार नाटक में नहीं कल्पित करता वरन्, यह समस्त प्रभाव निर्देशक की कल्पना शक्ति से ही नाटक में प्रयुक्त किये जाते हैं।

इस प्रकार से नाटक लिखित रूप से प्रस्तुति के रूप में जब लाया जाता है तो उसका रूप ही परिवर्तन हो जाता है। वह एक कला रूप से दूसरी कला रूप में परिवर्तित हो जाता है। ''नाट्य लेखन की रचना के बाद नाटककार का कार्य समाप्त हो जाता है और नाट्य लेख नाटककार के हाथों से निकल कर निर्देशक के हाथों में पहुँच जाता हैं, जहाँ उसकी प्रस्तुति के व्यावहारिक बिन्दुओं पर कार्य आरम्भ होता हैं। निर्देशक अभिनेताओं, रंगकर्मियों की एक टीम तैयार करता है। नाट्यालेख की पुनर्व्यवस्था का निर्धारण करता है, और उसी के अनुसार अभिनेताओं की भूमिकाएँ बाँटता हैं। प्रस्तुति में सहायक अन्य कलाओं का संयोजन करता है, अभिनेताओं से नाट्याभ्यास कराता है तथा नाटककार के अभिप्रेत को नाट्यानुभव को रंगमंचीयता प्रदान कर दर्शकों की आशंसा के लिये प्रस्तुत करता है।''[2]

यह आवश्यक नहीं है कि नाटककार रंगमंच से जुड़ा हुआ हो और उसे रंगमच का व्यावहारिक ज्ञान हो पर वह अपनी कल्पना से कथा को ऐसे घटना सूत्रों के द्वारा चित्रित करता है, जो मंच पर दृश्य रूप में प्रस्तुति के लायक हों और दर्शक के लिये रोचक हो तो ऐसे में निर्देशक के लिये अपने पुनः प्रस्तुतिकरण में सरलता हो जाती है और यदि नाटककार रंगमंच से जुड़ा व्यक्ति होता है, तो बात सोने में सुहागे जैसी हो जाती है। सुशील कुमार सिंह द्वारा रचित 'सिंहासन खाली है' नाटक का जब प्रदर्शन देखा, तो ऐसा लगा कि निर्देशक की कल्पना–शक्ति अत्यन्त प्रखर है, परन्तु नाट्यालेख पढ़ने के बाद लगा कि निर्देशक ने तो कुछ किया ही नहीं है बल्कि ये कहा जा सकता है कि उसे कुछ करने की आवश्यकता ही अनुभव नहीं हुई होगी, क्योंकि नाटक में ही समस्त जरूरी

निर्देशकीय बिलकुल सही तरीके से दे रखे थे। इसी तरह मोहन राकेश के नाटकों के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। उनके प्रत्येक नाटक मंच को कल्पना में रख कर लिखे गये हैं। उन्हें किसी परिवर्तन के भी ज्यों का त्यों प्रदर्शित किया जा सकता है फिर भी अलग–अलग निर्देशकों ने उनके नाटकों को अपने–अपने ढंग से प्रस्तुत किया है। धर्मवीर भारती के नाटकों को हर निर्देशक ने अपने अलग ढंग से प्रस्तुत किया है। यह भी नाटक की ही विशेषता है कि उसमें इतनी गुंजाइश हो कि निर्देशक उसे अपने दृष्टिकोण से देखें और प्रस्तुत करें। ''नाटक में हर भाव, विचार, पात्र, स्थिति और वातावरण ऐसा होना आवश्यक है कि वह मूर्त और रूपायित हो सके, तभी वह रंगमंच पर काम आ सकता है और दर्शक वर्ग तक पहुँच सकता है।''[3]

पाश्चात्य समालोचक जे0एल0 स्टायन ने अपनी पुस्तक 'द ड्रामेटिक एक्सपीरियंस' में नाट्य या रंगमंच के दृश्य एवं श्रव्य तत्त्वों को बताते हुये नाट्य में कला के सभी रूपों का समाहार दिखाया है।[4] उन्होंने दृश्य और श्रव्य तत्त्वों को अलग–अलग व्याख्ययित और विश्लेषित किया है। यह ये सभी तत्त्व नाट्यालेख में न हों या इनकी संभावना भी न हो तो नाटक होते हुये भी नाटक नहीं रहता।

''नाट्य एक पूरे अनुभव का पुनर्सृजन होता है–कथा या चरित्र केवल वाहक है सिर्फ कथा या चरित्र के द्वारा नाटककार अनुभव की पुनर्सृष्टि नहीं करता बल्कि दृश्य के पूरे नाटकीय सृजन से वह अनुभव दर्शक को हासिल होता है। नाटक मंच पर घटनाओं का प्रस्तुतीकरण नहीं है, उसकी संरचना उसके कार्य से नियमित होती है।''[5] नाटककार दर्शक के मन में कल्पना के स्तर पर नाटक का बिम्ब खड़ा करता है, जिसके लिये हमेशा सम्वादों की ही आवश्यकता नहीं पड़ती। बल्कि अन्य तत्त्व भी मिलकर भाव सम्प्रेषण में सहायता देते हैं। चरित्रों और सम्वादों के बीच के सूत्रों में वह कार्य विकसित होता है। पाश्चात्य नाट्य समालोचक फ्रांसिस फर्गुसन ने नाटकीय कार्य को मानव की सहज प्रवृत्ति–अभिनयात्मिका वृत्ति से जोड़ा है। यही नाटक का मूल तत्त्व है– जिसमें कार्य को मूर्त आकारों (मुद्राओं, शारीरिक भंगिमाओं) में व्यक्त किया जाता है। यही नाटक को दृश्य में परिवर्तित करता है और दृश्यता को संभव बनाने के लिये ही रंगमंच नाटक के साथ अनिवार्य रूप से जुड़ा है। दृश्यता अथवा रंगमंचीयता के अभाव में नाट्यकृति अपूर्ण रह जाती है। यही नाटक का रचना वैशिष्ट्य है।

जहाँ तक भारतीय नाट्यशास्त्र की बात करें तो नाट्य का यह 'कार्य' (Action) नाटक के संबंध 'रस' के नाम से चर्चित है। उस 'रस' की सिद्धि के लिये सारे नाटकीय व्यापारों का संयोजन होता है। इसलिये भरत का नाट्य 'नाना भावोऽवसम्पत्र' 'नानवस्थान्तरात्मकम्', 'लोकवृत्तानुकरणं' है और इस 'रस' को दर्शक तक पहुँचाने के लिये ही कथा, चरित्र, रंगशिल्प, नृत्य अभिनेता, रंगभवन इत्यादि की व्यवस्था की जाती है और यह सम्पूर्ण कृत्य रस समेत नाट्य है। जो अन्य साहित्यिक विधाओं में नहीं होता है और नाटक को दूसरी विधाओं से विशिष्ट बनाता है। रंगमंचीय परिकल्पना के अभाव में नाट्य केवल पाठ्य नाटक रह जाता है। ''कथ्य और रंगमंच जब कृति में एक साथ अस्तित्व पाते हैं तभी वह 'नाट्य' कहा जाता है। 'कृति' की काव्यात्मक और रंगमंचगत सम्भावनाएँ अपने सम्पूर्णता में 'नाट्य' है।''[6]

संदर्भ सूची

1. साठोत्तरी हिन्दी नाटकों का रंगमंची अध्ययन, ले0 राकेश वत्स, पृ0–15
2. हिन्दी नाटक के इतिहास के सोपान, ले0 गोविन्द चातक, पृ0 145
3. नेमिचंद्र जैन, रंग दर्शन ;राधा कृष्णन प्रकाशन, नई दिल्ली, 1983
4. जे0एल0 स्टायन – द ड्रामेटिक एक्सपीरियंस, पृ0–37
5. हिन्दी नाट्य : प्रयोग के, 1965 संदर्भ में– डा0 सुषमा वेदी, पृ0 22
6. हिन्दी नाट्य : प्रयोग के संदर्भ में – डा0 सुषमा बेदी ,पृ0–27

❑❑

स्वामी विवेकानन्द के दार्शनिक विचारों का विश्लेषण

नीलम देवी यादव
शोध छात्रा–इतिहास विभाग
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ 226017

तेजी से वैज्ञानिक एवं तकनीकी युग में प्रवेश कर रहे भारत की बदलती हुई पृष्ठभूमि में पुराने मूल्यों का नीर–क्षीर विश्लेषण और उनकी प्रासंगिकता का विवेचन उतना ही जरूरी है जितना यह प्रश्न कि हमारे नये मूल्य किस अर्थ में पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के अभिन्न अंग होंगे और किन मायनों में भिन्न। यहाँ एक प्रश्न यह भी है कि क्या वास्तव में समाजवादी व्यवस्था ने विज्ञान और पूँजीवाद के गठजोड़ को समाप्त कर संस्कृति को नई दिशा दी है ?स्वामी विवेकानन्द के विचार इस विश्लेषण को कहाँ तक प्रभावित करते हैं?दरअसल आज हम वास्तविक समस्याओं का हल खोजने के बजाय अन्यत्र ही उसका समाधान ढूँढ रहे हैं। आज हमारी समस्याएँ राजनैतिक से कहीं अधिक सामाजिक भी हैं। आज जिस अर्थ में कुछ लोग या संगठन राष्ट्रवाद को परिभाषित कर रहे हैं वस्तुतः विवेकानन्द की दृष्टि में राष्ट्रवाद का वह अर्थ बिल्कुल नहीं था। राजेन्द्र यादव ने तो आज के सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को पश्चिमी उपनिवेशवादियों का "ओरियेन्टेलिज़्म" कहा है, जो अपनी सामाजिक बनावट में शुद्ध सामन्तवादी है क्योंकि वह गैर बराबरी और शोषण, दमन को धार्मिक आधार देता है।

भारतीय दर्शन की परम्परा में विवेकानन्द ने जीवन में तपस्या पर जोर दिया। आपने आजकल के युवक–युवतियों में व्यापक रूप से फैले हुए आलस्य, भोगवाद और अधिक से अधिक आराम की इच्छा के प्रति खेद प्रकट किया। आपका कथन है कि ''कभी–कभी सुख की अपेक्षा दुःख बड़ा शिक्षक होता है। यदि हम संसार के माहपुरूषों के चरित्र का अध्ययन करें, तो मैं कह सकता हूँ कि अधिकांश दशाओं में हम यही देखेंगे कि सुख की अपेक्षा दुःख ने और सम्पत्ति की अपेक्षा दरिद्रता ने ही उन्हें अधिक शिक्षा दी है तथा स्तुति की अपेक्षा निन्दा ने ही उनकी अन्तःस्थित ज्ञानाग्नि को अधिक प्रस्फुटित किया है। विलास एवं ऐश्वर्य की गोद में पलते हुए, गुलाब के पुष्पों की शैया पर सोते हुए तथा कभी भी आँसू बहाये बिना महान् पुरुष कौन हुआ है ? जब हृदय में वेदना की टीस होती है, जब दुःख का तूफान चारों दिशाओं में घुमड़ आता है, जब यह ज्ञात होता है कि अब और कभी प्रकाश दिखाई नहीं देगा, जब आशा तथा साहस नष्टप्राय हो जाते हैं, उस समय इस भयानक आध्यात्मिक झंझावात के बीच अन्तर्निहित ब्रह्मज्योति प्रकाशित होती है।'' इस तरह स्वामी विवेकानन्द के अनुसार जीवन के संघर्ष में तपकर ही मनुष्य की आत्मा प्रखर होती है। इसके लिए आवश्यक हो जाता है कि संस्कृति और धर्म को सामयिक संदर्भों में परिभाषित कर नये संगमों तक ले जाना होगा। जो वास्तव में स्वामी विवेकानन्द चाहते थे। स्वामी जी ने मनुष्य मात्र को धर्म की संकीर्णताओं से ऊपर उठकर एक ऐसे परिवेश देने की वकालत की। जहाँ विषमताओं का अंत हो। रूढ़ियों से मुक्त परम्परा और संस्कृति हो। विभेद को जन्म देने वाली परम्परा और इतिहास का अन्त हो। हम यह कहना चाहूँगा कि आज हमारे सामने जो सांस्कृतिक संकट और विचारों की शून्यता का घटाटोप पैदा हो रहा है, यकीनी तौर पर विवेकानन्द के जीवन दर्शन में हम उसका वस्तुनिष्ठ समाधान ढूंढ सकते हैं। भारत में स्वामी विवेकानन्द वेदान्त ज्ञान के सबसे बड़े मर्मज्ञ एवं प्रखर प्रवक्ता थे। स्वामी विवेकानन्द ने वैज्ञानिक धरातल में भी आत्मा की प्रस्तुति बताई कि समय, आकाश, स्थान, कार्य, कारण, शरीर रूप हैं और आत्मा अशरीर, इससे परे है। वह समय और स्थान से परे है और इसीलिए कार्य कारण से परे है। यह परिभाषित करता है कि आत्मा भी अनन्त है। फिर दूसरी अवधारणा कि यदि वह अनन्त है तो यह द्वैत नहीं हो सकता, क्योंकि दो अनन्त नहीं होते, अनन्त एक ही होता है, यही भारतीय दर्शन का अद्वैत ज्ञान है। इस तरह यदि आत्मा एक ही है तो हर शरीर में

अलग अलग आत्मा होगी, यह निराधार है, अग्राह्य है, असत्य है। सभी की एक ही आत्मा स्वरूप है। इस तरह वास्तविक मनुष्य एक है और अनन्त आत्मा है, जो सभी जगह सर्वव्याप्त है। आदमी को अलग देखना एक समीकरण है उस सर्वव्याप्त अस्तित्व का। मानवता के बारे में आपने कहा कि वह एक ही है और अनन्त रूप है। सर्वव्याप्त है और दिखने वाला दृश्य मनुष्य कितना भी बड़ा हो, उस अनन्त मनुष्य की प्रतिछाया है जो निराकार है, कार्य कारण से परे है, समय स्थान से निर्बाधित है, पूर्ण स्वतंत्र है। वह कभी न बाधित था, न रहेगा, दृश्य मनुष्य, समय, स्थान कार्य कारण से आबद्ध है। यह हमारी आत्मा का यथार्थ है, उसका सर्वव्याप्त होना है, उसका अनन्त बोध और आध्यात्मिक स्वरूप है। यदि आत्मा अनन्त है तो न यह जन्मदाता है, न मरता है। अनन्त आकाश में न सापेक्षता है न ऊपर नीचे है न आना जाना है न यह शुरू होता न खत्म होता है। शरीर यथार्थ मनुष्य नहीं है। आत्मा, मन दिमाग नहीं, मन तरंगों की तरह है, सोता है, जागता है। आत्मा उससे परे है, जो निर्विकाल है और उसकी अनुभूति आध्यात्मिक है।

भारत में सम्प्रति जितने दार्शनिक सम्प्रदाय हैं, वे सभी वेदान्त दर्शन के अन्तर्गत आते हैं। वेदान्त दर्शन की बहुविध प्रकार से व्याख्याएँ की गयी हैं और वे प्रगतिशील भी रहीं हैं। वेदान्त का शाब्दिक अर्थ है वेद का अन्त। स्वामी जी ने भारतवासियों से कहा कि वेदान्त के सब महान तत्त्व केवल अरण्यों या पर्वतों की गुफाओं में ही सीमित न रहेंगे वरन् न्यायालयों में, उपासना गृहों में, गरीबों की कुटियों में, साधारण व्यक्तियों के घरों में, छात्रों की पाठशाला में, सर्वत्र वे तत्व आलोकित तथा कार्यरूप में परिणत होंगे।

विवेकानन्द स्वामी जी ने अंततः अपने व्याख्यानों के माध्यम से वेदान्त दर्शन को सर्वश्रेष्ठ धर्म दर्शन सिद्ध कर दिया। भारत की धार्मिक चेतना ने उनके द्वारा पश्चिम में स्वयं को अभिव्यक्त किया। स्वामी जी ने सम्पूर्ण भारत वर्ष को अपनी भावधारा से एक सूत्र में बाँध दिया। स्वामी विवेकानंद जी के द्वारा भारतीय संस्कृति, वेदान्त–दर्शन और हिन्दू–धर्म की व्याख्या सुनकर एक ओर पाश्चात्य जगत में भारत के सम्बन्ध में फैली निर्मूल भ्रान्तधारणाओं का अन्त हुआ तो दूसरी ओर सम्पूर्ण हिन्दू जगत में नवीन धार्मिक चेतना, आत्मगौरव और आत्मविश्वास का संचार हुआ और यही कारण था कि जब स्वामी जी अमेरिका से भारत लौटे तो देशवासियों ने उन्हें सिरमौर बना लिया।

स्वामी विवेकानन्द जी एक आध्यात्मवादी महान सर्जनात्मक आत्मा थे, आपके स्वभाव में ब्रह्म साक्षात्कार की गहरी आकांक्षा दिखाई देती थी। आप प्रधानतः भिक्षु, धर्मोपदेशक तथा संन्यासी थे किन्तु आपके हृदय में जनता के लिए प्रगाढ़ प्रेम था। इसीलिए आपने भारत के सामाजिक तथा राजनीतिक पतन के कारणों का अन्वेषण किया और सामाजिक विषमताओं के उन्मूलन के उपाय बतलाए। नवजागरण के प्रतीक युवा स्वामी विवेकानन्द जी सहिष्णुता एवं समानता के भी पक्षधर थे। वह सबको साथ लेकर चलने में विश्वास रखते थे। आपने समाज सुध ार का रास्ता समानता के जरिये भेदभाव को दूर रखकर सुझाया। स्वामी विवेकानन्द जी समता एवं सहिष्णुता की बात करते हुए कहते हैं कि क्या नानक ने मुसलमान और हिन्दू दोनों को समान भाव से शिक्षा देकर समाज में एक नई व्यवस्था लाने का प्रयन्त नहीं किया?इन सब ने प्रयत्न किया और उनका काम आज भी जारी है। इसको क्रियान्वित करने के लिए स्वामी विवेकानंद ने सामाजिक तथा राजनीतिक विचारों को वेदान्ती धारणा से जोड़ा,आपके अनुसार ''अन्तरात्मा सर्वशक्तिमान तथा सर्वोच्च है, इसलिए आपने पीड़ित जनता को अभय, एकता तथा शक्ति का क्रांतिकारी संदेश दिया।'' स्वामी विवेकानन्द जी उन वर्गगत तथा जातिगत श्रेष्ठता के विचारों तथा अत्याचार का उन्मूलन करना चाहते थे जिन्होंने हिन्दू समाज को शिथिल, स्तरबद्ध तथा विघटित कर दिया। स्वामी विवेकानंद ने अस्पृश्यता की बुराइयों की कटु भर्त्सना की और पाक–शाला तथा पाक–भाण्डों पर आधारित धर्म–कर्म की निंदा की। आप समाज का सांगोपांग कायाकल्प करना चाहते थे, किन्तु इस आग्रह के साथ कि यह सब कुछ आध्यात्मिक आधार पर किया जाय। एक सिद्धान्तकार के नाते स्वामी विवेकानन्द जी ने वर्ण विभाजन को बुद्धिसंगत सिद्ध करने का प्रयत्न किया। आपका मानना था कि–''जिस प्रकार हर व्यक्ति में सत्व, रजस और तमस में से कोई न कोई गुण न्यूनाधिक मात्रा में विद्यमान रहता है। जिससे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र बनते हैं। किन्तु

कभी–कभी उसमें इनमें से किसी एक गुण का विभिन्न अंशों में प्राधान्य रहता हैं और तदनुसार उसकी अभिव्यक्ति होती है अतः किसी व्यक्ति के लिए एक जाति से दूसरी जाति में परिवर्तन होना संभव है अन्यथा विश्वामित्र ब्राह्मण और परशुराम क्षत्रिय कैसे बन जाते। इस दृष्टि से आपका मानना था कि ज्ञान, रक्षा, आर्थिक क्रियाकलाप तथा समानता निश्चय ही वांछनीय हैं। किन्तु इस प्रकार का समन्वय स्थापित करना कठिन है, क्योंकि हर वर्ग शक्ति को अपने हाथों में केन्द्रित करना चाहता है, और यही पतन का कारण है। ब्राह्मणों ने ज्ञान पर एकधिकार कर लिया और अन्य वर्णों को संस्कृति के क्षेत्र में वहिष्कृत कर दिया। क्षत्रिय क्रूर तथा अत्याचारी हो गए। वैश्य ''शांति पूर्वक कुचलने और रक्त चूसने की शक्ति की दृष्टि से अत्यन्त भयावह है। स्वामी विवेकानन्द जी ने उच्च जातियों द्वारा किए गए उत्पीड़न और दमन के विरुद्ध विद्रोह किया। आपने जाति व्यवस्था की बुराइयों की कड़े शब्दों में भर्त्सना की। स्वामी विवेकानन्द जी ने इस घृणत्तम कटुता और क्रोध को निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया कि–भारत के उच्च वर्गों क्या, अपने को जीवित समझते हो तुम तो केवल दस हजार वर्ष पुरानी ममियाँ हो। भारत में यदि किसी मे तनिक सी प्राण शक्ति शेष रह गई है तो वह उन लोगों में है जिन्हें तुम्हारे पूर्वज चलती फिरती लाश समझकर घृणा करते थे। चलती–फिरती लाश तो वास्तव में तुम हो, भारत के उच्च वर्गों। माया के इस जंगल में असली माया तुम हो, तुम्हीं गूढ़ पहेली और मरुस्थल की मृगमरीचिका हो। तुम भूतकाल के प्रतिनिधि हो, तुम अतीत के विभिन्न रूपों के अव्यवस्थित जमघट हो, लोगों को तुम वर्तमान में भी दृष्टिगोचर प्रतीत होते हो, यह तो मन्दाग्नि से उत्पन्न दुःस्वप्न है। तुम शून्य हो, तुम भविष्य की सारहीन नगण्य वस्तु हो। स्वप्न–लोक के निवासियों, तुम अब भी क्यों लड़खड़ाते हुए घूम रहे हो ? तुम पुरातन भारत के शव के मांसहीन और रक्तहीन अस्थिपंजर हो, तुम शीघ्र ही राख बनकर हवा में विलीन क्यों नहीं हो जाते? तुम अपने को शून्य में विलीन कर दो और तिरोहित हो जाओ, और अपने स्थान पर नये भारत का उदय होने दो। उसे उठने दो, हल को मूँठ पकड़े हुए किसान की कुटिया में से, मछुओं, मोचियों और भंगियों की झोंपड़ियों में से। उठने दो उसे परचूनी वाले की दुकान से और पकौड़े बेचने वाले की भट्टी से। उठने दो उसे कारखानों से, हाटों से और बाजारों से। उसे कुंजों, वनों, पहाड़ियों और पर्वतों से उठने दो। इन साधारण जनों ने हजारों वर्षों तक उत्पीड़न सहन किया है और बिना शिकायत किये और बड़बड़ाये सहन किया है, जिसके परिणामस्वरूप उनमें आश्चर्यजनक सहनशक्ति उत्पन्न हो गयी है। वे अनन्त दुःखों को सहते आये हैं जिसने उन्हें अविचल शक्ति प्रदान कर दी है। मुठ्ठी भर दोनों पर जीवित रहकर वे संसार को झकझोर सकते हैं। उन्हें रोटी का आधा टुकड़ा ही दे दीजिए, और फिर तुम देखोगे कि सारा विश्व भी उनकी शक्ति को सभालने के लिए पर्याप्त नहीं होगी। उनमें रक्तबीज की अक्षय शक्ति विद्यमान है। इसके अतिरिक्त उनमें आश्चर्यजनक शक्ति है जो शुद्ध तथा नैतिक जीवन से उपलब्ध होती है, और जो संसार में अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलती। ऐसा शान्तिपूर्णता, ऐसा सन्तोष, ऐसा प्रेम, शान्तिपूर्वक तथा निरन्तर कार्य करते रहने की ऐसी शक्ति और काम के समय ऐसे सिंहतुल्य पौरुष का प्रदर्शन–यह सब तुम्हें कहाँ मिलेगा ? अतीत के अस्थिपंजरो। यहाँ तुम्हारे समक्ष तुम्हारे उत्तराधिकारी खड़े हैं जो भविष्य का भारत है। अपनी तिजोरियों को और अपनी उन रत्नजटिल मुँदरियों को उनके बीच, जितनी शीघ्र हो सके, फेंक दो, और तुम हवा में विलीन हो जाओ जिससे तुम्हें भविष्य में कोई देश देख न सके–तुम केवल अपने कान खुले रखो। जिस क्षण तुम तिरोहित ही जाओगे उसी क्षण तुम नवजाग्रत भारत का उद्घाटन–घोष सुनोगे।''

यह शरीर परमाणुओं से बना है, जिन्हें हम भौतिक पदार्थ कहते हैं और वह जड़ और अचेतन है। उसी प्रकार जिसे वेदान्ती सूक्ष्म शरीर कहते हैं, वह भी जड़ और अचेतन है। उनके कहने के अनुसार वह जड़ परन्तु सूक्ष्म है, अत्यन्त सूक्ष्म परमाणुओं से बना है– इतने सूक्ष्म कि किसी भी सूक्ष्मदर्शक यन्त्र (माईक्रोस्कोप) से वे नहीं दिखते। फिर उसका क्या कार्य है?वह सूक्ष्म शक्तियों का आधार है। जैसा कि यह स्थूल शक्तियों का आधार है, वैसे ही सूक्ष्म शरीर सूक्ष्म शक्तियों का आधार है, जिन्हें हम 'विचार' करते हैं। यह विचारशक्ति विभिन्न रूपों में प्रकाशित होती रहती है। प्रथम तो शरीर है, जो स्थूल जड़ पदार्थ हैं और स्थूल शक्तिमय है। जड़ पदार्थ के बिना शक्ति

नहीं रह सकती। उसके रहने के लिये जड़ पदार्थ चाहिये ही, इसीलिये स्थूलतर शक्तियाँ शरीर में काम करती हैं; और वे ही शक्तियाँ सूक्ष्मतर बन जातीं हैं; वह शक्ति जो स्थूल रूप में काम कर रहीं हैं, वहीं सूक्ष्म रूप मे कार्य करती हैं और तब विचार में परिणत हो जाती है। इनमें कोई भेद नहीं है, केवल इतना ही है कि एक उसी वस्तु का स्थूल और दूसरा सूक्ष्म स्वरूप है। इस सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर में भी कोई पार्थक्य नहीं है। सूक्ष्म शरीर भी भौतिक है, केवल इतना ही कि वह अत्यन्त सूक्ष्म जड़ वस्तु है। जैसे यह स्थूल शरीर स्थूल शक्तियों के कार्य का साधन है, ठीक उसी तरह सूक्ष्म शक्तियों के कार्य का साधन यह सूक्ष्म शरीर है।

अब प्रश्न यह है कि ये सब शक्तियाँ कहाँ से आती हैं ? वेदान्त दर्शन के अनुसार प्रकृति में दो सत्ताएँ हैं– एक आकाश कहलाती है– वह पदार्थ है, अत्यन्त सूक्ष्म; और दूसरी प्राण कहलाती है–वह शक्ति है। जो कुछ भी हम देखते हैं, अनुभव करते हैं या सुनते हैं–जैसे वायु, पृथ्वी या और भी कुछ– वे सब भौतिक पदार्थ हैं। इसी आकाश से उत्पन्न हुये हैं। वह आगे चलकर प्राण की क्रिया से परिवर्तित होते होते सूक्ष्म से सूक्ष्मतर या स्थूल से स्थूलतर बनता रहता है। आकाश के समान प्राण भी सर्वव्यापी है और सभी वस्तुओं में ओतप्रोत है। आकाश जल के समान है और सृष्टि की अन्य सभी वस्तुएँ उसी जल से बने हुये हिमखण्ड के समान जल में तैर रहे हैं। प्राण ही वह शक्ति है जो इस आकाश को इन सभी विभिन्न रूपों में परिवर्तित करती है। स्थूल शरीर आकाश से बना हुआ उपकरण है, जिसके द्वारा प्राण स्थूल रूपों में जैसे स्नायुओं के संचालन, चलने, बैठने, बोलने आदि में प्रकट होता है। वह सूक्ष्म शरीर भी आकाश से अत्यन्त सूक्ष्म आकाश से उसी प्राण के विचार रूपी सूक्ष्म भाव में प्रकट होने के लिये बना है। अतः प्रथम तो यह स्थूल शरीर है उसके परे यह सूक्ष्म या लिंग शरीर है और उसके परे जीव, यथार्थ मनुष्य है। जैसे नख कई बार काटे जा सकते है और तो भी वे हमारे शरीर के भाग हैं, अलग नहीं, ठीक इसी प्रकार का सम्बन्ध स्थूल देह और सूक्ष्म देह का है। ऐसी बात नहीं है कि मनुष्य का सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर होता है; देह तो एक ही है, पर जो अंश अधिक समय तक टिकता है, वह सूक्ष्म देह है और जो शीघ्र नष्ट हो जाता है वह स्थूल है। जैसे मैं इस नख को अनेकों बार काट सकता हूँ ठीक उसी तरह मैं लाखों बार इस स्थूल देह का त्याग करता हूँ, पर सूक्ष्म देह बना ही रहेगा। द्वैतवादियों के मत के अनुसार, यह जीव या यथार्थ मनुष्य अत्यन्त सूक्ष्म, अणु है। यहाँ तक हम देखते हैं कि मनुष्य ऐसा व्यक्ति है, जिसका प्रथम तो स्थूल देह है जो अति शीघ्र नष्ट हो जाता है और तत्पश्चात् उसकी सूक्ष्म देह है जो युगयुगान्तरों तक बना रहता है और तत्पश्चात् जीव है। वेदान्त मत के अनुसार यह जीव ठीक वैसा ही अनन्त है जैसा कि ईश्वर। प्रकृति भी अनन्त है, पर वह परिवर्तनशील अनन्त सत्ता है। प्रकृति के तत्त्व– प्राण और आकाश– अनन्त हैं, पर उनका चिरकाल विभिन्न रूपों में परिवर्तन होता रहता है; पर जीव आकाश से या प्राण से सृष्टि नहीं हुआ है। वह तो भौतिक पदार्थ नहीं है और इसी कारण सब काल रहने वाला है। वह प्राण और आकाश के किसी मिश्रण का परिणाम नहीं है; और जो मिश्रण का परिणाम नहीं हैं वह कभी नष्ट नहीं किया जा सकता, क्योंकि कारण–स्वरूप को पुनः प्राप्त होना ही नाश है। स्थूल देह आकाश और प्राण से बनी हुई संमिश्रित वस्तु है, अतः वह विघटित, नष्ट हो जायेगी। सूक्ष्म देह भी दीर्घ काल के बाद नष्ट नहीं होती। उसके कभी उत्पन्न न होने का भी यही कारण है। किसी अमिश्र तत्त्व की उत्पत्ति कभी नही हो सकती। वही युक्ति यहाँ भी लागू है; जो मिश्र वस्तु है उसी की उत्पत्ति होती है। सम्पूर्ण प्रकृति, जिसमें लाखों और करोड़ों आत्माएँ हैं ईश्वर की इच्छा के वशवर्ती है। ईश्वर सर्वव्यापी, सर्वदर्शी, निराकार विभु है और वह निरन्तर प्रकृति द्वारा क्रियाशील है। वह सम्पूर्ण प्रकृति उसी के वश में है। वही नित्य विधाता है। द्वैतवादियों का यही मत है। तब यह प्रश्न उठता है कि यदि इस सृष्टि का विधाता ईश्वर है, तो उसने इस प्रकार की दुष्ट सृष्टि की उत्पत्ति क्यों की?हमें दण्ड देने काउसका अभिप्राय नहीं है। मनुष्य दरिद्र, अंधा या और कोई दोषयुक्त जन्म लेता है इसका कारण क्या है?उसने इस प्रकार के जन्म लेने के पूर्व कुछ किया था। जीव नित्य काल से रहा आया है, वह कभी उत्पन्न नहीं किया गया था। वह सर्वदा कई प्रकार के हर कर्म करता है, हम जो कुछ करते हैं, उसकी प्रतिक्रिया हम पर होती है। अगर हम शुभ कर्म करते हैं, तो सुख मिलेगा और अशुभ कर्म करते हैं तो दुःख मिलेगा। इसी प्रकार जीव सुख

और दुःख प्राप्त करता जाता है और भिन्न भिन्न प्रकार के सब कर्म करता जाता है।

जब शुभ कर्मों द्वारा उसके सभी पापों और दुष्कर्मों का नाश हो जाता है तब जीव पुनः शुद्ध हो जाता है और इस प्रकार शुद्ध होकर वह देवयान को चला जाता है। उसकी वचनेन्द्रिय मन में प्रविष्ट हो जाती है। आप शब्दों के बिना चिन्तन नहीं कर सकते। जहाँ चिन्तन है, वहाँ शब्द होना ही चाहिए। जैसे ही शब्द मन में प्रवेश करते हैं, वैसे ही मन प्राण में परिणत हो जाता है और प्राण जीव में, तब जीव शीघ्र देह के बाहर निकलकर सैर प्रदेश को चली जाती है। इस विश्व में एक के बाद दूसरे अनेक लोक हैं। यह पृथ्वी भूलोक है, जिसमें चन्द्र, सूर्य और तारागण हैं। उसके परे सूर्यलोक है और उसके उस पार दूसरा लोक है, जो चन्द्रलोक कहलाता है। उसके परे विद्युत्लोक है और जब जीव वहाँ पहुँचता है, तब एक दूसरा अमानव जीव, जो पहले ही पूर्ण है, उसका स्वागत करने आता है और उसे दूसरे लोक, परमोक्ष लोक में, जिसका नाम ब्रह्मलोक है, वहाँ ले जाता है। वहाँ जीव नित्य काल निवास करता है और पुनः जन्म या मरण को प्राप्त नहीं होता। विश्व का केवल एक ही विधाता है और वह है ईश्वर। कोई भी ईश्वर नहीं बन सकता; द्वैतवादियों की धारणा है कि यदि तुम कहते हो कि तुम ईश्वर हो, तो वह ईश्वर की घोर निन्दा है। उत्पत्ति करने की शक्ति के सिवाय अन्य सभी शक्तियाँ जीव को प्राप्त हो जातीं हैं और यदि जीव देह धारण करके संसर के विभिन्न भागों में कार्य करना चाहे, तो कर सकता है। यदि वह जीव सभी देवताओं को अपने सम्मुख उपस्थित होने की आज्ञा दे, अगर वह अपने पूर्वजों को बुलाना चाहे, तो वे सभी उसकी आज्ञा के अनुसार आ जाते हैं। उसकी शक्तियाँ ऐसी रहतीं हैं कि उसे अब कोई शेष नहीं रहता है और यदि वह चाहे तो अनन्त काल ब्रह्मलोक में निवास कर सकता है। यही वह उच्चगति–प्राप्त पुरुष है, जो ईश्वर के प्रेम को प्राप्त कर चुका है, जो पूर्णतः निःस्वार्थ, पूर्णतः शुद्ध बन गया है, जिसने अपनी समस्त वासनाओं का परित्याग कर दिया है और जो ईश्वर की पूजा और उसके प्रति अनुराग करने के सिवाय और कुछ नहीं करना चाहता। दूसरे और भी ऐसे हैं, जो इतनी उच्चावस्था को नहीं पहुँचे हैं; जो सत्कार्य करते हैं, परन्तु बदले में कुछ प्राप्त करना चाहते हैं। आपका मानना हैं कि गरीबों को वे इतना दान करेगें, पर बदले में वे स्वर्ग को जाना चाहते हैं। जब वे मरते हैं, तो उनकी कौन सी गति होती है ? बाचा–शक्ति मन में प्रविष्ट हो जाती है, मन प्राण में और प्राण जीव में प्रवेश करता है। जीव निकल कर चन्द्रलोक को जाता है और वहाँ वह दीर्घकाल तक बहुत सुख में रहता है। जब तक उसके पुण्य कर्मों का प्रभाव बना रहता है, तब तक वहाँ वह सुख भोगता है, और जब पुण्य कर्मों का क्षय हो जाता है, तब वह पुनः नीचे उतरता है और इस पृथ्वी पर अपने कार्यों के अनुसार जन्म ग्रहण करता है। चन्द्रलोक में जीव उस अवस्था को पहुँच जाता है, जिसे हम 'देवता' कहते हैं तथा ईसाई और मुसलमान देवदूत कहते हैं। ये 'देव' कुछ विशिष्ट पदों के नाम हैं। उदाहरणार्थ, इन्द्र–देवताओं का राजा– एक पद का नाम है। सहस्रों मनुष्य उस पद को प्राप्त करते हैं। जब कोई पुण्यशील पुरूष, जिसने सर्वश्रेष्ठ वैदिक कर्मों का अनुष्ठान कर लिया है, मृत्यु को प्राप्त होता है, त बवह देवताओं का राजा बन जाता है। उस समय तक पुराना इन्द्र नीचे उतरकर मनुष्य बन गया रहता है। जैसे यहाँ राजा बदलते रहते हैं। उसी प्रकार देवताओं को भी मरना पड़ता है। स्वर्ग में सभी मरेंगे। मृत्युरहित स्थान एक ब्रह्मलोक ही है, जहाँ न जन्म है और न मृत्यु। इस प्रकार जीव स्वर्ग को जाते हैं तथा जिस समय वहाँ दैत्य लोग उनका पीछा करते है, उस समय को छोड़कर शेश समय वे सुखपूर्वक रहते हैं हमारी पौराणिक कथाओं में ऐसे दैत्यों का वर्णन है, जो कभी–कभी देवगणों को सताते हैं। सभी पुराणों में पढ़ते है कि ये दैत्य और देव किस प्रकार लड़े, दैत्यों ने कभी–कभी देवों पर विजय प्राप्त की, यद्यपि कई बार ऐसा दिखता है कि दैत्यों ने इतने क्रूर कर्म नहीं किये जितने कि देवों ने। उदाहरणार्थ, सभी पुराणों में देवता स्त्रीलम्पट पाये जाते हैं। इस प्रकार जब उनके पुण्य का फल समाप्त हो जाता है, तब वे पुनः नीचे गिरते हैं। मेघों के मार्ग से वृष्टि के द्वारा आकर किसी अन्न या पौधे में वे प्रविष्ट हो जाते हैं और जब मनुष्क्य उस अन्न या पौधे को खाता है, तब उसकी देह में पहुँच जाते हैं। पिता उन्हें वह भौतिक सामग्री देता है, जिसमें से वे अपने कर्मों के उपयुक्त देह धारण कर लें। ज बवह देह उनके लायक नहीं रह जाती तब उन्हें अपने लिये अन्य देह निर्माण करनी पड़ती है। अब हम यहाँ बहुत

से दुष्ट लोग देखते हैं जो सभी तरह के राक्षसी कर्म करते हैं। वे फिर पशु होकर जन्म लेते हैं और यदि वे बहुत बुरे हैं, तो वे अति नीच पशु का जन्म लेते हैं या पेड़–पत्थर आदि बन जाते हैं।

देव योनि में वे कुछ भी कर्म नहीं करते; केवल मनुष्य योनि ही कर्म योनि है। कर्म का अर्थ है ऐसा काम जिसका कोई फल हो। जब मनुष्य मरता है और देव बन जाता है, तब तो उसका समय केवल सुख भोगने का ही रहता है उस समय वह नये कर्म नहीं करता। वह तो उसके पूर्व–कृत शुभ कर्मों का पारितोश्रिक है; वह केवल भोग–योनि ही है। जब पुण्य कर्मों का क्षय हो जाता है, तब अवशिष्ट कर्मों का फल मिलना प्रारम्भ होता है और तब वह नीचे पृथ्वी पर उतरता है और पुनः मनुष्य बन जाता है। यदि वह बहुत अच्छे कर्म करता है और शुद्ध हो जाता है, तो वह ब्रह्मलोक को प्राप्त होकर पुनः यहाँ नही लौटता।

नीच योनियों से विकास प्राप्त करते समय जीव कुछ काल तक पशुयोनि में रहता है, और कुछ समय बाद पशु मनुष्य बन जाता है। जैसे–जैसे मनुष्यों की संख्या बढ़ती जा रही है, वैसे ही वैसे पशुओं की घट रही है यह बात सार्थक है। पशु–आत्माएँ सभी मनुष्य बन रहीं हैं। पशुओं के बहुतेरे वर्ग पहले ही मनुष्य बन चुके हैं; अन्यथा वे कहाँ चले गये?

वेदों में नरक की कोई चर्चा नहीं है, पर हमारे पुराणों में, जो धर्म में उनके बाद के ग्रन्थ हैं, यह विचार आया कि नरकों का सम्बन्ध जोड़े बिना कोई धर्म सर्वागींण नहीं हो सकता। अतः सभी प्रकार के नरकों की कल्पना की गई। इन नरकों में से कुछ में तो मनुष्यों को चीरकर उनके दो टुकड़े कर दिये जाते हैं और उन्हें कुचल–कुचल कर कष्ट दिया जाता है, तो भी वे नहीं मरते। वहाँ उनको लगातार अत्यन्त दुःख पहुँचाया जाता है, पर ये ग्रन्थ इतना कहने की दया तो करते हैं कि यह सब केवल कुछ काल के लिये ही रहता है। उस अवस्था में दुष्कर्मों का फल भोग लिया जाता है और भोग पूर्ण होने पर पुनः पृथ्वी पर आकर नया अवसर प्राप्त होता है।

इसके पश्चात उच्चतर वेदान्त तत्वज्ञान सामने आता है। आपका कहना है कि ऐसा नहीं हो सकता। इस विश्व का उपादान कारण तथा निमित्त कारण दोनों ईश्वर ही हैं। यदि आप कहते हैं कि ईश्वर एक अनन्त व्यक्ति है, जीवात्मा भी अनन्त है और प्रकृति भी अनन्त है, तब आप इन अनन्तों की संख्या एवं अमर्यादा बढ़ा रहे हैं। यह तो बिलकुल असम्भव बात है। आप तर्कशास्त्र का विध्वंस कर रहे हैं। अतः ईश्वर ही इस विश्व का उपादान तथा निमित्त दोनों प्रकार का कारण है। वह इस विश्व को अपने में से ही बाहर प्रकट करता है। तब यह कैसी बात है कि ईश्वर ही ये दीवारें और यह मेज बन गया है, ईश्वर ही शूकर, हत्यारा और जो कुछ इस संसार में नीच तथा क्षुद्र वस्तुएँ हैं, वह सब बन गया है। हम तो कहते हैं कि ईश्वर पवित्र है। तब वह इन सब नीच वस्तुओं के रूप में अधःपतित कैसे हो सकता है? हमार उत्तर यह है कि ठीक वैसे ही जैसे हम आत्मा हैं और हमारी देह है और एक दृष्टि से तो यह देह मुझसे भिन्न नहीं है, तो भी मैं सच्चा। मैं यथार्थ में देह नहीं हूँ। उदाहरणार्थ मै। कहता हूँ मैं बालक हूँ, मैं युवक हूँ, या वृद्ध हूँ, पर मेरी आत्मा में कोई परिवर्तन नहीं होता। आत्मा तो बनी रहती है। उसी प्रकार समस्त विश्व जिसमें सम्पूर्ण प्रकृति और असंख्य आत्माएँ हैं– मानों ईश्वर की अनन्त देह है। वह उस सम्पूर्ण विश्व में ओतप्रोत है। वही अकेला अपरिवर्तनशील है, पर प्रकृति तो बदलती रहती है और आत्माएँ भी। प्रकृति और जीवात्मा के परिवर्तन का उस ईश्वर पर कोई परिणाम नहीं होता। प्रकृति किस प्रकार बदलती है?अपने रूपों में; वह नये–नये रूप धारण करती है। पर आत्मा उस तरह नहीं बदलती। आत्मा ज्ञान की न्यूनाधिकता से ही घटती और बढ़ती है। दुष्कर्मों से आत्मा संकुचित हो जाती है। ऐसे कर्म जो यथार्थ में स्वाभाविक ज्ञान को तथा आत्मा की पवित्रता को घटाते हैं दुष्कर्म कहे जाते हैं। पुनश्च ऐसे कर्म जो आत्मा की स्वाभाविक महिमा को प्रकट करते हैं, सत्कर्म कहे जाते हैं। ये सभी आत्माएँ शुद्ध थीं पर वे संकुचित हो गई हैं; ईश्वर की दया से और सत्कर्म करने से वे पुनः विकसित होकर अपनी सहज शुद्धता को प्राप्त कर लेंगी। हर एक को वह अवसर प्राप्त है और अन्त में प्रत्येक का उद्धार होना निश्चित है, पर इस विश्व का अन्त नहीं होगा; क्योंकि वह तो अनन्त है। यह दूसरा मत है। पहला मत द्वैतवाद कहा जाता है। दूसरे मत में यह धारणा है कि ईश्वर, आत्मा और प्रकृति हैं, तथा आत्मा

और प्रकृति ईश्वर की देह है और इसी कारण ये तीनों मिलकर एक ही सत्ता है। इससे आध्यात्मिक विकास की उच्चतर अवस्था सूचित होती है और इसका नाम है 'विशिष्टाद्वैत'। द्वैतवाद में विश्व ईश्वर संचालित एक बड़ा यन्त्र माना गया है और विशिष्टाद्वैत में वह एक ऐसी देह मानी गयी है जिसके अन्तर में परमात्मा प्रविष्ट है।

सबसे अन्त में अद्वैतवादी हैं। वे भी यह प्रश्न उठाते हैं कि ईश्वर ही इस विश्व का उपादान कारण तथा निमित्त कारण दोनों ही होना चाहिए। ऐसा होने पर तो, ईश्वर ही यह सम्पूर्ण विश्व बन गया है और यह अस्वीकार करने की कोई गुंजाइश नहीं है। जब ये दूसरे लोग कहते हैं कि ईश्वर आत्मा है और विश्व उसकी देह है और देह परिवर्तनशील है, पर ईश्वर में परिवर्तन नहीं होता तो ये सब बातें अद्वैतवादी के मत में निरी अज्ञता हैं, क्योंकि यदि वैसा ही हो, तो फिर ईश्वर को इस विश्व का उपादान कारण कहने का क्या अर्थ है?उपादान कारण तो यह है कि कारण ही कार्य बन जाता है; कार्य और कुछ नहीं होता, वह तो कारण का ही दूसरा रूप है। जहाँ कहीं तुम्हें कार्य दिखाई देता है, वह कारण की ही पुनरावृत्ति होनी चाहिये। यदि तुम कहो कि यह विश्व ईश्वर की देह है और देह संकुचित होकर सूक्ष्म होती है और कारण बन जाती है और उसी में से इस विश्व का विकास होता है तो अद्वैतवादी कहते हैं कि स्वयं ईश्वर ही यह विश्व बन गया है। अब यहाँ एक बहुत सूक्ष्म प्रश्न उठता है। यदि यह ईश्वर ही यह विश्व बन गया है तो तुम और ये सभी चीजें ईश्वर हैं। हाँ, यथार्थ में वैसा ही है। यह पुस्तक ईश्वर है, प्रत्येक वस्तु ईश्वर है। मेरी देह ईश्वर और मेरा मन ईश्वर है और मेरी आत्मा ईश्वर है। तब फिर जीवों का यह नानत्व क्यों है? क्या ईश्वर करोड़ों जीवों में बँट गया है? क्या वह एक ईश्वर करोड़ों जीवों के रूप में दिखाई देता है?तब यह फिर कैसे हुआ? वह अनन्त शक्ति और सत्ता, वह एकमेव विश्वात्मा विभाजित कैसे हो गयी? अनन्त के खण्ड करना असम्भव है। वह विशुद्ध चिदात्मा इस विश्व में कैसे परिणत हो सकता है? यदि वह विश्व में परिणत हो गया हैं, तब तो वह ईश्वर परिवर्तनशील है। यदि वह परिवर्तनशील है, तो वह प्रकृति का अंश है और जो कुछ भी प्रकृति है वह परिवर्तनशील है, वह तो जन्म लेता और मरता है। यदि हमारा ईश्वर परिवर्तनशील है, तो वह एक दिन अवश्य मरेगा,इस बात को ध्यान में रखिये। पुनश्च, ईश्वर का कितना अंश यह विश्व बन गया है ?यदि आप कहें 'क्ष' (बीजगणित का अज्ञात परिमाण) तब तो ईश्वर अब 'ईश्वर ऋण क्ष' है और इसीलिये वह वही ईश्वर नहीं है जैसा कि इस सृष्टि के पूर्व था, क्योंकि उतना ईश्वर यह सृष्टि बन गया है। अतः अद्वैतवादी कहते हैं–''इस विश्व का कोई निरक्षेप अस्तित्व ही नहीं है, यह सब माया, मिथ्या है। यह सम्पूर्ण विश्व, ये देवगण, देवता, देवदूत और अन्य सभी व्यक्ति जन्म लेने वाले और मरने वाले, ये सभी असंख्य आत्माएँ जो उन्नत और अवनत होती जाती हैं, सभी स्वप्नमय हैं।'' 'जीव' नामक कोई वस्तु है ही नहीं। नानात्व कैसे हो सकता है?है केवल एक अद्वितीय अनन्त सत्ता ही। जैसे एक ही सूर्य विभिन्न जलाशयों में प्रतिबिम्बित होकर अनेक भासता है और जल के करोड़ों बुलबुले करोड़ों सूर्य का प्रतिबिम्ब प्रकट करते हैं और प्रत्येक बुलबुले में सूर्य का पूर्ण प्रतिबिम्ब रहता है तथापि वास्तव में सूर्य तो एक ही है। इसी प्रकार से सभी जीव भिन्न–भिन्न मनों में प्रतिबिम्ब ही हैं। ये भिन्न–भिन्न मन अनेकं बुलबुलों के समान उसी एक आत्मा को प्रतिबिम्बित करते हैं। ईश्वर इन सभी भिन्न–भिन्न जीवों में प्रतिबिम्बित हो रहा है। पर स्वप्न तो सत्य वस्तु के बिना नहीं हो सकता और वह सत्य वस्तु वही एक अनन्त सत्ता है। तुम देह, मन या जीवात्मा के रूपों में तो स्वप्नमय हो, पर यथार्थ में तुम तो वही सत् चित् और आनन्द हो। तुम इस विश्व के ईश्वर हो। तुम सम्पूर्ण विश्व को उत्पन्न कर रहे हो और अपने में लय कर रहे हो–अद्वैतवादियों का यही सिद्धान्त है। अतः ये सभी जन्म और पुनर्जन्म, आना और जाना, सभी माया के दृश्य हैं। तुम अनन्त हो। तुम कहाँ जा सकते हो? सूर्य, चन्द्र और समस्त विश्व तुम्हारे निर्विकल्प स्वरूप सागर के केवल बिन्दुमात्र हैं। तुम्हारा जन्म और मरण कैसे हो सकता है? मैं कभी जन्म नहीं लिया, कभी न लूँगा, मेरे न कभी पिता थे, न माता ही, न मित्र, न शुत्र; क्योंकि मैं तो सत् चित् और आनन्द स्वरूप हूँ। सोऽहम् सोऽहम्।

तब इस दार्शनिक मत के अनुसार अन्तिम ध्येय क्या है? वह यही है कि जो यह ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं वे विश्व के साथ एक हो जाते हैं। उनके लिये सभी स्वर्ग और ब्रह्मलोक भी विनष्ट हो जाते हैं, सारा स्वप्न दूर हो

जाता है और वे अपने को विश्व का अनादि अनन्त ईश्वर पाते हैं। वे अपने यथार्थ व्यक्तित्व को उसके अनन्त ज्ञान और आनन्द के साथ प्राप्त करके मुक्त हो जाते हैं। क्षुद्र वस्तुओं के सुख का अन्त आ जाता है। हम इस छोटी सी देह और क्षुद्र व्यक्तित्व में ही आनन्द मानते हैं। वह आनन्द कितना अधिक होगा, जब कि यह समस्त विश्व मेरी देह है! यदि एक देह में सुख है तो जब सभी देह मेरी हैं तो कितना अधिक सुख होगा। तब तो मुक्ति प्राप्त हो जाती है। यही अद्वैत वेदान्त का चरम सिद्धान्त है।

वेदान्त दर्शन–शास्त्र ने ये ही तीन श्रेणियाँ निर्धारित की हैं और हम उससे आगे नहीं बढ़ सकते; क्योंकि हम एकत्व के परे कैसे जा सकते हैं। जब कोई विज्ञान–शास्त्र एकत्व तक पहुँच जाता है, तब वह किसी भी प्रकार के उपाय से और आगे नहीं बढ़ सकता। इस निरपेक्ष सत्ता या तुरीय के परे आप जा नहीं सकते।

इस अद्वैत दर्शन–शास्त्र को सभी मनुष्य ग्रहण नहीं कर सकते। वह अत्यन्त सूक्ष्म है। सबसे पहले तो वह बुद्धि द्वारा समझने के लिये बहुत कठिन है। उसके लिये अत्यन्त तीक्ष्ण बुद्धि चाहिये, साहस चाहिये। दूसरी बात यह है कि वह अधिकांश जनसमुदाय के अनुकूल नहीं है। अतः यही तीन श्रेणियाँ हैं। प्रथम श्रेणी से आरम्भ करो। तब तो उसको भली–भाँति सोच विचार कर समझ लेने पर द्वितीय श्रेणी आप से आप खुल जायेगी। जैसे एक जाति आगे बढ़ती है वैसे ही व्यक्ति को भी आगे बढ़ना पड़ता है। धार्मिक विचार के अत्युच्च शिखरों तक पहुँचने में मानव–जाति ने जिन क्रमों को ग्रहण किया वही क्रम प्रत्येक व्यक्ति को ग्रहण करना होगा। अन्तर यही है कि जहाँ मानव जाति को एक श्रेणी से दूसरी श्रेणी में पहुँचने के लिये लाखों वर्ष लगे हैं, वहाँ उससे बहुत स्वल्प अवधि में मानव जाति का सम्पूर्ण जीवन व्यतीत कर लेंगी। परन्तु हम में से प्रत्येक को इन श्रेणियों में से होकर जाना होगा। आप में से जो अद्वैतवादी हैं, वे अपने जीवन के उस काल की ओर लौट कर देखिये जब कि आप कट्टर द्वैतवादी थे। ज्यों ही आप सोचते हैं आप देह और मन हैं, त्योंही आपको यह सम्पूर्ण स्वप्न ग्रहण करना होगा। यदि आप उसके एक अंश को ग्रहण करते हैं, तो आपको उसे सम्पूर्ण रूप से ग्रहण करना होगा। जो मनुष्य कहता है कि यहाँ यह संसार है और ईश्वर (कोई व्यक्ति) नहीं है, वह मूर्ख है; क्योंकि यदि सृष्टि है, तो उसका कारण तो रहेगा ही और वही कारण तो 'ईश्वर' कहलाता है। कारण है यह बिना जाने आप कार्य को तो नहीं पा सकते। ईश्वर तभी विलुप्त हो सकता है, जब इस संसार का लोप हो जाय। तब आप ईश्वर (परब्रह्म) हो जायेगें और आप के लिये यह संसार तत्पश्चात् रहेगा ही नहीं। जब तक आप देह हैं यह स्वप्न बना हुआ है, तब तक आप अपने को जन्म लेने वाला और मरने वाला ही पाएँगे। पर ज्योंही वह स्वप्न भंग हो जाएगा, त्योंही यह स्वप्न भी भंग हो जाएगा कि आप जन्म लेते हैं और मरते हैं और वैसे ही वह दूसरा स्वप्न भी, कि यह विश्व अस्तित्व में है, भंग हो जायेगा। वही वस्तु जो अभी हमें विश्व दिख रही है, ईश्वर (परब्रह्म) दिखाई देगी और वही ईश्वर जो इतने दीर्घकाल तक ब्रह्म वस्तु प्रतीत होता था, वह अब अन्तःस्थ, अपनी स्वयं आत्मा ही प्रतीत होगा।

भारत भूमि को आध्यात्मिकता का आदि स्रोत बताते हुए स्वामी विवेकानन्द जी का कहना था कि यही वह भूमि है जहाँ ज्ञान ने अन्य देशों में जाने से पूर्व अपनी आवास–भूमि बनाया था। यहीं सर्वप्रथम मानव प्रकृति के रहस्यों की जिज्ञासाओं के अंकुर उगे थे। यहीं आत्मा की अमरता, एक परमपिता परमेश्वर की सत्ता, प्रकृति और मनुष्य के भीतर ओत–प्रोत एक परमात्मा के सिद्धान्त सर्वप्रथम उठे और यहीं पर धर्म और दर्शन के उच्चतम सिद्धान्तों ने अपने चरम शिखर स्पर्श किये।

सन्दर्भ ग्रन्थ

- स्वामी विवेकानन्द पर रामकृष्ण मिशन द्वारा वॉलूम में प्रकाशित सभी अंक
- शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर,चतुर्थ संस्करण
- संसार के महान शिक्षा शास्त्री, विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक, वाराणसी 2001
- विश्व के श्रेष्ठ शिक्षा शास्त्री, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
- उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद

- शिक्षा के दार्शनिक एवं समाज शास्त्रीय आधार,नया भारत, द्वितीय संस्करण
- स्वामी व्योम रूपानन अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ, नागपुर
- पाण्ड़ेय, रामशकल (2005), विश्व के श्रेष्ठ शिक्षा शस्त्री : आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर
- पाण्डेय, रामशकल (2005) शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि : साहित्य प्रकाशन, आगरा
- रोलाँ, रोमाँ (2010), स्वामी विवेकानन्द जी का जीवन : जयपुर, साहित्य सागर प्रकाशन
- लाल, रमन बिहारी (2007), शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार : आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर
- चौबे, एस.पी. तथा चौबे, अखिलेश (2006), शिक्षा के दार्शनिक समाजशास्त्रीय आधार : मेरठ, इन्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस
- त्यागी, गुरूसरन दास , भारत में शिक्षा का विकास : आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर भटनागर, सुरेश, भारत में शिक्षा व्यवस्था का विकास : जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ एकादमी
- सिंह, ए. के., समाजशास्त्र एवं भारतीय समाज में शिक्षा : जयपुर, कविता प्रकाशन
- स्वामी विवेकानंद व्यक्ति और विचार – राजेन्द्र प्रसाद गुप्त–राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
- हिन्दू धर्म और उसका दर्शनशास्त्र
- वेदान्त दर्शन का मनोवैज्ञानिक चिन्तन
- वेदान्त दर्शन– शंकराचार्य भाष्य
- विवेकानंद जीवन और दर्शन – हरदान हर्ष
- किशोरों के स्वामी विवेकानन्द जी –भारतीय प्रकाशन, नई दिल्ली।
- भारतीय राजनीतिक चिन्तन –शर्मा एवं बघेल
- उदयीमान भारतीय समाज में शिक्षक –डॉ0 रामशंकर पाण्डेय
- स्वामी स्वामी विवेकानन्द जी व्यावहारिक जीवन वेदान्त
- द कम्पलीट वर्क्स ऑफ स्वामी स्वामी विवेकानन्द जी, द्वितीय खण्ड
- राजनीति विज्ञान–डॉ0 पुखराज जैन
- वर्मा विश्वनाथ प्रसाद : आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन। लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा 2004
- वर्मा, व्ही.पी. : स्वामी विवेकानन्द जी एण्ड मार्क्स एज् सोशियोलॉजिस्ट, द् वेदान्त केसरी ,जनवरी 1959
- द् कम्प्लीट वर्क्स ऑफ स्वामी स्वामी विवेकानन्द जी :मायावती मेमोरियल संस्करण भाग–1
- द् लॉइफ ऑफ स्वामी स्वामी विवेकानन्द जी, भाग–2
- स्वामी स्वामी विवेकानन्द जी साहित्य संचयन, रामकृष्ण मठ, नागपुर द्वारा प्रकाशित।
- श्री सत्येन्द्र मजूमदार : स्वामी विवेकानन्द जी चरित श्रीरामकृष्ण–शिवानन्द स्मृति ग्रन्थमाला पुष्प संख्या–21, रामकृष्ण मठ नागपुर।
- सरोज कुमार वर्मा–स्वामी विवेकानंद : नये युग के प्रवर्तक, योजना, संपादक –राजेश कुमार झा, प्रकाशन विभाग, 538, योजना भवन संसद मार्ग नई दिल्ली–110001
- स्वामी विवेकानंद और उनका अवदान, संपादक स्वामी विदहात्मानन्द
- विवेकानंद– विवेकानंद योग संग्रह, संपादक–अनुराधा चावला,न्यू साधना पॉकेट बुक्स 70 रोशन आरा प्लाजा ,दिल्ली–110007,
- सबके स्वामी जी –'स्वामी सर्वभूतानन्द' रामकृष्ण मिशन इंस्टीट्यूट ऑफ कल्चर गोल पार्क ,कलकत्ता।
- स्वामी विवेकानन्द जी जीवन और दर्शन–'हरदान हर्ष' माया प्रकाशन मंदिर, जयपुर।
- शिकागो में स्वामी विवेकानन्द जी –स्वामी व्योमरूपानन्द अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ धन्तोली, नागपुर।
- स्वामी विवेकानन्द जी–शिक्षा (हिन्दी अनुवाद) श्री रामकृष्ण आश्रम, नागपुर
- आधुनिक भारतीय एवं सामाजिक चिन्तन–प्रकाशन–साहित्य भवन पब्लिकेशन्स,आगरा,2001
- महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग–2, प्रकाशन–अरविन्द ज्योति, प्रकाशन–मथुरा
- स्वामी विवेकानन्द जी साहित्य संचयन, रामकृष्ण मठ, नागपुर द्वारा प्रकाशित ,
- श्री सत्येन्द्र मजूमदार : स्वामी विवेकानन्द जी चरित श्रीरामकृष्ण–शिवानन्द स्मृति ग्रन्थमाला पुष्प संख्या–21

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

43

आर्थिक विकास का गाँधीवादी मॉडल एवं उसकी वर्तमान में प्रांसगिकता

डॉ0 आशुतोष पाण्डेय
एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीतिशास्त्र एवं लोक प्रशासन विभाग
डॉ. शकुंतला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

भारत और भारतीयता की पहचान संभवतः महात्मा गाँधी के बिना अधूरी मानी जाएगी। जीवन की सादगी, जनोन्मुखी वैचारिकता, दृढ़ आस्था और स्वदेशी चिंतन गाँधीजी के व्यक्तित्व के महत्त्वपूर्ण पक्ष थे। अपने इन्हीं गुणों के कारण गाँधीजी आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने अपने समय में रहे। गाँधीजी न तो मार्शल एवं एडम स्मिथ के समान अर्थशास्त्री थे और न उन्होंने अर्थशास्त्र पर किसी स्वतंत्र पुस्तक की रचना की, किन्तु यदि हम उनकी विभिन्न पुस्तकों का अनुशीलन करें, तो उनके आर्थिक विचारों का चित्र हमारे समक्ष आ जाता है। इस आधार पर स्पष्ट हो जाता है? कि उन्होंने समाजवाद एवं व्यक्तिवाद के आर्थिक सिद्धांतो में समन्वय स्थापित करके अपने दरिद्र देशवासियों को दरिद्रता के कूप से निकालने के लिए व्यावहारिक आर्थिक विचार प्रतिपादित किये हैं।

किसी भी देश की विकासशील अर्थव्यवस्था को स्वयंस्फूर्त अर्थव्यवस्था में बदलने के लिए आर्थिक विकास की उचित विकास रणनीति आवश्यक है। स्वतंत्रता पश्चात् देश के आर्थिक विकास के सबंध में जिन दो विकास मॉडलों की अधिक चर्चा रही है, उनमें गाँधीवादी मॉडल तथा नेहरूवादी मॉडल अधिक चर्चित रहे हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास के लिए जो उद्देश्य स्वीकार किया गया, वह संतुलित विकास और व्यापक आयोजन का था, न कि किसी विशेष क्षेत्र के विस्तार का। सन् 1939 ई. में गाँधी जी ने कहा था– ''गाँधीवाद जैसी कोई चीज नहीं है और मैं अपने पीछे कोई वाद नहीं छोड़ जाना चाहता हूँ।'' फिर भी यह सत्य है कि गाँधीजी ने तत्कालीन भारत की सामाजिक–आर्थिक स्थिति के आधार पर अपने जो विचार व्यक्त किए उन्हें लोगों ने गाँधीवाद का नाम दिया। गाँधी कोई प्रशिक्षित अर्थशास्त्री नहीं थे।[1] परन्तु उन्होंने भारतीय कृषि, उद्योग आदि के विकास के लिए कुछ नीतियों का समर्थन अवश्य किया। आचार्य श्रीमन्नारायण ने गाँधीजी के आर्थिक विचारों के आधार पर सन् 1944 ई. में गाँधीवादी योजना की रूपरेखा प्रस्तुत की और बाद में सन् 1948 ई. में उसकी पुष्टि की।

गाँधीजी का शुरू से ही यह प्रयास था कि धन एवं सम्पत्ति के असमान वितरण को रोका जाये, वे समाज के समस्त व्यक्तियों में आर्थिक समानता की स्थापना करना चाहते थे। वे जिस आर्थिक संगठन को भारत के लिए आदर्श मानते हैं, वह यह है कि किसी भी व्यक्ति को किसी भी समय भोजन और वस्त्र का अभाव न हो। इसीलिए गाँधीजी भारतीय आर्थिक आयोजन में कृषि–सुधार को बदलने पर बल देते थे। कृषि विकास का मुख्य लक्ष्य खाद्यान्नों में राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता और खाद्य–पदार्थो में अधिकतम क्षेत्रीय स्वावलंबिता प्राप्त करना है। खाद्यान्न आत्मनिर्भरता की प्राप्ति के लिए न केवल बड़ी मात्रा में अच्छे कृषि–आदानों का प्रयोग आवश्यक है बल्कि भू–सुधारों का प्रयोग भी करना होगा। इसके लिए काश्तकारी प्रणाली में परिवर्तन, भू–स्वामित्व अधिकारों का उन्मूलन, खेतों की चकबंदी, सहकारी समितियों का गठन आदि उपाय इस्तेमाल करने होगें। महाजन व्यवस्था को समाप्त करना होगा और किसानों को अधिक मात्रा में ऋण सुविधायें प्रदान करनी होगीं। इस प्रकार यह विकास मॉडल वर्तमान में भी काफी प्रासंगिक है।

गाँधीजी ने राजनीतिक विकेन्द्रीकरण के समान आर्थिक विकेन्द्रीकरण पर भी बल दिया है। आर्थिक विकेन्द्रीकरण से उनका अभिप्राय है– विशाल पैमाने के उद्योगों की स्थान पर लघु कुटीर उद्योगों की स्थापना।

गाँधीजी का विश्वास है कि विश्व को महायुद्धों की विभीषिका से मुक्त करने, आर्थिक क्षेत्र में सत्य एवं अहिंसा के सिद्धांतो को प्रतिष्ठित करने, राष्ट्रीय सम्पत्ति का समान वितरण करने और मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का अन्त करने का सर्वोत्तम उपाय कुटीर उद्योगों की स्थापना ही है।

गाँधीजी आर्थिक समानता के प्रबल समर्थक हैं। उन्होंने वर्तमान समय में दृष्टिगोचर होने वाली आर्थिक विषमता को समाज के लिए अभिशाप माना है। उनका मानना है कि सब व्यक्तियों को सब आवश्यक वस्तुओं के समान उपभोग के लिए प्रयास करना चाहिए। इस सिद्धान्त की स्थापना करने के लिए गाँधीजी ने अपने आर्थिक विचारों में अस्तेय एवं अपरिग्रह का नैतिक सिद्धान्तों के रूप में प्रतिपादन किया है। गाँधीजी की धारणा है कि यदि समाज के समस्त व्यक्ति–अस्तेय एवं अपरिग्रह के नैतिक सिद्धान्तों के अनुसार आचरण करने लगें, तो समाज आर्थिक विषमता के अभिशाप से मुक्त हो जायेगा और सब व्यक्ति सुख एवं आनन्द का जीवन व्यतीत करने लगेगें। गाँधीजी ने अपने आर्थिक विचारों में शारीरिक श्रम को महत्वपूर्ण स्थान दिया है।

आधुनिक औद्योगीकरण के विरोधी न होने पर भी, गाँधीजी ने मशीनों के सीमित प्रयोग को अनुमति दी हैं। उन्होंने केवल उन्हीं मशीनों के प्रयोग को उचित बताया है, जो समाज के हित में बाधक नहीं है। गाँधीजी की आर्थिक विचारधारा में कुटीर उद्योगों का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। कुटीर उद्योगों के अन्तर्गत घर–घर में चरखे और करघे होने चाहिए। इनके अतिरिक्त, ग्रामों में कृषि–सबंधी लघु उद्योगों एवं ग्रामवासियों की दैनिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए विभिन्न धन्धों की स्थापना की जानी चाहिए।' इन उद्योग–धन्धों की स्थापना से ग्रामों की उन्नति होगी, व्यक्ति को अपनी दैनिक आवश्यकताओं की वस्तुएँ सरलता से प्राप्त होगीं और देश के प्रत्येक कारीगर एवं नवयुवक को रोजगार मिल जायेगा। अतः देश में औद्योगिक पूँजीवाद से उत्पन्न होने वाली प्रतियोगिता समाप्त हो जायेगी। फलस्वरूप, देश में शान्ति एवं व्यवस्था होगी। इसके अतिरिक्त, इन उद्योग धन्धों में प्रयोग किये जाने वाले यन्त्रों और इनमें उत्पादित की जाने वाली वस्तुओं का स्वामी स्वयं श्रमिक होगा। अतः मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का अन्त हो जायेगा। गाँधीजी का मत है कि इस शोषण का अन्त करने के लिए कुटीर उद्योग ही सर्वोत्तम साधन है।

गाँधीजी के विचारों का केन्द्र ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था थीं। आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में गाँधीजी चाहते थे कि भारत में स्वशासित और स्वावलम्बी ग्राम गणतंत्रो का जाल बिछ जाये। गाँधीवाद न तो पूँजीवाद है, न समाजवाद, यह दोनों का मिश्रण भी नहीं है। गाँधीजी ने इसके अतिरिक्त न्यास के सिद्धान्त को प्रस्तुत किया। यह व्यवस्था यह चाहती है कि सम्पत्ति व्यक्ति के निजी नियंत्रण में रहे, परन्तु वह स्वयं को उसका संरक्षक माने, उसका स्वामी नहीं। भगवद् गीता के प्रति अपने ऋण को स्वीकार करते हुए गाँधीजी ने एक बार कहा, ''मैं गीता के अपरिग्रह के उपदेश का यह अर्थ समझता हूँ कि जो मुक्ति की कामना करते हैं उन्हें न्यासियों की भाँति आचरण करना चाहिए जो महान संपतियों पर नियंत्रण रखते हुए भी उनमें से लेशमात्र को भी अपनी वस्तु न समझें।''[2] न्यास व्यवस्था समाज की वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था को समानतावादी व्यवस्था में बदलने का साधन प्रदान करती है। गाँधीजी का विश्वास था कि उनके लक्ष्य की प्राप्ति स्वायतशासी ग्रामीण समुदायों के वर्गहीन तथा राज्यहीन लोकतंत्र में ही संभव है जो दमन की बजाय अहिंसा पर, शोषण की बजाए सेवा पर, संग्रह की बजाए त्याग पर तथा अधिकतम मात्रा में केन्द्रीकरण की बजाए स्थानीय व व्यक्तिगत उपक्रम पर आधारित हो।[3] 'हिन्द स्वराज में गाँधीजी ने उद्योगवाद तथा मशीनीकरण का विरोध किया है। उनका विचार है कि ''उद्योगवाद................मानवता के लिए अभिशाप है।.......''[4] परन्तु गाँधीजी इस आदर्श का भी प्रतिपादन करते थे कि ''यदि मशीन सब के हितों की पूर्ति करती है तो उसका उपयोग जायज है।''[5] अतः स्पष्ट है कि गाँधीजी ने तात्कालीन परिस्थितियों में ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास पर अपना ध्यान दिया जो आज भी समीचीन है।

अतः स्पष्ट है कि यदि हम गाँधीवादी योजना का विश्लेषण करें, तो हमें पता चलता है कि इसका उद्देश्य

कृषि एवं उद्योगों का साथ–साथ विकास करना है। हस्तशिल्पों और कुटीर उद्योगों पर बल देने का उद्देश्य उत्पादन के साथ–साथ रोजगार का भी विस्तार करना है। स्वतंत्रता के पश्चात नेहरूजी के विचारों का ही भारतीय समाज पर वर्चस्व दिखाई देता है परन्तु जब 1973 और 1975 के बीच भारत में आर्थिक संकट आया तो लोगों में विकास के नेहरू मॉडल की अपेक्षा गाँधीजी के मॉडल को एक विकल्प के रूप में सोचना शुरू किया। जनता पार्टी ने अपने शासन के दौरान इनमें से कुछ विचार छठी योजना के प्रारूप में सम्मिलित किया भारतीय संदर्भ में कुछ सुधारों के साथ गाँधीवादी योजना को अपनाया जा सकता है अर्थात् यदि हम उत्पादन–प्रेरित योजना की जगह ऐसी योजना बनाये जिससे अधिक से अधिक रोजगार की प्राप्ति हो सके तो हम बेरोजगारी जैसी समस्या से छुटकारा पा सकते हैं। इसके साथ ही कृषि क्षेत्र का बढ़ावा देकर हम भारत जैसे कृषि प्रधान देश को और आर्थिक रूप से शक्तिशाली देश बना सकते है। यह अनुमान लगाया गया हैं कि भारत में 1971 में प्रति 100 एकड़ पर 39 श्रमिक लगे हुए थे और इस दृष्टि से भारत एक निम्न निष्पादन वाला देश माना जाता हैं। परन्तु इसकी तुलना में 1965 में जापान, दक्षिण कोरिया, ताइवान और मिस्र में 1965 के दौरान प्रति 100 एकड़ पर क्रमशः 87,79, और 71 श्रमिक कार्य करते थे। ये उच्च्च उत्पादन वाले राष्ट्र हैं। इन देशों के अनुभव से पता चलता है कि कृषि में कुल उत्पादन की वृद्धि के साथ–साथ 500 से 600 लाख अतिरिक्त व्यक्तियों को रोजगार दिलाया जा सकता है। संपति का न्यायपूर्ण वितरण करके भी वर्तमान भारत की समस्याओं का समाधान किया जा सकता है।

अतः स्पष्ट है कि गाँधीजी के आर्थिक विचारों की वर्तमान राष्ट्रीय परिस्थितियों के मद्देनजर उचित ढंग से उदारीकरण और वैश्वीकरण के साथ समन्वय करते हुए लागू किया जाए तो देश को अनेक आर्थिक समस्याओं से मुक्ति मिल सकती है। अतः स्पष्ट है कि गाँधी जैसे दृढ़ इच्छा शक्ति की आज की आवश्यकता है तभी हम भारत की समस्याओं का समाधान निकाल सकते है। उनकी शक्ति का कुछ अनुमान डॉ0 रामविलाश शर्मा के इस कथन से लगाया जा सकता है–''उनकी इच्छा शक्ति अद्भूत थी। कोई साथ न आए तो मैं अकेला लडूँगा..........एक बार उनके मन में कोई विचार आ जाये और उन्हें लगे, यह सही है तो उसे अमल में लाने के लिए वह सारी शक्ति लगा देते थे।''[6] अतः वर्तमान समय में हमें ऐसी ही आर्थिक क्षेत्र में इच्छाशक्ति विकसित करने की जरूरत है जिससे हमें वैश्वीकरण की समस्याओं के सन्दर्भ में भारत को एक विकसित राष्ट्र की श्रेणी में ला सकते हैं।

भारत का अन्तिम व्यक्ति अभी तक अर्थ, समाज, सरकार और संस्कृति की व्यवस्था में निचली सीढ़ी पर खड़ा है। गाँधीजी कहते थे– ''यदि किसी भी कार्य अथवा योजना में देश के आखिरी आदमी का हित अधिक है तो उस कार्य को सही समझना चाहिए।'' गाँधी के गुम हो जाने का अर्थ है कि आखिरी आदमी का सुखद भविष्य गुम हो गया। यद्यपि नेहरूजी की देश भक्ति कम नहीं थी परन्तु पश्चिम की चाशनी में उनकी देश भक्ति रची–बसी थीं। गाँधीजी की देश भक्ति निर्मल और पारदर्शी थीं।[7] यदि भारत सचमुच गाँधीजी की दृष्टि को, अंगीकार करे तो पश्चिम का मुलम्मा उतर जायेगा। उनकी आर्थिक राजनीतिक और तकीनीकी दादागिरि नहीं चल सकती। गाँधीजी ने कहा कि हम जितने ईश्वरों को मानते हैं, मेरे लिए उनमें सबसे बड़े हैं दरिद्रनारायण यानि गरीबों के रूप में प्रकट होने वाले ईश्वर।

जीवन में राजनीति, अध्यात्म, अर्थ एवं कर्म के सन्तुलन बनाए रखने की दिशा में और इसे जीवन में आत्मसात करने की शिक्षा गाँधीजी ने प्रदान की। राष्ट्रीयता के साथ–साथ उन्होंने जीवन के प्रत्येक पक्ष उनके विचार कालजयी हैं। उनकी क्रान्ति मूलतः शान्ति पर आधारित थी। हम स्वतन्त्र है, यह शब्द कानों में गूंजता है तो अच्छा लगता है परन्तु स्वतन्त्रता का कपड़छान करते हैं तो हमें दासता का चोकर ही प्राप्त होता है। क्योंकि गाँधीजी गुम हो गए। उनकी आत्मा को अंगीकार नहीं किया गया।[8]

गाँधीजी के विचार में मानवीय मूल्य और आर्थिक मूल्य एक हैं। आर्थिक मूल्यों को राजनैतिक, सामाजिक, नैतिक व सांस्कृतिक मूल्यों से अलग करके नहीं देखा जा सकता। गाँधीजी कहते हैं कि अर्थरचना ऐसी होनी चाहिए,

जो किसी को भी अन्न और वस्त्र के अभाव की तकलीफ न सहनी पड़े। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक को इतना काम अवश्य मिल जाना चाहिए कि वह अपने खाने–पहनने की जरूरतें पूरी कर सके।[9]

मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताएं तभी पूरी हो सकती हैं जब उपभोक्ताओं में अर्थ के साथ–साथ नैतिकता का भी बाहुल्य हो। गाँधीजी के मत में सच्चा अर्थशास्त्र तो सामाजिक न्याय की हिमायत करता है........... समान भाव से सबकी भलाई का, जिनमें कमजोर भी शामिल है, प्रयत्न करता है। गाँधीजी ने नैतिकता–विहीन आर्थिक सिद्धान्तों को प्राण–विहीन अर्थशास्त्र की संज्ञा दी है। उनके शब्दों में– ''वह अर्थशास्त्र जो नैतिक और भावात्मक पक्षों की उपेक्षा करता है, मोम की मूर्ति की तरह है, जो लगती चाहे सजीव हो, किन्तु होती प्राण विहीन है।''[10]

स्पष्ट है कि शाश्वत व उदार नैतिकता ही गाँधीजी के विचारों की आधारशिला है। उनके आर्थिक विचार आर्थिक प्रश्नों की शास्त्रीय व्याख्याओं पर आधारित न होकर आर्थिक क्षेत्र में नैतिक आस्थाओं को लागू करने का प्रयास है। अकारण नहीं कि गाँधीजी ने आर्थिक विचारों की अपनी पद्धति को मानवीय अर्थशास्त्र की संज्ञा दी है। गाँधीजी ने स्पष्ट किया कि आर्थिक संबंधों में सत्य व अहिंसा का प्रयोग मानवीय अर्थशास्त्र का आधार है।

आर्थिक समानता, आर्थिक न्याय तथा विकेन्द्रीकरण गाँधीजी के आर्थिक दर्शन के प्रमुख आधार थे और इन्हीं आधारों पर गाँधीजी ने न्यासिता के सिद्धान्त की नींव रखी। न्यासिता के इस सिद्धान्त के पीछे मूल मान्यता यह थी कि सबकी आवश्यकताएं यथासम्भव समानता के स्तर पर निर्धारित हों। आर्थिक समानता की आवश्यकता के पक्ष में उनका तर्क था– ''आर्थिक समानता अहिंसक स्वाधीनता की सर्वकुंजी है।''[11]

प्राचीन भारत में यद्यपि भौतिक उन्नति अपने चरम पर थी तथापि जीवन में त्याग की भावना पर बल दिया जाता था और आवश्यकता से अधिक धन का संग्रह किया जाना नैतिक जीवन के लिए उचित नहीं माना जाता था। इस सन्दर्भ में डॉ. राधाकृष्णन का कथन है–

''सम्पत्ति हिन्दू दृष्टिकोण के अनुसार किसी व्यक्ति के पास इसलिए है कि उसका उपयोग सामान्य हो और सम्पूर्ण समुदाय के हित में हो। भगवद्गीता में भी यही कहा गया है कि हम उतना ही पा सकते हैं, जितने से हमारी भूख सन्तुष्ट होती है। यदि कोई उससे अधिक पाता है, तो वह चोर है, जिसे दंड मिलना चाहिए।[12]

गाँधीजी ने भी 'ईशावास्योपनिषद्' के प्रथम मंत्र[13] के अनुसार इस संसार में जो कुछ है वह ईश्वर का है, अतः व्यक्ति को उपलब्ध संसाधनों का त्यागपूर्वक उपभोग करना चाहिए क्योंकि उसके पास उपलब्ध वस्तुओं पर उसका स्वामित्व नहीं है, को अपना आदर्श माना और इस आध्यात्मिक विचार को आर्थिक परिवर्तन के विश्वसनीय सिद्धान्त के रूप में रूपान्तरित कर लिया।

न्यासिता के इस गाँधीवादी सिद्धान्त में सम्पत्ति के प्रति व्यक्ति के दृष्टिकोण की दो मर्यादाएं निहित है– प्रथम, व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को यथासम्भव सीमित कर ले और द्वितीय, व्यक्ति अपनी आवश्यकता से अधिक साधनों व सम्पदा को अपने पास न रखे।

इस सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद जो भी सम्पत्ति शेष बचती है उस पर सम्पूर्ण समाज का अधिकार है और उक्त व्यक्ति उस शेष सामाजिक सम्पत्ति के मालिक के स्थान पर ट्रस्टी या न्यासी के तौर पर उसका संरक्षण करे। यह सिद्धान्त यह भी कहता है कि पूँजीपति आदि के पास संग्रहीत राष्ट्र की सम्पदा को उनके हाथ से छीनने के स्थान पर समाज की धरोहर मानकर उपयोग किया जाय। गाँधीजी कहते हैं – ''अहिंसक पद्धति में हम पूँजीपति को नष्ट करने का प्रयास नहीं करते बल्कि पूँजीपति को समाप्त करने का प्रयास करते हैं। हम पूँजीपति से आग्रह करते हैं कि वह स्वयं को उन लोगों का न्यासी समझे जिनके ऊपर वह अपनी पूँजी के निर्माण, उसकी रक्षा और उसके संवर्धन के लिए निर्भर है।''[14]

''मैं उन व्यक्तियों को जो आज अपने आपको मालिक समझ रहे हैं, न्यासी के रूप में काम करने के लिए आमंत्रित कर रहा हूँ, अर्थात् यह आग्रह कर रहा हूँ कि वे स्वयं को अपने अधिकार की बदौलत मालिक न समझें,

बल्कि उनके अधिकार की बदौलत मालिक समझें, जिनका उन्होंने शोषण किया है।''[15]

गाँधीजी ने पूँजीपति या शोषक वर्ग को अपनी सम्पत्ति और शक्ति का त्याग स्वेच्छा से करने की सलाह इसलिए दी, क्योंकि उनकी दूरदर्शी मेधा ने इस तथ्य को समझ लिया था कि अन्ततः एक दिन शोषित–पीड़ित वर्ग की सहनशक्ति क्षीण हो जाएगी और तब समाज और राष्ट्र को एक हिंसक रक्तरंजित क्रान्ति से कोई नहीं बचा सकेगा।

प्रायः इस तथ्य पर प्रश्न–प्रतिप्रश्न किए जाते हैं कि न्यासिता का सिद्धान्त कितना व्यावहारिक है?इसकी व्यावहारिकता पर प्रश्नचिह्न लगाते हुए कहा जाता है कि गाँधीजी अपने सम्पूर्ण जीवन में केवल डेढ़ ट्रस्टी ही बना सके– एक तो वे स्वयं अपने और आधे में सेठ जमनालाल बजाज। स्वयं गाँधी जी इसके समर्थन में कहते हैं– ''केवल जमनालाल जी ही इसके समीप आए, किन्तु बस समीप ही आए।''[16] गाँधीजी के अनन्य अनुयायी बिड़ला साहब भी न्यासिता को स्वीकार नहीं कर सके। नेहरू जी ने इस सिद्धान्त के प्रति शंका व्यक्त करते हुए कहा– ''ट्रस्टीशिप सिद्धान्त में विश्वास करना ठीक लगता है जब किसी व्यक्ति को सम्पत्ति के स्वामित्व का असीमित अधिकार दे दिया जाय और उससे आशा की जाय कि वह इसका उपयोग सार्वजनिक कल्याण के लिए करेगा? क्या हम लोगों के बीच इस प्रकार के उदार लोग सामान्य रूप से हैं, जो इस प्रकार ट्रस्टी हो सकेंगे?''[17]

इस प्रकार यह शंका स्वाभाविक रूप से उठती है कि कहीं गाँधी जी कोरे आदर्शवादी तो नहीं थे जो न्यासिता जैसे सैद्धान्तिक आदर्शों के सहारे यूटोपियन राज्य की स्थापना करना चाहते थे?इस विषय में गाँधीजी का कथन है– ''आप कह सकते हैं कि न्यासिता कानून की दृष्टि से एक कल्पना मात्र है। लेकिन अगर लोग इस पर बराबर विचार करें और इसके अनुसार आचरण करने का प्रयास करें तो दुनिया आज जितने प्रेम से चलाई जा रही है उससे कहीं अधिक प्रेम का संचार हो सकता है। यूक्लिड की बिंदु की परिभाषा की तरह पूर्ण न्यासिता भी एक अमूर्त विचार है और इसे प्राप्त करना भी उतना ही असम्भव है। लेकिन अगर हम उसके लिए प्रयास करते रहें तो हम धरती पर समानता स्थापित करने की दिशा में अन्य किसी उपाय की अपेक्षा (न्यासिता के सिद्धान्त पर आचरण करके) अधिक प्रगति कर सकते हैं।''[18]

लंदन के कुछ साम्यवादियों ने गाँधी जी के समक्ष इस व्यवस्था के क्रियान्वयन के सम्बन्ध में यह शंका उठायी कि इस नई व्यवस्था को बिना हिंसा के उपयोग में कैसे ला पाएंगे?क्या यह मात्र हृदय–परिवर्तन के प्रयोग से ही संभव है तो गाँधी जी ने स्पष्टता से कहा– ''नहीं केवल समझाने बुझाने से ही नहीं, लेकिन मैं अपने ही अहिंसक साधनों का सहारा लूँगा। कोई भी व्यक्ति समाज के दूसरे व्यक्तियों के सहयोग के बिना सम्पत्ति–संग्रह नहीं कर सकता। चाहे वह सहयोग स्वैच्छिक हो या किसी दबाव से लेकिन दूसरों का सहयोग तो चाहिए ही।''[19]

इसके अतिरिक्त यद्यपि व्यावहारिक दृष्टि से न्यासिता के सिद्धान्त के क्रियान्वयन की कठिनता से गाँधी जी परिचित हैं, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि इस सिद्धान्त को प्रयोग किए बिना ही छोड़ दिया जाए। सफलता या असफलता के विचार को छोड़कर हमें दृढ़ आस्था से इस सिद्धान्त पर चलने का प्रयास करना होगा, बशर्ते हम अहिंसा के सिद्धान्त के विश्वासी हों– ''इस प्रश्न का कोई महत्त्व नहीं है कि इस परिभाषा के अनुसार कितने लोग सच्चे न्यासी के रूप में आचरण कर सकते हैं। अगर यह सिद्धान्त सही है तो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि इस पर अनेक लोग चल रहे हैं या केवल एक ही आदमी चल रहा है। प्रश्न केवल दृढ़ आस्था का है। अगर आप अहिंसा के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं तो आपको उस पर चलने का प्रयास करना होगा, भले ही आप सफल हों या असफल। इस सिद्धान्त में ऐसी कोई बात नहीं है जो बुद्धि की पकड़ के बाहर हो, हालाँकि आप यह कह सकते हैं कि इसे व्यवहार मे लाना कठिन है।''[20]

गाँधी जी ने स्पष्ट किया कि न्यासिता का विचार उनकी समग्र आर्थिक योजना का ही एक हिस्सा है, अतः उसका मूल्यांकन उनकी आदर्श आर्थिक प्रणाली के अन्य तत्त्वों के साथ मिलाकर ही किया जाना चाहिए। उन्होंने

स्वीकार किया कि उत्पादन की केन्द्रीकृत व्यवस्था में जहाँ लोगों के पास विपुल सम्पत्ति होगी, यह समस्या उत्पन्न हो सकती है कि लोग स्वेच्छा से अपनी सम्पत्ति का परित्याग करने को तैयार न हों, किन्तु हृदय–परिवर्तन के माध्यम से लोगों को इस त्याग हेतु तैयार किया जा सकता है। अर्थव्यवस्था के विकेन्द्रीकृत स्वरूप को अपना लेने के पश्चात् तो किसी व्यक्ति को विपुल मात्रा में सम्पत्ति के उपार्जन का अवसर ही प्राप्त नहीं होगा, तथा जो सीमित सम्पदा वह अर्जित करेगा उसमें अपनी आवश्यकता भर रखने के पश्चात् शेष को समुदाय के हित में समर्पित करने में उसे संकोच या कष्ट नहीं होगा। गाँधीजी ने स्मरण कराया कि अपनी सम्पदा में से कुछ दान करने की प्रवृत्ति मानव स्वभाव का एक सहज तत्त्व है, विशेषकर भारतीय संस्कृति तो दान को व्यक्ति के नैतिक उत्थान हेतु अनिवार्य मानती है। न्यासिता का विचार तो इस दान–वृत्ति को आर्थिक गतिविधियों का प्रेरक नियम बनाकर सहज मानवीय भावना को ही व्यवस्थित रूप प्रदान करता हैं।

अतः 'लोभं हित्वा सुखी भवेत्' (लोभ को त्यागकर सुखी होने) की भारतीय परम्परा में विश्वासी मनुष्य के लिए 'तेन त्यक्तेन भुजीथा' (त्यागकर उसका भोग करो) को जीवन मंत्र बनाना कठिन नहीं है। तात्पर्य यह कि मनुष्य भले ही अकूत सम्पदा अर्जित करे, यह कभी विस्मृत न करे कि यह अर्जित सम्पदा मात्र उसकी न होकर सारे समाज की है और वह उस सम्पदा का मात्र न्यासी है। प्रकृति प्रदत्त अपनी समस्त शक्तियों को भी न्यास मानकर उनके द्वारा अपनी आवश्यकतानुसार स्वयं भी उपभोग करे और समाज के सर्वांगीण विकास में अपना अवदान दे। तभी अहिंसा, समता और शोषण–विहीन समाज पर आधारित गाँधीजी की सर्वोदय अर्थव्यवस्था साकार रूप ग्रहण करेगी।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. जी0 सी0 कुमारप्पा, गाँधीयन इकोनॉमिक थॉट, पृष्ठ 1.
2. Gandhi : The Story of My Experiments with truth, pp, 221-22.
3. G. N. Dhawan : The Political Philosphy of Mahatma Gandhi, p.3
4. यंग इण्डिया' नवम्बर 5, 1925.
5. यंग इण्डिया' अप्रैल 15, 1926.
6. रामविलास शर्मा : गाँधी, अंबेडकर, लोहिया और भारतीय इतिहास की समस्याएँ, पृष्ठ 431.
7. दैनिक जागरण 3.10.2005 खण्ड, पृ0सं0 101।
8. उपरोक्त।
9. यंग इण्डिया, 15.11.1928.
10. यंग इण्डिया, 26.09.1924.
11. Constructive programme: its meaning and place, M.K. Gandhi- Navjeevan publishing house, Ahmedabad, p.p. 20&21.
12. S. Radhakrishanan: philosophy of Upnishad, p.127.
13. ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंचित् जगत्यां जगत्
    तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम्।। – ईशावास्योपनिषद्–1
14. गाँधी जी ने 'न्यासी' शब्द का उपयोग 14 अक्टूबर 1909 को प्रथम बार पोलक को लिखे पत्र में किया था।
15. यंग इण्डिया, 26.03.1931, पृ. 49.
16. यंग इण्डिया, 26.11.1931, पृ. 369
17. हरिजन 12.01.1942
18. जवाहरलाल नेहरूः मेरी कहानी (अंग्रेजी), एलायड पब्लिकेशन्स, मुम्बई, 1962, पृ. 52
19. The Modern Review, October 1931, p.412
20. हरिजन 03.06.1939

❑❑

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में गाँधीजी के सामाजिक दर्शन का पुनर्मूल्यांकन

डॉ0 अलका मिश्रा
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग
जुहारी देवी गर्ल्स डिग्री कॉलेज, कानपुर

दीपाली गुप्ता
नेट – शोध छात्रा
जुहारी देवी गर्ल्स डिग्री कॉलेज, कानपुर

आज बदलते हुये युग के दौर में जहाँ हिंसा, मतभेद, बेरोजगारी, मंहगाई तथा तनावपूर्ण वातावरण से समाज के लोग त्रस्त हो चुके हैं ऐसे में गाँधी जी के प्रति लोगों के मन में एक नये सिरे से रुचि जाग्रत हुई ''गाँधी जी के प्रति यह रुचि तीन स्रोत्रों से जाग्रत हुई पहला–विकसित पूँजीवादी दुनिया–जिन देशों में अधिक मात्रा में तकनीकी और आर्थिक उन्नति के कारण इस उन्नति और संगठनात्मक व मूल्य–पद्धति में खाई पड़ जाने से संकट की स्थिति आ पहुँची है वातावरण में प्रदूषण के संकट से मनुष्य और पर्यावरण के बीच असंतुलन ने उन दिनों में पर्यावरण से सम्बन्धित व्यापक आन्दोलन शुरू किये गये। फलस्वरूप गाँधी दर्शन की ओर लोगों का ध्यानाकर्षण स्वाभाविक है। दूसरा–साम्यवादी दुनिया–जिन देशों के पास राजनीतिक और आर्थिक शक्तियाँ हैं। उन देशों में जनसंख्या का बहुत बड़ा हिस्सा भर–पेट रहने पर भी अर्धमानवीय स्तर पर पहुँच गया। इस स्तर से मुक्ति की चाह भी गाँधीवाद के प्रति आकर्शण का कारण है। तीसरा स्रोत है–तीसरी दुनिया के वे देश जहाँ भयंकर गरीबी है, विकास का अभाव है, जिनकी आजादी को विदेशी ग्रहण का भय सताता रहता है जहाँ लोकतंत्र की भावना का ह्रास हो रहा है और पूर्ण निराशा छायी हुई है। इन देशों ने गाँधी जी के प्रति रूचि जाग्रत करने में अत्यधिक योगदान दिया है।''[1] मूल्यों और सिद्धान्तों के लिए समर्पित गाँधी जी एक विचार, एक दर्शन के रूप में प्रकाश स्तम्भ बनकर राष्ट्र की बिखरती हुई परिस्थितियों को परिवर्तित कर उसे संवारने के लिये आज भी प्रयासरत है। आवश्यकता इस बात की है कि राष्ट्रपिता के विचारों या उनके दर्शन को हमारी वर्तमान पीढ़ी तक पहुँचाया जाये ताकि वे उनको पढ़कर गाँधी जी के सपनों के अनुसार नये भारत के निर्माण में सक्रिय भागीदारी ले सकें।

सामजिक दर्शन है क्या? समाज एक प्रत्यय है कोई भी दर्शन जब तक वह समाजोपयोगी व जीवनोपयोगी नहीं होता तब तक वह व्यवहार में नहीं लाया जाता है। जब हम सामाजिक दर्शन की बात करते है तो हमारा आशय यह होता है वे समस्त विचार जो समाज के लिये कल्याणकारी होते है। प्रस्तुत शोध लेख में गाँधी जी के सामाजिक दर्शन को व्याख्यायित करने के संदर्भ में हम उनके उन सभी विचारों को सम्मिलित करेंगे जो भारतीय समाज को उनके आदर्श स्वरूप तक ले जा सकने की सम्भावना से युक्त हैं। जीवन के प्रति गाँधी जी का दृष्टिकोण अखण्ड था। उन्होंने मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष पर बल दिया जो मनुश्य को उदात्त बना सकता है। समाज के आध्यात्मिक, आर्थिक, नैतिक एवं शैक्षिक सभी पहलू गाँधी जी के चिन्तन सरणि के आधार स्तम्भ हैं। इसमें ये सभी पक्षों का सम्यक विवेचन अनिवार्य है।

आध्यात्मिक एवं नैतिक चिन्तन : गाँधी दर्शन किसी नये दर्शन की कल्पना नहीं है बल्कि उनके विचारों का दार्शनिक आधार ही है। गाँधी जी भारत के मूलभूत कुछ दार्शनिक तत्वों में अपनी आस्था को प्रकट करते हैं। उसी से उनकी पूरी विचारधारा प्रवाहित होती है। वे रहस्वयाद में न पड़कर शिवय, सत्यमय और चिन्मय तत्व को ही ईश्वर की सृष्टि का मूल मानते है। जीवन, जगत, सृष्टि और प्रकृति के मूल में अविनश्वर चेतन का दर्शन विद्यमान है उनके विचार स्वानुभूति पर आधारित है।

गाँधी दर्शन मानव समाज, जीवन, जगत का नैतिक आधार है इसी के गर्भ से उनकी अहिंसा का जन्म हुआ है। महात्मा गाँधी के अनुसार अहिंसा केवल एक दर्शन ही नहीं है बल्कि कार्य करने की पद्धति है, ह्रदय परिवर्तन

का साधन है। गाँधी की अहिंसा पारलौकिक या मोक्ष प्राप्ति का साधन ही नहीं अपितु सामाजिक शान्ति, राजनीतिक व्यवस्था, धार्मिक समन्वय और पारिवारिक निर्माण का भी साधन है यह मानव हृदय की द्विव्य ज्योति है। उन्होंने अपने जीवन के सम्पूर्ण दर्शन का सार एक वाक्य में दिया–''मैं उस ईश्वर के सिवा और किसी ईश्वर को नहीं जानता जो करोड़ों मूक लोगों के हृदय में निवास करता है......और मैं इन करोड़ों की सेवा के द्वारा ही सत्य रूपी परमेश्वर की पूजा करता हूँ।''[2]

उन्होंने यह भी कहा, ''मेरा ईश्वर की आत्यंतिक एकता में और मानव जाति की एकता में पूरा विश्वास है। हमारे अनेक शरीर हो तो क्या?आत्मा तो हमारी एक ही है। किरणों की वकता के कारण सूर्य की किरणों अनेक दिखायी देती है। परन्तु उनका स्रोत तो एक ही है इसलिये मैं दुष्टतम मनुष्य से भी अपने को अलग नहीं रह सकता और न मैं सज्जनतम मनुश्य के तादात्म से वंचित रहना चाहता हूँ।''[3]

सामाजिक दर्शन – वर्तमान समय में जाति प्रथा, अस्पृश्यता, समाज की छुआछूत नीति, नारी के प्रति कठोर दृष्टि, धर्मों के नाम पर चलने वाले अन्याय एवं शोषण जैसी समस्याओं से भारत का जनमानस आज भी मुक्त नहीं हो पा रहा है। गाँधी जी ने महिलाओं की एकता और समानता पर बल दिया और उसके साथ–साथ महिला विरोधी कुप्रथायें जैसे–सती प्रथा, बाल विवाह व पर्दा प्रथा को समाप्त करने का पूर्ण प्रयास किया।

गाँधी जी के सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अपरिग्रह, शरीर श्रम एवं स्वदेशी साथ ही साथ सर्वधर्म समन्वय एवं सर्वोदय के सिद्धान्त बहुत महत्वपूर्ण है उनका मानना है के सम्पूर्ण संसार उनका घर और समग्र मानव जाति उनका परिवार है उनकी आकांक्षा थी कि ''स्वतंत्र भारत के गरीब से गरीब लोग भी यह महसूस करें कि वह उनका देश है और उनके निर्माण में उनकी आवाज का महत्व है।''

गाँधी जी का सत्याग्रह एक आदर्श के रूप में कर्मयोग एक व्यवहारिक दर्शन के रूप में जाना जाता है। गाँधी दर्शन के प्रसिद्ध विचारक एन0के0 बोस–''सत्याग्रह पर विचार करते हुये कहते हैं कि भारत के स्वतंत्रता संग्राम में इनका सत्याग्रह उपयोगी तथा महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ यह सर्वविदित है इसी तरह उनके ब्रह्मचर्य, तपस्या, वैराग्य आदि सम्बन्धी विचार भी वैयक्तिक और सामाजिक दोनों ही दृश्टिकोण से महत्व रखते है इन सबके मूल में उनके ईश्वरवादी और नैतिक आदर्शवाद (पंचायती राज) वास्तविक स्वराज्य की स्थापना, आर्थिक विशमता का अन्त, नमक आन्दोलन, अस्पृश्यता निवारण आदि सभी का उसी भूमिका में वास्तविक अर्थ समझा जा सकता है।''[4] आज की समस्यायें सामाजिक या सामूहिक जीवन की हैं यदि दर्शन इन समस्याओं का समाधान हमारे सामने नहीं रखता है तो ऐसा प्रतीत होता है कि सामाजिक मूल्य कहीं न कहीं विलुप्त हो रहे है पहले का समय अपेक्षाकृत सरल, स्थिर और अप्रगतिशील था आज लोगों की चेतना तेजी से बढ़ रही है समाज जटिल होता जा रहा अतः समय–समय पर परिवर्तन लाने की जरूरत है जिससे मानव जाति व समाज का कल्याण हो।

आर्थिक चिन्तन – गाँधी जी रस्किन की अर्थपद्धति से अत्यधिक प्रभावित हुये थे उनके अनुसार मनुष्य को सादा जीवन और उच्च विचार के आदर्शानुकूल कम से कम आवश्यकतायें बढ़ानी चाहिए एवं तदनुकूल ही ध्यान संचय करना चाहिए। गाँधी जी व्यक्ति के बौद्धिक परिश्रम को महत्व न देकर शारीरिक परिश्रम को ही सर्वोपरि मानते थे उनके अनुसार बौद्धिक श्रम बुद्धि के संतोश का साधन है जबकि शारीरिक श्रम शरीर संतुष्टि का। अतः शारीरिक परिश्रम का इतना अधिक महत्व होने के कारण अधिकांश उत्पादन उसी के द्वारा किया जाना चाहिये। गाँधी जी ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत करने के लिये विभिन्न स्वदेशी उद्योगों के विकास पर बल दिया वे गावों में कृषि, बुनाई, कताई, बढ़ईगिरी, नये युग के कागज बनाना, मधुमक्खियाँ रेशम के कीड़े पालना, खिलौना बनाना आदि कार्यों का अत्यधिक प्रचार किया साथ ही साथ खादी और ग्रामोद्योग (कुटीर उद्योग) पर अत्यधिक बल दिया आत्मनिर्भरता के लिये उन्होंने प्रत्येक परिवार को कातने का कार्यक्रम बताया जिसमें चरखा सर्वसुलभ तथा सर्वोपयोगी उद्योग है इसे कोई भी व्यक्ति कहीं भी चला सकता है और खादी के उत्पादन में सहयोग दे सकता है।

गाँधी जी श्रम की बचत करने वाले साधनों, मशीनों, आधुनिक उपकरणों का समिति मात्रा में प्रयोग करने के पक्ष में थे भारत जैसे देश के लिये गृह उद्योग का बहुत महत्व है उसी के द्वारा गरीब जनता का शोषण और

उसकी दरिद्रता को समाप्त किया जा सकता है। गाँधी जी समाज में व्याप्त आर्थिक विशमता को मिटाना चाहते थे आर्थिक विशमता को दूर करने के लिये गाँधी जी ने संरक्षता का सिद्धन्त (Principle of Trusteeship) प्रस्तुत किया वे कहते थे कि यदि किसी व्यक्ति को उत्तराधिकार में भारी सम्पत्ति मिली है अर्थात् किसी ने व्यापार उद्योग के लाभ से भारी मात्रा में धन एकत्र किया है तो यह सम्पूर्ण सम्पत्ति वास्तव में उस व्यक्ति की न होकर सारे समाज की है। वह व्यक्ति अपने को सम्पत्ति का स्वामी न समझकर ट्रस्टी समझें। गाँधी जी का अर्थव्यवस्था और टेक्नोलॉजी सम्बन्धी दृष्टिकोण इसका लक्ष्य समता स्थापित करना और शोषण समाप्त करना होना चाहिये, इससे पूरा–पूरा रोजगार मिलना चाहिये, इसे कम खर्च पर उपभोग की वस्तुओं का उत्पादन करना चाहिए जिनसे जनता की आवश्यकता पूरी हो सके, जिन उद्योगों में उन्नत टेक्नोलॉजी की आवश्यकता होती है, वे गैर–निजी या सार्वजनिक क्षेत्र में खोले जाने चाहिए।''[5]

गाँधी जी का कहना था ''यह अर्थव्यवस्था एक नया प्रयोग है जिसमें उत्पादन और वितरण राज्य के अध ीन है और राज्य द्वारा नियंत्रित होता है। मुझे नहीं मालूम कि अन्त में यह व्यवस्था अन्ततः सफल होगी या नहीं अगर इसका आधार जोर–बरदस्ती नहीं होता तब मैं इसी व्यवस्था के अनुसार काम करता।''[6]

आज भी संसार में ऐसे देश हैं, जिन्होंने–विशेशकर चीन, वियतनाम और तंजनिया ने गाँधीवाद विचारधारा का पूरा–पूरा लाभ उठाया सुविख्यात अर्थशास्त्री प्रो0 गुन्नार मिर्डल और शूमेकर ने मानवीय पूँजी को विकसित और समृद्ध बनाने का अथक प्रयास किया।

''गाँधी जी कुटीर, उद्योग–प्रधान अर्थव्यवस्था के स्वप्न को व्यवहारिक स्वरूप देने के विशय में राम मनोहर लोहिया ने छोटी मशीन की उत्पादन प्रणाली का सुझाव दिया था।''[7]

गाँधी जी ने श्रम को प्राकृतिक नियम माना श्रम न केवल शरीर को स्वस्थ रखता है बल्कि मस्तिष्क को भी प्रेरित करता है। धन को आवश्यक मानकर भी उसे साधन ही मानते थे उनका कहना था ''जीने के लिये खाओ, खाने के लिये मत जियो'' वर्तमान समय में उपभोग के स्तर में गुणात्मक वृद्धि आर्थिक संवृद्धि का मापदण्ड माना गया है लेकिन गाँधी दर्शन में उपभोग एक साधन मात्र ही नहीं बल्कि पूँजीवादी व्यवस्था के समान साध्य है।

गाँधी जी का शैक्षिक चिन्तन – विश्व का इतिहास इस बात का गवाह है कि विश्व के सभी दर्शनशास्त्री अपने अन्तिम चरणों में शिक्षाशास्त्री बन गये–

स्पेन्सर के कहा–''एक दार्शनिक ही सच्ची शिक्षा को व्यवहारिकता प्रदान कर सकता है।''

"The true education is practicable only to a true philosopher"

अर्थात् जीवन–दर्शन से ही उनके शिक्षा दर्शन का उद्भव होता है शिक्षा व्यक्ति के जीवन का महत्वपूर्ण अंग है। गाँधी जी ने प्रचलित शिक्षा प्रणाली का अध्ययन किया जो मैकाले द्वारा प्रचलित सिद्धान्त पर आधारित थी जिसका मुख्य उद्देश्य था ऐसे मानव तैयार किये जायें जो रंग से तो भारतीय हो किन्तु विचारधारा में पूर्ण अंग्रेज हों। यह शिक्षा प्रणाली तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक परिस्थितियों के प्रतिकूल थी।

महात्मा गाँधी का व्यक्तित्व आदर्शवादी था उनक मूल मंत्र था–''शोषण विहीन समाज की स्थापना करना''। गाँधी जी की शिक्षा पद्धति का एक महत्त्वपूर्ण तत्व था पूर्व बेसिक और बेसिक प्राइमरी शिक्षा। वे इसे गाँवों की दस्तकारी द्वारा दिये जाने पर बल देते थे।

उन्होंने लिखा था–''मैं जो रूपरेखा बना रहा हूँ उससे साहित्य का प्रशिक्षण अलग नहीं है......इसमें व्यवसायिक प्रशिक्षण है जो स्कूल में अधिकांश समय में दिया जायेगा, उनको सफाई और स्वास्थ्य विज्ञान की व्यवहारिक शिक्षा दी जायेगी। जब वह इतना सब सीख जायेंगे तब अपने घर में भी इस शिक्षा का उपयोग करेंगे और मौन क्रान्तिकारी बन जायेंगे।''[8]

गाँधी जी के शिक्षा सम्बन्धी सिद्धान्त के अन्तर्गत–अनिवार्य निःशुल्क शिक्षा, शिक्षा सत्य अहिंसा पर आधारित हो, विद्यालय एवं वातावरण का घनिष्ट सम्बन्ध हो, श्रम केन्द्रित उद्योग केन्द्रित, शिक्षा का माध्यम मातृभाषा, बालकेन्द्रित शिक्षा, क्रिया प्रधान पाठ्यक्रम मूल उद्योग कृषि बागवानी, ताई–बुनाई, काष्ठ कला आदि आते हैं। गाश्ध

ाीवादी शिक्षा के दूरस्थ एवं निकट्स्य उद्देश्य होते है। जैसे–सर्वांगीण विकास, स्वावलम्बन की भावना, सांस्कृतिक विकास, नैतिकता का विकास, सामाजिकता का विकास, नेतृत्व की शिक्षा आदि महत्वपूर्ण है।

काका कालेलकर के अनुसार–''बुनियादी शिक्षा केवल यांत्रिक शिक्षा नहीं है। न यह गृह उद्योगों की शिक्षा है। यह तो बौद्धिक विकास तथा सांस्कृतिक समन्वय की शिक्षा है। बौद्धिक विकास तथा संस्कृति के उच्च आदर्श तक पहुँचना इसका उद्देश्य है।''

महात्मा गाँधी जी के अनुसार–''मैंने आज तक हिन्दुस्तान को बहुत सी चीजें दी हैं, उन सब में शिक्षा की यह योजना और पद्धति सबसे बड़ी चीज है और मैं नहीं मानता इससे अच्छी चीज मैं इस देश को दे सकूँगा।''

वर्तमान परिपेक्ष्य में गाँधी जी के सामाजिक दर्शन के पुनर्मूल्यांकन का प्रश्न है निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि समाज की परिवर्तनशील परिस्थितियों में जहाँ गाँधी दर्शन के सामाजिक दर्शन को अपनाकर चलना अत्यधि ाक कठिन है वहीं इसको अनदेखा भी करना हमारे हिम में नहीं है गाँधी जी ने समाज के लोगों को एक नैतिक आधार प्रदान कर उनके आत्मविश्वास को जगाया है और आत्मनिर्भर बनाया है। गाँधी जी ने राष्ट्र में ऐसी भावना को प्रदर्शित किया है कि हम भाग्य के भरोसे बैठने वाले नहीं है बल्कि जीवन की एक व्यापक धारणा के कारण सामाजिक औद्योगिक आर्थिक सभी क्षेत्रों में क्रान्ति की जो आज भी समाजोपयोगी है। उन्होंने स्त्रियों में अन्तश्चेतना को जाग्रत किया और सामाजिक कुरीतियों के विनाश के लिये प्रयासरत रहें साथ ही अछूतों तथा उत्पीड़नों के लिये प्रेरणा स्रोत बने किसानों के प्रति उनकी भावना अपनत्व की थी और वे अनेक गृह उद्योगों के विकास के पक्ष में थे और अनेक देशी कलाओं को पुनर्जीवन दिया साथ ही साथ शिक्षा के द्वारा बालक को वर्तमान समय में तैयार कर समाजोपयोगी बनाने के पक्ष में थे जो आज भी प्रासंगिक है।

नये विचारों के बारे में गाँधी जी ने कहा था–''मैं नये विचारों को कदापि नहीं रोकना चाहता। पर मैं उनका गुलाम भीनहीं बनाना चाहता।'' आज आवश्यकता इस बात की है कि उनके कौन से सिद्धान्त हमारे देश के लिये मान्य हैं, शान्ति सुरक्षा, समता, स्वावलम्बन, सादगी, स्वाभिमान तथा अहिंसा की आवश्यकता जितनी वर्तमान समय में है उतनी पहले के समय में नहीं थी आज बढ़ते हुये कट्टरवाद, अलगाववाद, आतंकवाद एवं असहिश्णुतता के चलते गाँधी के सामाजिक दर्शन की प्रासंगिकता अत्यधिक बढ़ गयी है। प्रासंगिकता का अर्थ है कि वर्तमान समस्याओं का समाधान गाँधी चिन्तन से हो सकता है या नहीं।

राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बढ़ती हुई बेरोजगारी, जाति एवं नस्ल की वैमनस्यता, आर्थिक विशमताओं से उभरती आर्थिक नूतन प्रवृत्तियों एवं अस्थिरता में गाँधी की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक विचारध ाारा आज अत्यधिक प्रासंगिक है, क्योंकि यह इन समस्याअें को सुलझाने में सक्षम है। हमें गाँधी दर्शन के समयानुकूल दर्शन का सदुपयोग करने का संकल्प लेना चाहिये। वर्तमान परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुये ही गाँधी दर्शन का उपयोग किया जाना चाहिये। आज हमें अन्धानुकरण के संकीर्ण मार्ग से थोड़ा हटकर इस दिशा में गहन विचार करने की आवश्यकता है ताकि हम गाँधी जी के सपनों को साकार कर सकें।[9]

संदर्भ ग्रन्थ

1. जयदेव सेठी, गाँधी की प्रासंगिकता, 1979, पृ0 43
2. हरिजन 3 मार्च 1939 प्रतियोगिता दर्पण, पृ0 34
3. यंग इण्डिया 25 सितम्बर 1924 प्रतियोगिता दर्पण, पृ0 313
4. डॉ0 दशरथ सिंह गाँधीवाद को विनोबा की देन, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी पटना, पृ0 158
5. जयदेव सेठी, गाश्धी की प्रासंगिकता 1979, पृ0 93
6. बी0एन0 गांगुली गाँधी सोशल फिलासफी, पृ0 317
7. डॉ0 अमरेश्वर अवस्थी, डॉ0 राम कुमार अवस्थी, आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन, पृ0 400
8. यंग इण्डिया, 11 जुलाई 1929
9. प्रो0 जी0आर0 वर्मा, गाँधी चिन्तन की प्रासंगिकता, प्रतियोगिता दर्पण सितम्बर 1995, पृ0 252

❑❑

45

डॉ0 अम्बेडकर के सामाजिक विचार : एक विवेचना

डॉ0 शकुन्तला
असिस्टेन्ट प्रोफेसर–राजनीति विज्ञान
डॉ0 भीमराव अम्बेडकर राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, फतेहपुर।

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर एक विचारक, समाज सुधारक और दलितों के मसीहा, संविधानविद मात्र नहीं थे बल्कि वे एक युग का प्रतिनिधित्व करते थे। वे भारत के उच्च्तम विद्वानों में से एक थे। उनको Symbol of knowledge से भी जाना जाता है। स्वतन्त्र भारत के वे प्रथम कानून मन्त्री बने यह गौरव की बात थी।

यह भी हम सब भारतीयों के लिए बहुत ही गौरव की बात है कि संयुक्त राष्ट्र संघ ने 14 अप्रैल अर्थात् भारत रत्न बाबा साहब डॉ0 भीमराव अम्बेडकर जी के जन्मदिन को 'विश्व ज्ञान दिवस' के रूप में मनाने की घोषणा की है।

जवाहर लाल नेहरू के शब्दों में, वे ''हिन्दू समाज के अत्याचारपूर्ण तत्त्वों के प्रति विद्रोह के प्रतीक'' थे।

किसी भी समाज में दो प्रकार के चिन्तक पाये जाते है। प्रथम वे जो समाज में विद्यमान समस्याओं का अध यन कर उनको दूर कर समाजसुधारक कर चिन्तन को नयी देन देते हैं। दूसरे वे जो उसी वर्ग में जन्म लेते हैं तथा स्वयं समाज की समस्याओं को झेलकर उसके यथार्थ समाधान खोजते है।

डॉ0 अम्बेडकर दूसरे प्रकार के चिन्तकों में आते है। वे शूद्र जाति में पैदा हुए थे। अतः उन्हें हिन्दू वर्णव्यवस्था से जुड़े हुए सामाजिक अन्याय का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त था। उन्होंने जाति–प्रथा को हिन्दू समाज की सबसे बड़ी विकृति माना। उन्होंने जाति–व्यवस्था को सामाजिक एकता में बाधक बताया। जाति व्यवस्था पर उनके विचार मुख्य रूप से उनके शोध–पत्र ''कास्ट इन इण्डिया–देयर मेकेनिज्म, जेनिसिस एण्ड डेवलपमेण्ट'' में प्राप्त होते है। यह शोध पत्र उनके द्वारा सन् 1916 ई0 में कोलम्बिया विश्वविद्यालय में प्रस्तुत किया गया था। 'भारत में जातिप्रथा की संरचना, उत्पत्ति और विकास' आलेख में अम्बेडकर कहते हैं कि जाति की समस्या सैद्धान्तिक और व्यावहारिक रूप से एक विकराल समस्या है। वे जाति प्रथा की उत्पत्ति के लिए भारत के विधि निर्माता मनु को उत्तरदायी ठहराते हैं। उनके शब्दों में, ''मनु ने जाति के विधान का निर्माण नहीं किया। जाति प्रथा मनु से पहले विद्यमान थी। वह तो उसका पोषक था, इसलिए उसने उसे एक दर्शन का रूप दिया।.................. प्रचलित जाति प्रथा को ही उसने संहिता का रूप दिया और जाति धर्म का प्रचार किया।''

अम्बेडकर के अनुसार प्रारम्भ में भारतीय समाज चार वर्णों में विभाजित था। ये चार वर्ण है–

1. ब्राह्मण या पुरोहित वर्ग
2. क्षत्रिय और सैनिक वर्ग
3. वैश्य या व्यापारिक वर्ग
4. शूद्र या शिल्पकार वर्ग

आरम्भ में यह अनिवार्य रूप से वर्ग विभाजन के अन्तर्गत व्यक्ति दक्षता के आधार पर अपना वर्ण बदल सकता था और इसीलिए वर्णों को व्यक्तियों के कार्य की परिवर्तनशीलता स्वीकार्य थी। कालान्तर में वर्णों में परिवर्तनशीलता के मार्ग अवरूद्ध हो गए और वे संकुचित बनते चले गए, जिन्होंने जातियों का रूप ले लिया जो जन्म प्रधान थी। जाति एक बन्द समाज है जाति में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता।

अम्बेडकर ने हिन्दुओं में 'अछूत या अस्पृश्य (Untouchable) मानी जाने वाली जातियों को संगठित किया तथा उनके सुधार के प्रयास किये।' अम्बेडकर का मानना था कि जाति प्रथा के दुष्प्रभाव को रोकने का उपाय अन्तर्जातीय विवाह या जातियों के मध्य खानपान नहीं, वरन् उन धार्मिक आधारों को ध्वस्त करना है जिन पर जाति–व्यवस्था आधारित है। कांग्रेस को चुनौती देते हुए एक बार अम्बेडकर ने कहा, ''.....क्या आप राजनीतिक सत्ता की प्राप्ति हेतु अपने को उपयुक्त समझते है, जबकि जनसंख्या के एक बड़े भाग को आप सार्वजनिक

विद्यालयों में प्रवेश नहीं लेने देते........ ''

डॉ0 अम्बेडकर लोकमान्य बालगंगाधर तिलक की पुस्तक 'गीता रहस्य' से बहुत प्रभावित थे जिसमें कहा गया था कि संसार की प्रत्येक वस्तु पर सबका समान अधिकार है।

कृपा सागर ने लिखा है– ''मानव समाज में असमानता और सामाजिक एवं आर्थिक विषमताओं ने उनके मन में कड़वाहट भर दी थी।'' वे चाहते थे कि दलित वर्ग ऊपर उठे और इसके लिए उन्हें पर्याप्त अवसर प्राप्त हो जो वर्ग सदियों से पिसता चला आया है। वे उसे देश के दूसरे नागरिकों के समकक्ष लाना चाहते थे और वे यह भी चाहते थे कि जो लोग इस वर्ग के पिछड़ेपन के लिए जिम्मेदार है, उनमें सदबुद्धि आए।

अम्बेडकर का मानना था कि 19वीं शताब्दी के धार्मिक–सामाजिक सुधारों ने केवल सतही स्तर पर सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में सुधार लाने का प्रयास किया। उन्होंने सभी बुराइयों की जड़ जाति–व्यवस्था पर कोई आक्रमण नहीं किया जो समाज को भीतर से खोखला कर रही है।

अपनी पुस्तक 'जाति प्रथा का उन्मूलन (1936) में डॉ0 अम्बेडकर ने इस प्रश्न पर विचार किया कि क्या भारत में सामाजिक सुधार राजनीतिक सुधारों से पहले होने चाहिए? अम्बेडकर इस विचार से सहमत नहीं हैं कि हम तब तक अपनी सामाजिक प्रणाली में सुधार नहीं करेंगे जब तक हम राजनीतिक सुधारों के योग्य नहीं हो जाते। उन दिनों अछूतों के साथ कैसा व्यवहार होता था, इसका चित्रण करते हुए अम्बेडकर कहते हैं–

मराठा राज्य में पेशवाओं के शासन में यदि कोई हिन्दू सड़क पर आ रहा होता था तो किसी अछूत को इसलिए उस सड़क पर चलने की अनुमति नहीं थी कि उसकी परछाई से वह हिन्दू अपवित्र हो जाएगा। अछूत के लिए यह आवश्यक था कि वह अपनी कलाई या गर्दन में निशानी के तौर पर एक काला धागा बाश्धे, जिससे कि हिन्दू गलती से उससे छूकर अपवित्र हो जाने से बच जाए। पेशवाओं की राजधानी पूना में किसी भी अछूत के लिए अपनी कमर में झाडू बाश्धकर चलना आवश्यक था, जिससे कि उसके चलने से पीछे की धूल साफ होती रहे और ऐसा न हो कि कहीं उस रास्ते में चलने वाला कोई हिन्दू उससे अपवित्र हो जाए। पूना में अछूतों के लिए यह आवश्यक था कि जहाँ कहीं भी वे जाएँ, अपने थूकने के लिए मिट्टी का एक बर्तन अपनी गर्दन में लटका कर चलें, क्योंकि ऐसा न हो कि कहीं जमीन पर पड़ने वाले उसके थूक से अनजाने में वहाँ से गुजरने वाला कोई हिन्दू अपवित्र हो जाय।

अस्पृश्यता के विषय में डॉ0 अम्बेडकर का मानना था कि यह सम्पूर्ण हिन्दू समाज की मानसिक दासता का प्रतीक है जो हिन्दू समाज की जाति–व्यवस्था में पूर्णतया निहित है और जाति–व्यवस्था हिन्दू धार्मिक ग्रन्थों में निहित है इसलिए अस्पृश्यता का अन्त भी तभी सम्भव है जब हिन्दू धार्मिक ग्रन्थों को त्याग दिया जाय और धर्मसार ज्ञान को अपनाया जाय जिससे जनसामान्य में सामाजिक एकता का प्रसार हो और सामाजिक आर्थिक विकास को बल मिले। गाँधी जी इस कार्य को मनुष्य के हृदय में परिवर्तन लाकर करने की बात करते हैं। परन्तु डॉ0 अम्बेडकर इससे सहमत नहीं थे। गाँधी जी ने श्रम की गरिमा (Dignity of Labaur) पर बल देने के लिए अस्पृश्य जातियों के लिए 'हरिजन' (ईश्वर का भक्त) शब्द का प्रयोग सुझाया परन्तु अम्बेडकर ने तर्क दिया कि टूटे–फूटे मकान की रंगाई–पुताई करके उसकी दुर्दशा को छिपा तो सकते है, सुधार नहीं सकते। ऐसी हालत में उसे गिराकर नया मकान बनाना ही उपयुक्त होगा।

डॉ0 अम्बेडकर ने हिन्दू समाज में व्याप्त कुरीतियों एवं सामजिक दासता को हटाने के लिए सामाजिक परिवर्तन को माध्यम/साधन बनाने पर बल दिया किन्तु इस सामाजिक परिवर्तन के लिए संवैधानिक/वैधानिक साधनों को वरीयता दी। उन्होंने कहा कि किसी भी समाज में व्यक्ति की स्वतन्त्रता और सामाजिक आर्थिक विषमता में व्यत्क्रमानुपाति सम्बन्ध होता है।

अम्बेडकर की दृष्टि में मनुष्यों में समानता केवल राजनीतिक समानता से सार्थक नहीं बनाई जा सकती। जब तक सामाजिक और आर्थिक समानता की स्थापना नहीं हो जाती, तब तक समानता अधूरी रहेगी। अतः व्यक्ति की स्वतन्त्रता के लिए यह अपरिहार्य है कि उसकी सामाजिक, आर्थिक विषमता समाप्त की जाये। इसके लिए

सामाजिक परिवर्तन के माध्यम से सामाजिक सुधार किया जाना चाहिए।

इन सुधारों को उन्होंने प्रमुखतया दो भागों में विभाजित किया–

1. परिवारिक व्यवस्था में सुधार – इसके अन्तर्गत उन्होंने बाल–विवाह, विवाह, तालाक, विधवा विवाह महिलाओं की स्थिति में सुधार हेतु भरसक प्रयास किये।

2. धार्मिक / समाजिक व्यवस्था में सुधार – धार्मिक / सामाजिक व्यवस्था में सुधार हेतु दो प्रमुख समस्याओं के उन्मूलन पर बल देना होगा।

- जतिवाद
- अस्पृश्यता

भारतीय संविधान का प्रारूप प्रस्तुत करते समय अम्बेडकर ने संविधान सभा में कहा था, ''इस संविधान को अपनाकर हम विरोधाभासों से भरे जीवन में प्रवेश करने जा रहे हैं। इससे राजनीतिक जीवन में तो समानता प्राप्त हो जाएगी, परन्तु सामाजिक और आर्थिक विषमता बनी रहेगी, राजनीति के क्षेत्र में तो हम 'एक व्यक्ति, एक वोट, एक मूल्य' के सिद्धान्त को मान्यता प्रदान कर देंगे, परन्तु हमारा सामाजिक और आर्थिक ढाँचा इस ढ़ंग से नहीं बदल जाएगा, जिससे एक व्यक्ति, एक मूल्य' के सिद्धान्त को सार्थक किया जा सके।''

दूसरे शब्दों में समानता का सिद्धान्त सच्चे अर्थों में तभी सार्थक होगा जब मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रत्येक व्यक्ति की समान नैतिक मूल्य को साकार किया जा सके।''

अम्बेडकर ने इस स्थिति पर चिन्ता प्रकट करते हुए यह प्रश्न उठाया था, ''हम कब तक विरोधाभासों से भरा जीवन जीते रहेंगे? हम कब तक सामाजिक और आर्थिक जीवन में समानता को अपनाने से इनकार करते रहेंगे।''

अम्बेडकर ने स्पष्ट रूप से यह स्वीकार किया है कि 'उत्पीड़ित समूह' को अपने भीतर से नेतृत्व पैदा करना चाहिए। किसी अन्य समूह की सहानुभूति या नेतृत्व के सहारे उसे अपने उत्थान की आशा नहीं करनी चाहिए।

अम्बेडकर ने दलितो के लिए पृथक निर्वाचक मण्डल की बात कही जिसमें दलितों के प्रतिनिधि केवल दलितों द्वारा ही चुने जाएँ। पहले और दूसरे गोलमेज सम्मेलन में उन्होंने दलितों के लिए पृथक प्रतिनिधित्व पर ही सबसे अधिक बल दिया था। महात्मा गाँधी के साथ उनका विरोध सबसे अधिक प्रमुख रूप से इसी बात पर था। महात्मा गाँधी का कहना था कि 'दलित वर्ग' हिन्दू समाज का एक अविभाज्य अंग है और ऐसी किसी भी स्थिति को स्वीकार नहीं किया जा सकता, जिससे हिन्दू समाज का विघटन हो। डॉ0 अम्बेडकर दलितों के लिए पृथक प्रतिनिधित्व के आधार पर उन्हें एक बड़ी राजनीतिक शक्ति का रूप देना चाहते थे और उन्होंने सन् 1932 के 'पूना समझौते' पर हस्ताक्षर परिस्थितियों के दबाव के कारण ही किए थे।

डॉ0 अम्बेडकर ने जातिवाद एवं अस्पृश्यता उन्मूलन के निम्नलिखित उपाय बताये–

- अर्न्तजातीय विवाह।
- आत्मसम्मान को बढ़ावा।
- निम्नवर्गों द्वारा अपने परम्परागत व्यवसायों को त्यागकर अर्थपूर्ण शिक्षा।
- शहरीकरण एवं औद्योगिकीकरण को बढ़ावा।
- तकनीकी शिक्षा।
- धर्मनिरपेक्ष शिक्षा।
- राजनीतिक सुदृढ़ता जिसके अन्तर्गत जनसामान्य राजनीतिक रूप से संगठित हो।
- अस्पृश्य जातियाँ पर्याप्त राजनीतिक प्रतिनिधित्व प्राप्त करें।

डॉ0 अम्बेडकर न केवल अस्पृश्यता जातिवाद एवं वर्गभेद को मिटाना चाहते थे उन्होंने पुरुष एवं स्त्रियों की समानता के लिए भी काफी काम किया। अम्बेडकर ने 'मनुस्मृति' के इस दृष्टिकोण को स्त्रियों पर अन्याय का मूल कारण माना, जिसमें कहा गया है, ''बाल्यकाल में स्त्रियों की रक्षा पिता करें, यौवन में पति व वृद्धावस्था में पुत्र करे तथा स्त्रियों को स्वतन्त्रता प्रदान नहीं की जानी चाहिए।'' अम्बेडकर ने मनुस्मृति और अन्य शास्त्रों की इस

आधार पर कटु आलोचना की कि उन्होंने स्त्रियों की समाज में स्वतन्त्र भूमिका पर प्रतिबन्ध लगाए है। अम्बेडकर भारतीय परिवार व्यवस्था में स्त्रियों को पुरुषों के अधीन तथा उन पर निर्भर समझे जाने की प्रवृत्ति के प्रबल विरोधी थे।

डॉ0 अम्बेडकर ने सभी स्त्रियों को 'हिन्दू कोड बिल' के माध्यम से अधिकार दिलाये जाने तथा सम्पत्ति और विवाह के मामलों में स्त्रियों को बराबरी का दर्जा तथा उन्हें शिक्षित करने की बात कही थी। सन् 1951 ई. में जो हिन्दू कोड बिल उन्होंने संसद में पेश किया था वह पास नहीं हो पाया लेकिन आगे चलकर जो हिन्दू कोड बिल चार भागों में बटकर पास हो गया वह डॉ0 अम्बेडकर की ही देन है।

जुलाई 1942 में अमरावती में आयोजित महिला सम्मेलन में महिलाओं के उत्थान और उनकी शिक्षा पर जोर देते हुए कहा – ''वे किसी भी जाति के विकास एवं उन्नति तथा तरक्की को उस जाति की महिलाओं द्वारा किये गये विकास के मापदण्ड से मापते है।'' उनका मानना था कि ''जहाँ पर महिला का विकास नहीं होगा वहाँ पर विकास की बात सोची ही नहीं जा सकती।''

इस प्रकार नारी–उत्थान के क्षेत्र में उन्होंने प्रशंसनीय प्रयत्न किए। वे नारी को समाज में सम्मानीय स्थान दिलाना चाहते थे।

इस प्रकार डॉ0 अम्बेडकर अपने जीवन के अन्तिम समय तक सामाजिक न्याय और दलित उद्धार के लिए संघर्ष करते रहे। उन्हें ऊँच–नीच और जात–पात के भेदभाव से घृणा थी उनका विचार था कि किसी भी उत्पीड़ित समूह को अपने भीतर से नेतृत्व पैदा करना चाहिए। किसी अन्य समूह की सहानुभूति या नेतृत्व के सहारे अपने उत्थान की आशा नहीं करनी चाहिए।

सामाजिक समानता, अस्पृश्यता का अन्त, अनुसूचित जाति एवं जनजाति तथा अन्य पिछड़े वर्ग को जो आरक्षण प्राप्त है। वह डॉ0 अम्बेडकर की ही देन है। वे सामाजिक एकता के अग्रदूत थे। उन्होंने सामाजिक विषमता का अनुभव किया उसकी पीड़ाओं को भोगा और साहसपूर्वक डटकर उसका सामना किया।

डॉ0 अम्बेडकर ने आर्थिक सुधारों को सामाजिक सुधारों के मूल के रूप में माना। आज जो समावेशी विकास की बात हो रही है जिसमें समाज के निम्नवर्ग एवं महिलाओं को मुख्यधारा में लाने के लिए संवैधानिक प्रावधान किये जा रहे है। विभिन्न आर्थिक योजनायें इस मूलमन्त्र को पूर्ण कर रही है। इसकी अवधारणा हमें डॉ0 अम्बेडकर के विचारों में सामाजिक आर्थिक सुधारों से स्पष्ट दृष्टिगत होती है।

गाँधीजी ने उनके बारे में कहा था– ''भविष्य में डॉ0 अम्बेडकर के नाम के साथ चाहे किसी भी विश्लेषण का प्रयोग हो वे एक ऐसे व्यक्ति हैं जिन्हें भुलाया नहीं जा सकता।''

इस प्रकार हम कह सकते है कि दलितों के लिए उन्होंने वही कार्य किया जो कार्य अब्राहम लिंकन ने दासों की मुक्ति के लिए और पॉल राबसन ने अमरीका के नीग्रो लोगों की मुक्ति के लिए किया था।

संदर्भ ग्रन्थ

1. राजनीति–विचारक विश्वकोश – ओम प्रकाश गावा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, 2001
2. राजनीति–चिन्तन की रूपरेखा – ओम प्रकाश गावा, मयूर पेपर बैक्स नोयडा 2002
3. आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन – अवस्थी एवं अवस्थी रिसर्च पब्लिकेशन नई दिल्ली, 1997
4. डॉ0 भीमरॉव अम्बेडकर – चेतन मेहता, आशीष पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2004
5. अम्बेडकर आलोचना के प्रतिमान नई – ईश कुमार गंगानिया किताब घर, प्रकाशक दिल्ली, 2006
6. गाँधी नेहरू टैगोर तथा अम्बेडकर – एम0सी0 जोशी अभिव्यक्ति प्रकाशन इलाहाबाद, 1998
7. अम्बेडकर जीवन दर्शन – डॉ0 आर0 निम विद्या विहार, नई दिल्ली, 2006
8. डॉ0 बाबा साहेब अम्बेडकर – धनंजय कीर, पॉप्युलर प्रकाशन, मुम्बई, 1984

❑❑

रवीन्द्रनाथ टैगोर के दार्शनिक चिन्तन की वर्तमान में प्रासंगिकता

डा0 सोमेश नारायण सिंह
विभागाध्यक्ष शिक्षा संकाय
हंडिया पी.जी. कालेज, इलाहाबाद

डा0 बृजेन्द्र कुमार सिंह
असिस्टेन्ट प्रोफेसर–शिक्षा संकाय
हंडिया पी.जी. कालेज, इलाहाबाद

टैगोर का जीवन दर्शन : विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर की प्रतिमा बहुमुखी थी। वे कवि एवं कलाकार होने के साथ साथ शिक्षक एवं दार्शनिक थे। उनका व्यापक जीवन दर्शन वेद एवं उपनिषदों के चिन्तन एवं मनन के परिणामस्वरूप विकसित हुआ था। आगे चलकर यही इनके स्वयं जीवन का आधार बना। वैसे उन्होंने न तो किसी नये दर्शन का प्रतिपादन किया है और न ही किसी दर्शन की व्याख्या की परन्तु एक वक्ता लेखक और कवि के रूप में उन्होंने चिन्तन विचारों की अभ्यिक्ति की है उनसे इनके दार्शनिक चिन्तन की स्पष्ट तस्वीर मिलती है। उन्होने एक वक्ता, लेखक और कवि के रूप मे अपने विचारो कि अभिव्यक्ति की है जैसे :

टैगोर का विश्वबोध दर्शन : गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर उपनिषद दर्शन के पोषक थे। उसी दर्शन को उन्होंने मानवीय दृश्टिकोण से देखा समझा है। वे संसार के समस्त प्राणियों में उस परमातमा की प्राप्ति मानते थे। और इस आधार पर संसार के समस्त प्राणियों में एकात्म भाव उत्पन्न करने पर बल देते थे। तभी कुछ विद्वान इनके दार्शनिक चिन्तन को विश्वबोध दर्शन की सेवा देते है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार ईश्वर द्वारा निर्मित यह जगत् उतना ही सत्य है जिनका ईश्वर अपने में सत्य ईश्वर को इन्होंने निराकार है और स्मृति में सकार है। वे प्रकृति के कण–कण में ईश्वर का दर्शन करते है। आत्मा को गुरूदेव ने उपनिषदों के आधार पर तीन रूपों में स्वीकार किया है। अपने प्रथम रूप में मनुष्य के आत्मरक्षा में प्रवृत्त करती है। दूसरे रूप में विज्ञान की खोज और अनन्त ज्ञान की प्राप्ति की ओर प्रवृत्त करती है और तीसरे रूप में अपने अनन्त रूप को समझने की ओर प्रवृत्त करती है। इसके अनुसार ये तीनों कार्य आत्मा के स्वाभाविक गुण है। आत्मानुभूति को इन्होंने किया है। एक भौतिक और दूसरा आध्यात्मिक। मनुष्य के भौतिक पक्ष को उन्होंने स्वयं शरीर उसके प्राकृतिक पर्यावरण एवं पारिवारिक सामाजिक सास्कृतिक आर्थिक तथा राजनैतिक जीवन को रखा है। इसके विकास के लिए भौतिक साधनों की आवश्यकता है। उन्होंने मनुष्य के आध्यात्मिक पक्ष में उसकी आत्मा को रखा है। तथा इसके विकाास के लिए समाज सेवा प्रेम एवं योग साधना की आवश्यकता होती है।

टैगोर का मानववादी दर्शन : गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर मानव में आस्था रखते थे और उन्हें उच्च कोटी का मानववादी कहा जा सकता है। एक महाकवि होने के नाते उन्होंने संवेगों एवं स्थायी भावों के दमन का परामर्श नहीं दिया है वरन् व्यक्ति के सभी शक्ति के सामंजस्यपूर्ण विकास का समर्थन किया है।

टैगोर का मानव व्यक्तित्व की गरिमा में विश्वास था। वे मानव जाति का उद्धार करना चाहते थे। और मनुष्य के मूल्य को गिराने का घोर विरोध करते थे। उन्हें बड़ा दुख था कि मानव मूल्य का तिरस्कार हो रहा है। और वर्तमान युग में मनुष्य का जीवन सस्ता होता जा रहा है। उनका विश्वास था कि यह दुनिया मूलरूप में मानवीय दुनिया है वे मानते थे कि ईश्वर को वहीं खोजना चाहिए जहाँ एक किसान हल जोत रहा है टैगोर का सम्पूर्ण जीवन दर्शन में मानव कल्याण को महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। वे लिखते है कि इसके साथ ही मानव करूणा के प्रति भी मुझे लालसा सही है तथा स्वाभाविक रूप में अपने ढंग से अभिव्यक्ति देता रहा हूँ। उनका मानववादी दर्शन समस्त शैक्षिक दर्शन से प्रतीत होता हैं ।

टैगोर का प्रकृतिवादी दर्शन : टैगोर प्रकृतिवादी थे किन्तु उनका प्रकृतिवाद रूसों के प्रकृतिवाद से भिन्न था। वे भारतीय प्रकृतिवाद के प्रणेता कहे जाते है। रूसो ने समाज को सभी बुराइयों का जड़ मानकर समाज और सामाजिक जीवन का घोर विरोध किया था किन्तु टैगोर के हृदय में समाज के प्रति प्रेम एवं दया का भाव था। वे समाज का उन्नयन करना चाहते थे। और अतीत भारत की आत्मा को आधुनिक भारत की आत्मा में देखना चाहते थें भौतिक प्रकृतिवादी लीक को छोड़कर उन्होंने आध्यात्मिक प्रकृतिवाद का आश्रय लिया।

टैगोर का राष्ट्रवादी दर्शन : टैगोर राष्ट्रीय सृजन एवं सामाजिक सुधार में गांवों को प्रमखु स्थान देते थे। देश सेवा का महत्वपूर्ण कार्य ग्रामसेवा है किन्तु यह ग्राम सेवा ग्रामीणों के कृपा के रूप में नहीं होना चाहिए। सेवा में भी ग्रामीणों को उचित सम्मान मिलना चाहिए। ग्रामों एवं शहरों के बीच खाई को पाटना चाहिए। जाति पाति एवं अस्पृश्यता का भी वे विरोध करते थे। बड़े–बड़े शहरों की अपेक्षा कस्बों के रहन सहन का वे समर्थन करते थे।

टैगोर का समन्वयवादी दर्शन : टैगोर का सबसे बड़ी देन उनका समन्वयवाद है। उन्होंने दर्शन के क्षेत्र में आध यात्मवाद, आदर्शवाद, प्रकृतिवाद और मानवतावाद को समन्वित करने का अद्‌भुत पश्चिम एवं पूर्व के दर्शन का समन्वय ही उनका साथ हैं उनका मानना है कि पश्चिम से भौतिकवाद। उन्होंने अपनी रचनाओं में प्रतिपादित प्रेम और मृत्यु की अभिन्नता उनकी समन्वय नीति का प्रतीक है। वे अनेक विरोधी प्रवृत्तियों का समन्वय और उनको एकरूपता प्रदान करना चाहते थे। शरीर मस्तिष्क और जीवन व्यक्ति और समाज प्रकृति और मनुष्य आत्मा और मनुष्य कुरूपता और सौन्दर्य समूह और राष्ट साम्राज्य और विश्व आदि में समन्वय स्थापित करने का प्रयास टैगोर ने किया।

टैगोर का शिक्षा दर्शन : गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर की सबसे अधिक ख्याति साहित्य क्षेत्र में प्राप्त हैं अन्य क्षेत्रों में भी उनका बड़ा योगदान रहा है। अपने समय में वे शिक्षा में सुधार के लिए भी बहुत कार्य किए। शिक्षा जगत् में टैगोर शिक्षाशास्त्री के रूप में प्रतिष्ठित हैं यहाँ उनके शिक्षा सम्बन्धी विचारों का क्रमबद्ध विवेचन प्रस्तुत है।

शिक्षा का सम्प्रत्यय : टैगोर शिक्षा को मनुष्य जीवन की अनिवार्य आवश्यकता मानते रहे। इनकी दृष्टि से शिक्षा वह सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य भैतिक प्रगति करता है और आध्यात्मिक पूर्णता की प्राप्ति करता है। भौतिक प्रगति करता है और आध्यात्मिक पूर्णता को प्राप्ति करता है। भौतिक दृष्टि से टैगोर ने शिक्षा को इस प्रकार परिभाषित किया है वास्तविक शिक्षा वह है जो उपयोगी वस्तुओं की वास्तविक प्रकृति को जाने और उनके उपयोग करके और उनसे वास्तविक जीवन की रक्षा करने में सहायता करती है। टैगोर ने सर्वोच्च शिक्षा के विषय में कहा है – सर्वोच्च शिक्षा वह है जो हमारे जीवन और समस्त सृष्टि के बीच समरसता स्थापित करती है।

शिक्षा का उद्‌देश्य : टैगोर की दृष्टि में शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे मनुष्य का भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास हो सके और इन्हीं को वे शिक्षा का उद्‌देश्य मानते थे। वे मनुष्य के सर्वांगीण विकास के पक्षधर थे। शिक्षा के उद्‌देश्य सम्बन्धी विचारों को निम्न रूप मे व्यक्त किया जा सकता है।

शारीरिक विकास : टैगोर ने सबसे अधिक बल मनुष्य के शारीरिक विकास पर दिया है। इनकी दृश्टि में मनुष्य का शरीर स्वस्थ एवं सुन्दर होना चाहिए उसकी मांसपेशियों सुदृढ़ होनी चाहिए और इन्द्रियों को अपने अपने कार्य में सक्षम होनी चाहिए। इनकी दृष्टि में शारीरिक विकास के लिए यदि बच्चों को अध्ययन कार्य भी छोड़ना पड़े तब भी कोई विशेष बात नहीं है। ये बच्चों को प्राकृतिक वातावरण में रखने के पक्षधर थे। और वे चाहते थे कि बच्चों को पेड़ों पर चढ़ने दिया जाये तालाबों में उन्हें डुबकियों लगाने दिया जाय और उन्हें नाना प्रकार की शरारतें करने दिया जाय जिससे इन सब क्रियाओं से शारीरिक विकास हो सके।

बौद्धिक विकास : टैगोर मनुष्य के बौद्धिक विकास पर भरपूर बल देते थे। उनका मानना था। बौद्धिक विकास कुछ विषयों के ज्ञान मात्र से नहीं बल्कि विभिन्न मानसिक शक्तियों जैसे स्मरण कल्पना चिन्तन और तर्क आदि के विकास से है इसी मानसिक शक्तियों के द्वारा मनुष्य ज्ञान का अर्जन करता है और नये नये नथ्यों की खोज करता

है। उनका विचार था कि इन बौद्धिक विकास के आधार पर मनुष्य भौतिक जीवन को सुखमय तथा आध्यात्मिक पूर्णता का विकास कर सके।

नैतिक विकास : टैगोर मानवतावादी व्यक्ति थे वे मानव को अच्छा मानव बनाने पर बल देते थें उनके अनुसार अच्छा मानव बनने के लिए नैतिक नियमों का पालन करना होगा। नैतिक नियमों के लिए वे ब्रह्मचर्य अनुशासन ध्यान एवं साधनों आदि की चर्चा की। नैतिक नियमों के पालन के लिए आन्तरिक शक्ति आत्मा अनुशाासन एवं ज्ञान को आवश्यक माना है।

सामाजिक विकास : टैगोर ने सामाजिक विकास की भी शिक्षा का उद्देश्य माना है उनका मत था कि शिक्षा के द्वारा बच्चों का विकास तभी सम्भाव है जब तक समाज का विकास न हो क्योंकि बच्चों समाज में ही पलता है बड़ा होता है वे शिक्षा द्वारा मनुष्य में समाज कल्याण भावना का विकास पैदा करना चाहते थे।

सांस्कृतिक विकास : टैगोर शिक्षा द्वारा भारतीयों को अपने मूलभूत संस्कृति से परिचय कराना चाहते थे। और उन्हें उसके अनुसार आचरण की ओर प्रेरित करने के लिए विशेष बल दिया। उनका तर्क था कि मानव की विभिन्न समस्या एवं संस्कृतियों में जो भिन्नता है वह हमें पृथक नहीं करती अपितु हमें विविधता का ज्ञान कराती है।

राष्ट्रीय भावना का विकास : टैगोर के अनुसार शिक्षा का मुख्य उ्देश्य बालक में राष्ट्रीय भावना को विकसित करना है। वे राष्ट्रीय जागृति के प्रणेता थे। वे राष्ट्रीय एकता के विकास पर बल देते थे। वे संकीर्ण राष्ट्रीय को मनुष्य के उत्थान में बाधक मानते थे।

अन्तर्राष्ट्रीय भावना का विकास : टैगोर अन्तर्राष्ट्रीय भावना को विकसित करना शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य मानते थे। वास्तव में वे यह चाहते थे कि शिक्षा के द्वारा मनुश्य को अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के बन्धन में बाधा जाय जिससे वह अर्न्तराष्ट्रीय समाज के विकास हेतु प्रयास करता है।

व्यावसायिक विकास : टैगोर मनुष्य को आर्थिक कुशलता भी प्रदान करना चाहते थे। इसके लिए इन्होंने हस्त कार्य शिल्प और कृशि शिक्षा पर सर्वाधिक बल दिया है। जिससे मनुष्य आर्थिक आत्मनिर्भर हो सके।

आध्यात्मिक विकास : टैगोर के अनुसार शिक्षा वह है जो हमें सम्पूर्ण संसार की एकता से परिचित कराए। इसके अनुसार जब मनुष्य विश्वभर के प्राणियों में एकात्मकता के दर्शन करते लगे। तब समझो कि उसको आत्म तत्व की अनुभूति हो ग ई इसके लिए वे शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य के आध्यात्मिक विकास को मानना है।

पाठ्यक्रम : टैगोर ने मनुश्य के प्राकृतिक सामाजिक एवं आध्यात्मिक तीनों प्रकार के विकास पर बल दिया है। ओर इसके समुचित विकास के लिए पाठ्यक्रम का निर्माण किया है। अत इस दृष्टि से उन्होंने पाठ्यक्रम में अपने देश की भाषा संस्कृति तथा सभ्यता के साथ–साथ अन्य देशों की भाषा एवं संस्कृति के अध्ययन पर बल दिया है। उनका विश्वास था कि इस प्रकार शिक्षा से विभिन्न राष्ट्रों के बीच साझेदारी एवं सद्भावना स्थापित हो सकेगी। इसलिए वे पाठ्यक्रम में विभिन्न विशयों के साथ–साथ मानवता का विकास करने वाले विषयों को महत्त्वपूर्ण स्थान देने के समर्थक थे। इन्होंने प्रारम्भ में अपने शान्ति निकेतन के लिए इस क्रिया प्रधान पाठ्यक्रम को रखा उसका रूप निम्नलिखित था–

1. विषय : मातृभाषा संस्कृत इतिहास भूगोल प्रकृति अध्ययन विज्ञान कला और संगीत।

2. उपयोगी क्रियाएं : बगवानी कृषि क्षेत्रीय अध्ययन भ्रमण विभिन्न वस्तुओं को संग्रह और प्रयोगशाला कार्य।

3. अन्य क्रियाएं : खेलकूद नाटक संगीत नृत्य मौलिक रचना ग्रामोत्थान और जैसे जैसे शन्तिनिकेतन का विकास होता गया जैसे तैसे उसमें राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व की भाषा साहित्य एवं सांस्कृतियों की उसकी पाठ्यचर्चा में सम्मिलित किया जाने लगा। आज तो यह विश्वभारती विश्वविद्यालय के रूप में अन्तराष्ट्रीय उदार और तकनीकी शिक्षा का प्रमुख केन्द्र बना गया है। इसमें पूर्व प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च एवं तकनीकी शिक्षा की व्यवस्था है और विभिन्न स्तरों के लिए विभिन्न पाठ्यचर्या निश्चित है।

शिक्षण विधि : टैगोर ने प्रचलित पाठ्यक्रम की भांति तत्कालीन नीरस तथा निष्क्रिय शिक्षा पद्धति की वृतिमता का विरोध करते हुए इस बात पर बल दिया कि शिक्षा की प्रक्रिया जीवन से पूर्ण होनी चाहिए। उसे जीवन की वास्तविकताओं पर आधारित होना चाहिए। इस सम्बन्ध में टैगोर का विचार था। कि बालक का विकास उसकी रूचियों तथा आवेगों के अनुसार होना चाहिए। इसके लिए उसे प्रत्यक्ष श्रोतों से स्वतंत्र प्रयासों द्वारा प्रत्यक्ष ज्ञान को अर्जित करने के अवसर मिलने परम आवश्यक है इन्होंने शिक्षण की किसी नई विधि का निर्माण तो नहीं किया परन्तु अपने समय की शिक्षण विधियों में सुधार के लिए सुझाव अवश्य दिये है। टैगोर द्वारा प्रतिपादित इन शिक्षण सिद्धान्तों को हम निम्नलिखित रूप में व्यक्त कर सकते है।

मौखिक विधि : प्राचीन काल में अपने विषयों को उपदेश व्याख्यान प्रश्नोत्तर वाद विवाद और आदि मौखिक विधियों द्वारा ही पढ़ते थे। टैगोर ने इन विधियों के महत्व को स्वीकार किया परन्तु इस सावधानी के साथ कि इन विधियों का प्रयोग तभी किया जाय जब बच्चों को जीवन की वास्तविक परिस्थितियों में स्वयं करके स्वयं के अनुभवों से सीखना सम्भव न हो।

स्वाध्याय विधि : यह सीखे सिखाने की अति प्राचीन विधि है। टैगोर स्वयं इस विधि द्वारा अधिक सीखा समझे थे। इन्होंने अपने पिता और बड़े भाई भ्राता के मार्गदर्शन में वेद और उपनिषदों का अध्ययन किया था। इस विधि ा के प्रयोग के सन्दर्भ में उन्होंने निम्न सुझाव दिए यह कि सर्वप्रथम बच्चों को स्वाध्याय योग्य बनाया जाये उन्हें स्पष्ट भाषा का अध्ययन कराया जाए और उनमें स्वयं समझने की मानसिक योग्यता का विकास किया जाए।

विश्लेषण एवं संश्लेषण विधि : टैगोर तथ्यों को स्पष्ट करने हेतु इस विधि का अधिक उपयोगी मानते थे परन्तु इसके प्रयोग में निम्न सावधानियाँ बरतने पर बल देते थे यह कि बच्चों के सामने जो भी उदाहरण प्रस्तुत किये जाएं व उसके जीवन से सम्बन्धित हो।

क्रिया विधि : टैगोर ने सबसे अधिक बल इस बात पर दिया कि बच्चों को स्वयं के अनुभव से सीखने के अवसर प्रदान करने चाहिए। स्वयं करके स्वयं के अनुभव से सीखने की विधि ही क्रिया विधि है। पर इस विधि के प्रयोग में भी इन्होंने कुछ सावधानियाँ बरतने पर बल दिया। क्रिया बच्चों के अपने जीवन से सम्बन्धित होनी चाहिए।

प्रयोग विधि : टैगोर ने कला कौशल विज्ञान और अन्य व्यवहारिक विषयों एवं क्रियाओं की शिक्षा के लिए प्रयोग विधि का समर्थन एवं प्रयोग किया। इस विधि के तीन पद होते हैं। पहला शिक्षक द्वारा प्रदर्शन दूसरा छात्रों द्वारा अनुकरण और तीसरा छात्रों द्वारा अभ्यास। इस प्रकार यह विधि प्रदर्शन अनुकरण और अभ्यास इस तीन विधियों का प्रयोग होती है।

शिक्षक : शिक्षक के विषय में टैगोर के विचार पूर्णरूपेण परम्परावादी थे। इनकी दृष्टि से शिक्षक को ज्ञानी संयमी और बच्चों के प्रति समर्पित होना चाहिए। वे कहा करते थे कि विद्यार्थी शिक्षकों के द्वारा जाने वाले ज्ञान की अपेक्षा उनके मनोभावों और आचरण की विधियों को शीघ्र सीखते हैं इसलिए शिक्षकों को ज्ञानी ब्रह्मचारी चरित्रवान और आदर्श आचरण करने वाला होना चाहिए। वे शिक्षक से यह भी आज्ञा करते थें कि वह अपने विद्यार्थियों की व्यवहार करे। उनके साथ सदैव प्रेम और सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करे। इनकी दृष्टि से शिक्षकों में राष्ट्र प्रेम होना चाहिए। और अर्न्तराष्ट्रीय सद्भाव होना चाहिए। ऐसे ही शिक्षक बच्चों में राष्ट्रीयता एवं अर्न्तराष्ट्रीयता का विकास कर सकते हैं। इस सबके लिए वे शिक्षकों के प्रशिक्षण एवं आवश्यकता समझते थे।

शिक्षार्थी : टैगोर शिक्षार्थी के व्यक्तित्व का आदर करते थे और उनके लिए उनके अनुकूल शिक्षा की व्यवस्था पर बल देते थे। परन्तु दूसरी ओर उनसे ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने की अपेक्षा करते थे। ब्रह्मचर्य व्रत में इन्द्रिय निग्रह मन वचन व कर्म की शुद्धि तथा सादा एवं प्राकृतिक जीवन का विशेष महत्व है। उनके अनुसार विद्यार्थियों को नित्य प्रातः काल उठना चाहिए। अपने शरीर की सफाई करनी चाहिए। नियमों एवं आदेशों का पालन करना

चाहिए। व्यवहार में विनम्र होना चाहिए। प्रकृति एवं सौन्दर्य की उपासना होनी चाहिए और सांसारिक तथा आध्यात्मिक दोनों प्रकार के ज्ञान प्राप्ति के इच्छुक होना चाहिए। जब तक वे स्वयं से प्रेरित होकर और गुरु में श्रद्धा रखकर सीखने के लिए आगे नहीं बढ़ेंगे तब तक वे कुछ नहीं सीख सकेंगे। इसके साथ–साथ उन्हें असीय दोषपूर्ण और निन्दनीय आचार विचार से दूर रहना चाहिए।

विद्यालय : टैगोर के विचार से विद्यालय प्राचीन गुरू आश्रमों की भांति नगर के कोलाहल से दूर प्रकृति की सुरम्य गोद में स्थित होने चाहिए। उनका विश्वास था कि शान्त पर्यावरण में ही शिक्षक और शिक्षार्थी शिक्षा की साधना कर सकते है। वे इस बात पर बहुत बल देते थे कि विद्यालय राष्ट्र के प्रतिनिध होने चाहिए और इनमें राष्ट्र की सभ्यता एवं संस्कृति की सही शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए इसके साथ–साथ इनमें अर्न्तराट्रीय महत्व की भाषा एवं संस्कृतियों की विद्यार्थी विश्वबोध कर सके। उनका विश्व भारतीय विश्वविद्यालय उनकी इन सब भावनाओं का मूर्त रूप स्थापित कर रहा है।

शिक्षा के अन्य पक्ष : टैगोर ने शिक्षा के अन्य पक्षों पर भी अपने विचार व्यक्त किए है। यहाँ इनके जन शिक्षा स्त्री शिक्षा व्यावसायिक शिक्षा धर्म शिक्षा और राष्ट्रीय एवं अर्न्तराष्ट्रीय शिक्षा सम्बन्धी विचार प्रस्तुत है।

जन शिक्षा : टैगोर ने तत्कालीन भारत की दीनहीन दशा देखी थी और साथ ही पाश्चात्य देशों का वैभवशाली जीवन देखा था। उन्होंने यह भी अनुभव किया कि हमारे इस पिछड़ेपन का मूल कारण शिक्षा का अभाव है। अतः उन्होंने जन शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया। जन शिक्षा को उन्होंने थोड़े व्यापक य॰ में लिया है। गाँव और शहर के सभी बच्चों के लिए समान सामान्य अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की जाए। टैगोर ने स्पष्ट किया कि हमारे देश की 70 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में निवास करती है। इसलिए शिक्षा में ग्राम्य जीवन की समस्याओं को विशेश स्थान दिया जाए।

स्त्री शिक्षा : टैगोर ने स्त्री शिक्षा के महत्व को स्पष्ट किया और उनकी शिक्षा प्रणाली की पूरी रूपरेखा तैयार की। उनके अनुसार प्राथमिक शिक्षा लड़कें लड़कियों सबके लिए समान होनी चाहिए। माध्यमिक स्तर पर लड़कियों के लिए गृह विज्ञान अनिवार्य होना चाहिए क्योंकि उन्हें पत्नी और माताओं की भूमिका अदा करनी होती है और उच्च्य शिक्षा लड़के–लड़कियों के लिए समान होना चाहिए। टैगोर ने इस बात पर बहुत बल दिया कि लड़कें–लड़कियों दोनों की किसी भी प्रकार की शिक्षा के समान अवसर और समान सुविधाएं प्रदान की जानी चाहिए। इन्होंने स्पष्ट किया कि जब तक देश के सभी स्त्री पुरूष शिक्षित नहीं होते तब तक देश का उत्थान नहीं किया जा सकता।

व्यावसायिक शिक्षा : टैगोर ने स्पष्ट किया कि देश के आर्थिक विकास के लिए व्यावसायिक शिक्षा अति आवश्यक है और चूँकि हमारा देश कृषि प्रधान देश है। ओर कुटीर उद्योग प्रधान देश है। इसलि यहाँ कृषि एवं कुटीर उद्योगों की शिक्षा की विशेष व्यवस्था होनी चाहिए। आधुनिक विज्ञान और तकनीकी से भी ये वंचित नहीं रहना चाहते थे। और भारी उद्योगों के लिए इस प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था आवश्यक समझते थे।

धर्म शिक्षा : धर्म के सम्बन्ध में टैगोर का दृष्टिकोण बहुत विस्तृत था। इनके अपने शब्दों में धर्म असीम के प्रति एक तीव्र इच्छा है। और उसकी आनन्दमयी अनुभूति है। वे अन्धविश्वासों पूजा पाठ की आडम्बरयुक्त विधियों और कर्ममाण्ड के विरोधी थे। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि सच्ची धार्मिकता जप–तप में नहीं मनुष्य को मनुष्य मानने में है मानव मात्र की सेवा करने में है। विश्वकल्याण की भावना कि इस धर्म की शिक्षा उपदेश व्याख्यान अथवा पुस्तकों के माध्यम से नहीं दी जा सकती इसकी शिक्षा तो इसे जीवन का अंग बनाकर ही दी जा सकती है।

राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा : यूं टैगोर ने राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा की काई योजना प्रस्तुत नहीं की है परन्तु उनके तत्सम्बन्धी फुटकर विचारों से यह बात स्पष्ट होती है कि वे देशवासियों को सर्वप्रथम अपनी भाषा अपने साहित्य और अपने धर्म एवं दर्शन से परिचित कराना चाहते थे। परन्तु वे संकीर्ण राष्ट्रीयता के पक्षधर नहीं थे वे तो अन्तर्राष्ट्रीय के हामी थे। उन्होंने अपनी भाषा साहित्य और धर्म दर्शन के अध्ययन पर भी बल

दिया है।

इस प्रकार राजनीतिक सामाजिक एवं शैक्षिक कार्यो को करते हुए भी उनकी साहित्य साधना अनवरत रूप से चलती रही और महाकवि एवं साहित्यकार के रूप मे उनका व्यक्तित्व निखरता गया। टैगोर विश्व कवि थे और गीतांजली उनका विश्वविख्यात ग्रन्थ है।

लघुता के सामीप्य की इच्छा करने वाला कवि महानता की चरम सीमा तक पहुँच गया। इस व्यक्ति से सारा पश्चिम प्रभावित हुआ। टैगोर उच्चकोटि के मानवता वादी थे और मानव व्यक्तित्व के गरिमा मे उनका विश्वास था। वे मानव जाति का उद्धार करना चाहते थे और मनुष्य के मूल्य को गिराने का घोर विरोध करते थे। उन्हे बडा दुख था कि मानवीय मुल्यो का तिरस्कार हो रहा है और वर्तमान युग मे मनुष्य का जीवन सस्ता होता जा रहा है। उनका विश्वास था कि यह दुनिया मुल रूप से मानविय दुनिया है। वे जानते थे कि ईश्वर को वही पर खोजना चाहिए।

टैगोर के शैक्षिक आधार दार्शनिक है। कौन सा ग्राहय है और कौन सा नही तथा शिक्षा दर्शन में किसी दार्शनिक के विचारो को उसके तत्त्व मीमांसीय मीमांसीय तथा मूल्य मीमांसीय पद्धति से परखा जाता है।

गुरूदेव के शैक्षिक चिन्तन और प्रयोग दिखायी देता है। आज पुरे देश में शिक्षा का माध्यम मातृ भाशाएं है। प्रायः सभी विश्वविद्यालयो मे अन्तर्राष्ट्रीय महत्व की भाषाओ, कला कौशलों और ज्ञान विज्ञान की शिक्षा की व्यवस्था है। आज जन शिक्षा स्त्री शिक्षा व्यवसायिक शिक्षा मानव धर्म शिक्षा और राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा की जो व्यवस्था है। इसकी अलख सर्वप्रथम रवीन्द्र नाथ टैगोर ने ही जलाई थी।

डा. मुखर्जी के शब्दों में टैगोर आधुनिक भारत में शैक्षिक पुनरुथान के सबसे बड़े पैगम्बर थे।

(Tagor was the greatest prophet of educational renaissance in modern India)

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- पाण्डेय राम शकल : विश्व के श्रेष्ठ शिक्षा शास्त्री अग्रवाल पब्लिकेशन
- S.P. Chaube : Recent Philosophies of Education
- लाल बिहारी रमन : शिक्षा के दार्शनिक एवं समाज शास्त्रीय सिद्धांत रस्तोगी पब्लिकेशन
- पाण्डेय राम शकल : शिक्षा दर्शन, विनोद पुस्तक मन्दिर
- चौबे प्रसाद सरयू : आधुनिक शिक्षा के दार्शनिक और समाजशास्त्रीय सिद्धांत, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
- ओड. के. लक्ष्मीकान्त : शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
- Patel M.S. : Educational Philosphy of Mahatma Gandhi Ahmedabad, Navjeevan Publishing House 1963
- Kilpatrik W. H. : Philosophy of Education Chicago, University of Chicago
- प्रेमनाथ : शिक्षा के सिद्वांत, लोक भारती प्रकाशन 1969 इलाहाबाद
- मालवीय राजीव : शिक्षा के नूतन आयाम
- सिंह पी. ओ. उपाध्याय प्रतिभा : शिक्षा दर्शन एवं भारतीय शिक्षा मे उदीयमान प्रवृत्तियां
- गुप्ता पी. एस. : भारत मे शिक्षा प्रणाली का विकास
- सिंह कुमार बृजेन्द्र : पाश्चात्य एवं भारतीय शिक्षा दर्शन एवं प्रमुख शिक्षा शास्त्री

❑❑

47

पं. नेहरू का वैज्ञानिक दृष्टिकोण और वर्तमान भारत

डॉ0 प्रतिमा गंगवार
एसोसिएट प्रोफेसर, विभागाध्यक्षा – राजनीति विज्ञान
जे0 डी0 वी0 एम0 पी0 जी0 कालेज, कानपुर

''अपने इतिहास की शुरूआत से ही भारत ने अपनी अनंत खोज आरंभ की। अनगिनत सदियाँ इसके प्रयासों और सफलताओं एवं असफलताओं की गाथा से भरी हैं। अच्छे या बुरे दौर में उसने इस खोज को आँखों से ओझल नहीं होने दिया और न ही उन आदर्शों से भटका, जिनसे उसको ताकत मिलती है। आज जिस उपलब्धि का हम जश्न मना रहे हैं, वह महज एक कदम है जो हमारी बाट जोट रही भावी बड़ी विजयों और उपलब्धियों के लिए अवसरों की शुरूआत है। क्या इस अवसर को ग्रहण करने और भविष्य की चुनौतियों का सामना करने के लिए हमारे पास पर्याप्त साहस और पर्याप्त बुद्धि है?'' यह कथन है हमारे प्रथम प्रधानमंत्री राष्ट्रीयता के प्रतीक पं0 जवाहर लाल नेहरू का जो उन्होंने 14–15 अगस्त 1947 की मध्य रात्रि को भारत की आजादी के शुभ अवसर पर कहा था।

आज हम दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र हैं। विभिन्न क्षेत्रों में हमारे विकास से विश्व सुपरिचित है लेकिन अभी कतिपय क्षेत्रों में बहुत कुछ करना शेष है जो निरन्तर विचारणीय विषय है। जैसा कि हमारे अद्वितीय राजनीतिज्ञ, आधुनिक भारत के निर्माता एवं विश्व शांति के अग्रदूत पं0 नेहरू ने भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के अवसर पर ही आगाह किया था। पं. नेहरू ने स्वयं को राष्ट्रीय जीवन से इतना आत्मसात कर लिया था कि एक कर्मठ जननायक के रूप में सदैव हमारे प्रेरणास्रोत रहेंगे। उनके जीवन और कार्यो का गहरा प्रभाव हमारे चिन्तन, सामाजिक संगठन एवं बौद्विक विकास पर पड़ा है। उनका कहना था कि आजादी एक बार हासिल करने से ही निरापद नहीं होती। इसके लिए निरन्तर सतर्कता की आवश्यकता है। आजादी का मतलब सिर्फ राजनीतिक आजादी नहीं होती। आर्थिक परावलंबन उस आजादी को धीरे–धीरे समाप्त कर देता है। सामाजिक विषमता–जाति पर आधारित उत्पीड़न हो अथवा अल्पसंख्यकों के साथ भेदभाव–को समाप्त किये बिना यह आजादी अधूरी रह जाती है। विशेष रूप से भूमण्डलीकरण के वर्तमान दौर में पश्चिमी पूँजीवादी समाज के आधिपत्य ने स्वदेशी संस्कृति के अस्तित्व का संकट उत्पन्न कर दिया है।

भारत की राजनीतिक सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं के सम्बन्ध में नेहरू का दृष्टिकोण वैज्ञानिक था। वे देश का प्रबुद्धीकरण करने में विश्वास रखते थे। नेहरू को यह पसन्द नहीं था कि राजनीतिक तथा आर्थक विचारों को धार्मिक रहस्यावाद की अलंकारिक भाषा में व्यक्त किया जाये। वे चाहते थे कि राजनीतिक समस्याओं को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखने और समझने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। इसी कारण वे धार्मिक पुररूत्थानवाद के विरोधी और सम्प्रदायवाद के कट्टर शत्रु थे और स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में सुधार के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने न केवल धर्म निरपेक्ष राज्य के आदर्श को अपनाया वरन इस बात पर बल दिया कि राजनीतिक और सामाजिक जीवन तथा कार्य व्यवहार में धर्म निरपेक्षराज्य के आदर्श को अपनाया वरन इस बात पर बल दिया कि राजनीतिक और सामाजिक जीवन तथा कार्य व्यवहार में धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए। वे चाहते थे कि सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओं को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखने और समझने का प्रयत्न किया जाना चाहिए उन्होंने अपनी 'इण्डिया टुडे एण्ड टुमारो' (भारत का वर्तमान तथा भविष्य) शीर्षक आजाद स्मारक व्याख्यानमालों में विज्ञान तथा औद्योगिकी का मानवतावादी सहिष्णुता तथा करूणा के आदर्शो के साथ समन्वय

करने पर बल किया। वैज्ञानिक तथा आधुनिक दृष्टिकोण नेहरू का भारतीय सामाजिक तथा राजनीतिक चिन्तन को महत्त्वपूर्ण योगदान है। वस्तुतः उनकी भारत को एक आधुनिक राष्ट्र बनाने की उत्कृष्ठ अभिलाषा थी। गाँधी और मार्क्स तथा भारतीय सभ्यता और पश्चिमी सदस्यता के श्रेष्ठ सिद्धान्तों एवं मूल्यों को मिलाकर उन्होंने नवीन भारत का निर्माण करने का प्रयास किया। नेहरू नीति के आधार स्तंभ थे राष्ट्रीय स्वतंत्रता, प्रजातंत्र, धर्मनिरपेक्षता, योजनाबद्व विकास और समाजवाद, विश्व शांति एवं गुटनिरपेक्षता। नेहरू के नेतृत्व में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में भारत में भारी प्रगति की। वास्तव में वे सही अर्थों में आधुनिक भारत के निर्माता थे। विचारधारात्मक की दृष्टि से नेहरू के सिद्धान्त और व्यवहार में जो भी कमजोरियां रही हों, उन्होंने नई पीढ़ी के मस्तिष्क को एक प्रगतिशील वैज्ञानिक दिशा प्रदान की।

वर्तमान में हम पं0 नेहरू के सपनों के भारत के विकास पर जब दृष्टिपात करते हैं तो इस बात को अनदेखा करना असंभव है कि हमारे कृषि वैज्ञानिकों ने किसानों और खेतिहर मजदूरों की मदद के जो हरित क्रांति की, उसने विदेशी अनाज की अपमानजनक, बौसाखी से मुक्त करा दिया है। यदि आज हम खाद्यान्नों के मामले में आत्मनिर्भर नही होते, तब यह स्थिति कितनी विकराल होती। संक्रामक रोगों से निजात दिलाने में भी हमने कामयाबी हासिल की है। हमारे सीमांती विषयों में शोध करने वाले भारतीय परमाणु वैज्ञानिक तथा अंतरिक्ष की शोध में जुटे विशेषज्ञ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के है। एक दशक पहले तक हम इन विषयों में विदेशी सहयोगियों के सहकार पर निर्भर थे। अंतरिक्ष यात्रा हो या परमाणु ऊर्जा उत्पादन, हमारी सामर्थ्य को कुण्ठित करने के लिये जो प्रतिबंध हम पर लगाये गये, उनसे हम धीरे–धीरे ही सही आत्मनिर्भता की दिशा में अग्रसर हो सके हैं। अब अमेरिका, रूस या और अन्य किसी ताकत के सहयोग की आवश्यकता हमें नही है। औषधियों के उत्पादन जगत में भी भारत ने अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया है। विशेषतः उन दवाइयों के उत्पादन में, जिन्हें जेनरिक कहा जाता है, जिनका पेटेंट खत्म हो चुका है और जिन्हें हम आयात की गयी दवाइयों की तुलना में बहुत कम मूल्य पर बना सकते है और बेंच सकते है। कम्प्यूटर जगत में भी भारतीय प्रतिभा से सम्पूर्ण विश्व चकित है। शनैः शनैः ही सही विज्ञान की इस प्रगति ने करोड़ो नागरिको को रूढ़ियों तथा अंधविश्वास की बेडियों से मुक्त किया है। कला और साहित्य के क्षेत्र में भी मौलिक रचनाकारों ने अपने को अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर स्थापित किया है। परन्तु वैश्वीकरण के परिवेश में आज भी हम स्वतंत्रता के 67 वर्ष पश्चात् विकसित राष्ट्र होने के मानक से दूर है। विकास की जो यात्रा पं0 नेहरू ने आरम्भ की थी, आज भी उस क्षेत्र में हमारे सम्मुख विभिन्न चुनौतियाँ है।

वर्तमान में भारत दुनिया का सर्वाधिक युवा प्रधान देश है। सवा अरब से अधिक की भारत की जनसंख्या जो पृथ्वी की समूची आबादी का छठा हिस्सा है, विश्व के सबसे विशाल राजनीतिक लोकतंत्र को परिभाषित करता है और इस समय संसार का पाँचवा बड़ा उपभोक्ता बाजार बना चुका है, जिस पर विभिन्न देशों के कारपोरेट्स की निगाहें टिकी है। यह ऐसी पूँजी है जिसे कोई भी योग्य शासन प्रशासन विकास के हित में अद्भुत ढंग से उपयोग कर सकता है दुर्भाग्य से ऐसा अभी नहीं हो पा रहा है। भ्रष्टाचार और अवैध तरीके से धन कमाने के लोभ में इस विराट प्राकृतिक पूंजी को हाशिये पर डाल रखा है। कहा जाता है कि किसी भी देश के विकास के दो मॉडल होते हैं। एक ऊर्ध्वमुखी, लंबवत ऊपर की ओर किसी रॉकेट की तरह अंतरिक्ष की ओर जाता हुआ जिसमें बस कहा चंद जाति और वर्ग के लोग सवार हो और उनकी असफलताओं आर्थिक विकास का औसत निकालकर उसे सम्पूर्ण देश का विकास घोषित कर दिया जाय और दूसरा है, देश के सारे मानव सतह पर फैला हुआ विस्तृत क्षैतिज, दिशाव्यापी सर्वसमावेशी विकास। इस सार्वजनिक विकास के लिए सिर्फ फूड सिक्योरिटी, मिड डे मील या फिर सरकारी दुकानों से अनाज को उपलब्धता की चैरिटी से काम नहीं चलेगा। सभी बुनियादी आवश्यकताएँ बिना भेदभाव सबको उपलब्ध करवानी होगी। देश में इस समय प्रयोग हो रही तकनीक लगभग पूरी तरह आयातित है। इसमें 50 प्रतिशत वो बिना किसी बदलाव के प्रयुक्त होती है और 50 प्रतिशत थोड़ा बहुत बदलाव के साथ।

इस प्रकार विकसित तकनीक के लिये हमारी आयात पर निर्भरता है। इस स्थिति को बदलना होगा। देश के सर्वांगीण विकास के लिये उन्नत और नवीनतम स्वदेशी प्रौद्योगिकी की आवश्यकता है। तभी भारत को विकसित देश बनाने के सपना साकार हो पायेगा।

हमारे वर्तमान प्रधानमंत्री जो भारत के विकास की इन्ही चुनौतियों का सामना कर रहे हैं जिसके लिए वे मेक इन इण्डिया के लक्ष्य को आधार बनाकर विभिन्न योजनाओं डिजिटल इंण्डिया कार्यक्रम, आदर्श ग्राम योजना, विज्ञान और प्रौद्योगिकी की प्राथमिकता के साथ भारत को पूर्ण विकसित एवं सशक्त स्थिति में प्रतिष्ठित करने हेतु प्रयासरत है। 102 वीं भारतीय विज्ञान कांग्रेस के उद्घाटन में मुबई विश्वविद्यालय में हमारे प्रधानमंत्री ने कहा था कि देश की सर्वांगीण विकास के लिए उन्नत और नवीनतम स्वदेशी प्रौद्योगिक की आवश्यकता है क्योंकि आत्मनिर्भरता का कोई विकल्प नहीं है। देश की विकास प्रक्रिया में विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विशेष महत्त्व है। हमारी मूलभूत समस्याओं यथा जनसंख्या, बेरोजगारी, स्वास्थ्य रक्षा, पर्यावरण, ऊर्जा एवं खाद्यान्न इत्यादि के निवारण में विज्ञान और प्रौद्योगिकी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। हमारे प्रथम प्रधानमंत्री पं0 नेहरू ने सदैव विज्ञान और प्रौद्योगिकी के आधार पर भारत को सशक्त बनाने का प्रयास किया था। नेहरू को मानव की सर्जनात्मक सम्भावनाओं में विश्वास था वे वैज्ञानिक मानववाद के आदर्शे को स्वीकार करते थे। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा बुद्धिवादी पद्धति की नींव पर 'नए भारत का निर्माण' करने के लिए समर्पण की भावना से गत्यात्मक कर्म किया जाये साथ ही साथ उन्होंने विज्ञान के प्रचलित प्रकृतिवादी दृष्टिकोण के मुकाबले में मानवीय मूल्यों तथा प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करने की प्रेरणा दी जो आज के वैश्वीकरण के युग में अत्याधिक महत्वपूर्ण है जबकि आतंकवादी गतिविधियों से सम्पूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश का विकास की गति समय–समय पर बाधित होती है। वास्तव में पं. नेहरू का मानवतावादी सहिष्णुता के साथ वैज्ञानिक दृष्टिकोण भारत को पूर्ण विकसित और सशक्त राष्ट्र के रूप में विश्व पटल पर स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण दिशा निर्देशक है। यदि वर्तमान की प्रगतिशील योजनाओं के क्रियान्वयन के साथ सर्वाधिक युवा प्रधान भारत 7.8 प्रतिशत की विकास दर से आगे बढ़ता रहे और कुशासन पर अंकुश लगाने में सफल हो जाए तो अवश्य ही हमारा देश पुनः एक बार विश्व का सिर मौर हो सकता है।

संदर्भ सूची

1. नेहरू एक श्रृद्धाजंलि (प्रकाशन विभाग, भारत सरकार) उत्तर प्रदेश, पृ. सं. 09
2. जवाहर लाल नेहरू 'The Discovery of India', Page No. 455
3. डॉ. विश्वनाथ प्रसाद वर्मा, 'आधुनिक भारतीय राजनैतिक चिन्तन', पृ. सं. 555
4. जवाहर लाल नेहरू, 'विश्व इतिहास की झलक', पृ. सं.त्र 434

❑❑

कालिदास कृत काव्यों में अप्रस्तुत विधान की विद्यमानता

डॉ0 पूजा श्रीवास्तव 'विद्यालंकार'
संस्कृत विभाग
महिला महाविद्यालय किदवई नगर, कानपुर

काव्य में अप्रस्तुत विधान एक ऐसा तत्त्व है जो सुंदर वस्तु को सुंदर तो बनाता ही है साथ ही कुरूप और कुत्सित वस्तु में भी आकर्षक व मनमोहक रंग भरकर उसकी सुन्दरता में और चार चाँद लगा देता है। काव्यों में सौन्दर्य को निखारने की यह प्रक्रिया प्रायः अप्रस्तुत विधान के द्वारा ही होती है। प्रस्तुत के समान ही अप्रस्तुत का निर्देश करने को सादृश्य विधान भी कहा जाता है जोकि रूप, रंग, आकार आदि विभिन्न प्रकार के तत्वों को ध्यान में रखकर दिखाया जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि जब कवि काव्य में एक वस्तु या व्यापार के समान ही दूसरी वस्तु या व्यापार को रखता है तो प्रथम वस्तु या व्यापार से निकली संवेदना या भावों की अनुभूति को तीव्रतर कराना ही उसका मुख्य उद्देश्य होता है। उस समय ऐसा मालूम पड़ता है कि उपमेय और उपमान दोनों ही मानो जीवन के एक ही डोर से बँधे हुए हैं। हिन्दी के विद्वान डॉ. नगेन्द्र ने अप्रस्तुत विधान के स्वरूप को व्यक्त करते हुए कहा कि –''अभिव्यक्ति को रमणीय एवं सबल बनाने का सबसे सहज और उपयोगी साधन है अप्रस्तुत विधान अर्थात् प्रस्तुत की श्री वृद्धि के लिए अप्रस्तुत का उपयोग''[1]।

प्रस्तुत रूप को वस्तु एवं अप्रस्तुत को अलंकार रूप भी कहा जा सकता है। अलंकार के बिना काव्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। काव्यं ग्राह्मम लंकारात्, सौंदर्य मलंकार : आदि उक्तियों में काव्य की समस्त सुषमा अलंकार रूप में दृष्टिगोचर होती है।[2]

अलंकार योजना के महत्त्व को बताते हुए पं. रामदहिन– मिश्र ने लिखा है – ''अलंकारों की योजना करने में एक सहृदयापूर्ण अनुभूति से उत्पन्न विशेष विदग्धता की आवश्यकता है जो यह अनुभूत कर सके कि यह योजना भावोत्कर्ष, रसोद्रेक, प्रेषणीयता, सौंदर्य बोध आदि में सहायक हो सकती है। सहृदय कलाकार ही चमत्कारक ढंग से हृदय को गुदगुदाता हुआ रसिकों को रसाप्लुत करने में समर्थ हो सकता है।''[3]

'अप्रस्तुत' और 'अलंकार' को एक दूसरे का पूरक माना जाता है। अन्तर सिर्फ इतना है कि अलंकार का क्षेत्र सीमित है और अप्रस्तुत विधान अत्यन्त व्यापक स्तर पर फैला हुआ है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि इसमें कवि मानव जीवन को मानवेतर चेतन या जड़ जगत् से भिन्न नहीं देखता है। चेतन व अचेतन जगत् के अर्न्तगत् क्रमशः थनचर, जलचर एवं नभचर प्राणी तथा अचेतन में पृथ्वी, अंतरिक्ष एवं आकाश को वर्णित किया जाता है।

महाकवि कालिदास ने अपने साहित्य में इन अप्रस्तुतो का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है जो कि उनकी विराद् दृष्टि का बोध कराता है। उनके कथानक अथवा घटना कैसी भी नीरस या बे जान क्यों न हो वे अपनी कला के माध्यम से उस पर ऐसा जीवन्त तथा मार्मिक चित्र बनाते है कि सहृदय का मन आह्मलादित हुए बिना नहीं रह पाता और ऐसा वे उपयुक्त अप्रस्तुतों के द्वारा ही कर पाते हैं। उदाहरण के लिए विश्वामित्र के आश्रम में राम द्वारा ताड़का–वध का चित्र लीजिए–

राम–मन्मथ– शरेण नाड़िता, दुःसहेन हृदये निशाचरी।
गंधवद्–रुधिर–चंदनोक्षिता, जीविनेश वसति जगाम सा[4]।।

राम के एक ही तीखे वाण से तुरन्त ही यमलोक सिधारती हुई ताड़का के शरीर का खून से लथपथ होना

और बुरी गंध छोड़ना कितना वीभत्स दृश्य है। किन्तु कालिदास ने अपने अप्रस्तुत विधान द्वारा शृंगार का पुट डालकर उसे कितना भण्य एवं चमत्कारपूर्ण बना दिया है – ''राम के बाण से विधकर दुर्गन्ध भरे रूधिर से लिपटी हुई ताड़का इस प्रकार सीधे यमलोक चली गई जैसे काम के वाण से घायल हुई कोई अभिसारिका चन्दन का लेप करके अपने प्रिय के घर जा रही हो।''

(अप्रस्तुत विधान के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए श्री रामदहिन मिश्र ने लिखा है – '' यह काव्य का प्राण है, कला का मूल है और कवि की कसौटी है। यही काव्य में प्रभाव उत्पन्न करता है, प्रेषणीयता लाता है, भावो को विशद बनाता है और रमणीयता का संचार करता है।''[5])

इसी प्रकार उन्होंने जलचरों में मछली, राजहंस राजहंसी, नभचरों में चकवा, चकवी, भ्रमर, भ्रमरी, मयूर, मयूरी, कोयल, मधुमक्खी, गिद्ध, कबूतर, शुक एवं चातक को अपने काव्य का उपमान बनाया है। थलचरों में सिंह, सिंहशावक, अश्व, चूहा, व्याघ्र, बैल, साड़, मृग, मृगी, हाथी, सर्प और सार्पोणि आदि को अप्रस्तुत के रूप में वर्णित किया है। कालिदास ने अपने काव्यों में जहाँ प्रकृति के अनन्य रूपों का वर्णन किया है वहीं मानव के विविध रूपों की छवि का भी अति सुन्दरतम वर्णन किया है। मानवीय रूपों में – पागल, चोर, अंधा, रोगी, कामी तैराक, विद्वान, यजमान, विद्यार्थी, योगी, पथिक, वैरागी प्रेमी, कामिनी, नायिका, नववधू, नवयुवती, सुंदरी, नागरिक कन्या, माता, शीलवती, प्रेमिका, कुलटा आदि विविध रूपों का अप्रस्तुत के रूप में उल्लेख प्राप्त होता है।

जलचर :

मछली – शंकर जी द्वारा कामदेव को भस्म करने पर उसके वियोग से व्याकुल एवं प्राण त्यागने के लिए तैयार रति पर अचानक होने वाली आकाशवाणी ने वैसे ही कृपा की जैसे सूखते हुए तालाब की मछलियों में आकस्मिक वर्षा जीवन डाल देती है।

''इति देहविमुक्तये स्थितां रति माकाशभवा सरस्वती।
शफरी ह्रदशोष दिक्लवां प्रथमा वृष्टिरिवान्वकम्पयत्।।[6]

कामदेव की पत्नी रति, पति से अलग होकर ठीक वैसे ही व्याकुलता का अनुभव करती है जिस प्रकार तालाब में पानी कम हो जाने पर मछलियाँ छटपटा रही हों। यहाँ पर उपमेय और उपमान दोनों की स्थिति समान है। रति कामदेव के बिना ठीक उसी प्रकार नहीं जी सकती जैसे मछली जल के बिना जीवित नहीं रह सकती। इस प्रकार कवि ने उपमा के द्वारा प्रस्तुत छटपटाहट को व्यंजित किया है।

राजहंस – कालिदास ने ऋतुसंहार में शरद ऋतु का वर्णन करते हुए उसे नववधू के समान बताया है। अत्यधिक मनमोहक एवं रमणीय शरत् का आगमन हो रहा है। उसका परिधान निर्मल है, मुख खिले हुए कमल के समान अत्यन्त मनमोहक है। मस्ती से कलनाद करते हुए हंस उसकी नूपुर ध्वनि है। पके हुए धान की बालियां ही उसकी शरीर यष्टि है। ऐसे सुन्दर रूप से युक्त शरत् ऋतु नववधू की तरह आ पहुँची है –

काशांशुक विकच पद्यंमनोज्ञवक्त्रा
सोन्माद –हंसरव–नूपुर– नादरम्या।
आयक्वशानिरूचिरा तनुगात्रयष्टिः
प्राप्ताशरन्नवधूरिव रूपरम्याः[7]।

यमुना की लहरों से मिली हुई गंगा ऐसी सुन्दर लग रही है जैसे साँवले रंग के हंसों से मिली हुई सफेद राज हंसे की कतार हो।

क्वचित्वंगानां प्रियमानसानां कादम्बसंसर्गवतीव पक्तिः[8]

'अभिज्ञान–शाकु' में राजा दुष्यन्त धनुष पर वाण चढ़ाता हुआ कहता है कि जैसे हंस पनियल दूध से दूध ग्रहण

कर लेता है और पानी छोड़ देता है वैसे ही यह वाण भी तुझे मार जाने वाले को मार गिरायेगा और रक्षा करने वाले को बचा लेगा।

'यो हनिष्यति वध्यं त्वां रक्ष्यं रक्षिष्यति द्विजम्।
हंसो हि क्षीरमादत्ते तन्मिश्रा वर्जयेव्ययः।। [9]

राजहंसी – स्वयंवर–सभा में इन्दुमती की सखी सुनन्दा उसका मार्गदर्शन करते हुए एक के बाद एक राजा के पास ले जाकर उसे उसका परिचय देती जा रही थी। इसी प्रसंग में कालिदास सुनन्दा एवं इन्दुमती की तुलना तरंग रेखा व राजहंसी से करते हुए कहते हैं कि सुनन्दा इंदुमती को ऐसी ही एक राजा से दूसरे राजा के पास ले जा रही थी जैसे कि वायु से उठी हुई मान सरोवर की लहर राजहंसिनी को एक कमल से दूसरे कमल पर ले चलती है –

ता सैव वेत्र ग्रहणे नियुक्ता राजान्तरं राजसुतां निनाम।
समीरणोत्येव तरंग लेखा पदमान्तरं मानसुराजहसीम्।।[10]

कालिदास ने विक्रमोर्वशीय में एक स्थान पर पुरूरवा की मानसिक स्थिति को बड़े ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। उर्वशी देवकार्य के लिए स्वर्ग चली जा रही है और राजा के चित्त को शरीर से उसी प्रकार बलपूर्वक खीचें लिए चली जा रही है, जैसे कोई राजहंसी टूटे हुए कमल की डंढल से उसका तंतु खीचें लिए चली जा रही हो।

एषा मनो में प्रसभं शरीराप्पितुः यदं मध्यममृत्य–तन्तौ।
सुरा..ना कर्षति खण्डिताग्रात्सूत्रं मृणालादिव राजहंसी।।[11]

कालिदास ने प्रस्तुत पद्य में उर्वशी को राजहंसी, हृदय को मृणालसूत्र और शरीर को मृणाल दण्ड कहकर जो सुंदर व्यंजना की है वह अत्यन्त अद्भुत प्रतीत होती है।

नभचर –

चकवा–चकवी – यक्ष मेद्य से अपनी प्रियतमा की पहचान बताता हुआ कहता हैं – ''मेरे वियोग के कारण अकेली प्रियतमा वैसे ही कष्ट का अनुभव कर रही होगी जैसे चकेव से अलग रहकर चकवी विलाप करती हुई दुःख का अनुभव करती है –

ना जानीथाः परिमित कथां जीवितं में द्वितीयं
दूरीभूतं मयि सहचरे चक्रवाकी मिवैकाम्।[12]

और भी, रघुवंश में दिलीप और सुदक्षिणा के प्रगाढ़ प्रेम को अभिव्यक्त करने के लिए कालिदास ने उनकी तुलना चक्रवाक् मिथुन से की हैं –

रथागंनाम्नोश्वि भावबन्धनं बभूव यत्प्रेम परस्पराश्रयम्
विभक्तमत्येकसुतेन नत्तयोः परस्परस्योपरि पर्यचीयत्।।''[13]

अर्थात् राजा और रानी में चकवे और चकवी के समान बड़ा गाढ़ा प्रेम थे। वह प्रेम एकमात्र पुत्र रद्यु पर जा बैठा था फिर भी उनके परस्पर प्रेम में कोई कमी नहीं हुई, उलटे बढ़ता ही गया।

उपर्युक्त भावो के समानान्तर ही कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तलम् में भी चकवा– चकवी रूपी अप्रस्तुत का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है –

ननिनी पत्रान्तरितमपि सहचर मपस्यन्त्या– तुरा चक्र वाक्यारटति दुष्करमहं करोमीति।[14]

उपर्युक्त पंक्तियों में शकुन्तला सरोवर में विद्यमान पक्षी–युगल–चकवा–चकवी को देखती है कि चकवा कमल

पत्रों में थोड़ी देर छिप गया। चकवी उसको नहीं देख पा रही थी। इतने ही क्षणिक वियोग को देख चकवी विह्वल होकर यह कहती हुई आर्तनाद करने लगी कि– ''अपने प्रियतम से कुछ क्षणों के लिए बिछुड़ कर जो मैं जीवित हूँ वहीं अत्यन्त दुष्कर कार्य कर रही हूँ।'' शंकुन्तला को चकवी की यह व्याकुलता देखना यह भाव दे रहा है कि शकुन्तला स्वयं भी पति के वियोग में कठिनाई से जी रही है। यहाँ पर कालिदास ने अप्रस्तुत के माध्यम (चकवा–चकवी) से शकुन्तला के पति वियोग की व्यथा को अत्यन्त ही सरसता के साथ दर्शाया है।

भ्रमर–भ्रमरी – अभिज्ञान–शाकुन्तल के पाँचवें अंक में आर्या गौतमी और शाङ्गरव शकुन्तला को लेकर राजसभा में प्रवेश करते है और शकुन्तला को राजा दुष्यन्त की पत्नी के रूप में परिचय कराते है। राजा दुष्यन्त उसे पहचान नहीं पाते है, तब पत्नी के रूप में कैसे ग्रहण करें, पर मन ही मन शकुन्तला के अनुपम रूप से आकृष्ट होकर उनका परित्याग भी करना चाहते है। उस समय राजा की मन की व्याकुलता को कवि ने अप्रस्तुत (भ्रमर) के माध्यम से अत्यन्त ही सुन्दरता के साथ अभिव्यक्त किया ही जो कि प्रातः काल के समय तुषार कणों से युक्त कुन्द के पुष्प पर न तो मधुरस का पान कर पाता है। और न ही उसका त्याग कर पाता है। क्योंकि कुन्द का पुष्प माघ्य की कड़कती शीतल रात्रि में विकसित होता है, उन पर पड़ती हुई ओस की कणिकाओं के प्रति भ्रमर आक्रवट हो जाता है। परन्तु उसके समीप पहुँचकर भ्रमर का शरीर ढंग से संकुचित होने लगता है, फलतः वह ऊपर उड़ जाता है, उस पर बैठ नहीं पाता है, किन्तु उसकी मोहक, मांदक सुगन्ध से आकृष्ट होकर उससे दूर भी नहीं जा पाता है। यही अवस्था उस समय राजा दुष्यन्त की होती है।

इदमुपनतमेवं रूपमक्लिष्ट कान्ति,.....[15]

तं प्राप्य सर्वावयवानवद्यं व्यावर्तयाडन्योपगमात्कुमार

नहि प्रफुल्लं सहकारमेव्य वृक्षान्तरं काङक्षतिषट्पदालिः

जब इन्दुमती ने स्वयंवर के समय सर्वांग सुन्दर राजा ''अज'' को देखा तो वह वहीं रूक गई फिर किसी अन्य राजा के पास न जा सकी ठीक उसी प्रकार जैसे भ्रमर का झुण्ड जब आम के वृक्ष को पा लेता है तो उसे दूसरे वृक्ष के पास जाने की चाह नहीं रहती है।

अर्थान्तरन्यास अलंकार का प्रयोग करते हुए महाकवि कालिदास ने भ्रमर को अप्रस्तुत का माध्यम बनाकर उस स्थिति को अत्यन्त मनोग्राही रूप प्रदान किया हैं कि ''अज'' को देखकर इन्दुमती की समस्त इच्छा पूरी हो गई जैसे सुगन्धित आम्र मंजरी को पाकर भ्रमर की चाह पूरी हो जाती है।

मोर–मोरनी – उपमान के रूप में मोर–मोरनी का अत्यन्त अनुपम रूप कालिदास के काव्यों में दृष्टिगोचर होता है। रघुवंश में द्वारपालिका सुनंदा राजकुमारी इन्दुमती से शूरसेन के राजा सुषेण की प्रशंसा में कहती है कि यदि तुम इनका वरण करोगी तो जल बिन्दुओं से सिंचित तथा शैलेय की सुगन्ध से सुरभित शिरातल पर बैठकर वर्षा ऋतु में गोवर्द्धन पर्वत की कन्दराओं में मयूरों का नृत्य देखकर आनन्द लाभ करोगी।

अध्यास्य चाम्भः वृषतोक्षितानि शैलेयगन्धीनि शिलानलानि।

कलापिनां प्रावृषि पश्य नृत्यं कान्तासु गोवर्द्धन कन्दरासु,[17]।।

अभिज्ञान शाकुन्तल में पतिग्रह जाती हुई शकुन्तला के वियोग में दुःखी मयूरियों ने नृत्य का परित्याग कर दिया है।

''उद्‌गलित दर्भकवला मृग्यः परिव्यक्त नर्तना मयूराः।

इस प्रकार कालिदास ने पग–पग पर अप्रस्तुत विधान प्रयोग करके काव्य को अत्यन्त मनोरम रूप प्रदान किया है। वे मानव मन की अतल गहराई में छिपे हुए भावों का बड़ा ही सुन्दर चित्रण प्रस्तुत करते हैं।

मधुमक्खी – मालीवकाग्निमित्रम् में राजा के सामने मालविका को देखकर विदूषक कहता है कि आपकी

आँखों का मधु तो आ गया, पर मधुमक्खी भी पास ही बैठी है, इसलिए थोड़ी सावधानी से उधर देखिएगा –

उपस्थितं नयन मधु सन्निहितमक्षिकं च।
तद् प्रमत्त इदानी पश्य।[18]

यहाँ मधुमक्खी अप्रस्तुत से धारिणी की ओर संकेत किया गया है। जो मालविका को राजा से दूर करना चाहती है।

कोयल – अभिज्ञान शाकुन्तल में राजा दुष्यन्त गौतमी से कहते हैं जो मानवी स्त्रियाँ नहीं है वे भी बिना सिखाए पढ़ाए बड़ी चतुर हो जाती है फिर इन समझवाली स्त्रियों का तो पूछना ही क्या है। जब तक कोयल के बच्चे उड़ना नहीं सीख जाते तब तक वे दूसरे पक्षियों से ही उनका पालन कराती है।

स्त्रीणामिशिक्षित पटत्वम मानुषीषु संदृश्यते किमुत या : प्रतिबोध वत्यः।
प्रागन्तरिक्षणमनात्स्वपत्य जातमन्यैद्विजैः परभृताः खलु पोषयन्ति[19]।।

चातक – शकुन्तला के पास जाने पर दुष्यन्त की उक्ति है – चातक पक्षी ने प्यास के कारण क्षीण स्वर से जल की याचना की और नये मेद्य ने उसके मुख में जल की धारा उड़ेल दी –

पिपसाक्षाम कण्ठेन याचित ज्याम्बुपक्षिणा ।
न मेद्योंझिता चास्य धारा निपीतता मुखे।।[20]

गणदास से विदूषक ने दक्षिणा न पाकर दुःखी होते हुए कहा है – तो क्या मैं कोरे गरजने वाले बादलों से व्यास मिटाने की आशा करने वाले पपीहा ही बना रहा?

और भी –

मया नाम शुष्क घन गर्जिते अंतरिक्षे जलपान– मिच्छा चाकायिकतम्[21]।

अर्थात् जैसे चातक नामक पक्षी जलहीन बादलों से घिरे आकाश की ओर जलप्राप्ति की आशा से देखता हुआ प्यास न बुझने पर खिन्न होता है, वैसे मैं भी गणदाज से कुछ भी न पाकर खिन्न हूँ।

थरचल–

सिंह – इन्दुमती के स्वयंवर के समय सभा में युवराज अज ने सुन्दर सीढ़ी पर चढ़कर भोज द्वारा बताये गये मंच पर उसी प्रकार आरोहण किया जैसे सिंह का बच्चा एक–एक शिला पर पैर रखता हुआ पहाड़ पर चढ़ जाता है।

वैदर्भ विर्द्रिष्ट मसौ कुमारः क्लृप्तेन सोपान पायेन मंचम्।
शिलाविभंगैर्मृगराज शावस्तुं.. नगोत्संगमिवा–रूरोह।।[22]

इसी प्रकार विकमोर्वशीयम् में अप्रस्तुत के रूप में सिंह का बड़ा ही सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है – राजा पुरूरवा चित्ररथ से कहता है –

राजा–सखे! मैवम्।
ननु वजिण एवं वीर्यमेत द्विजयन्ते द्विषतो यदस्थ पक्ष्याः।
वसुधाधर कंदराविसर्पी प्रतिशब्दो हि हरे र्हिनस्ति– नागान्।[23]

अर्थात् नहीं नहीं ऐसा न कहो। यह सब इन्द्र भगवान् के ही पराक्रम का तो फल है कि उनके मित्र अपने शत्रुओं को उसी प्रकार मार भगाते है। जैसे पर्वत की गुफा से टकरा कर गूँजती हुई सिंह की दहाड़ हाथियों को द्वारा भगाती है।

अश्व – मुनि लोग हिमालय पर्वत के पास जाकर शिव की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि शिव पृथ्वी, जल

आदि अपने आठ शरीरों से पृथ्वी को जिलाये रहते हैं जो एक दूसरे की शक्ति को बढ़ाने वाले और संसार को इस प्रकार ठीक से चलाने वाले है जैसे घोड़े मार्ग में रथ को लीक में चलाते रहते हैं –

कालिता न्योन्य समाथ्यैः पृथिण्यादिभिरात्मभिः।

येनेंदध्रियते विश्वं धुर्येर्यानमिवाध्वनिः।[24]

हाथी – महाकवि कालिदास ने अप्रस्तुत के रूप में शलचर प्राणियों में हाथी का सबसे अधिक वर्णन किया है।

द्रष्टव्य है – जैसे वायु की सहायता से अग्नि, शरद् ऋतु के खुले हुए आकाश को पाकर सूर्य और मद बहन के कारण हाथी प्रचंड हो जाता है वैसे ही प्रतापी रघु की सहायता से दिलीप भी इतने अधिक शक्तिशाली हो गये कि उनके शत्रु उनसे थर–थर काँपने लगे।

विभावसुः सारथिनेव वायुना धनव्यपायेन गभास्तिमा–मिव।

बमूच तेतातितरां सुदुःसहः कट प्रभेदेन करीव पार्थिवः।।[25]

रघुवंश महाकाव्य के रामावतार नामक दसवें सर्ग में अप्रस्तुत रूप हाथी का उल्लेख द्रष्टव्य है –

जैसे असुरों की तलवारों की घार कुंठित करने वाले अपने चार दाँतों से ऐरावत (हाथी) शोभा पाता है, जैसे साम, दाम, दण्ड, और भेद इन चार उपायों से राजनीति शोभा देती है और जैसे रथ के जुए के समान लम्बी–लम्बी अपनी चार भुजाओं से विष्णु भगवान् शोभा देते है वैसे ही राजा दशरथ भी अपने चार सुयोग्य पुत्रों से सुशोभित दिखाई देने लगे।

सुरगज इव दन्तैर्मग्नदैत्यासिधारैनय इव पण बन्ध–व्यक्तयोगैरूपायैः।

हरिरिव युगदीर्धदोर्भिरं शैस्तदोयै : पतिखनिपतीनां नैश्चकारो चतुर्भि :।।[26]

इसी प्रकार थलचर प्राणियों में सर्प, बैल, साड, मृग, चूहा, व्याघ्र आदि पशुओं को अप्रस्तुत के रूप में अति रोचक वर्णन प्रस्तुत किया है। कहीं प्रेमी के रूप में की पागल, चोर, अंधा, रोगी, राजमान विद्वान, कामी, बौना, तो कहीं विद्यार्थी एवं पर्थिक के रूप में।

'सृष्टिराद्येव धातुः'[27]।

ब्रह्म की सबसे बढ़िया कारीगरी कही जाने वाली नारी के विभिन्न रूपों की विविध कवियों का चित्रण भी अप्रस्तुत विधान के द्वारा प्रस्तुत कर सहृदया के मन को छू लिया है।

कवि की दृष्टि जहाँ प्रकृति के अनन्य रूपों की ओर गयी है वहीं मानव के विभिन्न रूपों की छवि को भी आत्मसात् किया है।

महाकवि कालिदास साहित्य के धुरीण सज्जाकार है। उनकी रचनाओं में सजीवता, सरसता स्वाभाविकता एवं विषयानुकूल भाव बोधकता विद्यमान है। सर्वसाधारण सहज ही उनकी रचनाओं का साज्वादन कर सकता है। उनमें औचित्य (अप्रस्तुत) तथा सौन्दर्य बढ़ाने की अनुपम क्षमता है। उनमें सुनने मात्र से ही विषयानुकूल अनुभूति होने लगती है। इस सम्बन्ध में प्रो. बलदेव उपाध्याय का मत है कि –

"कालिदास की रचनाओं में रसात्मकता तथा रसपेशलता नितान्त मर्मस्पर्शी है। औचित्य तथा सन्दर्भ की सुन्दरता बनाने की कला उनमें अपूर्व है"[28]।

उनके काव्यों में अप्रस्तुत विधान प्रमुख रूप से विद्यमान रहता है।

सन्दर्भ सूची

1. डॉ. नगेन्द्र – देव और उनकी कविता, पृ. 182

2. डॉ. बेचन झा – काव्यालंकारसूत्राणि – वामन – 2033चौखम्बा प्रकाशन, पृ. सं. –
3. पं. रामदीहन मिश्र – काव्य में अप्रस्तुत योजना – 2005 प्रथम, ग्रंथमाला, कार्यालय पटना
4. रघुवंश 11/20 पृ. 11
5. रामदीहन मिश्र – काव्य में अप्रस्तुत योजना, पृ. 783
6. कुमार संभव 4/39
7. ऋतुसंहार 3/1
8. रघुवंश – पूर्वार्द्ध –13/55
9. अभिज्ञान शाकुन्तलम् 6/28
10. रघुवंश 6/26
11. विक्रमोर्वशीय 1/20
12. मेघदूत –उत्तरमेघ 23
13. रघुवंश – तृतीय सर्ग 24
14. अभिज्ञान शाकुन्तलम् चतुर्थ अंक
15. अभिज्ञान शाकुन्तल 5/19
16. रद्युवंश 6/69
17. रद्युवंश 6/51
18. मालविकाग्निमित्रम् द्वितीय अंक
19. अभिज्ञान शाकुन्तलम् 5/22
20. अभिज्ञान शाकु. 3/33
21. मालविका अग्निमित्रम् पृष्ठ 72
22. रद्युवंश 6/3
23. विक्रमोर्वशीयम् 1/7
24. कुमारसंभवम् 6/76
25. रद्युवंशम् 3/37
26. रद्युवंशम् 10/86
27. मेघदूत–उत्तरमेघ – 22वाँ श्लोक
28. संस्कृत साहित्य का इतिहास–आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ. 155

❑❑

सामाजिक चेतना से अनुप्राणित निराला

डॉ0 गरिमा जैन
वरिष्ठ असि. प्रोफे., हिन्दी विभाग
अर्मापुर पी.जी.कॉलेज, अर्मापुर, कानपुर

''कवि भावना करता है, सृजन करता है''[1] साहित्यकार के व्यक्तित्व उसके चिन्तन और सृजन में जितना योग उसकी व्यक्तिगत परिस्थितियों एवं उसके स्वयं के जीवन का होता है, उतना ही उसकी युगीन परिस्थितियों और सामाजिक वातावरण का भी। सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना से अनुप्राणित साहित्य ही समाज और राष्ट्र को एक नई दिशा दे सकता है। श्रेष्ठ साहित्य में युग चेतना के आन्तरिक एवं बाह्य दोनों पक्ष अभिव्यक्ति पाते हैं। बाह्य युगीन प्रभाव के परिणामस्वरूप साहित्यकार अपने युग का सामाजिक राजनीतिक तथा आर्थिक गतिविधियों एवं सुधार आन्दोलनों आदि का पूर्ण प्रभाव ग्रहण कर उनकी सशक्त अभिव्यक्ति करने में समर्थ होता है और आन्तरिक प्रभाव के रूप में वह इन समस्त आन्दोलनों में सन्तुलन एवं सामंजस्य रखते हुए व्यापक सांस्कृतिक मानववाद तथा जीवन–दर्शन को वाणी देता है।

निराला के युग का भारतीय समाज अत्याधिक विषाक्त हो चुका था। (समाज में अनेक प्रकार की कुरीतियों, कुप्रथाओं, धार्मिक अन्धविश्वासों, और वाह्याचारों में जकड़ी हुई कसमसाती वह जनता अनायास ही ध्यान आकृष्ट कर लेती थी। जो अंग्रेजी के सम्पर्क और संस्कृति में कुछ पा लेने की लालसा में उत्तरोत्तर उसी ओर अग्रसर हो रही थी। अठारहवीं शती के अन्त तक भारतीय समाज कुल, जाति और गाँव की पंचायत तक ही सीमित था किन्तु उन्नीसवीं शती के भारत में जिन दो सभ्यताओं का सम्पर्क हुआ वे दोनों एक दूसरे से सर्वथा भिन्न थीं। ब्रिटिश संस्कृति भौतिक समृद्धि और सम्पन्नता का प्रतिपादन करती थी किन्तु भारतीय संस्कृति की विशेषता पारलौकिक आस्था एवं ऐहिक उदासीनता थी। दोनों के भौतिक सामाजिक आदर्श सर्वथा भिन्न थे। भारतीय संस्कृति में व्यक्ति की पृथक कोई सत्ता या मूल्य नहीं था किन्तु पाश्चात्य संस्कृति का मूलाधिकार व्यक्ति एवं उसका महत्त्व था।

''हिन्दुस्तान पर पश्चिमी संस्कृति का आद्यात एक गतिशील समाज पर आद्यात था, जो मध्यकालीन विचारधारा से बँधा हुआ था।।''[2]

साहित्यकार निराला ने भारतीय इतिहास के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और संक्रमणशील युग को देखा था। भारत का स्वाधीनता आन्दोलन जहाँ एक ओर राजनीतिक स्वाधीनता के लिए प्रयत्नशील था। दूसरी ओर वह कितनी ही सामाजिक समस्याओं से जूझ रहा था। नारी शिक्षा पर्दा प्रथा अछूतोद्धार हिन्दू–मुसलमान वैमनस्य, जाति–प्रथा आदि कितनी ही समस्याओं से तत्कालीन भारतीय समाज उलझा हुआ था। भारतीय समाज में इन तमाम कुरीतियों ने गहराई से अपनी जड़े जमा ली थी। ''शिक्षा के अभाव में अन्धविश्वास, रूढ़ियों तथा कुरीतियों में लड़कर भारत की अधिकांश ग्रामवासिनी जनता का जीवन अभिशाप बन गया था, ग्रामीण जीवन की भाँति नागरिक जीवन भी अस्त–व्यस्त हो गया था।''[3]

भारतीय मध्य युग तो श्रृद्धा और विश्वास का युग था, किन्तु अंग्रेजी शिक्षा ने भारतीयों में तर्क बुद्धि को प्रबल बना दिया। भारतीय आचार–विचार, रीति–रिवाज, ज्ञान–परम्परा आदि को तर्क की कसौटी पर कस कर देखने लगे। उनमें पौराणिकता के स्थान पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण का जन्म हुआ राजा राममोहन राय ने विधवा विवाह पर बल दिया और वर्ण–व्यवस्था को हिन्दू समाज का अभिशाप कहकर उसे समूल नष्ट कर देने का प्रयत्न किया। राजाराम मोहन के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप ब्रह्म समाज तथा स्वामी दयानन्द के प्रयासों से आर्य समाज की

स्थापना हुई। इन संस्थाओं ने सुधारवादी दृष्टिकोण फैलाया। रामकृष्ण मिशन के कार्यो से भी भारतीयों में नवचेतना आई। थियोसोफिकल सोसायटी का उद्देश्य भी समाज सुधार ही रहा। महापुरूषों के सांस्कृतिक विचारों और जीवन दर्शन के साहित्यकारों की मनोभूमि भी विशेष रूप से प्रभावित हुई। सत्याग्रह युग की भावभूमि से सम्बद्ध निराला के साहित्य में उस युग का सत्य पूरी तरह ध्वनित होता हुआ दिखाई देता है।

भारत के नव निर्माण के अभिलाषी निराला जी अपने साहित्यिक जीवन के आरम्भ से ही समाज के प्रति जागरूक हैं। उनके साहित्य में विशाल सामाजिक अन्तर्द्वन्दों संघर्षो एवं चेतना शक्तियों का योग रहा है। समाज में अनेक अन्धविश्वास, मिथ्या विश्वास, रूढिया, बाल विवाह, अनमेल विवाह, छूआछूत आदि कुरीतियाँ फैली हुई थी। नैतिक पतन की भी कोई सीमा नहीं रह गई थी। निराला ने अपने साहित्य में समाज में फैले हुए भ्रष्टाचार तथा सामाजिक दुर्दशा एवं कुरीतियों का यथातथ्य चित्रण किया और उन पर व्यंग्यात्मक निक्षेप कर उन्हें दूर करने का मार्ग प्रशस्त किया।

सामाजिक रूढ़ियाँ निराला जी की रचनाओं की पृष्ठभूमि बन गई। शोषित समाज के प्रति लेखक की सक्रिय संवेदना उनके उद्देश्य को स्पष्ट करती है। उन्होंने यथार्थ को धरा पर संप्रेषित कर समाज को जागरूकता की दिशा दी। समाज की अनेक विषम परम्पराओं में प्रवेश कर निराला ने वास्तविक संघर्षरत जीवन को साहित्य के मंच पर ला खड़ा किया ''समग्र मानवता के प्रति निराला की संवेदना उसके दुःख पर अकर्मण्य आँसू ही नहीं बहाती वरन् करूणा से आर्द्र होकर कष्टों के निवारण का पथ भी सुझाती है और मनुष्य को झकझोर कर उसे कर्म पथ पर प्रवृत्त भी करती है।''[4]

सामाजिक भ्रष्टाचार और रूढ़ियों के चित्रण में निराला ने समाज के किसी भी अंग को अछूता नहीं छोड़ा है। वर्षो की पराधीनता भारतीय संस्कृति के सूर्य पर कोहरा बनकर छा गई। और भारत का पराक्रम कुरीतियों के अन्धकार में घिर गया –

''भारत के नभ का प्रभावपूर्ण
शीतलच्छाय सांस्कृतिकसूर्य
अस्तमित आज रे तमस्तूर्य
दिङ्मण्डल।।''[5]

निराला जी का अभिमत है सामाजिक कुरीतियाँ, रूढ़ियाँ मनुष्य को आगे बढ़ने से रोकती है –

''किन्तु हाय, रूढ़ि धर्म के विचार
कुल मान शील ज्ञान, उच्च प्राचीर ज्यों घेरे थे मुझे।''[6]

''नवीनता की स्थापना में अदम्य साहस अपेक्षित है परम्परा और रूढ़ि को तोड़ना नई सामाजिक संरचना के लिए अति आवश्यक है।''[7] ''निराला जी ने इस क्षेत्र में सदैव साहस और कर्तव्यशीलता का परिचय दिया है। उन्होंने सदैव परम्परा का विरोध और नवीनता का स्वागत किया है।[8]''

नई सामाजिक संरचना हेतु जीवन के सभी अंगो में व्याप्त पुरातनता की कारा को तोड़ने, नवीन आदर्शों से मण्डित पवित्र गंगा–जलधारा को प्रवाहित करने का महाप्राण निराला का सन्देश सदैव संसार में ध्वनित होता रहेगा–

''तोड़ो, तोड़ो, तोडो कारा
पत्थर की, निकालो फिर
गंगाजल धारा।।''[9]

निराला समाज में मूल रूप से मानव की स्वतन्त्रता, समानता और मौलिक चेतना की स्थापना करना चाहते

थे। प्रेम और श्रम के आधार पर स्थापित, सामाजिक व्यवस्था निराला जी की दृष्टि में सर्वश्रेष्ठ है। पुरानी रूढ़ियों से जर्जरित समाज व्यवस्था में सुधार कर नई सामाजिक व्यवस्था का निर्माण ही निराला का प्रमुख लक्ष्य रहा है।

निराला समाज के कमजोर वर्ग के पक्षधर हैं और इस वर्ग को उन्होंने अपने काव्य का विषय बनाया है। व्यक्तिगत जीवन के कष्टों एवं अभावों को भूलकर निराला समाज में नई चेतना का संचार कर कामना करते हैं–

''प्रतिजन को करो सफल,
जीर्ण हुए जो यौवन
जीवन से भरो सकल
रंगे गगन अन्तराल
मनुजोचित उठे भाल
छल का छुट जाए जाल
देश मनाए मंगल।।''[10]

अस्तु साहित्य के माध्यम से निराला जी सामाजिक जीवन के यथार्थ पर लौटे हैं। सामयिक समाज की वास्तविक स्थिति तथा उसमें होने वाले दुराचारों और भ्रष्टाचारों को साहित्यिक परिधि में समेट कर समाज को नई चेतना से अनुप्राणित करके निराला जी साहित्यकार का सच्चा उद्देश्य मानते थे।

सन्दर्भ सूची

1. निराला साहित्य में सामाजिक चेतना – डॉ. प्रमिला कुमारी पृ.7
2. हिन्दुस्तान की कहानी – जवाहर लाल नेहरू 1947 पृ. –375
3. आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत – डॉ. केसरी नारायण शुक्ल पृ. 35
4. अपरा निराला पृ.–156
5. तुलसीदास – निराला पृ. 11
6. अनामिका पृ. – 7–8
7. निराला की साहित्य साधना (भाग–2) डॉ. रामविलास शर्मा पृ. –29
8. परिमल पृ. – 112
9. अनामिका पृ.–137
10. बेला – निराला पृ.– 81

❑❑

जड़भरत जी का जीवन चरित

डॉ0 राखी राजपूत
असिस्टेंट–प्रोफेसर
इन्दिरा देवी मेमोरियल गर्ल्स कालेज, मोरना बिजनौर (उ.प्र.)

जड़भरत जी का प्रकृत नाम 'भरत' है जो पूर्वजन्म में स्वायंभुव वंशी ऋशभदेव के ज्येष्ठ पुत्र थे ।

'ऋषभदेव के सौ पुत्रो में भरत ज्येष्ठ और गुणवान थे ऋषभदेव ने सनयास लेने पर उन्हें राजपाट सौप दिया था। भरत के नाम से ही लोग अजाभखणड को भारतवर्ष कहने लगे।'[1]

जड़भरत की कथा विष्णुपुराण के द्वितीय भाग में और भागवतपुराण के पंचम भाग में आती है इसके अलावा यह आदिपुराण नामक जैनग्रन्थ में भी आती है। शांतग्राम तीर्थ में तप करते हुए इन्होंने सघ जात मृग शावक की रक्षा की थी उस हिरन के बच्चे की चिंता करते हुए इनकी मृत्यु हो गई।

'मृग के मोह में पड़ने के कारण अगले जन्म में इन्होंने मृगयोनि में जन्म लिया।'[2]

जंबूमार्ग तीर्थ में एक 'जातिस्मर मृग' के रूप में इनका जन्म हुआ बाद में पुनः जातिस्मर ब्राह्मण के रूप में जन्म हुआ।

ब्राह्मण का शरीर होने पर भी उन्हे अपने पूर्व जन्म का पहले की भाति ज्ञान था वे सोचते थे कि पिछले जन्म में एक हिरण शावक के मोह में फसकर में मोक्ष के द्वार से वापस आ गया इस संसार को जानते जानते में कहा तक चला गया कि ममता को जाना, क्रोध अग्नि को जाना, मोह की प्रवृत्ति को जाना ये सब जानने की जिज्ञासा में मन कहाँ भटक गया। जबकि उन्होंने प्रत्येक जन्म में भगवान का स्मरण करना नहीं छोड़ा था।

'मृगयोनि में रहते हुए भी ये भगवान का ध्यान करते रहते। अगले जन्म में उन्होंने एक ब्राह्मण कुल में जन्म लिया।'[3]

उनके माता–पिता सहपाठियों को यह ज्ञात हुआ कि महर्षि तो ममता में रत हो गए है तो घूमते–घूमते सोमकेतु उनके आश्रम पहुँचे क्योंकि उन्होंने वहाँ ज्ञान व विद्या अर्जन किया था। सोमकेतु ने कहा कि प्रभु इतना मोह किसी से भी नहीं होना चाहिये कि उसी का विरविन में खो जाये। क्योंकि ममता हमारे अन्तःकरण का पूर्णतः विनाशकर देती है।

सोमकेतु महाराज के इस वर्णन में जड़भरत जी ने कहा कि कथन तो आपका सत्य है परंतु जो मेंरे मन में ममता के संस्कार हैं। वे कैसे नष्ट होंगे क्योकि मेरा यह जीवन ही बेकार हो गया है।

उसी समय ऋषि वेशम्पायन भी आश्रम पहुँचे और साकल्य (जड़भरत) से कहा कि आपका नाम तो यह श्रवण है कि आप मोक्ष के द्वार पर पहुँच गए हो फिर मोह कैसा तब जड़भरत ने कहा – 'ये मेरा दुर्भाग्य है। मैं दुर्भागी हूँ, जानता हुआ भी अग्नि में प्रवेश हो गया हूँ। भगवन! हे प्रभु यह भी भयंकर अग्नि है जिसने इतनी ममता में मुझे परिणित कर दिया।'[4]

वेद, के वाक्य ऋषि मुनियो ने यह कहा कि मनुष्य को कर्तव्यवाद का पालन करना चाहिए जैसे कि मॉ कर्तव्यवाद में रहकर ही एक बच्चे को पालती है, कर्तव्यवाद ही संसार को राष्ट्र को ऊँचा बनाता है। इसीलिए सूर्य उदय होकर प्रकाश देता है। चंद्रमा चॉदनी बिखेरता है मोह में तो सब नष्ट हो जाता है।

स्वयं आपने भी कर्तव्य को सर्वोपरि मानते हुए कई करोड वर्षो तक शासन किया। श्रीमद्भागवत के पंचम

स्कंध के सप्तम अध्याय में भरत चरित्र का वर्णन है।

'कई करोड वर्ष धर्मपूर्वक शासन करने के बाद उन्होने राजपाट पुत्रो को सौपकर वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण किया तथा भगवान की भक्ति में जीवन बिताने लगे।'[5] भक्ति में लीन रहते रहते जब मोक्ष के समीप पहुचे तो मोह में रत हो गए ऋषि वैशम्पायन ने इस मोह को त्यागने के लिए प्रेरित किया।

जड़भरत अपने अन्तःकरण में पल रहे मोह संस्कार में रहकर इस आवागमन चक्कर में फॅसकर रह गए थे।

ब्राह्मण शरीर होने पर उन्होने निश्चय किया कि इस जन्म में मोह में नही लिप्त रहूॅगा बल्कि सजग रहकर मोक्ष प्राप्ति का रास्ता अपनाउंगा। वे अपने कुटुंबिनो के साथ पागलो सा व्यवहार करने लगे।

जिससे परिवार वाले उन्हे पागल समझे। जड़भरत के पिता उन्हे विद्या अध्ययन के लिये प्रेरित करते परंतु जड़भरत एक श्लोक तक याद ना कर सके। उनके पिता ने उन्हे जड़ समझ लिया। उनके पिता ने उन्हे वैद्य और मस्तिष्क विशेषज्ञो का दिखाया परन्तु उन्हे तो कोई रोग ही नहीं था। उनका हृदय दिमाग और क्रियाकलाप सब उचित अवस्था में थे। राजा ने उन्हे वाटिका में ले जाकर सुगन्ध वायु का पान कराया। परन्तु जड़भरत ने वाटिका को ही नष्ट कर दिया।

तब उनके पिता ने क्रुध होकर उन्हें अपने राज्य से दूर जाने को कहा। उनके जाने के बाद ना तो उनके माता पिता का उनसे मोह रहा। ना नगरी वालो को और ना स्वयं जड़भरत को। वे निर्मोही होकर भयंकर वनो में जाकर तप करने लगे। पुष्पो का पान करने के पश्चात सदैव आत्म चिन्तन में लीन होना उनका एकमात्र कर्म था।

तत्कालीन मनु वंश में अयोध्या में जो राज्य करते थे उनका नाम नहुश था। उन्होने अपना ब्रह्मचर्य काल तो विद्यालय में व्यतीत किया और ग्रहस्थाश्रम अपने राज्य को सुचारू रूप से चलाने में व्यतीत किया। जब राजकीय कार्य से निर्वत्र हुए तो उन्हे विचार आया कि अब राजकार्य अपने बड़े पुत्र को सोंप कर कुछ परमात्मा चिंतन में समय व्यतीत किया जाये। महाराज ने एक सभा का आयोजन किया जिसमें शिव और पार्वती को भी बुलाया गया राजा नहुश ने कहा मेंरा जो ज्येष्ठ पुत्र सुकुस्तू है अब से वो इस राज्य की देख–भाल करेंगे। मैं वन में जाकर आत्मचिन्तन में लीन हो जाना चहता हूँ। सब राजाओ ने इस कथन की सराहना की 'महाराज शिव ने कहा हे राजन नहुश ये तो तुम्हारा बड़ा सौभाग्य है कि तुम्हारे हृदय में ऐसी प्रवृत्ति का जन्म हुआ क्योकी हमारी जो राष्ट्रीय परंपरा है हमारी जो मानवीय परंपरा है वह सृष्टिकाल से वेदानुसार ऐसी ही रही है।'[6]

राज्याभिषेक होने के बाद राजा नहुश पालकी में विराजमान हो करके चार सेवको के साथ राज्य को त्याग दिया। भयंकर वनो में एक कहार बीमार हो गया तो सेवको ने सोचा कि अब राजा को कैसे ले जाये वे एक मानव को खोजने के लिये इधर उधर तलाश करने लगे। तभी उन्होने ध्यान से लीन जड़भरत को देखा। और राजा की पालकी हेतु उन्हे अपने साथ ले आये और उन्हे अनुपस्थित सेवक की जगह कार्य में लगा दिया।

जब पालकी को लेकर चले तो पालकी कभी इधर तो कभी उधर जाने लगी क्योकी जड़भरत जी पालकी ले जाना नहीं जानते थे। राजा नहुश उनके इस कार्य से अत्यंत नाराज़ हुऐ। और कहारौ से कहा मेंरी पालकी को नीचे उतारो। नीचे उतरने के बाद उन्होने जड़भरत को दण्डित करना प्रारम्भ किया परंतु जड़भरत ने इसका किंचित विरोध नहीं किया बल्कि वेद मन्त्रो का उच्चारण करने लगे।

जड़भरत बोले हे प्रभुः हे देवो के देव महादेव मोह के कारण ही जब मैं इस प्रकार संसार से दुखित हो गया हॅू। हे प्रभू जो क्रोधी है और कामी भी रहे है शासनकर्ता भी है उनकी क्या गती होगी। उनकी इस प्रार्थना को सुनकर राजा नहुश ने कहा आप कौन है? उन्होने कहा मेंरा नाम भरत है। राजा बोले आप वही जड़भरत है जिनका सर्वत्र पृथ्वी में नाम है। हे प्रभु मैं तो आपको स्वामी बनाने के लिये गुरू बनाने के लिये ही सबकुछ त्याग कर इन वनो

में आया हूँ। मुझे क्षमा करे मैंने आपको दण्डित किया तब जड़भरत बोले की राजन कोई बात नहीं जब व्यक्ति के मन की इच्छा नहीं होती वहाँ क्रोध आना स्वभाविक है। एक माता पिता उसी समय अपने पुत्र से नाराज़ होता है जब वह उनकी आज्ञा की अवहेलना करता है। हे राजन मैं क्षमा करने वाला कौन हूँ। आप तो राज्य त्याग कर आये है इसीलिये किसी राज्यकृषि के द्वार जाओ और कहो मुझे आत्मज्ञान दो। हे राजन मैं तो वह जड़ हूँ और रत मानो मुझे समाज करने लगा है। मैं जड़वत ही रहना चाहता हूँ। ना कि ज्ञान और विज्ञानवेत्ता नहीं तब महाराजा नहुश ने कहा–

'हे प्रभु आपका जो ज्ञान विज्ञान है वह मुझे नहीं चाहिये । भगवन मुझे तो आध्यात्मिक जो गल्तियाँ हो रही है जिससे आत्मा के समीप चला जाउँ। मैं आत्मा के ही ज्ञान विज्ञान में रत रहना चाहता हूँ क्योंकी आत्मा प्रकाशक है आत्मा के ना रहने से ही यह शरीर शून्य गति को प्राप्त हो जाता है।'[7]

राजा नहुश कहते है कि मैं हमेशा अपनी आत्मा का मान करना चाहता हूँ। इस प्रकार बार–बार वे आत्मचिंतन चेतना वेदों का ज्ञान प्राप्त करने के लिये जड़भरत से प्रार्थना करने लगे।

जड़भरत बोले हे राजन जो घटना जीवन में हो जाती है उसको याद करके आगे का जीवन व्यर्थ मत करो। तुम अब अपने जीवन मार्ग का परिवर्तन करो। यह कहकर महात्मा जड़भरत मौन हो गये और राजा नहुश भी। बारह वर्ष तक राजा नहुश और जड़भरत ने मौन धारण किया वे दोनो ही प्रभु के सृष्टि को निहारने लगे।

अभिप्राय यह है कि मानव संसार में रहकर मोह माया में लीन हो जाता है जिससे वह प्रभु की भक्ति अराधना से विरक्त हो जाता है परन्तु वह इनको त्याग दे तो आत्मा को ही आत्मतत्व में रमण करने लगता है।

नाहुश और जड़भरत ने भी एक पहरी से दूसरी पहरी जैसे ओउम्: भुवः स्वः महः जनः तपः में सात प्रतिभा कहलाती है उनका वर्णन करने लगे। महात्मा जड़भरत ने राजा नहुश का नाम मृचिका कर दिया। अब दोनो भ्रमण करते–करते महर्षि वैशम्पायन के आश्रम पहुँचे। ऋषि वैशम्पायन ने उनकी आकृति नेत्रों व क्रियाकलाओ से यह जान लिया कि यह पूर्व जन्म के साकल्य मुनि हैं। उन्होंने कहा है ऋषिवर अब आप पुनः साधक बन गये हो और मोक्ष के निकट हो यह तो बड़ा ही हर्ष का विषय है।

जड़भरत जी बोले हम शिकामकेटू उद्दालक के यहाँ जाना चाहते है जहाँ विभिन्न प्रकार का अध्ययन होता रहता है। इस प्रकार तीनों महात्मा अगस्त मुनि महाराज के आश्रम पहुँचें जहाँ वह हृदयरूपी यज्ञशाला में लगे हुऐ थे उन्होंने कहा जड़भरत हृदयरूपी यज्ञशाला किसे कहते हैं।

अगस्त मुनि बोले यहाँ हमारी समस्त इन्द्रीयो को एकत्रित करके मानो रसना के रसों से मिलना त्वचा के प्रेम से मिलना घ्राणेन्द्रि से भीनी भीनी सुगन्ध का मिलना और नेत्रों से रूप का मिलना ये सब एकत्रित कर मैं हृदयरूपी यज्ञशाला में प्रवेश हो गया हूँ महात्मा भरत मग्न रहे। अब महर्षि वैशम्पायम महर्षि मृचिका जड़भरत अगस्त मुनि महाराज ने भी यहाँ से गमन किया और महर्षि उछालक गौत्र में पहुँचे उद्दालक गौत्र को हमारे यहाँ बड़ा विज्ञानवेत्ता माना जाता है। जहाँ भौतिक ज्ञान और आध्यात्मिक ज्ञान दोनो का ज्ञान मिलता है।

ये चारो ऋषि भी ब्रह्मवेत्ता कहलाते थे अर्थात् जो हमेशा ब्रह्मा के ऊपर चिन्तन करते रहते थे। महात्मा जड़भरत अपनी आत्मा में लीन होकर चिन्तन करने लगे परन्तु मृचिका ऋषि ने यह प्रश्न किया कि पूर्वकाल में मैं विभिन्न उपलब्धियों से अलंकृत हूँ मेरे पूज्यवाद देव ने मेरा जीवन परिवर्तन किया है। हे प्रभू मैं नाभि को जानना चाहता हूँ। उन्होंने कहा सबसे प्रथम नाभि से मानव का जीवन है और एक नाभि परमपिता परमात्मा के आगनभ्ववेः ब्राह्माण्ड की नाभि कहलाती है। महाराज नहुश उनके उत्तरो से संतुष्ट हो नाभि से समन्वय कर लेते है।

शिकामकितू उद्दालक ने कहा महात्मा जड़भरत आप तो जड़भरत है अर्थात् आप तो हमेशा जड़ की भाँति

रहते हैं। आप तो ब्रह्म विद्या में लीन रहते हो क्या आपको कोई जिज्ञासा रहती है तब जड़भरत ने कहा अपनी जिज्ञासा का समाधान कर लेता हूँ मुझे तो प्रभू से मोह हो गया। मैं प्रवत्तियों में लीन हो गया मैं मोह के कारण ही कहाँ चला गया। शिकामकेतू उद्दालक ने उन्हें पुनः आत्मालीन होने का आशीर्वाद दिया तो महात्मा जड़भरत की शंकाओं का निदान हो गया। ह्रदय में जो ग्रन्थि होती है उसका स्पष्टिकरण बहुत अनिवार्य है। यह सारा जगत ब्रह्मा से निकला है और ब्रह्मा में ही समा जाता है। इस लीला को जड़भरत ने समझा और सुख शांति प्राप्त कर ब्रह्मा में लीन हो गये।

सन्दर्भ सूची

1. श्रीमदभागवत पुराण, पंचम स्कंध, चतुर्थ अध्याय, श्लोक 9
2. श्रीमदभागवत पुराण, पंचम स्कंध, सप्तम अध्याय से
3. श्रीमदभागवत पुराण, पंचमस्कंध, नवम अध्याय
4. कर्त्तव्यवाद – पूज्यवाद ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी महाराज, पृ0 19, महात्मा जडभरत का जीवन चरित्र
5. श्रीमदभागवत पुराण, पंचमस्कंध, सप्तम अध्याय़
6. कर्त्तव्यवाद – महात्मा जड़भरत का जीवन चरित्र पूज्यवाद ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी महाराज, पृ0 25
7. कर्त्तव्यवाद – महात्मा जड़भरत का जीवन चरित पूज्यवाद ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी महाराज, पृ0 29

❑❑

भारतीय विदेश नीति : एक अवलोकन

मनोज कुमार यादव
पूर्व सदस्य उ0प्र0मा0 शिक्षा सेवा चयन बोर्ड, इलाहबाद
एवं
प्रवक्ता राम पाल त्रिवेदी इण्टर कॉलेज गोसाईंगंज, लखनऊ

किसी देश की विदेश नीति, जिसे विदेशी संबंधों की नीति भी कहा जाता है। अपने राष्ट्रीय हितों की रक्षा करने के लिए और अन्तराष्ट्रीय संबंधों के वातावरण अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए राज्य द्वारा चुनी गयी स्वहितकारी रणनीतियों का समूह होती है। किसी देश की विदेश नीति दूसरे देशों के साथ आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक तथा सैन्य विषयों पर पालन की जाने वाली नीतियों का एक समुच्चय है। भारतीय विदेश नीति की सफलता–असफलता इन्हीं मानकों पर परखी जानी चाहिए। सन् 1950 के दशक के अंत तक भारतीय विदेश नीति और राजन अंतर्राष्ट्रीय मंच पर असाधारण रूप से सक्रिय और प्रभावशाली रहे थे। भारत नवोदित राज्य था और उसके आर्थिक और सैनिक संसाधन बड़ी शक्तियों की तुलना में नगण्य थे, तब भी गुटनिरपेक्षता का विकल्प अपना कर भारत ने अफ्रीका और एशिया के देशों के बीच अपनी अलग खास पहचान बना ली थी। नेहरूयुगीन भारत साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के विरूद्ध तीसरी दुनिया के संघर्ष में सहज भाव से नेता और पथ प्रदर्शक के रूप में प्रकट हो चुका था। आज आजादी के लगभग 70 वर्ष बाद हमारी स्थिति बहुत बदल गयी है। नेतृत्वक्षमता की बात तो छोड़िए, इक्कीसवीं शताब्दी के पहले दशक के अंत के बाद का भारत खुद अपनी संप्रभुता और एकता अखंडता की रक्षा करने में असमर्थ लगता है। इसका दोष सिर्फ अप्रत्याशित रूप से बदले हुए अंतर्राष्ट्रीय परिवेश को नहीं दिया जा सकता। विदेश नीति की असमर्थता और कुंठित राजनय का योगदान भी इसमें कम नहीं। सबसे पहले यह याद रखने की जरूरत है कि भारतीय विदेश नीति का श्रीहीन होना किसी एक व्यक्ति विशेष के निकम्मेपन के कारण या किसी एक घटना दुर्घटना का परिणाम नहीं है। विचारधारा का अभाव और राष्ट्रहित को अदूरदर्शी ढंग से परिभाषित करने के बाद कुछ मूल्यों को सामने रख कर लक्ष्य निर्धारित करने की चुनौती से मुँह चुराने के कारण ही यह दुर्दशा हुई है।

जब से हमारी सरकार ने आँख मूंद कर आर्थिक सुधारों को अपनाया है और यह मान लिया है कि भूमंडलीकरण का कोई विकल्प नहीं है, तभी से समाजवादी अर्थात् समतापोषक सपनों को तिलांजलि दे दी गयी है और भारतीय विदेश नीति अपने पथ से बुरी तरह भटक गयी है। आजादी के ठीक बाद से ही भारत ने आर्थिक विकास का जो तरीका अपनाया, वह सोवियत संघ के मॉडल पर आधारित केंद्रीय नियोजित विकास वाला था। भले ही मिश्रित अर्थव्यवस्था के नाम पर नेहरू की सरकार ने इसमें महत्वपूर्ण संशोधन किया और निजी क्षेत्र की भूमिका को कुछ नियंत्रणों के बाद स्वीकार किया, लेकिन कुल मिलाकर हमारी अर्थव्यवस्था और राजनीति का रूझान समता पोषक समाजवादी ही रहा। यह रेखांकित करना जरूरी है कि भारत के संदर्भ में समाजवाद का अर्थ किसी भी तरह का साम्यवाद नहीं लगाया जाना चाहिए। नेहरू भले ही अंग्रेजी मिजाज के अंग्रेजपरस्त फेबियन सोशलिस्ट रहे हों, आम हिन्दुस्तानी की नजर में समाजवाद का मतलब गरीबों की हिमायत करने वाली नीतियाँ ही थीं। यह स्थिति कमोबेश इंदिरा गाँधी के शासनकाल में भी बनी रही। भले ही एकछत्र निरंकुश शासन की महत्वाकांक्षा के कारण उन्होंने अनेक लोकलुभावन नारे और नीतियाँ प्रस्तावित कीं, लेकिन इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि बैंकों का राष्ट्रीयकरण हो या रजवाड़ों और शाही थैलियों का उन्मूलन, उनकी सरकार

साफ–साफ वंचितों और उत्पीड़ितों के पक्ष में अपने को प्रतिष्ठित करने में लगी रही। इसे मात्र संयोग नहीं समझा जाना चाहिए कि श्रीमती गाँधी के शासनकाल में ही भारत की विदेश नीति सर्वाधिक स्वाधीन रहीं और हमारा राजनय काफी असरदार। सन् 1971 में बांग्लादेश का उदय हो या सन् 1974 में पोखरण में आण्विक विस्फोट, अमेरिका जैसी महाशक्ति के निरंतर बढ़ते दबाव का उन्होंने बखूबी सामना किया। यह बात भुलाई नहीं जा सकती कि भले ही सोवियत संघ के साथ इस पूरे दौर में भारत के रिश्ते घनिष्ठ मैत्री वाले रहे, इस दोस्ती की वजह से भारत ने कभी विकल्प चुनने की अपनी स्वाधीनता को बंधक नहीं बनने दिया। तत्कालीन सोवियत संघ और चीन के बीच संबंध तनावग्रस्त रहने के बावजूद हमने अपने संबंध क्रमशः सामान्य किये। इस बात को भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता कि उन दिनों भी अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य बेहद संकटग्रस्त था। दक्षिणपूर्व एशिया में वियतनाम युद्ध चरम सीमा पर पहुँच चुका था और मध्य पूर्व का संकट कम विकट नहीं था। देश की आंतरिक स्थिति भी सन् 1969–71 के बीच नक्सलवादी विद्रोह के कारण और बाद में खालिस्तानी अलगाववाद के कारण जोखिमों से भरपूर थी। कुछ लोगों को आज भी यह बात याद होगी कि उत्तरपूर्वी राज्यों में बगावत पूरे उफान पर थी और एक बार जब इंदिरा गाँधी मिजोरम में एक जनसभा को संबोधित कर रही थीं, गोलीबारी निरंतर जारी रही थी। इस पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए यह बात भी समझी जा सकती है कि विदेश नीति और राजन के क्षेत्र में तत्कालीन उपलब्धियाँ कितनी महत्वपूर्ण थीं। अफगानिस्तान पर सोवितय संघ का कब्जा था और विश्व भारत के अपवाद को छोड़ उस महाशक्ति के खिलाफ खड़ा था। इन्हीं वर्षों में भारत ने फिलिस्तीनियों के साथ भाईचारा सार्थक ढंग से निभाया और यासिर अराफात और फीदेल कास्त्रो दोनों ही के साथ इंदिरा गाँधी के रिश्ते आत्मीय और भारतीय राष्ट्रीय हितों के लिए लाभदायक रहे। इतिहास के इन पन्नों को इस घड़ी पलटना बेहद जरूरी है ताकि विदेश नीति और राजनय के क्षेत्र में विचारधारा और मूल्यों के सर्वोपरि महत्व को ठीक से समझा जा सके। इसके अभाव में समसामयिक भारतीय विदेश नीति और राजनय का मूल्यांकन असंभव है। राजीव गाँधी के कार्यकाल में बदलाव शुरू हो चुका था। भले ही कुछ लोग इसका पूरा श्रेय पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह और कभी उनके संरक्षक रहे नरसिंह राव को ही देना चाहिते हैं, इस बात की अनदेखी नहीं की जा सकती कि भारत को इक्कीसवीं सदी में ले जाने और इस देश में कॉरपोरेट तबके को महत्वपूर्ण भूमिका सौंपने वाली परियोजना की रूपरेखा राजीव के काल में ही तैयार की गयी थी।

राजीव गाँधी के शासनकाल में विदेश नीति को भारत के राष्ट्रहित पर ही रखने का भरसक प्रयत्न किया गया। इसके कारण कभी–कभी भारतीय राजनय पड़ोसियों को उग्र विस्तारवादी और आक्रामक तक नजर आने लगा था। श्रीलंका में पहले लिट्टे का प्रशिक्षण, फिर आईपीकेएफ दस्ते का भेजा जाना, नेपाल की नाकेबंदी, मालदीव में हस्तक्षेप इसी का उदाहरण है। राजीव गाँधी को इस बात का पूरा एहसास था कि स्वदेश में वे निश्चिंत शासन तभी कर सकते हैं जब अंतर्राष्ट्रीय परिवेश अनुकूल हो। उन्होंने अपने नाना और माता के पदचिह्नों का अनुसरण इसीलिए किया कि अफ्रीका और एशिया की एक जैसी समस्याओं से जूझते देशों का संयुक्त मोर्चा कमजोर न होने पाये। इसीलिए उन्होंने "अफ्रीका फंड" की स्थापना की घोषणा की और राष्ट्रीय संवाद द्वारा नाभिकीय ऊर्जा विशयक अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था को समतापूर्ण बनाने का प्रयास भी किया। दुर्भाग्य से बोफोर्स घोटाले में बदनाम और पंगु होने के बाद राजीव गाँधी को चुनाव में हार का मुँह देखना पड़ा और इसके बाद देश में अस्थिर मौकापरस्त सरकारों का एक ऐसा दौर शुरू हुआ जिसमें विदेश नीति और राजनय की निरंतर उपेक्षा होती रही। कहने को इन्द्र कुमार गुजराल विदेश नीति के विशेशज्ञ और समाजवादी विचारधारा के समर्थक थे, लेकिन वास्तव में वे जमाने की चाल के साथ चलने वाले "सहयात्री" भर थे। विचारधारा उनके संदर्भ में हाथी के दिखावटी दाँत जैसा ही मामला रही।

जब भाजपा के नेतृत्व वाली एनडीए सरकार ने केंद्र में सत्ता संभाली, तभी से अमेरिका के साथ संबंधों को

सुधारने की प्रक्रिया तेज हो गयी। आज भले ही इसका पूरा श्रेय जसवंत सिंह अकेला लेना चाहते हों, लेकिन यह याद दिलाना बेहद जरूरी है कि अमेरिका के प्रति झुकाव और आर्थिक सुधारों को लागू कराने के काम नरसिंह राव ने ही शुरू कर दिया था। एक बार आर्थिक हितों का संयोग हो जाने के बाद सामरिक समीकरण खुदखुद बदलने लगे। यह भी साफ करने की आवश्यकता है कि जब भी हम आर्थिक हितों की बात करते हैं तो उसका तात्पर्य भारत के आम आदमी के हित नहीं, बल्कि ताकतवर उद्यमियों के तबके के हितों से हैं। भूमंडलीकरण का तर्क जिन हितों के संरक्षण की बात करता है, उनके बारे में भी यह बात लागू होती है। इसी सबका नतीजा है कि आज भारत की विदेश नीति या तो गतिरोध से ग्रस्त, लाचार या एक ऐसे भंवर में फंसी दिखलाई देती है जो उसे रसातल के गर्त तक ही पहुँचा सकती है। आज भारत बहुत सारे फैसले अमेरिकी विदेश विभाग के दबाव में लेता नजर आता है। यह बात सिर्फ ईरान बनाम इजरायल तक सीमित नहीं। फिलिस्तीनियों को हम पूरी तरह भुला चुके हैं और अफ्रीका महाद्वीव भी हमें नक्शे में दिखलाई देना बंद हो चुका है। अमेरिकियों के अफगानिस्तान से बेआबरू होकर वापस लौटने के बाद उनके हितों की रखवाली के लिए उस जानलेवा दलदल में धंसने–फसने के लिए आज भारत उतावला हो रहा है। अमेरिकी नेताओं और राजनीतिक विश्लेषकों ने भारत को एक घातक मरीचिका में फंसा दिया है। हमें यह बताया जा रहा है कि हम एक उदीयमान शक्ति हैं और हमें बड़ी शक्ति बनने की अपनी महत्वाकांक्षा के अनुरूप जिम्मेदारी और खर्च का बोझ स्वीकार करना ही होगा। अफगानिस्तान, पाकिस्तान मोर्चे पर भारत की गर्दन में फंदा पहनाने के लिए तो भारत अमेरिका को उदीयमान शक्ति नजर आता है, लेकिन सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्यता या परमाणु हथियारों के स्वामित्व के संदर्भ में भारत की टेक्नोलॉजी के हर प्रयास को बाधित करने के हर संभव प्रयास करता रहा है। इसी का नतीजा है कि भूमंडलीकरण के बहाने अपना माल तो अमरिका भारत के बाजारों में भेजता रहा है और अब खुदरा व्यापार पर कब्जा करना चाहता है, लेकिन भारतीय उत्पाद सेवाओं और कारीगरों इंजीनियरों पर कड़े नाजायज प्रतिबंध लगाने का कोई मौका नहीं छोडता। यह बात अमेरिका तक ही सीमित नहीं। चीन ने (जो खुद भूमंडलीकरणवादी व्यवस्था का कट्टर विरोधी है) अनायास भारत का पहले नंबर का आर्थिक साझेदार बनने में सफलता हासिल कर ली है। आज स्थिति यह है कि हमारे प्रधानमंत्री यह फरमाने लगे हैं कि यदि चीन हमारी सीमा का अतिक्रमण करता भी है तो इसे ठंडे दिमाग से विचारकर अनावश्यक तूल नहीं देना चाहिए क्योंकि उस देश के साथ हमारे आर्थिक रिश्ते सीमा विवाद से कहीं अधिक महत्वपूर्ण हो चुके हैं। भारत ने पूर्व की ओर देखने की जो पहल की थी, आज उसकी किसी को याद नहीं रह गयी है और न ही उस गैस तेल पाइप लाइन की जिसके बारे में कभी यह कहा जाता था कि जब यह ईरान से पाकिस्तान, अफगानिस्तान, भारत तक पहुँचेगी तो हमारी ऊर्जा सुरक्षा सुदूर भविष्य तक सुरक्षित हो जायेगी। इसी के लिए साइबेरिया में साखालिन में अरबों डॉलन का निवेश भारत सरकार ने ओएनजीसी के जरिये किया था। जबसे मनमोहन सिंह ने अपनी सरकार दांव पर लगा कर अमेरिकी सरकार के साथ परमाणुविक ऊर्जा के शांतिपूर्ण उपयोग वाले करार पर हस्ताक्षर किये, तभी से हमारा ऊर्जा राजनय भी मृतप्राय हो गया है। जब अमेरिका अपने सामरिक हितों के दबाव में अच्छे और बुरे तालिबान में फर्क करने लगता है, तब अचानक हिंदुस्तान को अपने अकेले छूट जाने का एहसास होता है। यह बात जाहिर होती है कि अमेरिका ने दहशतगर्दी के खिलाफ जो जंग छेड़ने का ऐलान किया था उसकी असलियत क्या थी? यदि आर्थिक विकास का पूंजीवादी रास्ता चुनने के बाद भी हम अमेरिका के सहोदर सगे अपने नहीं बन सके। हमारे जैसा गरीब देश वास्तव में पूँजीवादी हो भी कैसे सकता है? देश में संपन्न तबका बहुत सीमित शासक वर्ग ही है। वर्तमान विदेश नीति और आंतरिक नीतियाँ व्यापक राष्ट्रहित में नहीं समझी जा सकतीं। यह सिर्फ अदूरदर्शी ही नहीं, तात्कालिक दृष्टि से भी सफल नहीं हो सकती। पड़ोस की तमाम हलचल को अनदेखा कर हमारी विचारधारा के बोझ से मुक्त नीति निर्धारकों की निगाहें दूरस्थ क्षितिज पर ही टिकी रहती हैं। नेपाल, बांग्लादेश, म्यांमार या मालदीव, सभी जगह भारतीय विदेश नीति तथा राजनय

लकवाग्रस्त दिखाई दे रहा है। भारत की संप्रभुता का जिस तरह अवमूल्यन हुआ है वह भी शर्मनाक है। नॉर्वे में भारतीय दंपती से उनके बच्चे छीनना हो, इटली के जहाज पर सवार निशानेबाजों द्वारा केरल के मछुआरों को मार गिराना या भारतीय नागरिक कुलभूषण जाधव को पाक सैनिक न्यायालय द्वारा मृत्यु दण्ड देना। सब यही दर्शाते हैं कि ढुलमुल, मौकापरस्त आचरण के क्या दुष्परिणाम होते हैं। इसके पहले भी ऑस्ट्रेलिया में या ब्रिटेन में नस्लवादी हिंसा के शिकार भारतीय नागरिकों को न्याय दिलाने में हमारी सरकार असमर्थ रही। यद्यपि मीडिया एवं शासनतन्त्र में उच्च पदस्थ लोगों द्वारा निरन्तर कहा जा रहा है कि जब से नरेन्द्र मोदी भारत के प्रधानमन्त्री बने हैं तब से भारतीय विदेश नीति अधिक सक्रिय व कारगर रही हैं, जिसके फलस्वरूप विश्व में भारत की गुणात्मक साख बड़ी है। भारतीय राजनय पहले की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली ढ़ंग से भूमिका का निर्वहन कर रहा है। इन विचारों में सैद्धान्तिक कुटिलता अधिक लगती है। व्यवहारिक धरातल पर मोदी सरकार भी भारतीय विदेश नीति व राजनय को एक सीमा तक कारगर बना सकी। इस विचार को अनेक घटनाएँ तथ्यात्मक आधार प्रदान करती हैं– कुलभूशण जाधव को पाक में मृत्यु दण्ड मिलना, कश्मीर में तैनात भारतीय सैनिकों पर खुलेआम सड़कों पर कट्टरपन्थियों द्वारा हमला करना, अमरीकी राष्ट्रपति ट्रंप की 'स्वहित' के नाम पर ऐसी नीतियों को आश्रय देना जो कहीं न कहीं भारतीय हितों के विरुद्ध हैं। इन सब मामलों में भारतीय विदेश नीति की जो भूमिका होनी चाहिए वह नजर नहीं आती है ऐसी स्थितियाँ अकस्मात पैदा नहीं हुई है। इसके लिए सर्वोच्च नेतृत्व की उदासीनता और पेशेवर राजनयिकों की बिरादी में रीढ़ की हड्डी का अभाव जिम्मेदार है।

सन्दर्भ संकेत

1. बी.पी.दत्त– बदलती दुनिया में भारत की विदेश नीति
2. बी.एम.जैन–अन्तर्राष्ट्रीय संबंध
3. आर.एस.यादव– भारत की विदेश नीति एक विश्लेषण
4. विवेक एम.राज– भारतीय विदेश नीति

❑❑

अरे, इन दोऊन राह न पाई

डॉ0 ब्रजेश कुमार त्रिपाठी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर–राजनीति विभाग
हीरा0रा0दी0जी0 कालेज, सन्त कबीरनगर

गतिशील जीवन की चुनौतियाँ भी गतिशील ही रहती हैं। आज 21वीं शताब्दी मनुष्य के सम्मुख चुनौतियाँ कम नहीं हैं। मानव का अस्तित्व एवं मानवता दोनों के ऊपर संकट है। यह महज संयोग है कि दोनों संकटों की बानगी योरोप के सबसे समृद्ध देश फ्रांस की राजधानी पेरिस में दिखी। आइएस के आतंकी हमले ने आतंकवाद के अन्तर्राष्ट्रीय संकट होने की गम्भीरता का एहसास पूरी दुनिया को कराया वहीं पूरी दुनिया ने पेरिस में पर्यावरण सम्मेलन में प्रतिभाग कर अस्तित्व संकट की चिन्ता से जूझती रही।

उपर्युक्त दोनों संकट 14वीं, 15वीं शताब्दी यूरोप में घटे पुनर्जागरण की कोख से जन्मे 'आधुनिक मनुष्य' के संकट है : जिसने औद्योगिक विकास एवं आर्थिक मनुष्य की अवधारणा प्रस्तुत की है। इसी काल खण्ड में एशिया के महत्वपूर्ण भाग भारतीय उपमहाद्वीप में भी एक पुनर्जागरण की बयार भक्ति आन्दोलन के रूप में बही थी, जिसने भी 'मनुष्य' को परिभाषित करने का कार्य किया था। कबीर उसी पुनर्जागरण के महानायक है।

'भक्ति द्राविड़ि उपजी, लाये रामानन्द
परगर करी कबीर ने, सत्त दीप नवखण्ड।

कबीर मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन के निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा के कवि है। भक्ति का रहस्य से गहरा नाता है, इसलिये कबीर का जीवन वृत्त भी रहस्यों से परिपूरित है। वैयक्तिक साधना की भाव–भूमि पर कबीर का व्यक्तित्त्व विकसित होता है।

'हमन है इश्क मस्ताना हमन दुनिया से यारी क्या' इश्क की मस्ती में दुनियादारी को भूले कबीर को दुनियावी मामलों में याद किये बिना बात पूरी नहीं की जा सकती। ऐसा क्या है उनमें जो घर फूँक तमाशा देखने' वाले फक्कड़ होने के बाद भी घर बसाने के आदर्शों को जानने के लिये उनसे होकर गुजरना जरूरी हो जाता है। शायद यह द्वैत ही कबीर की व्याख्या एवं प्रासंगिकता को असीमित बना देता है। कबीर न भक्त की सीमा में बँधे दिखते है न गृहस्थ की सीमा में। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उनकी इसी मूल दृष्टि को पहचानकर उन्हें एक ऐसा भक्त कवि घोषित करते है जो अपनी साधना के मार्ग में आये हुए सामाजिक कुरीतियों, दुराचार, सामाजिक विषमता की खाई रूपी झाड़–झंखाड़ को साफ कर अपनी भक्ति का राजमार्ग विकसित करना चाहते हैं। कबीर का यह 'स्वच्छता अभियान' ही वह भाव–भूमि है जहाँ संसारी समाज सुधारक, संत सभी गोता लगाते है।

वर्तमान में बहस का केन्द्र सर्वाधिक प्रयुक्त (मीडिया, राजनीतियों, साहित्यकारों, आदि) शब्द असहिष्णुता एवं धर्मनिरपेक्षता जैसे शब्द है। 15वीं शताब्दी भारत का इतिहास खंगालने की अपेक्षा किये बिना यह स्वीकार्य मत है कि सम्पूर्ण भक्त–काव्य परम्परा भारतीय समाज में समन्वय, सहिष्णुता, सद्भाव एवं शांति स्थापना हेतु रची गयी थी। कबीर इस रचना धर्मिता के अद्भुत शिल्पी हैं। उनके शिल्प का कुछ भाग और भाव आज के समाज की दरकती दीवारों और इंटों के बीच लगाकर आज का शिल्प गढ़ने वाले क्या ऐसे समाज का निर्माण नहीं कर सकते जो शांति, सद्भाव एवं साहचर्य पर आधारित हो। कबीर और रामानन्द की परम्परा के वाहक आज क्यों समाज को 'रामजादा' एवं 'हरामजादा' में बाँटने पर आमादा है। यह समाज को सुलझाने के बजाय उलझाने का उपक्रम है जो समाज की विघटनकारी शक्तियों को संबल प्रदान कर रहा है। कबीर उलझाने के विपरीत सुलझाने में विश्वास

रखने वाले कवि है।

मैं कहता सुरझावन हारी।
तू राख्यो अरूझाई हे।

कबीर निर्विवाद व्यक्तित्व के धनी हैं। वह हिन्दू मुसलमान दोनों की बुराइयों पर कड़ी चोट करने वाले वक्ता है वह बख्शने वाले व्यक्ति नहीं है। शायद यही कारण रहा होगा जब कबीर की मृत्यु पर दोनों समुदाय उन पर हक जमाने की समान लालसा लिये आगे बढ़े थे। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में – कबीर दास का रास्ता उल्टा था और उन्हें सौभाग्यवश सुयोग भी अच्छा मिला था। जितने प्रकार के संस्कार पड़ने के रास्ते हैं वे प्रायः सभी उनके लिये बन्द थे। वे मुसलमान होकर भी असल में मुसलमान नहीं थे, हिन्दू होकर भी हिन्दू नहीं थे, साधु होकर भी साधु नहीं थे। वैष्णव होकर भी वैष्णव नहीं थे, योगी होकर भी योगी नहीं थे। कबीर दास ऐसे मिलने बिन्दु पर खड़े थे, जहाँ से एक ओर हिन्दुत्व निकल जाता है दूसरी ओर मुसलमानत्व, जहाँ एक ओर ज्ञान निकल जाता है। दूसरी ओर अशिक्षा, जहाँ एक ओर योग मार्ग निकल जाता है। दूसरी ओर भक्तिमार्ग उसी प्रशस्त्र चौराहे पर वे खड़े थे वे दोनों ओर देख सकते थे, और परस्पर विरूद्ध दिशा में गये मार्गों के गुण–दोष स्पष्ट दिखाई दे जाते थे।

गुण–दोष देखने की काबिलियत से कबीर ने दोनों समुदायों को आईना दिखाया। उनकी नजर में वाह्याचार चाहे हिन्दू समाज के रहे हों या मुस्लिम समाज के उनकी बेबाक आलोचना की। प्रगतिशीलता उनकी मुख्य धारा थी, उस मुख्यधारा में अवगाहन करने वाला समाज ही अग्रगामी होता है। उन्हें रूढ़ियाँ पसन्द नहीं है।

लीक पर वे ले जिनके चरण दुर्बल और हारे है।
हमको अपनी यात्रा से बने अनिर्मित पंथ प्यारे है।।

कबीर का यह स्वभाव उन्हें विद्रोही के साथ पथप्रदर्शक बना देता है।

''एक निरंजन अलह मेरा, हिन्दू, तुरूक दुंहू नहिं मेरा।
रॉखू बत न, मरहम जाना, तिस ही सुमिरू जो रहे निदॉना।।
पूजा करूं न नमाज गुजाएं, एक निरंकार हृदय नमस्कॉरू।
ना हज जाऊँ न तीरथ पूजा, एक पिछाष्यों तौ क्या दूजा,
कहै कबीर भरम सब भणा, एक निरंजन सूमन लगा।।

कबीर की बाणी का यह 'एक निरंजन' कोई और नहीं अपितु उनका प्रेम मानवता, एवं एक अखण्ड प्रकृति के प्रति विश्वास है। कबीर 'प्रेम साधना' के साधक है।

किसी विचारक का कथन भी पुष्ट प्रमाण है कि प्रेम साधना में कुछ भी गलत नहीं होता और सत्ता/शक्ति साधना में कुछ भी सही नहीं होता। दुर्योग यह है कि अनादि काल से अग्रगामी समाज सत्ता–शक्ति की साधना में लगा हुआ है जबकि इस मानव समाज का अभीप्स प्रेम साधना है। यह प्रेम साधना ही समाज में फैल रहे विखराव का एक मात्र समाधन है। यह कबीर पथ ही मानवता का पथ है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी : कबीर
2. पारसनाथ तिवारी : कबीर वाणी संग्रह, राधा प्रकाशन, इलाहाबाद
3. रामस्वरूप चुर्वेदी : हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
4. डॉ0 बच्चन सिंह : हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन
5. डॉ0 नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।

❑❑

53

उदर रोगों में पथ्य अपथ्य का महत्व

डॉ0 वीरेन्द्र कुमार टम्टा
एसोसिएट प्रोफेसर
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय परिसर, हरिद्वार

स्वास्थस्य स्वास्थ्य रक्षणमातुरस्य विकार प्रशमनं च (च0सू0अ030 / 24)

अर्थात् स्वस्थ पुरुष के स्वास्थ्य की रक्षा और रोगी के विकार की शान्ति। अतः चिकित्सा के अन्तर्गत उन सभी उपायों का समावेश हो जाता है, जिनसे रोग का उपशम हो, चिकित्सा के अन्तर्गत पथ्य का महत्व सर्वोत्कृष्ठ है क्योंकि इसके द्वारा वही पदार्थ द्रव्य आहार विधि में दिये जाते हैं जिससे दोष दुष्य के संग्रह को दूर किया जाता है औषधियाँ सभी पांच भौतिक हैं और आयुर्वेदिक का त्रिदोष का सिद्धान्त पंचमहाभूत पर आश्रित है। अतः चिकित्सकों को देश काल प्रकृति सार, मात्रा, भूमि आदि सभी को देखते हुए पथ्य का निर्धारण कर रोगी की चिकित्सा व्यवस्था करनी चाहिए।

पथ्यं पथोद्धनयेतं यद्यच्योक्तं मनसः प्रियम।
यच्चप्रियम पथ्यं च नियतं तत्रा लक्षयेत, (च0सू0 25)
मात्राकाल क्रियाभूमि देहदोषगुणान्तरम,
प्राप्य तन्तद्धि दृश्यन्ते ते ते भावास्तथातथा (च.सू. 25)

शरीर रूपी मार्ग का जो अपकार करने वाला नहीं है और जो मन को प्रिय हे वह पथ्य है इसके विपरीत जो अपकार करने वाला है और मन को अप्रिय है वह अपथ्य है पथ्यापथ्य निश्चित दिखायी नहीं देता है क्योंकि इसमें भी मात्रा काल क्रिया ;संस्कार आदि भूमि, देह और दोष की भिन्न भिन्न अवस्था को प्राप्त कर वह भाव वैसे वैसे दिखायी देता है जैसे घी पथ्य है परन्तु मात्राा में अध्कि अपथ्य है विरुद्ध द्रव्यों के साथ जैसे मधु और घी समपरिणाम में लेना अपथ्य है मेदो रोग में घी अपथ्य है अर्थात एक पथ्य घी ही मात्राा आदि की अवस्थाओं को प्राप्त होकर अपथ्य हो जाता है।

अर्थात– दोषादि (दोष, द्रव्य, बल, काल) आदि के विपरीत गुण होने के कारण एक साथ दही, दुग्ध की योजना रोगी की व्यथा को शान्त करती हुई परस्पर विरुद्ध नहीं होती है, रोग आदि के भेद से जो जो पथ्य वस्तुओं में अपथ्यता पैदा होती है उनके दूसरे भेद के कारण उनका विरोध भी नष्ट हो जाता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि संयोग विशेष से जिस प्रकार पथ्य चक्र अपथ्य होते देखे जाते हैं उसी प्रकार विरुद्ध द्रव्य भी अन्य संयोग से अपने विरोध को छोड़ देते हैं इसलिये अपथ्य वस्तु प्रिय होने से अभ्यासवश साम्य हो जाता है। लेकिन उसका भविष्य में अहित कर होना आवश्यम्भावी है इसलिये उसका त्याग करना चाहिए और पथ्य वस्तु भले ही असात्म्य हो उसका सेवन करना चाहिए।

आहार की कल्पना में स्वभाव, संस्कार एवं मात्रा आदि जो हेतु है उनको विशेष रूप से विचार करके हित भोजन को करना चाहिए क्योंकि शरीर आहार से बनता है। भय, लज्जा, कष्ट, लोभ, हर्ष तथा शोक के वश में होकर मूत्रादि के आधरणीय वेग को नहीं धारण करना चाहिए क्योंकि इन वेगों को धरण करना अनेक विपत्तियों का कारण है पथ्य आहार विहार का निरन्तर सेवन करने वाले पुरुषों के बल, उत्साह, इन्द्रिय तथा आयु पर अकाल में कालदंष्ट्रा (यमराज) का आक्रमण नहीं होता।

जो हितकर आहार–विहार तथा सदाचार का सेवन करते हैं इस लोक व परलोक का ध्यान रखते हैं। उनका

जीवन अमृत की भांति हितकर होता है। पथ्य के बिना औषधि लाभकारी नहीं होगी क्योंकि अपथ्य सेवन से हम लाख औषधि सेवन करें रोग से छुटकारा नहीं मिलेगा जब दोष द्रव्य एकत्र होते रहेंगे तो रोग पूर्णतः ठीक होना संभव नहीं है। अतः चिकित्सकों को चिकित्सा के साथ पथ्य पर भी समुचित दृष्टिकोण अपनाये तो रोगी के हित अहित आहार विहार से भी रोग को दूर करने में सक्ष्म होंगे और रोगी को पूर्ण लाभ भी प्राप्त होगा। इस प्रकार पथ्य अपथ्य की उपयोगिता को देखते हुए इस शोध लेख का चयन किया गया है।

अतिसार में पथ्य : उपवास करना, निद्रा, पुराने शालि चावल से बनी पिटठी, विलेपी खीलों का मांड, अरहर की दाल का रस, गौ/बकरी के दूध और दही से निकला हुआ मक्खन केले के पफल, शहद, जामुन का पफल, अदरक, सौंठ कमलकंद, कुटज की छाल, धनिया, जायपफल, बकायन, जीरा, हाउफबेर संपूर्ण प्रकार के कषाय द्रव्यों के रस, संपूर्ण प्रकार के अग्निसंदीपक और हल्के भोजन तथा पीने के द्रव्य देने चाहिए प्रियगु, मुलेठी, अनार के अंकुर इन सबको पीसकर दही में डालकर पतली यवागु अतिसार रोग में पथ्य है।

अतिसार रोग में अपथ्यः अभ्यंग, स्वेदन कर्म, सुरमा लगाना, अत्यन्त जल पीना, नहाना, मैथुन करना, रात्रि जागरण, धूम्रपान, नस्य मलमूत्राादि के वेगों को रोकना, गेंहू, उड़द, जौ, आदि अन्न बथुआ, मकोय, कन्द के साग, मीठा सहिजना, आम, सुपारी, पेठा, लोकी, बैर, भारी अन्न, और जल ताम्बुल, ईख, गुड़, मध, पोई, का साग अमलवेत लहसुन आंवला, दही का तोड़, नारियल सपूंर्ण प्रकार के पत्तों का साग, ककड़ी, अति नमक, अम्ल, क्रोध आदि अतिसार पीड़ित मनुष्यों के लिये अपथ्य या अहितकर होते हैं।

ग्रहणी रोग में पथ्य : वमन करना, उपवास, पुराने शालि चावल, शाठी चावल खीलों का मांड, मसूर, अरहर, गौ के दूध का निकला हुआ मक्खन, तिल का तैल, सुरा, शहद दोनों प्रकार के अनार, नई वैलगिरी, सिंघाड़ा चांगेरी, भांग, कैथ, कुटज छाल, जीरा, छाछ, जायपफल, जामुन, धनिया, बकायन सभी प्रकार के कसैले द्रव्य ग्रहणी रोग में पथ्य होता है।

ग्रहणी रोग में अपथ्य : रात्रि में जागरण, अत्यन्त जल पीना, स्नान करना, स्त्री संसर्ग करना, मलमूत्राादि के वेगों को रोकना, स्वेदन कर्म करना, धूम्रपान करना, परिश्रम करना, विपरीत भोजन करना, धूप सेवन करना, गेंहू, मटर, उड़द, जौ अदरक, लौबिया, पोई का शाक, बथुआ, मकोय, लौकी, लहसुन, सुपारी, कांज्जी, सौबीर, तुषोदक, दूध, गुड़, दही का तोड़, नारियल, बांस के अंकुर सब प्रकार के पत्तों के शाक, दूषित जल सब प्रकार दस्तावर द्रव्य, दाख, तथा लवण रसयुक्त द्रव्य, भारी अन्नपान सभी प्रकार पुआ–पूरी आदि ये सब द्रव्य ग्रहणी रोगी में अपथ्य होते हैं।

अर्श रोग में पथ्य : रक्तमोक्षण, क्षार कर्म, अग्नि कर्म, शस्त्रा कर्म, पुराने लाल शालि चावल, साठी चावल, जौ, कुलत्थ, परवल जिमीकन्द, लहसुन, चित्राक, बथुआ, जीवन्ती, जम्वीरी नींबू, इलायची, हरड़, मक्खन, मट्ठा, कंकोल, आंवला, बैगन का शाक, कांज्जी, विचौरा नींबू, कैथ, घी, दूध, भिलावा, सरसों का तैल, तुषोदक जो भी अन्न या पान वातनाशक तथा अग्निवर्धक है ये सभी अर्श रोगी के लिये हितकर होते हैं।

अर्श रोग में अपथ्य– तिल की खली, पिठी, उडद, करीर, बेल, लौकी, पोई का साग, पका हुआ आम, आलू, कब्ज करने वाला भारी पदार्थ, धूप में उठना बैठना, जल पीना, बास्ति कर्म, मलमूत्राादि के वेगों को रोकना, स्त्री ससंर्ग, घोड़े आदि की पीठ पर सवार होकर चलना, कष्टदायक आसन में बैठना प्रत्येक दोष के अनुसार दोषों को पैदा करने वाला अन्न अर्श रोग में अपथ्य होता है।

मन्दाग्नि रोग में पथ्य : कफ से उत्पन्न हुए रोग में वमन कराये, पितज रोग में हल्का विरेचन करावे, वातज रोग में स्वेदन कराते हैं तथा अवस्था के अनुसार जो कर्म जिस समय हितकारी हो उसे करना चाहिए। अनेक प्रकार के व्यायाम, अग्निवर्धक औषधियाँ, हल्का भोजन, पुराने शालि चावल, विलेपी खीलों का मांड, मूंग की यूष, बथुआ, कच्ची मूली, लहसुन, केले के कच्चे पफल, सहजन, परवल, बैगन, कागजी नींबू, करेला, नारंगी, अनार, जम्बीरी नींबू,

शहद, मक्खन, दही, घी, मठा, कटु तैल, हींग, अजवायन, काली मिर्च, मैथी का शाक, करेला, दाड़िमपफल, धनिया, जीरा, दही, गर्म जल, कटु–तिक्त रस प्रधान द्रव्य मन्दाग्नि में पथ्य होता है।

मन्दाग्नि रोग में अपथ्य– विरेचनकर्म, मल मूत्र और अधे वायु के वेगों के रोकना, भूख न होने पर भी भोजन करना, रात्रि में जागरण कभी ज्यादा कभी कम या असमय में खाना, अधिक जलपान पिटठी के बने पदार्थ, जामुन, सभी प्रकार के कन्द, दुग्ध शर्बत, दूषित जल, विरुद्ध तथा असात्म्य अन्न और जल, विष्टम्भी और भारी पदार्थ ये सब अग्निमांघ और अजीर्ण में त्याग देना चाहिए।

अरूचि रोग में पथ्य– दोषों के अनुसार बस्ति कर्म, विरेचन और वमन कराते हैं, कवल धरण करना चाहिए नीम करंज आदि तिक्त वृक्षों की टहनियों का दातुन करनी चाहिए, गेंहू, मूंग, लाल शालि चावल, साठी चावल, नई कच्ची मूली, बैगन, सहिजन, केला, अनार, परवल, आम, नींबू, कांजी, दही, मठा अदरक, खजूर ताड की गुठली की मज्जा, हरड, अजवायन, काली मिर्च, हींग अम्ल और तिक्त द्रव्य, स्नानादि से देह को शु(रखना ये सब अरूचि रोग में पथ्य होते हैं।

अरूचि रोग में अपथ्य– कास, डकार, भूख और आँसू इनके उपस्थित वेगों को रोकना, हृदय के लिये अहितकार अन्न के सेवन क्रोध, लोभ, भय, शोक करना, दुर्गन्धें का सूंघना, कुत्सित रूप वाले पदार्थों को देखना ये सब अरूचि रोग में अपथ्य होते हैं।

छर्दि रोग में पथ्य– विरेचन, वमन, लंघन, स्नान, शरीर की शुद्धि, लाज्जिमण्ड पुराने साठी, चावल, पुराने शालि चावल, मूंग, मटर, जौ, शहद, यूष, षाठव ;खटटा अचारद्ध राग ;खट्टी मीठी चटनीद्ध, धनिया, नारियल, जम्बीरी नींबू आंवला, आम, बैर, दाख, हरड, अनार, जायफल नेत्रावाला, नीम, अडूसा, मिश्री, सोंये, नागकेसर, मन को प्रसन्न करने वाले हितकारी भक्ष्य पदार्थ भोजन के बाद मुख पर ठंडे जल का परिषेक मन को प्रसन्न करने वाले सुगन्धित द्रव्यों का शरीर पर लेप फलों का सेवन आदि वमन (छर्दि) से पीड़ित रोगियों के लिये पथ्य होता है।

छर्दि रोग में अपथ्य– नस्य, बस्तिकर्म, स्वेदन कर्म, तैल, घृतादि स्नेहपान, दातुन करना, द्रव्य पदार्थों का सेवन, भय, उद्वेग, उष्ण अत्यन्त स्निग्ध, असात्म्य अहृद तथा विरुद्ध भोजन, प्रियंगु, कुन्दरू, कडवी तुरई, महुआ के फूल, इन्द्रायण, इलायची, सरसों, वमन करने वाली वस्तुएं छर्दि (वमन) रोग में अपथ्य होती हैं।

शूल रोग में पथ्य– वमन, स्वेदन, लंघन, गुदवर्ति, बस्तिकर्म, निद्रा, पाचन, द्रव्य, विरेचन, एक साल पुराने शालि चावल, जौ का मांड, गर्म दूध, परवल, सहिजन, करेला, बैंगन, पका हुआ आम, अंगूर, कैथ, काला नमक, चिरोंजी समुद्र नमक व सौंचर नमक, हींग, सौंठ, विड नमक, सौंफ, लहसुन, एरण्ड का तैल, गर्म जल, जम्बीरी नींबू का रस, कूठ हल्के क्षारों का चूर्ण सभी प्रकार के शूल रोग में पथ्य होता है।

शूल रोग में अपथ्य– विपरीत स्वभाव वाले अन्नपान का सेवन, रात्रि जागरण, विषम भोजन, रूक्ष तिक्त, कषाय रस के द्रव्यों, ठंडे और भारी पदार्थों का सेवन, दाल, नमक, तिल मलमूत्राादि के वेगों को रोकना आदि शूल रोग में अपथ्य होता है।

गुल्म रोग में पथ्य– स्नेहन कर्म, स्वेदन कर्म, विरेचन कर्म, बस्ति कर्म, लंघन करना, अभ्यंग स्नेहपान, पुराने लाल शालि चावल, कुलत्थी का यूष, गाय/बकरी का दूध, मुनक्का, फालसा, खजूर, अनार, आंवला, नारंगी, मठा, एरण्ड तैल, बिजौरा नींबू, सौंठ, मारिच, पीपली और जौ अन्न, स्निग्ध, उष्ण, पुष्टिकारक, लघु पाकी, अग्नि संदीपन और वातानुलोमक कारक ये सब गुल्म रोग में पथ्य होते हैं।

गुल्म रोग में अपथ्य– वातकारक, सभी प्रकार के अन्न, विरुद्ध अन्न पान, मछली या मांस, मूली, मधुर फल, सूखा साग, शमीधान्य ;उड़द, मटर आदि विबन्ध कारक और गुरूपाकी पदार्थ, अधेवायु, मलमूत्रा, श्रम श्वास और अश्रु के वेगों को रोकना आदि गुल्म रोग में अपथ्य होते हैं।

कृमि रोग में पथ्य– आस्थापन वस्ति, कायविरेचन, शिरोविरेचन, धूम्रपान, कपफनाशक द्रव्य, देह को शुद्ध करने

वाले द्रव्य, लाल शालि चावल, परवल का शाक, लहसुन, बथुआ, आक के पत्ते, सरसों, कच्चा केला, कटेरी के पफल, तिक्त, शहद, घी, हींग, क्षार, अजमोदा, खैर, कुटज छाल, नींबू रस, केला, अजवायन, देवदार, अगर, शीशम का रस या सार तिक्त, कषाय कटु रस वाले द्रव्य कृमि रोगियों के लिये पथ्य होते हैं।

कृमि रोग में अपथ्य – वमन करना या उपस्थित वमन के वेग को रोकना, विपरीत भोजन करना, दिन में सोना, द्रव वस्तु, पिटठी के पदार्थ, अजीर्ण करने वाले पदार्थों का सेवन करना, घी, शहद, दही, पत्तों का साग, दूध, खटे मीठे रस ये सब कृमि रोगियों के लिये अपथ्य होते हैं।

निष्कर्ष– इस प्रकार उपरोक्त तथ्यों से ज्ञात होता है कि आयुर्वेद ग्रंथों में विभिन्न रोगों के पथ्य और अपथ्य का विस्तृत वर्णन किया गया है यदि चिकित्सक सभी रोगों की चिकित्सा करते समय इस बात पर भी ध्यान दें कि अमुक रोग में कौन कौन से पथ्य अपथ्य का प्रयोग किया जाना है और रोगी को स्पष्ट रूप से पथ्य अपथ्य के बारे में बताया जाये और रोगी भी अपने खान पान में चिकित्सक द्वारा बताये गये पथ्य अपथ्य का पालन करे तो रोगी को किसी भी रोग से शीघ्र स्वास्थ्य लाभ हो सकता है और औषधि पर खर्च किये जाने वाले व्यय को घटाया जा सकता है।

संदर्भित ग्रंथों की सूची

- चंरक संहिता सूत्रा स्थान – लेखक–रविदत्त त्रिपाठी
- चरक संहिता – चिकित्सा स्थान लेखक रविदत्त त्रिपाठी
- सुश्रुत संहिता – चिकित्सा स्थान लेखक प्रो0 अनन्तराम शर्मा
- अष्ट्रांग "दय – लेखक लाल चन्द्र वैद्य
- अष्ट्रांग संग्रह – लेखक वैद्य श्री गोवर्ध्न शर्मा
- भैषज्य रत्नावली – लेखक अम्बिकादत्त शास्त्री
- भाव प्रकाश – लेखक डॉ0 के0सी चुनेकर

❑❑

इटावा जनपद की भौगोलिक पृष्ठभूमि

डॉ0 बिमल कान्त द्विवेदी
विभागाध्यक्ष, भूगोल विभाग
श्री दर्शन महाविद्यालय, औरैया, उ.प्र.

इटावा उत्तर प्रदेश का महत्वपूर्ण जनपद जो कानपुर मण्डल के अन्तर्गत निम्न गंगा यमुना दोआब के ऊपरी भाग1 में स्थालाकृतिक मानचित्र 54छ के अनुसार 26025'18'' से 27001' उत्तरी अक्षांश एवं 78045' से 79019' पूर्वी देशान्तर के मध्य 2478.9 वर्ग किमी0 क्षेत्र में विस्तृत है। यह पूर्व में औरैया, उत्तर में कन्नौज, मैनपुरी, पश्चिम में आगरा फिरोजाबाद एवं भिण्ड (म0प्र0) एवं जालौन से घिरा हुआ है।

इटावा जनपद उत्तर से दक्षिण तक 65 कि0मी0 लम्बा है तथा पूर्व से पश्चिम का विस्तार 60 कि0मी0 है। प्रशासनिक दृष्टि से जनपद इटावा की छः तहसीलें क्रमशः इटावा, जसवंतनगर, सैफई, भरथना, ताखा चकरनगर हैं। जनपद इटावा में आठ विकासखण्ड (जसवन्तनगर, बसरेहर, बढ़पुरा, ताखा, भरथना, महेवा, चकरनगर एवं सैफई) हैं। 75 न्याय पंचायत हैं तथा 6 नगरीय क्षेत्र है जिसमें से इटावा सबसे बड़ा नगर है।

इटावा नगर राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या 2 पर स्थित है जो कि प्रधानमंत्री की स्वर्णिम चतुर्भुज योजना में सम्मिलित है। इटावा जंक्शन से भिण्ड, वाह, आगरा, मैनपुरी के लिए रेलमार्ग जाते है तथा दिल्ली हावड़ा रेलमार्ग इस नगर के मध्य से होकर गुजरता है।

उच्चावच एवं अपवाह – अध्ययन क्षेत्र विभिन्न उच्चावचीय विषमताओं से भरा पड़ा है। इन विषमताओं के लिए अध्ययन क्षेत्र में प्रवाहित होने वाली यमुना, चम्बल, सेंगर, क्वांरी, रिन्द, अहनैया एवं पुरहा नदियां उत्तरदायी हैं।[2] अध्ययन क्षेत्र में सबसे निचला अधिक ऊँचाई एवं नीचाई क्रमशः 166 एवं 119 मी0 है। अध्ययन क्षेत्र का सामान्य ढाल उत्तर पश्चिम से दक्षिण पूर्व की ओर है। यमुना, चम्बल एवं क्वांरी नदियों ने बडे पैमाने पर ऊबड़–खाबड बीहड़ क्षेत्र को विकसित किया है। जहाँ धरातलीय विषमता दृष्टिगत होती है।

धरातलीय स्वरूप अपवाह तंत्र एवं मिट्टी के आधार पर अध्ययन क्षेत्र को चार प्रमुख भागों में विभक्त किया जा सकता है –

(1) सेंगर नदी का उत्तरी भाग।

(2) सेंगर यमुना दोआब।

(3) यमुना नदी का उत्तरी भाग।

(4) चम्बल एवं यमुना का बीहड़।

सेंगर नदी का उत्तरी भाग – सेंगर नदी के उत्तरी तथा उत्तर पूर्व में यह पेटी सम्पूर्ण क्षेत्रफल के 32 प्रतिशत क्षेत्र में फैली हुई है। 'पचार' के नाम से अभिहित इस भावाकृति विभाग का धरातल कुछ अवसरीय कटकों तथा सामान्य धाराओं द्वारा विखण्डित हुआ है। यह विस्तृत उपजाऊ मैदान की औसत ऊंचाई 144 मी0 से 166 मी0 के मध्य है तथा इसका ढ़ाल पश्चिम से पूर्व की ओर है। इस समतल भू–भाग को पुरहा, अहनैया, सिरसा एवं सेंगर नदियों ने यत्र तत्र विखण्डिल किया है। कहीं–कहीं पर ऊसर भूमि का विस्तार एवं 'झाबर' भूमि परिलक्षित होती है।

सेंगर यमुना दोआब – यह एक समतल मैदानी भाग यमुना तथा सेंगर नदियों के मध्य है। इस भू आकृतिक भाग को स्थानीय भाषा में 'घार' के नाम से पुकारते हैं। इस भाग की समुद्र तल से ऊँचाई 119 मी0 से 156.6 मी0 के मध्य एवं ढाल पश्चिम से पूर्व की ओर है इस भाग में ऊसर और झाबर भूमि का अभाव है, कुछ भागों में रेह एवं 'भूड़' के टीले अथवा 'पूठ' हैं।

यमुना नदी का उत्तरी भाग – यह भू आकृतिक भाग अध्ययन क्षेत्र के दक्षिणी एवं पश्चिमी भाग में यमुना एवं चम्बल नदियों के साथ एक लम्बी एवं सकरी पट्टी के रूप में विस्तृत है। इस कछारी भाग को स्थानीय भाषा में 'कुरका' कहते हैं। वर्षा के दिनों में जल प्लावन इस भाग की प्रमुख विशेषता है यह भाग असमतल है तथा इस भू–भाग की समुद्र तल से ऊंचाई 119 मी0 से 135 मी0 के मध्य है कहीं–कहीं ऊँचे टीले हैं तो कहीं–कहीं गहरे खार भी हैं। इस क्षेत्र में गाँव अधिकतर कछारों एवं टीलों पर बसे हैं।

चम्बल एवं यमुना का बीहड़ – इस भू आकृतिक भाग के अन्तर्गत यमुना, चम्बल और क्वांरी नदियों का समीपवर्ती भाग सम्मिलित है। कृषि की दृष्टि से यह भाग अनुपयुक्त है। इस भाग को स्थानीय स्तर पर 'जमुनापार' कहा जाता है। यह इटावा क्षेत्र के दक्षिणी पश्चिमी भाग में विस्तृत है। यमुना नदी के उत्तरी किनारे पर इस बीहड़ क्षेत्र की पूर्व ओर चौड़ाई बढ़ती जाती है। यमुना चम्बल दोआब में जल प्रवाह अनियंत्रित है। इस कटी–फटी भूमि वाले भू–भाग की समुद्र से ऊँचाई 137 मी0 से 15 मी0 तक है इस भाग का ढाल पश्चिम से पूर्व की ओर है। चम्बल और क्वांरी नदियों के मध्य तथा क्वांरी नदी के दक्षिण पश्चिम में जंगल एवं बीहड़ की भयावयता के दर्शन होते हैं। इस बीहड़ क्षेत्र में कांटेदार झाड़ियां और जंगली बबूल की बहुलता है। कंकड़ मिश्रित मिट्टी एवं निम्न जलस्तर इस भूआकृतिक भाग की विशेशता है।[3]

अध्ययन क्षेत्र में जलप्रवाह तंत्र के अन्तर्गत आने वाली नदियों, झीलों, धाराओं एवं नालों को सम्मिलित किया जाता है।

अध्ययन क्षेत्र की अन्य प्रमुख नदियों ने क्वांरी सेंगर, अहनैया, पुरहा, सिरसा, रिन्द नदियों के नाम महत्वपूर्ण है। उच्चावच को प्रदर्शित किया गया है।

यमुना नदी क्रम – यमुना अध्ययन क्षेत्र की सबसे बड़ी नदी है जो अध्ययन क्षेत्र में उत्तर पश्चिम में बाउथ ग्राम के समीप जनपद में प्रवेश करती है। विसर्पाकार बहती हुई भरेह के पास यमुना नदी में चम्बल आकर मिलती है तथा औरैया एवं जनपद जालौन की सीमा बनती है। इसकी सहायक नदी क्वांरी है यमुना 'बीहड़ो' के लिए प्रसिद्ध है।

चम्बल नदी क्रम – अध्ययन क्षेत्र के दक्षिण पश्चिमी भाग में चम्बल नदी इस क्षेत्र में मुरांग ग्राम के पास जनपद की सीमा में प्रवेश करती है। यमुना की सबसे बड़ी सहायक नदी है। इसका मार्ग काफी टेढ़ा–मेढ़ा है। जनपद इटावा के दक्षिण पश्चिम में 35.2 कि0मी0 प्रवाहित होकर भरेह के निकट यमुना में मिल जाती है। इस नदी को 'चर्मवती' के नाम से भी पुकारते थे। इसके द्वारा निर्मित 'बीहड़' डाकुओं की शरणगाह के नाम से जाने जाते हैं।

क्वांरी नदी क्रम – चम्बल के दक्षिण पश्चिम में क्वारी नदी प्रवाहित होती है जो जनपद में 12.5 कि0मी0 प्रवाहित होकर जनपद की दक्षिणी सीमा का निर्धारण करती है तथा ग्राम ततारपुर के पास यमुना में मिलती है। नदी के समीपवर्ती भागों में बीहड़ का विकास हुआ है।

सेंगर नदी क्रम – मथुरा की नौह झील से निःसृत सेंगर नदी धनुआ ग्राम के समीप इटावा जनपद में प्रवेश

करती है तथा यमुना नदी के सामान्तर प्रवाहित होती हुई जनपद कानपुर देहात में यमुना में मिल जाती है। इसकी प्रमुख सहायक नदी सिरसा इटावा जनपद से 6.4 कि0मी0 उत्तर में अमृतसर ग्राम के समीप सेंगर में विलीन हो जाती है इसके अतिरिक्त अध्ययन क्षेत्र की अन्य प्रमुख नदियां पुरहा, अहनैया तथा रिन्द हैं। ये तीनों मौसमी नदियाँ हैं।

इसके अतिरिक्त अध्ययन क्षेत्र में कुछ स्थानीय जलाशय भी मिलते हैं इनमें से कुछ झील के रूप में हैं। जनपद में बरालोकरपुर, रमाइन, सरसई नावर, कुनैठा, गौहानी, कुदरैल, नौधना तथा ऊसराहार की झीलें मुख्य हैं।

जलवायु – जलवायु भौतिक पर्यावरण का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। भूतल पर निवास करने वाले मानव के जीवन पर भौतिक पर्यावरण के जिन अंगों का प्रभाव पड़ता है। उनमें जलवायु का महत्व सर्वाधिक एवं सर्वोपरि है। जलवायु मानव को प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है।

तापमान एवं वर्षा – इस जनपद में अधिकतम एवं न्यूनतम तापमान क्रमशः 45.2 से0ग्रे0 तथा 1.8 से0ग्रे0 (2011) रहता है ग्रीश्मकाल में 'लू' एवं शीतकाल में 'शीतलहर' भी चलती है जिससे जन–जीवन प्रभावित होता है। वर्षा यहाँ 292 मिमी. (2012) होती है जो यहाँ के कृषि कार्यों एवं जलस्तर को बढ़ाने में सहायक के रूप में कार्य करती है।

प्राकृतिक वनस्पति एवं मृदा – प्राकृतिक वनस्पति से अभिप्राय भौतिक दशाओं अथवा परिस्थितियों में स्वतः उगने वाली वनस्पति से है जिसमें पेड़–पौधे झाडियाँ घास आदि सम्मिलित होते हैं। प्राचीन काल में हमारे देश का अधिकांश भाग प्राकृतिक वनस्पति से आच्छादित था। कालान्तर में बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण कृषि भूमि को प्राप्त करने के लिए वनों का निर्दयतापूर्वक विनाश किया गया जिसके फलस्वरूप कृषि क्षेत्रों के मध्य यत्र–तत्र फैले हुए मात्र वन वृक्ष रह गये हैं।

तालिका 1 जनपद इटावा वन क्षेत्र (हेक्टेयर में)

क्रम	विकासखण्ड का नाम	कुल प्रतिवेदित क्षेत्र (हे0 में)	वन क्षेत्र (हे0में)	वन क्षेत्र (प्रतिशत में)	कुल वन क्षेत्र का प्रतिशत
1.	जसवन्त नगर	25525	1290	0.55	4.34
2.	बसरेहर	27154	2063	0.88	6.94
3.	बढपुरा	38594	8171	3.47	27.51
4.	ताखा	27461	1751	0.74	5.89
5.	भरथना	25909	1527	0.65	5.14
6.	महेवा	32216	2446	1.04	8.23
7.	चकरनगर	37727	11873	5.05	29.91
8.	सैफई	19219	533	0.22	1.79
	ग्रामीण योग	233805	29654	12.63	99.63
	नगरीय योग	1426	49	–	0.17
	जनपदीय योग	235231	29703	–	100.00

इटावा नगर एवं उसके आसपास के क्षेत्रों में मानसूनी जलवायु में पाये जाने वाले वनों की अधिकता है। यहाँ

नीम, आम, बबूल, पीपल, बरगद, शीशम, गोल्डमोहर, यूकेलिप्टस, वृक्षों की प्रधानता है। इटावा एवं उसके आसपास के क्षेत्रों में मुख्य तौर पर यमुना एवं सेंगर नदी के तटवर्ती भागों में विलायती बबूल के वृक्षों की प्रधानता पायी जाती है। इटावा नगर के समीप 'फिशर वन' है। जहां पर उ0प्र0 के मुख्यमंत्री जी का ड्रीम प्रोजेक्ट 'लाइन सफारी' विकसित किया जा रहा है।

मिट्टी मनुष्य, पशुओं व पेड़ पौधों के लिए आधारभूत संसाधन है। सम्पूर्ण जैव संसााधन इसी पर टिका हुआ है। पशु जीवन पौधों पर आधारित है। पौधे मिट्टी पर आधारित हैं। अतः मानव जाति का कल्याण मिट्टियों से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है।

जनपद की मिट्टियों को निक्षेप के आधार पर दो भागों में रखा जा सकता है—

(1) पुरातन कांप या बांगर। (2) नवीन कांप या खादर।

जनपद की मिट्टियों का वैज्ञानिक4 अध्ययन कानपुर में स्थित चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वद्यािलय में 'मृदा सर्वेक्षण संगठन' के द्वारा किया गया है। उनके द्वारा किये गये वर्गीकरण को ही यहाँ दिया गया है।

नवीन कांप – ये मिट्टियाँ हल्के धूसर से हल्के भूरे धूसर रंग की है साथ ही ये साधारण क्षारीय हैं। इस मिट्टी में गहराई के साथ जैव तत्वों का वितरण असमान है। यह मिट्टी इटावा जनपद के दक्षिणी भाग में यमुना एवं चम्बल नदी के तटवर्ती भागों में पायी जाती है। ये मिट्टियां युवा और फ्लूवियल लक्षण वाली हैं।

सेंगर फ्लेट्स लवणीय – इस मिट्टी का रंग धूसर से गहरे धूसर का है। ये साधारण से उच्च ओर अति उच्च लवणीय हैं जिनमें घुलनशील लवण पाये जाते हैं। इस मिट्टी मे ंखारापन अधिक पाया जाता है इसलिए इसे ऊसर मिट्टी कहते हैं। ये मिट्टियां इटावा जनपद के उत्तरी भाग में सेंगर, अहनैया एवं पुरहा के मध्यवर्ती भाग में संकरी पेटी के रूप में पायी जाती हैं।

सेंगर फ्लेट्स – ये मिट्टियाँ धूसर से भस्म धूसर रंग वाली हैं जबकि अवमृदायें, मृत्तिका दुमट से लेकर पांशु मृत्तिका है। ये निचले स्तरों पर साधारण चूनायुक्त होती हैं। ये मिट्टियाँ अधिक उपजाऊ हैं। ये मिट्टियाँ इटावा नगर के उत्तरी पश्चिमी भाग में सेंगर अहनैया एवं सेंगर पुरहा के मध्य भाग में स्थित है।

यमुना उच्च भूमि बलुई – इस वर्ग की बलुई दुमट मिट्टियाँ अधिक भूरे रंग तथा अवमृदा भूरे पीले से पीले भूरे रंग की होती है। इनकी गहराई में चूना पाया जाता है तथा ये मिट्टियाँ पारगम्य होने के कारण यहाँ जलस्तर नीचा है। इस कारण यहाँ पानी की कमी पायी जाती है। यह मिट्टियाँ इटावा नगर के दक्षिणी भाग में पायी जाती है।

यमुना उच्च भूमि लोमी – ये मिट्टियाँ धूसर भूरे से लेकर पीली भूरी हैं। ये मृदायें उदासीन से लेकर साधारण क्षारीय हैं तथा ये साधारण पारगम्य होने के साथ–साथ उर्वर भी हैं। ये मिट्टियाँ इटावा नगर के उत्तरी भाग में पायी जाती हैं।

अध्ययन क्षेत्र की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि –

जनसंख्या – जनसंख्या एवं संसाधान में अन्योन्याश्रित तथा पूरक सम्बन्ध होता है। किसी क्षेत्र में संसाधनों की उपलब्धता पर ही वहाँ की जनसंख्या द्वारा की गयी व्यावसायिक संरचना से आर्थिक विकास तथा जीवन स्तर निर्धारित होता है। संसाधन जनसंख्या को आकर्शित करते हैं और जनसंख्या द्वारा संसाधनों की भविष्यता, संसाधनता तथा नये संसाधनों में अभिवृद्धि होती है। संसाधन विकास तथा उपयोग की सम्पूर्ण प्रक्रिया में मानव

सार्वधिक गतिशील, महत्वपूर्ण मूल्यवान एवं विकास का अंग है।[5] जनपद की जनसंख्या को निम्न तालिका से जान सकते हैं।

तालिका 2 इटावा जनपद में जनसंख्या

क्रम	वर्ष	जनसंख्या
1	1961	6362261
2	1971	755697
3	1981	90917
4	1991	1124620
5	2001	1338871
6	2011	1581810

साक्षरता – भौगोलिक एवं सामाजिक आर्थिक दृष्टि से साक्षरता विकास का बहुआयामी सूचक भी है अध्ययन क्षेत्र में साक्षरता की स्थिति को निम्न तालिका से जान सकते हैं।

तालिका 3 इटावा जनपद की साक्षर जनसंख्या (1961–2011)

क्र0सं0	वर्ष	साक्षरता प्रतिशत में		
		पुरुष	स्त्री	कुल
1	1961	33.86	10.04	22.94
2	1971	38.98	16.60	28.80
3	1981	48.60	23.50	37.29
4	1991	66.61	39.17	54.32
5	2001	80.14	59.13	70.50
6	2011	86.06	69.61	78.41

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि जनपद में साक्षरता दर निरन्तर बढ़ने की प्रवृत्ति को दर्शा रही है। यह प्रगति सन् 1981 ई. से सन् 1991 ई. के मध्य अधिक रही है। यहाँ का लिंगानुपात 370 है तथा जन घनत्व 684 व्यक्ति प्रतिवर्ग किमी0 है।

कृषि – कृषि इटावा जनपद की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार है यहाँ जीवन निर्वाह कृषि (अन्नोत्पादक) है क्योंकि मुख्यतः खाद्यान्नों को उगाया जाता है यहाँ पर 61.41 (2013) प्रतिशत भूमि पर कृषि कार्य सम्पादित किये जा रहे हैं। जनपद इटावा के दक्षिणी भाग को छोड़कर शेष भाग में कृषि योग्य भूमि भी अधिक है। फार्म कृषि अथवा कृषि पर आधारित अन्य संलग्न कार्यों की सर्वथा कमी है।

उद्योग – आधुनिक भारत औद्योगीकरण के लिए लगातार प्रयत्नशील है। नियोजन की दृष्टि से देश के ग्रामीण प्रदेशों में कृषि के विकास के साथ औद्योगीकरण के प्रयास करना अति आवश्यक है, क्योंकि किसी भी क्षेत्र

में तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या का भरण पोषण केवल कृषि और सम्बन्धित कार्यों से सम्भव नहीं हैं। औद्योगीकरण का मुख्य उद्देश्य अधिकतम् लोगों को रोजगार के अवसर प्रदान करना तथा आर्थिक जीवन स्तर में प्रगति से सम्बन्धित है।

औद्योगिक विकास का सम्बन्ध क्षेत्र में पाये जाने वाले संसाधनों, यातायात की सुविधाओं, जलपूर्ति बाजार केन्द्र, श्रमिक उपलब्धता जीवन और सामाजिक सुविधाओं जैसे– बैंक आदि से है उद्योग के स्वरूप के अध्ययन में औद्योगिक गठन का विश्लेषण तभी सार्थक होगा, जबकि उद्योगों को प्रभावित करने वाले सम्बन्धित पक्षों का भी अवलोकन किया जाये।

इटावा नगर में पंजीकृत कारखानों की संख्या वर्ष 1998–1999 में 74 थी जो वर्ष 1999–2000 में 75 एवं वर्ष 2001 में 78 हो गई है लेकिन कार्यरत् कर्मचारियों की संख्या कम है। कार्यरत् कर्मचारियों की संख्या 1998–1999 में 19 थी जो वर्ष 1999–2000 में 20 हो गई एवं वर्ष 2000–2001 में घटकर 18 रह गई। इसी औसत से कारखानों में कार्यरत् कर्मचारियों की संख्या में वर्ष 1998–99 में एवं वर्ष 2000–2001 में कमी आयी है। वर्ष 1998–99 में औसत दैनिक कार्यरत श्रमिक एवं कर्मचारियों की संख्या 616 थी। जो वर्ष 1999–2000 में 390 एवं वर्ष 2000–2001 में घटकर 368 रह गयी है। इटावा नगर में औद्योगिक कारखानों में उत्पादन का मूल्य वर्ष 1998–99 में 450056 था एवं वर्ष 1999–2000 में 485894 एवं वर्ष 2000–2001 में 504008 हो गया।

सन्दर्भ संकेत

1. सिंह, उजागर एवं पाण्डेय, जे0एन (1970) निचला गंगा–यमुना दोआब एक प्रादेशिक अध्ययन, उत्तर भारत भूगोल पत्रिका, अंक 6 संख्या 2 दिस0, पृष्ठ 67।
2. राजपूत, प्रेम प्रकाश (2001) ग्रामीण क्षेत्रों में ऊर्जा उपयोगः संकट एव संसाधन, बसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर, पृष्ठ 21।
3. Shukla, P.N. (1990) – Yamuna and Chambal Rivers Eroded land and its Reclamation in Etawah (U.P.)
4. Singh, U.B. (1991) Agricultural Development and Planning for Etawah District Zone-V (U.P.) Chandra Sekhar Azad University of Agriculture and Technology, Kanpur p. 15, 16.
5. दुबे, के0के0 सिंह एम0पी0 – जनसंख्या भूगोल, रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

❑❑

55

समकालीन समस्याएँ एवं आधुनिक संस्कृत साहित्य

डॉ0 अनुभा बाजपेयी
प्रवक्ता–संस्कृत
भारतीय विद्या भवन गर्ल्स डिग्री कॉलेज, गोमती नगर, लखनऊ

संस्कृत भाषा संसार की सभी भाषाओं में सर्वश्रेष्ठ है। हमारा संस्कृत साहित्य समग्र सभ्य साहित्यों से प्राचीनता, व्यापकता तथा अभिरामता में बढ़कर है। यदि इस भूमि–वलय पर कोई भी भाषा सबसे प्राचीन होने की अधिकारिणी है तो वह हमारी संस्कृत भाषा ही है। हमारी संस्कृत भाषा परम महनीया, विद्वज्जनमाननीया तथा सौभाग्यशोभनीया है। 'साहित्य' शब्द और अर्थ के मंजुल सामंजस्य का सूचक है। इसकी व्युत्पत्ति हैं 'सहितयोः भावः साहित्यम्' अर्थात् सहित शब्द तथा अर्थ का भाव। इस मौलिक अर्थ में इस शब्द का प्रयोग हमारे काव्य–ग्रन्थों तथा अलङ्कार–ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर दीख पड़ता है। महाकवि भर्तृहरि ने संगीत तथा साहित्य से विहीन पुरुष को जब पशु कहा[1] तब उनका अभिप्राय 'साहित्य' के उन कोमल काव्यों से है जिसमें शब्द और अर्थ का अनुरूप सन्निवेश है। राजशेखर ने साहित्य–विद्या को 'पंचमी विद्या' कहा है, जो मुख्य चार विद्याओं–पुराण, न्याय(दर्शन), मीमांसा,धर्मशास्त्र–का सारभूत है।[2] बिल्हण ने अपने विक्रमाङ्कदेवचरित में काव्यरूपी अमृत को साहित्य–समुद्र के मन्थन से उत्पन्न होने वाला बतलाया है।[3] संस्कृत साहित्य की महत्ता को प्रदर्शित करने वाले अनेक कारण विद्यमान हैं। सर्वप्रथम प्रचीनता की दृष्टि में यह साहित्य बेजोड़ है। इतना प्राचीन साहित्य कहीं भी उपलब्ध नहीं होता। संसार की समस्त परिष्कृत भाषाओं में संस्कृत ही प्राचीनतम है, इस विषय में विद्वानों में किसी प्रकार का मतभेद नहीं। संस्कृत शब्द 'सम्' पूर्वक 'कृ' धातु से बना हुआ है, जिसका मौलिक अर्थ है– संस्कार की गई भाषा।

प्राचीनता, अविच्छिन्नता, व्यापकता, धार्मिक तथा सभ्यता की दृष्टि से परीक्षा करने पर हमारा संस्कृत साहित्य नितान्त महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है। जिस साहित्य में कालिदास जैसे कमनीय कविता लिखने वाले कवि हुए, भवभूति जैसे नाटककार हुए, जिनकी वषवर्तिनी बनकर सरस्वती ने अपूर्व लास्य दिखलाया, बाणभट्ट जैसे गद्य लेखक हुए, जो अपने सरस–मसृण काव्य से त्रिलोकसुन्दरी कादम्बरी की कमनीय कथा सुना–सुनाकर श्रोताओं को मत्त बनाया, जयदेव जैसे गीतिकाव्य के लेखक विद्यमान थे, जिन्होंने अपनी मधुर कोमलकान्त पदावली के द्वारा विदग्धों के चित्त में मधुरस की वर्षा की। श्री हर्ष जैसे पण्डित कवि हुए जिन्होंने काव्य और दर्शन का अपूर्व सम्मिलन प्रस्तुत किया।

संस्कृत साहित्य की भिन्न–भिन्न विद्याओं का संक्षिप्त इतिहास तथा उनके उत्थान और पतन का, विकास और ह्रास का, उत्कर्ष और अपकर्ष का उदाहरण हमारे समक्ष है। इस इतिहास की कालावधि प्रायः पंचदश शताब्दी तक मुख्यतया है, परन्तु उक्त विवरण से यह अनुमान कर लेना कि संस्कृत साहित्य का यहीं अवसान हो जाता है नितान्त भ्रान्त है। यह मानना भारी भूल होगी कि संस्कृत साहित्य की धारा वहीं आकर सूख जाती है और इसलिए आगे उसमें ग्रन्थों का प्रणयन नहीं हुआ। तथ्य तो यह है कि संस्कृत की साहित्यधारा वैदिक युग से लेकर आज विंशति शताब्दी तक एक अविभाज्य रूप से प्रवाहित होती आई है। अवश्य ही परिस्थितियों की विलक्षणता के कारण कभी वह मन्द गति से और कभी वह तीव्र वेग से प्रवाहित होती रही है। मध्ययुग के राजपूत राजाओं ने संस्कृत के कवियों को आश्रय प्रदान कर उनके साहित्य को समृद्ध बनाने का गौरव प्राप्त किया। मुसलमान बादशाहों ने भी हिन्दू–प्रजा में न्यायप्रियता की कीर्ति फैलाने के लिए संस्कृत के कवियों को आश्रय प्रदान किया। अंग्रेजी राज्य की स्थापना के बाद भी संस्कृत के लेखक अपनी लेखनी के द्वारा देववाणी का भण्डार भरते आए हैं। इस काल में भारतीय संस्कृति के संरक्षण तथा परिवृहण की पताका संस्कृत के कवियों तथा लेखकों के साहित्यिक प्रयत्नों

से ही फहराती रही।

सीताचरितम् महाकाव्य के लेखक 'पं0 रेवा प्रसाद द्विवेदी' जी आधुनिक संस्कृत साहित्य के कवियों में प्रमुख माने जाते हैं। सीताचरितम् में सीता के महान् चरित्र को लिखकर इन्होंने महाकाव्य के क्षेत्र में एक रिक्त स्थान की पूर्ति की है। इन्होंने बहुत–सी पुस्तकें लिखी हैं जिनमें काव्य नाटक और काव्यशास्त्रादि हैं। सीताचरितम् इनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है जिसमें लगभग 700 श्लोक हैं। सीताचरितम् में कवि ने सीता के अलौकिक, अद्वितीय, परम पवित्र चरित्र को सर्वोच्च कोटि पर पहुँचा दिया है। यह कवि की कला और उसकी काव्यक्षमता का परिचायक है। कवि रेवा प्रसाद द्विवेदी गम्भीर पाण्डित्य के धनी थे। फिर भी इनकी कविता में कृत्रिमता का अभाव है। उन्होंने अपने काव्य में पाण्डित्य प्रदर्शन नहीं किया है। यद्यपि वे पुराण, व्याकरण, दर्शन और काव्यशास्त्र के अच्छे विद्वान् हैं। उनकी कविता में कला और भाव दोनों का समन्वय है। रस, अलङ्कार, गुण, रीति और छन्द सभी सुन्दरता के साथ प्रस्तुत हुए हैं। यद्यपि उन्होंने पाण्डित्य प्रदर्शन से अपने काव्य को बचाया है। गुणों की दृष्टि से उनके काव्य के श्लोक माधुर्य गुण से ओत–प्रोत हैं। कवि ने कोमल कारुणिक भावों को अत्यन्त सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है उनकी भावव्य०जना से सभी पाठक प्रभावित और अभिभूत हो जाते हैं। सीताचरितम् में इसी भाव को बड़ी मार्मिकता से व्यक्त किया गया है।[4]

लेखक ने परित्यक्ता सीता के नेत्रों से शोकाश्रु के बहने का प्रभावपूर्ण वर्णन किया है,बहुत अधिक मार्मिक प्रसङ्गों में परित्यक्ता सीता का शोक सागर और उसमें डूबी हुई सीता की उस समय की प्रसव वेदना अत्यत करुणामयी परिस्थिति की प्रस्तुति की। डॉ0 रेवा प्रसाद द्विवेदी की भाषा अत्यन्त सरल सहज एवं प्रसाद गुण सम्पन्न है। सर्वत्र स्वाभाविक ढंग से वर्णन हुए हैं कहीं कृत्रिम भाषा का प्रयोग नहीं है। प्रसाद गुण–सम्पन्न वैदर्भी शैली सर्वत्र विराजमान है।[5] कवि का भाषा पर पूर्ण अधिकार है और सर्वत्र मनोनुकूल भाषा एवं शैली का प्रयोग कर लेते हैं। उनकी भाषा में व्य०जनाशक्ति का भी प्रयोग है।

वाग्वधूटी काव्य के रचयिता डॉ0 राजेन्द्र मिश्र आधुनिक कवियों में बहुत प्रसिद्ध नाम है। वे संस्कृत गीतिकाव्य की अनेक विधाओं के लेखक हैं और उन्होंने संस्कृत काव्य को लोक जीवन से जोड़ते हुए विविध शैलियों में उदारतापूर्वक रचनायें की हैं। परम्परावादी न होकर वे एक स्वतन्त्र स्वाभाविक रचनाकार हैं। अनेक कृतियों और ग्रन्थों के ये लेखक हैं और विभिन्न संस्थाओं से पुरस्कृत एवं सम्मानित भी हैं। नवीन विभिन्न शैलियों के सफल रचनाकार हैं। अत्यन्त सरस भाषा, सरल और स्वाभाविक भाषा, सरस संगीतमय पंक्तियाँ इनकी कृतियों की विशेषता रही है। वाग्वधूटी के गीत राष्ट्रप्रेम, प्रकृति–चित्रण लोकचित्रण तथा सामान्य मनोभावों के साथ ही साथ इनकी जीवन–व्यथा से भी जुड़े हैं। डायरी में प्रत्येक गीत की तिथि और रचनावेला अंकित है। हिन्दी, संस्कृत, भोजपुरी, अंग्रेजी तथा जावी भाषा में काव्य, नाट्य, कथा एवं समीक्षा के प्रतिभा सर्जक, सहृदय कवि एवं प्रखर चिन्तक डॉ0 राजेन्द्र मिश्र अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विद्वान् हैं। उनका ज्ञान जितना गम्भीर एवं बहु–आयामी है, अभिव्यक्ति उतनी ही प्रभावशाली, मौलिक एवं बोधगम्य उनकी वाणी का सम्मोहन लोगों को बरबस महीयसी महादेवी वर्मा का स्मरण कराता है। डॉ0 राजेन्द्र मिश्र कृत वाग्वधूटी काव्य से उद्धृत 'वन्दे सदा स्वदेशम्' भारतवर्ष की महिमा का गुणगान उच्च स्वर में करता है।[6] लेखक ने देश की महिमा का गुणगान माधुर्य गुण और वैदर्भी रीति में बड़ी ही रोचक शैली में किया है।[7]

निष्कर्षतः हम इस बात को नहीं नकार सकते कि प्राचीन समय में संस्कृत साहित्य अपने चरमोत्कर्ष पर था। समय के साथ हमने कई समस्याओं का सामना किया लेकिन फिर भी संस्कृत साहित्य के इतिहास की सूची लम्बी–चौड़ी होती जा रही है। हमारे विद्वद्जन पूज्य आचार्यों के अथक परिश्रम का फल है कि हमें संस्कृत के किसी भी ग्रन्थ को समझने में अधिक कठिनाई नहीं होती है। आधुनिक विद्वद्जन भी अहर्निश इसी प्रयास में रहते हैं कि साहित्याकाश में संस्कृत साहित्य के आधुनिक विद्वानों को कोटिशः धन्यवाद देती हूँ तथा उनके चरणों में

नतमस्तक होकर यही कहूँगी कि मैं संस्कृत साहित्य के विद्वानों के इस पाण्डित्यरूपी ऋण से कभी भी उऋण नहीं हो सकती।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ''साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः।
   तृणं न खादन्नपि जीवमानस्तद्भागधेयं परमं पशुनाम्।।'' नीतिशतकम्–पृष्ठ संख्या–17, श्लोक संख्या–12
2. ''पंचमी साहित्यविद्येति यायावरीयः। सा हि चतसृणां विद्यनामपि निष्यन्दः।'' काव्यमीमांसा–पृष्ठ संख्या–4
3. ''साहित्य–पाथोनिधि–मन्थनोत्थं काव्यामृतं रक्षत हे कवीन्द्राः।
   यदस्य दैत्या इव लुण्ठनाय काव्यार्थचौराः प्रगुणी भवन्ति।।'' विक्रमाङ्कदेवचरित–1/11
4. ''वैदेही कुबलयसोदरेऽक्षियुग्मे,
   शोकाश्रूस्तहिनकणानिव श्रयन्ती।
   पार्श्वीयाश्चलदलवल्लरीः प्रसूनं
   वर्षन्तीरनुशपतापतश्चकार।।'' सीताचरितम्
5. ''विभूष्य पौलस्त्यशिरोभिरैश्वरं वपुर्भुवं तत्सुतया तथा निजम्।
   वनप्रतान्ते भगवान् रघूद्वहः सहानुजाभ्यां नगरं स्वमीयिवान्।।'' सीताचरितम्–1/11
6. ''गङ्गा पुनाति भालं रेवा कटिप्रदेशम्।
   वन्दे सदा स्वदेशम् एतादृशं स्वदेशम्।।'' वाग्वधूटीकाव्यम्–'वन्दे सदा स्वदेशम्'–1
7. ''सलिलं सुधामधुरितं पवनोऽपि गन्धवाही
   चरितं विकल्पकलितं धर्यो दयावगाही।
   यत्प्राङ्गणं शबलितं कौतूहलैरशेषम्
   वन्दे सदा स्वदेशं एतादृशं स्वदेशम्।।'' वाग्वधूटीकाव्यम्–'वन्दे सदा स्वदेशम्'–3

❑❑

उत्तर प्रदेश में निर्धनता निवारण एवं ग्रामीण विकास

डॉ0 राहुल कुमार मिश्रा
अर्थशास्त्र विभाग
डी.बी.पी.जी. कालेज, बछरावाँ, रायबरेली

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात देश की सबसे बड़ी समस्या तीव्र आर्थिक विकास की थी क्योंकि दो सौ वर्षों की लम्बी गुलामी के पश्चात् ही देश की आर्थिक, सामाजिक स्थिति दयनीय हो गयी थी। देश के राजनीतिज्ञों, विद्वानों तथा अर्थशास्त्रियों के सामने बड़ी चुनौती थी कि तीव्र विकास के मार्गों को कैसे अपनाया जाय ताकि भविष्य में भारत एक सशक्त देश बन सकें। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए तत्कालिक राजनेताओं, विद्वानों तथा अर्थशास्त्रियों के द्वारा सशक्त एवं श्रृंखलाबद्ध की नियोजन की प्रक्रिया को सन् अपनाया गया, जिसमें प्रत्येक पाँच वर्षों के पश्चात् योजना को चलाया जाना था इस नियोजन प्रक्रिया को अप्रैल 1951 में प्रथम पंचवर्षीय योजना के रूप में प्रारंभ किया गया जो आज भी बारवीं पंचवर्षीय योजना के रूप में क्रियाशील है। भारतीय इतिहास में इस काल को योजनाकाल के नाम से जाना जाता है।

भारत में 70 वर्षों से अधिक समय से आर्थिक विकास की दिशा के लिए किये जा रहे प्रयास किस सीमा तक संविधान के उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल रहें हैं इसका मूल्यांकन समाज में व्याप्त जटिल और बहुआयामी निर्धनता को देखकर किया जाता है।

भारत के ऐतिहासिक विकास क्रम में समाज की आर्थिक संरचना और मानवीय जीवन की विभिन्न दशाओं के संबंध में जो विवरण प्राप्त होते हैं। उनसे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय समाज में सामान्य वर्ग में जटिल और बहुआयामी निर्धनता व्याप्त रही है। वरन् जटिल और बहुआयामी निर्धनता के निर्धारण और इस समस्या के निवारण के प्रति राजनीतिज्ञों, सामाजिक विचारकों एवं अर्थशास्त्रियों द्वारा निरंतर गहन विचार–विमर्श किया जा रहा है।

उत्तर प्रदेश भारत के बड़े राज्यों में से एक है। उत्तर प्रदेश का क्षेत्रफल अखिल भारत के कुल क्षेत्रफल का 7.33 प्रतिशत है। क्षेत्रफल की दृष्टि से प्रदेश का देश में पाँचवा स्थान है, परन्तु जनसंख्या की दृष्टि से प्रदेश का स्थान प्रथम है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार लगभग 20 करोड़ अधिक जनसंख्या निवास करती है। चीन,संयुक्त राज्य अमेरिका , इण्डोनेशिया एवं ब्राजील को छोड़कर किसी भी देश की जनसंख्या उत्तर प्रदेश से अधिक नहीं है। उत्तर प्रदेश जनसंख्या की दृष्टि से सबसे बड़ा तथा उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से पिछड़ा राज्य है। अतः यहाँ गरीबी का प्रतिशत काफी अधिक पाया जाता है, जिसके कारण देश के किसी भी राज्य के कुल गरीबों से अधिक गरीब लोग उत्तर प्रदेश में रहते हैं। अर्थात् संख्या की दृष्टि से सर्वाधिक गरीब लोग उत्तर प्रदेश में है सन् 2011 ई. की जनगणना के आधार पर उत्तर प्रदेश में 29.43 प्रतिशत निर्धनता व्याप्त है। इस दृष्टि से लगभग 6 करोड़ व्यक्ति यहां पर निर्धनता रेखा के नीचे पाये जाते हैं।

उत्तर प्रदेश की लगभग 75 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में निवास करती है। अतः बिना ग्रामीण विकास के अन्य सभी विकास ग्रामीण विकास गौण ही प्रतीत होंगे। समय–समय पर ग्रामीण विकास हेतु सरकार के द्वारा ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को क्रियान्वित किया जाता रहा है। प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण विकास एवं निर्धनता निवारण हेतु प्रयास किया जाता रहा है। जो आज भी प्रमुख उद्देश्यों में से एक है।

निर्धनता निवारण एवं ग्रामीण विकास हेतू सरकारी प्रयास

भारत गाँवो ंका देश है और आधे गांवों की समाजिक आर्थिक स्थिति बेहद कमजोर है। आजादी के बाद

से ग्रामीण जनता का जीवन स्तर सुधारने के लिए ठोस प्रयास किये गये हैं। इसलिए ग्रामीण विकास की ठोस एकीकृत अवधारणा गरीबी उन्मूलन के लिए सभी पंचवर्षीय योजनाओं का हिस्सा रहीं है। गाँवो के आधार भूत ढांचे का विकास करने के लिए अनेक योजनाएँ बनाई गई ताकि गाँवों का आधुनिकीकरण हो और उस आधुनिकीकरण के अर्न्तगत वहाँ आधुनिक जीवन की सब आधारभूत सुविधाएं उपलब्ध हो। इसके लिए राज्यों के स्तर पर विषद सर्वेक्षण किये गये और सब प्रकार के आंकड़े एकत्र कर रिपोर्ट प्रकाशित की गई। इन रिपोर्ट के आधार पर योजनाएं बनी और फिर उन योजनाओं के क्रियान्वयन का काम शुरू हुआ। निर्धनता निवारण एवं ग्रामीण विकास हेतु राष्ट्रीय एवं प्रादेशिक स्तर पर निम्न बिंदुओं को दृष्टिगत रखते हुए योजनाओं एवं वृहद कार्यक्रमों को क्रियानवयन किया गयाः—

1. ग्रामीण क्षेत्रों में आधार भूत सुविधाओं का प्रावधान जैसे स्कूल, स्वास्थ्य सड़के, विद्युतीकरण आदि।
2. ग्रामीण जल आपूर्ति कार्यक्रम के अन्तर्गत पेयजल उपलब्ध कराना।
3. केन्द्रीय ग्रामीण स्वच्छता कार्यक्रम के आधीन स्वच्छता के लिए मक्खी मच्छरों का नियंत्रण।
4. ग्रामीण आवासों का आधुनिकीकरण जिसके आधीन कच्चे मकानों को पक्के मकानों में बदलना।
5. ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि उत्पादकता में सुधार।
6. सिंचाई के लिए वर्षा पर पूरी निर्भरता कम करके अन्य सिंचाई के साधनों का निर्माण ।
7. ग्रामीण रोजगार योजनाओं के अन्तर्गत कृषि उत्पादकता बढाकर ग्रामीण उद्योगों को बढावा देना।
8. ऋण और सबसिडी के माध्यम से उत्पादक संसाधन उपलब्ध कराना।
9. गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले परिवारों और स्वंय सहायता समूहों के लिए सहायता प्रदान करना।

उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति हेतु निम्न योजनाओं एवं कार्यक्रमों को क्रियान्वित किया गया।

वर्ष 1985—86 में ग्रामीण क्षेत्रों में आवास सुविधा उपलब्ध कराने हेतु इंदिरा आवास योजना को प्रारंभ किया गया जब कि इसके पूर्व में 1979—80 में एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम एवं ट्राईसेम प्रारंभ किये जा चुके थे। वर्ष 1977—78 में मरूभूमि को बढ़ने से रोकने मरूभूमि में सूखे के प्रभाव को समाप्त करने एवं प्रभावित क्षेत्र में पारिस्थितिकीय संतुलन बहाल करने, भूमि की उत्पादकता बढाने एवं जल संसाधनों को बढाने के लक्ष्य हेतु मरूभूमि विकास योजना की क्रियान्वित किया गया। निर्धनता निवारण के उद्देश्य की पूर्ति हेतु 1 अप्रैल 1999 की तत्कालिक अटल बिहारी सरकार ने पूर्व में चल रही 6 योजनाओ को विलय कर अखिल भारतीय स्तर पर एक वृहद कार्यक्रम को क्रियान्वित किया यह योजना स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना जिसमें ट्राईसेम (TRYSEM, IROP, DWCRA, GKY, MWSS & SITRA) का विलय कर दिया गया वर्ष 2000—01 में समग्र ग्रामीण विकास को सुनिश्चित करने के लिए ग्रामीण क्षेत्र में स्वास्थ्य, शिक्षा, पेयजल, आवास सड़क एवं ग्रामीण विद्युतीकरण हेतु प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना चलाई गयी। निर्धनता तथा बेरोजगारी पर कड़े प्रहार करने के लिए फरवरी 2006 को महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना का प्रारंभ किया गया। जो अभी भी चलायमान है।

निर्धनता निवारण एवं ग्रामीण विकास में प्रमुख बाधाएँ

योजना काल के 67 वर्ष बीत जाने तथा निर्धनता निवारण एवं ग्राम्य विकास केन्द्रीय लक्ष्य होने और इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु भारी भरकम एवं वृहद योजनाएं क्रियान्वित करने के पश्चात् भी इस केन्द्रीय लक्ष्य को पूर्णतः प्राप्त नहीं किया जा सका। इसके पीछे कई ऐसे कारण है तथा बाधाएं है जिसमें अपेक्षित गति को अवरूद्ध किया। इसमें से कुछ प्रमुख बाधाएं निम्नलिखित हैः—

- ग्राम पंचायतों की अत्यधिक प्रभावपूर्ण भूमिका
- ग्राम प्रधानों की अनुभवहीनता

- ❖ ग्राम प्रधानों को सीधा धन का हस्तान्तरण
- ❖ भ्रष्टाचार
- ❖ गरीब ग्रामीणों का अशिक्षित होना।
- ❖ अविकसित एंव अकुशल मानव पूँजी।
- ❖ दोषपूर्ण शासन व्यवस्था।
- ❖ पर्याप्त वित्त का आभाव
- ❖ गरीब ग्रामीणों का विकास कार्यक्रमों से अनभिज्ञ होना।
- ❖ N.G.Os की कार्यपद्धति मे पारदर्शिता का आभाव
- ❖ समन्वय का आभाव
- ❖ संतुलित आर्थिक व्यवस्था के विकास का आभाव।

निष्कर्ष एवं सुझाव

इतनी लम्बी श्रंखलाबंद्ध नियोजन प्रक्रिया के उपरान्त की निर्धनता निवारण एवं ग्राम्य विकास के आपेक्षित लक्ष्य को न प्राप्त कर पाना चिंताजनक और हतोत्साहित करने वाला है। ऐसा नहीं है कि इस दौरान सभी कार्यक्रम एवं योजनाए असफल रहीं कुछ कार्यक्रमों ने तो आपेक्षिक लक्ष्य से भी अधिक प्राप्त किया। लेकिन यह उनका एकाकी प्रयास था जो इस विषय पर पर्याप्त अन्तर न प्रकट कर पाया जब तक कि सभी योजनाओं में समन्वय का गुण नहीं होगा तथा पूरी पवित्र एवं राष्ट्रीय भावना से लागू नहीं किया जायेगा तो इस लक्ष्य को शीघ्र प्राप्त कर पाना संभव नही होगा। इस सन्दर्भ में डा0 राधाकृष्णन जी के विचार सारगर्भित हैः–

"राष्ट्रीय भावना कोई मकान नहीं है जिसे ईंट गारे से बनाया जा सके। यह कोई औद्योगिक संयत्र भी नहीं है। जिसे विचार विचार–विमर्श द्वारा विशेषज्ञ स्थापित कर सके। वास्तव में भावना एक अनूभूति है जो सभी के ह्रदय में होनी चाहिए। यह एक चेतना है जिसे प्रत्येक व्यक्ति क अन्दर से जाग्रत करना है।"

इस संदर्भ में निम्न सुझाव महत्त्वपूर्ण हैः–

1. सहायता का वितरण निष्पक्ष रूप से किया जाना चाहिए।
2. नई योजनाओं को भली–भाँति प्रसारित एंव प्रचारित किया जाना चाहिए। एक माह में ग्राम पंचायतों की बैठक विकास अधिकारी या सहायक विकास अधिकारी के नेतृत्व में की जानी चाहिए। जिसमें योजनाओं के प्रारूप ग्रामीण जनता के सामने पढ कर सुनाए जाने चाहिए तथा योजनाओं के लाभों को समझाना चाहिए।
3. ग्राम पंचायतों को सीधा धन का हस्तान्तरण करने में पक्ष तथा विपक्ष के तर्क सामने आते हैं। इस संबंध पर्याप्त विश्लेषण करने की आवश्यकता है।
4. ग्रामीण गरीबों की भागीदारी को अधिकाधिक मात्रा में प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
5. कुटीर एवं उद्योगों में प्रशिक्षण की सुविधा उचित दर पर कच्चें माल की आपूर्ति तथा उत्पादित माल के विक्रय की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए।
6. गैर सरकारी संगठनों के कार्यों पर समय–समय पर उचित निरीक्षण किया जाना चाहिए एवं कार्य पूर्ति के आधार पर ही धन का आवंटन किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त जो N.G.O. उचित ढंग से कार्यों को सम्पन्न नहीं कर पा रही हों तथा भविष्य में भी उनसे अधिक उम्मीद न हो तो ऐसे संगठनों को ब्लैक लिस्टेड कर कार्यक्रमों के कार्यो से वंचित कर देना चाहिए एवं भविष्य में भी इसे सुनिश्चित करना चाहिए।
7. ग्रामीण व्यक्तियों की विभिन्न प्रकार की वित्तीय आवश्यकताओं का प्रबंध करने के लिए संश्लेषणात्मक वित्तीय ढांचे की आवश्यकता है।

8. यदि वास्तव में हमे निर्धनता निवारण तथा ग्रामीण विकास के लक्ष्य को प्राप्त करना है तो इनसे सम्बन्धित कार्यक्रमों में समन्वय का होना अति आवश्यक है क्योंकि समन्वय के बगैर सफलता प्राप्त कर पाना संभव नहीं है।
9. ऐसा वातावरण बनाया जाना चाहिए ताकि शादी–विवाह जन्म मृत्यु तथा अन्य सामाजिक उत्सवों आदि पर होने वाले अनुत्पादक व्यय समाप्त हो सके।
10. योजनाओं में महिलाओं की भागीदारी को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

सन्दर्भ संकेत

- भाटिया, बी0 एम0 – "गरीबी, कृषि और आर्थिक विकास"विकास पब्लिकेशन, दिल्ली।
- देसाई वी0 वी – "रूरल इकोनामी आफ इण्डिया" विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
- जैन, ए0 सी0 – रूरल डेवलेपमेंट इन्सटीट्यूषन एण्ड स्ट्रेटजीस", रावत पब्लिकेशन, जयपुर।
- सिंह ए0 के0 – "रूरल डेवलेपमेंट इन इण्डिया, "दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
- Census of India 2011 Uttar Pradesh - Series-10 Part XII B District census Handouts Lucknow Directorate of census Operating U.P.
- Press Note on Poverty estimates, 2011Government of India Planning Commission July 2013

❑❑

इलाहाबाद को सपनों की भूमि मानने वाले डॉ0 राय जब इलाहाबाद के विश्वविद्यालय में नौकारी पाते हैं तो अपने अध्यापन से एवं गरीब छात्रों की मदद कर इतने लोकप्रिय हो जाते हैं कि शायद ही कोई डॉ0 राम कामल राय जैसा लोकप्रिय अध्यापक इस कतार को पार कर पाया हो। शब्द कर्मियों की शब्द क्रीड़ा के माध्यम से की गई अभिव्यक्ति एक कौतूहल उत्पन्न करते हुए सहज ही मन को बेध देती है। ऐसा ही कुछ डॉ0 रामकमल राय की रचनाओं को पढ़कर अहसास होता है। किसी भी व्यक्ति की सोच एवं उसकी अभिव्यक्ति उसके अन्तर्मन में व्याप्त शब्दों का योग होती है। वह जो कुछ जैसा सोचता है,वही उसकी निजता बन जाती है।

- कृपया उपरोक्त विषय पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख भेजकर रचनात्मक सहयोग देने का कष्ट करें।

57

पं० दीनदयाल उपाध्याय और अर्थनीति

डॉ0 बृजेन्द्र सिंह बौद्ध
वरिष्ठ प्रवक्ता–अर्थशास्त्र विभाग
बुन्देलखण्ड कॉलेज, झाँसी

अर्थनीति के लिये हम किस ओर चलें ? वर्तमान में राष्ट्र के सामने यह प्रश्न है। अंग्रेजों के जाने के समय भारत की जो आर्थिक स्थिति थी, इसके मुकाबले कांग्रेसी शासन के समय की स्थिति कहीं ज्यादा बदतर है। विदेशी शासकों ने निहित स्वार्थो हेतु सामंती ढाँचा भारत पर थोपा था, वही वर्तमान में बदले हुए स्वरूप में 10 गुनी ताकत के साथ भारत पर हावी है। भारत जैसे कृषि प्रधान देश की अर्थव्यवस्था के नवीनीकरण की समस्या से जूझते हुए और दूसरी तरफ मनुष्य तथा मशीन के रिश्तों को समझने की कोशिश करते हुए पं0 दीनदयाल उपाध्याय ने कहा विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था की बात कही थी। यहाँ काम के लिये जितने आदमी चाहिये उससे अधिक बेकार पड़े हुए है। इसलिये उद्योगों के लिये यंत्रीकरण से यहाँ बेकारी घटेगी या बढेगी ?बेकारी घटाने के लिये लघु और कुटीर उद्योग धन्धों को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये। इसका अर्थ यह नही कि उपाध्याय जी बड़े उद्योगों के प्रति पूरी तरह खिलाफ थे। वे जानते थे कि कुटीर एवं लघु उद्योगों की स्थापना और प्रोत्साहन के बाद भी कुछ क्षेत्रों में बड़े उद्योगों की जरूरत रहेगी।

हमारी व पाश्चात्य परिस्थितियों में बहुत फर्क है, अतः हमें अपनी 'अर्थनीति का भारतीकरण' करना होगा। अपने इस विचार को विवेचित करते हुए पं0 दीनदयाल उपाध्याय ने लिखा है कि – ''देश का दारिद्रय दूर होना चाहिए , इसमें दो मत नही किन्तु प्रश्न यह है कि यह गरीबी कैसे दूर हो ? हम अमेरिका के मार्ग (पूँजीवाद) पर चले या रूस के मार्ग (समाजवाद) को अपनाऐ अथवा यूरोपीय देशों का अनुकरण करे ? हमें इस बात को समझना होगा कि इन देशों की अर्थव्यवस्था में अन्य कितने भी भेद क्यों न हो इनमें एक मौलिक साम्य है। सभी ने मशीनों को ही आर्थिक प्रगति का साधन माना है। मशीन का सर्वप्रधान गुण है कम मनुश्यों द्वारा अधिकतम उत्पादन करवाना। परिणामतः इन देशों को स्वदेश में बढ़ते हुए उत्पादन को बेचने के लिए विदेशों में बाजार ढूंढने पड़े। साम्राज्यवाद उपनिवेशवाद इसी का स्वाभाविक परिणाम बना। इस राज्य–विस्तार का स्वरूप चाहे भिन्न–भिन्न हो किन्तु क्या रूस को, क्या अमेरिका को तथा क्या इग्लैंड को, सभी को इस मार्ग का अवलम्बन करना पड़ा। हमें स्वीकार करना होगा कि भारत की आर्थिक प्रगति का रास्ता मशीन का रास्ता नही है। कुटीर उद्योगों को भारतीय अर्थनीति का आधार मानकर विकेन्द्रित अर्थव्यव्स्था का विकास करने से ही देश की आर्थिक प्रगति संभव है।''[1]

आज विश्व का प्रत्येक देश तथा उसका प्रत्येक निवासी अपनी आर्थिक स्थिति में सुधार करना चाहता है ताकि अपने जीवन की संध्या आने से पूर्व वह अपने बच्चों की जिन्दगी को खुशहाल बना सके। हर व्यक्ति यह चाहता है कि वह किसी सम्पत्ति को अपनी कह सके, किसी खेत व खलिहान का स्वामी बन सके, और आराम दायक जीवन अवश्य व्यतीत कर सके और इन सबका एक ही उपाय है – देश का तीव्र आर्थिक विकास करना। आर्थिक विकास किसी भी देश के लोगों के आर्थिक व सामाजिक कल्याण का एक सशक्त माध्यम है। आर्थिक विकास से प्रति–व्यक्ति आय में वृद्धि होती है, जिससे वस्तुओं की माँग बढ़ती है। फलस्वरूप उत्पादन तथा विनियोग बढ़ाया जाता है; जिससे पूँजी निर्माण को गति मिलती है और इस प्रकार प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होकर, देश के आर्थिक विकास का प्रवाह अविराम गति से बहने लगता है। फलस्वरूप बेकारी, एकाधिकारी प्रवृत्तियाँ, शोषण, उत्पीड़न, व्यापार चक्र, बाजार की अपूणाएँ आदि में ह्रास होता है। प्रो0 लुइस का मत है कि आर्थिक सम्पन्नता

मनुष्य के आर्थिक व सामाजिक कल्याण के लिए अत्यन्त आवश्यक है। जब समाज के सभी लोगों की आर्थिक स्थिति अधिक सुदृढ़ होती है, तो शोषण, उत्पीड़न, वैमनस्य, लूट–खसोट, चोरी व डकैती आदि अनैतिक तत्त्व स्वतः ही समाप्त होने लगते है और उसके स्थान पर स्नेह, सहयोग, सद्भावना तथा आत्मीयता जन्म लेती है। प्रो0 लुइस ने इस तथ्य का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है, ''यद्यपि बीमारों, अपाहिजों, दुर्भाग्य के मारे, विधवाओं एवं अनाथों के भरण–पोषण की इच्छा आदिम समाज की अपेक्षा सभ्य समाज में अधिक नही पाई जाती है, लेकिन आज के इस समाज में इस काम के लिए अधिक साधन अवश्य जुटाए जा सकते है। अभाव अमानवता को जन्म देते है जबकि सम्पन्नता मानवता की उत्प्रेरक शक्ति है''[2] पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी का यह आग्रह सदा बना रहा कि ''सबको काम'' पंचवर्शीय योजना की प्रथम वरीयता होनी चाहिए। दुनिया की प्रगति की दौड़ में जहाँ हमारा राष्ट्रीय व्यक्तित्व आगे दिखाई देना चाहिए तथा राष्ट्र का व्यक्ति–व्यक्ति उसमें सहभागी हो, इसकी चिंता करनी चाहिए।

राष्ट्र निर्माण एवं आर्थिक विकास में वहाँ की जनसंख्या महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। साथ ही राष्ट्र के आर्थिक विकास का उस राष्ट्र की जनसंख्या पर भी महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। इस तरह जनसंख्या तथा आर्थिक विकास के स्तर में प्रत्यक्ष एवं परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। प्रत्येक राष्ट्र का उत्पादन स्तर, आर्थिक विकास की दर, राष्ट्रीय तथा प्रति व्यक्ति आय, राष्ट्र के उत्पादक क्रियाओं का संचालन, रहन सहन का स्तर, आदि सभी दशाएं उस राष्ट्र की जनसंख्या के आकार, गठन एवं वितरण पर निर्भर करती है। यद्यपि आर्थिक विकास में प्राकृतिक संसाधनों तथा पूँजी की मात्रा का भी विशिष्ट योगदान होता है परन्तु ये आर्थिक विकास के निर्जीव साधान है। मानव ही वह शक्ति है जो इन संसाधनों को अपनी कार्यकुशलता तथा बौद्धिक दक्षता द्वारा वांछित दिशा में गतिशील कर इनका अनुकूलतम उपयोग करती है तथा विकास का मार्ग प्रशस्त करती है। इस सम्बन्ध में मार्क्स का कथन है कि ''आर्थिक विकास के सभी प्रयासों का केन्द्र बिन्दु मानव विकास होता है तथा मनुष्य ही समस्त उत्पादन का कारण है। वह ही केवल उत्पादक साधन है। परन्तु उसी क्षण यह बात भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है कि मानव – साधन में क्या गुण है तथा इनका प्रयोग किस प्रकार से किया जा रहा है। अन्य शब्दों में, श्रमिक कुशल है अथवा अकुशल ?''[3]

पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी ने भारतीय अर्थव्यवस्था के कुछ उददेश्य बताये है जैसे – ''प्रत्येक व्यक्ति को न्यूनतम जीवन स्तर का आश्वासन तथा राष्ट्र सुरक्षा सामर्थ्य की व्यवस्था, इस स्तर के उपरान्त उत्तरोत्तर समृद्धि जिससे व्यक्ति और राष्ट्र को साधन उपलब्ध हो सकें, जिससे वे अपनी स्थिति के आधार पर विश्व की प्रगति में योगदान कर सकें। उददेश्यों के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये प्रत्येक व्यक्ति एवं स्वस्थ व्यक्ति को साभिप्राय रोजगार का अवसर देना तथा प्रकृति के साधनों को मितव्ययिता के साथ उपभोग करना एवं राष्ट्र के उत्पादक उपादानों का विचार कर अनुकूल प्रौद्यौगिकी का विकास करना तथा यह व्यवस्था मानव की अवहेलना न कर इसके विकास में साधक हो तथा समाज के सांस्कृतिक एवं अन्य जीवन मूल्यों की रक्षा करें। विभिन्न उद्योगों आदि में राज्य, व्यक्ति तथा अन्य संस्थाओं के स्वामित्व का निर्णय व्यावहारिक आधार पर हो जिससे मनुष्य का कल्याण हो।''[4]

पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी का कहना था कि ''जिनके सामने रोजी और रोटी का सवाल है, जिन्हें न रहने के लिये मकान है, न तन ढकने के लिये कपड़ा, अपने मैले–कुचैले बच्चों के बीच आज वे दम तोड़ रहें है। गॉवों और शहरों के इन करोड़ो निराश भाई–बहनों को सुखी व सम्पन्न बनाना हमारा व्रत है।''[5] साथ ही दीनदयाल उपाध्याय जी ने कहा कि – आधुनिक लोक कल्याणकारी राज्य कल्पना के साथ बिना आर्थिक नीति के कोई राजनैतिक दल चल नही सकता। ठीक इस प्रकार महाकवि कालिदास का ''दीपशिखेव कालिदासः'' नाम उनके द्वारा दिये गये एक दृष्ट्रान्त से पड़ा था। दमयंती वरमाला लेकर अनुरूप वर के गले में डालने के लिए आगे बढ़ रही थी। स्वयंवर के लिये एकत्रित राजा लोग दोनों ओर इस आशा से सज – धज कर बैठे थे कि बस अब वरमाला उन्ही के गले में डाली जायेगी। किन्तु दीपक की ज्योति समीप आते ही तेजोमय होने वाला मुखमण्डल, दीपक के

सामने से आगे निकल जाते ही, जिस प्रकार काला पड़ जाता है, उसी प्रकार दमयंती आगे को निकल जाती तो बैठे हुए राजाओं के मुख काले पड़ जाते थे अर्थात निराशा से घिर जाते थे। यही दृष्ट्रान्त हमारी योजनाओं पर भी लागू होता है। जैसे–जैसे एक–एक योजना आगे बढ़ने लगी जनता की मुख–छवि निराशा से काली पड़ने लगी।

आर्थिक नियोजन सामान्य मनुष्य की दशा सुधारने के लिए है और नियोजन की प्रक्रिया में सारे देश तथा सभी दलों का सहभाग है, फलतः जिन किसानों एवं श्रमिकों को स्वराज्य का लाभ मिलना चाहिए था उनके पल्ले में वर्तमान में निराशा ही लगी है। भारतीय राजनीतिक जीवन की विकृतियों और विसंगतियों को दूर करने तथा लोकतन्त्र को सुखद एवं स्वस्थ बनाने हेतु भारतीय संस्कृति के आधार पर लोकमत – परिष्कार की आवश्यकता पर बल देते हुए दीनदयाल उपाध्याय जी कहते है, ''जब तक इस काम को करने वाले राज्य के मोह से दूर, भय से मुक्त महापुरुष एवं संघटक रहेंगे, लोकमत अपनी सही दिशा में ही चलता जायेगा।''[6]

पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी को स्वदेशहित सर्वोपरि प्रिय था। उनका दृष्टिकोण था कि देश का किसान अपने पाँव पर खड़ा होना चाहिए, खेती की उपज बढ़कर देश में समृद्धि तथा स्थिरता बढ़नी चाहिए, देश की औद्योगिक प्रगति के साथ ही बेकारी नही बढ़नी चाहिए और विशेषतः देश के विकास में प्रत्येक नागरिक को हाथ बांटना चाहिए। हमारे सरीखे देश में, जहाँ हर बात के सरकारीकरण की ओर रूझान बढ़ रहा हो, हर सुधार विधान के माध्यम से ही लाने पर सरकारी दल तुला हो, हर समस्या का सुस्पष्ट विचार प्रस्तुत करते हुए जनजागरण करना ही एकमेंव मार्ग होता है। इस मार्ग पर चलते हुए, विरोध करने से लेकर समझाने – बुझाने तक, आन्दोलनों से लेकर उद्‌बोधन करने तक तथा नीति विशयक कुछ मतभेदों को प्रस्तुत करने से लेकर पूरी योजना का ही नया प्रारूप प्रस्तुत करने तक विविध उपाय करने पड़ते है। दीनदयाल उपाध्याय जी पाश्चात्य सभ्यता, औद्योगीकरण तथा मशीनीकरण को व्यक्तित्व, सुख और नैतिकता के विकास में साधक नहीं बाधक, उन्नायक नहीं अवरोधक मानते है। उनके शब्दों में – यदि हमें मनुष्यत्व की रक्षा करनी है तो हमें उसे मशीन की गुलामी से मुक्त करना होगा। आज व्यक्ति मशीन पर शासन नही करता, मशीन मनुष्य पर शासन कर रही है। इस मशीन – प्रेम के मूल में मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं को अधिकाधिक मात्रा में तृप्त करने की भावना ही निहित है। पर हम यह न भूलें कि केवल भौतिक समृद्धि मात्र से मनुष्य नही हो सकता। लेकिन वे यन्त्रों का सर्वथा प्रतिरोध न कर इनके सहारे श्रम की उत्पादकता बढाने का समर्थन करते है। इस प्रश्न पर उनका कथन है कि यदि 'यंत्र ऐसा रहा कि जिसको चलाने के लिए बहुत कम आदमियों की जरूरत पड़े और शेष व्यक्ति बेकार हो जाए अथवा इन यंत्रों को बाहर से मंगाने का खर्चा ही इतना अधिक हो कि उसका भुगतान करने में ही बढ़ी हुई उत्पादकता अधूरी पड़े, तो कहना होगा कि यह यंत्र ठीक नहीं है। जैसे किसी कारखाने की पूरी क्षमता का उपयोग न कर पाना आर्थिक दृष्टिकोण से ठीक नहीं वैसे ही देश के लोगों को बेकार रखना घाटे का सौदा है।''[7]

गाँधी जी का ट्रस्टीशिप (विश्वस्त) को जो सिद्धान्त था, उसके बारे में भी दीनदयाल जी के विचार गाँधी के विचारों से मिलते – जुलते है। इस विशय पर उपाध्याय जी ने कहा था – ''उद्योगों के स्वामित्व का अधिकार वास्तव में निश्चित मर्यादाओं और निश्चित उददेश्यों के लिये किसी वस्तु के उपयोग का ही अधिकार है। अर्थात उपयोग में, उपभोग, संविदा, दान, वसीयत, उत्तराधिकार आदि का समावेश है। हमारे यहाँ समाज का केवल एक ही रूप अर्थात राज्य नही माना गया है। यहाँ समाज व्यक्ति, कुटुम्ब, कुल, जाति, राज्य आदि अनेक रूपों में अपने आपको अभिव्यक्त करता है। व्यक्ति में समाजिक भावना बनी रहे इसलिए हमारे यहाँ सम्मिलित कुटुम्ब की एक व्यावहारिक इकाई रखी गई है जिसमें व्यक्ति कमाने का अधिकारी है, तथा सम्पत्ति का स्वामी कुटुम्ब रहता है; सम्पत्ति का उपयोग कुटुम्ब के हित में होता है। ट्रस्टीशिप का यही सिद्धान्त है जो गाँधी जी और गुरू जी आदि विचारको ने समाज के सम्मुख रखा।''[8]

'एकात्म मानववाद' जैसे सिद्धान्त का प्रतिपादन कर पं0 दीनदयाल उपाध्याय ने आधुनिक राजनीति, भारतीय

अर्थव्यवस्था तथा समाज रचना के लिये एक नितांत भारतीय धरातल प्रस्तुत किया। उन्होने साफ–साफ कहा कि हमारे हित और समाज के हित में विरोध नही है, संघर्ष नहीं है। इसलिये जब कोई लोग हमसे पूँछनें लगते है कि आप व्यक्तिवादी है अथवा समाजवादी ? तो हमें कहना पड़ता है कि भाई ! हम व्यक्तिवादी भी हैं और समाजवादी भी है। उपाध्याय जी का कहना था कि भारतीय संस्कृति में कर्म यानि श्रम को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। वेदों से लेकर उपनिषदों तथा गीता तक में इसकी महत्ता सर्वोपरि मिलती है। श्रम करना प्रेत्यक नागरिक का कर्तव्य है, अतः श्रम कि अप्रतिष्ठा का कोई प्रश्न ही नही उठता। इसके साथ ही प्रत्येक को श्रम करने का अवसर देना शासन का भी मूल कर्तव्य है। प्रत्येक को काम का सिद्धान्त यदि स्वीकार कर लिया जाये तो सम वितरण की दिशा निश्चित हो जाती है और हम विकेन्द्रीकरण की ओर बढ़ते है। औद्योगीकरण को उददेश्य मानकर चलना गलत है, यह उददेश्य अपने आप में स्पष्ट भी नहीं है। आर्थिक क्षेत्र की तीन वस्तुयें है – मनुष्य, श्रम और मशीन। इन तीनों का समन्वय अर्थव्यवस्था का उददेश्य है। जिस अर्थव्यवस्था में यह समन्वय नहीं, उसमें विषमताऐं तथा शोषक और शोषित वर्ग उत्पन्न होते है। इसलिये वर्तमान परिस्थिति में यदि किन्ही उपायों का प्रयोग कर भारतीय अर्थव्यवस्था की दिशा के परिवर्तन को बताना हो तो वे है– विकेन्द्रीकरण, स्वदेशी और स्वावलम्बन। हर व्यक्ति समाज का प्रतिनिधि है। अतः वह समाज की सम्पत्ति के एक हिस्से का न्यासी या संरक्षक है। उपाध्याय व्यक्ति को श्रीविहीन करने के खिलाफ है। व्यक्ति स्वयं समाजरूपी पुरूष का अंग है। अतः वह स्वयं ही समाज की धरोहर है। इसलिए सम्पत्ति का अमोधाधिकार तो समाज का ही है; लेकिन वे समाज की एक मात्र प्रतिनिधि संस्था के नाते 'राज्य को मानने के लिए तैयार नही है। यही कारण है कि निजी संपति का केन्द्रीकरण या सामाजिक अधिकार के नाम पर राज्य में संपत्ति के केन्द्रीकरण को वे समान रूप से गलत मानते है। आम आदमी को पूँजीपतियों अथवा राज्य संस्था का मजदूर या गुलाम बना देना वे मानवता का अपमान समझते है और न ही अमर्यादित राज्याधिकार। वे स्वामित्व के केन्द्रीकरण के खिलाफ है। अतः वे विकेंद्रित राज्य व विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था के समर्थक है। जहाँ तक कुटीर उद्योगों का राष्ट्रीयकरण अनिवार्य है। अब प्रश्न बचता है पूँजी – उद्योगों का। उनका भी अंतिम रूप से राष्ट्रीकरण कर देना उददेश्य होना चाहिये। आज पूॅजी – उद्योग व्यक्तिगत क्षेत्र में आते है। उनसे व्यक्तिगत क्षेत्र का क्रमिक उन्मूलन किया जाना चाहिए। कुटीर उद्योगों का विकास करते समय भी इस बात का ध्यान रखना होगा कि उनके गुट बनाकर पूॅजीपति उन पर नियंत्रण स्थापित न कर लें।

जैसे – जापान में वितरण तथा संपत्ति की असमानता का कारण वहाँ के कुटीर उद्योगों पर पूँजीपतियों का नियंत्रण ही है'। मनुष्य के उत्पादन – स्वतंत्रता पर सबसे बड़ा हमला पूँजीवादी औद्योगीकरण ने किया है। अतः उपाध्याय जी औघोगीकरण का इस प्रकार से नियमन चाहते है कि जिससे वह स्वतंत्र, लघु एवं कुटीर उद्योगों को समाप्त न कर सके। आज जब हम सर्वागीण विकास का विचार करते हैं तो संरक्षण की आवश्यकता को स्वीकार करके चलते है। यह संरक्षण देश के उद्योगों को विदेशी उद्योगों की प्रतिस्पर्धा से तथा देश के छोटे उद्योगों, को बड़े उद्योगों से देना होगा।

''राजनीति में व्यक्ति की रचनात्मक क्षमता को जिस प्रकार तानाशाही नष्ट करती है, उसी प्रकार अर्थनीति में व्यक्ति की रचनात्मक क्षमता को भारी पैमानों पर किया गया उद्योगीकरण नष्ट करता है। ऐसे उद्योगों में व्यक्ति स्वयं भी मशीन का एक पुर्जा बनकर रह जाता है। इसलिए तानाशाही की भाँति ऐसा उद्योगीकरण भी वर्जनीय है।''[9] विकासशील देशों में द्वैतपूर्ण अर्थव्यवस्था का यही स्वरूप है कि उसमें थोड़े से वृहद् उद्योग इकाइयों के साथ में विशाल मात्रा में खेत व कुटीर उद्योग विद्यमान रहते है। वृहद् उद्योग के नीचे लघु औद्योगिक इकाइयों की सहकारी रूप से संगठित कुटीर उद्योगों की एक श्रृंखला होनी चाहिए और उद्योगों की उत्पादन व विपणन की विधियों तथा कीमतों के निर्धारण में सुधार होना चाहिए। सामान्य निर्धनता के निराकरण हेतु आयोजन के अन्तर्गत श्रम साधनों की सीमितता को बढ़ाना होगा और पूँजी – बचत की विधियों व उपकरण को ज्ञात करके बड़े पैमाने

पर श्रम की अर्द्ध – बेकारी को दूर करना होगा। अभी तक अर्द्ध विकसित देश के विकास के लिए प्रयुक्त आर्थिक आयोजन का उपागम पूँजी – उत्पादन अनुपात की संकल्पना तथा भौतिक निविश्टयों से अत्याधिक प्रभावित रहा है। मिर्डल के अनुसार इसका तात्पर्य है कि – ''आर्थिक संवृद्धि के मानवीय आयामों की बड़े पैमाने पर उपेक्षा की गई है। भारत में भूमिहीन श्रमिको व छोटे तथा सीमान्त कृषक वर्ग जो 70 प्रतिशत के लगभग है, हरित क्रान्ति से विशेष लाभ नही उठा पाये। इस विशाल जन–समूह के लिये कुटीर व लघु उद्योगों रोजगार व अर्द्ध रोजगार की समस्या का हल प्रस्तुत करते है। यही विकेन्द्रित क्षेत्र के विकास का महत्त्व है।''[10]

इसी क्रम में पं0 दीनदयाल उपाध्याय बताते है कि आर्थिक क्षेत्र में व्यक्ति की यह रचना शक्ति तभी प्रकट हो सकती है, जब विकेन्द्रीकरण के आधार पर उद्योगों की व्यवस्था हो। विकेन्द्रीकरण से मशीन का परित्याग नही समझना चाहिए; इसके लिए मशीनों को छोटा जरूर करना पड़ सकता है। जब लोगों को बड़े पैमाने पर उत्पादन करने का अवसर ही नही मिलेगा तो पूँजी इकट्ठी ही कैसे हो सकेगी? इसमें गाँव तो अधिकाधिक स्वावलम्बी होगें ही व्यक्ति को प्रेरणा मिलने के कारण वस्तु के गुण तथा उत्पादन दोनों ही बढेगें। पुरातन काल में कुटीर उद्योग जितनी उत्तम श्रेणी की वस्तुऐ तैयार करते थे, उतनी आज की मशीन नहीं तैयार कर पाती। कुटीर उद्योगों में हस्तकौशल और शिल्प को जो बहुत बड़ा क्षेत्र मिलता है, वह मशीन – उद्योगों में बिल्कुल नही मिल पाता। श्रम करना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है, अतः श्रम की अप्रतिष्ठा का कोई प्रश्न ही नही उठता। इसके साथ ही प्रत्येक को श्रम करने का अवसर देना शासन का भी कर्तव्य है। प्रत्येक को काम का सिद्धान्त यदि स्वीकार कर लिया जाय तो समवितरण की दिशा निश्चित हो जाती है। और हम विकेन्द्रीकरण की ओर बढ़ते है इस प्रकार हम इस सिद्धान्त को गणित के सूत्र में यों रख सकते है –

''ज × क य = इ''[11]

(यहाँ 'इ' समाज की प्रभावी इच्छा का द्योतक है, जिसकी पूर्ति की उसमे शक्ति है, 'ज' समाज में काम करने योग्य व्यक्तियों की संख्या का द्योतक है, 'क' काम करने की अवस्था और व्यवस्था का द्योतक है तथा 'य' यन्त्र का द्योतक है।)

इस सूत्र के अनुसार यदि हम चाहते हैं कि 'ज' निश्चित रहे (जो प्रत्येक को काम के सिद्धान्तानुसार आवश्यक है) तो 'इ' के अनुपात में 'क' और 'य' को बदलना होगा। ज्यों–ज्यों हमारी माँग बढ़ती जायेगी, हमें ऐसे यन्त्रों का उपयोग करना होगा जिनके सहारे हम अधिक उत्पादन कर सकें। आज जिनके सहारे हम अधिक उत्पादन कर सकें। आज जो शासन की नीति है उसमें 'य' सबका नियंत्रण कर रहा है।

वास्तव मे तो 'इ' के बढ़ने से हमारी समस्या हल होगी। किन्तु 'इ' सहज नही बढ़ सकती क्योंकि यह हमारी क्रय शक्ति पर निर्भर है। अतः शासन को देश की क्रय–शक्ति बढ़ाने का प्रयत्न भी करना होगा। क्रयशक्ति मूलतः तो अधिक उत्पादन होने पर बढ़ सकती है किन्तु उसके लिए धन के अधिकाधिक समवितरण की भी आवश्यकता है।

'इ' अर्थात प्रभावी माँग देश में तथा देश के बाहर भी हो सकती है। यदि हमारा माल बाहर जाता है, तो 'इ' बढ़ जाती है। बाहर से माल आने पर 'इ' कम हो जाती है, क्योंकि हमारी क्रयशक्ति का बड़ा भाग उन्हे खरीदने में खर्च हो जाता है। आज भारत में यही हो रहा है स्वदेशी प्रेम के द्वारा 'इ' बढ़ाई जा सकती है। चूँकि 'य' और 'क' में एक दम परिर्वतन सम्भव नही, अतः 'ज' कम होता जा रहा है। इस प्रकार आर्थिक क्षेत्र की वस्तुये मनुश्य, श्रम और मशीन के समन्वय ही अर्थव्यवस्था का उददेश्य है। जिस अर्थ व्यवस्था में समन्वय नही, उसमें समन्वयहीनता के परिणामस्वरूप विषमताएॅ अवश्य होंगी।

''कृषि विकास औद्योगिक विकास की एक प्रारम्भिक अवस्था है देश में कृषि की उन्नति होने पर वहाँ उद्योगों का विकास स्वतः ही होने लगेगा, क्योंकि उद्योगो को आवश्यक कच्ची सामग्री पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

सकेगी।''[12] इसीलिए उपाध्याय जी अपनी आर्थिक नीति को ''यर्थाथवादी'' अर्थ नीति कहते थे। यर्थाथवादी–अर्थात किसी लकीर–फकीरी सिद्धान्त के साथ देश की आर्थिक नाव को बाँध देने से इन्कार करना। हमारे देश में करोड़ो हाथ बेकार हों, तब विदेशों से यंत्र सामग्री का आयात करते हुए खेती करने या विशालकाय बाँध बनवाने के वे विरूद्ध थे। ''देश के किसान को उसका अपना खेत दिलाना, खेतीबाड़ी का सामान सहकारी सिद्धान्त पर उसे देना, उसके अनाज का न्यूनतम उचित भाव मिलने का भरोसा देना, उसकी क्रय–शक्ति को बढ़ाते हुए नगरों अथवा गाँव–गाँव के कारीगरों द्वारा बनायी गयी नित्योपयोगी वस्तुऐं खरीदने के लिए उसे सक्षम बनाना और किसानों, श्रमिको, गाँवों और नगरों का सन्तुलित विकास करना, ही अर्थनीति के प्रमुख अंग है।''[13]

निष्कर्ष : देश आजाद हुए इतने वर्ष बीतने के बाद भी देश में चैतन्य क्यों निर्माण नहीं हुआ? गरीबी–भुखमरी, बेरोजगारी निराशा और लाचारी क्यों बढ़ती गई? राष्ट्रीय चरित्र का ह्रास क्यों हुआ? आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक सभी क्षेत्रों में क्रमशः गिरावट क्यों आती गई और राष्ट्रजीवन प्रवाहपतित क्यों हो गया? निःसन्देह इसका एक ही उत्तर है कि हम अपने पैरो पर नहीं खड़े हैं। जिन्होनें अपना आधार खो दिया हो उन्हें बहना ही पड़ेगा। एक वृक्ष जो जड़ से उखड़ गया है तथा बाढ़ के प्रवाह मे आ गया है, जल की प्रत्येक धारा के साथ इधर–उधर फेंका जाता है। हमारा सम्पूर्ण राष्ट्रीय जीवन अपना जड़मूल खो बैठा। इस पतन को रोकने का केवल एक ही उपाय है कि राष्ट्र–जीवन का सच्चा साक्षात्कार किया जाये। भारतीय अर्थव्यवस्था में तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या, भूमि साधनों पर भारी दबाव और वृहद मात्रा में बेकारी और निर्धनता को देखते हुये लघु व कुटीर उद्योगों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

वास्तव में विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था समाजवाद और पूँजीवाद का एक सार्थक विकल्प प्रस्तुत करता है और विकसित देशों के आर्थिक आयोजन की त्रुटिपूर्ण नीतियों को सुधार कर भारतीय आर्थिक एवं सामाजिक चिन्तन के अनुरूप आर्थिक विकास का भावी मॉडल बनाने मे सहायक हो सकता है। उपाध्याय जी के समन्वयवादी विचार ही उत्पत्ति के साधनों और मुख्य रूप से श्रम के सफल उपयोग को आर्थिक प्रगति का द्योतक माना जा सकता है।

सन्दर्भित ग्रन्थ सूची

1. पं0 दीनदयाल उपाध्याय– महाभियान 2015, भारतीय जनता पार्टी, नई दिल्ली, पृष्ठ 42–43।
2. जी.डी. अवस्थी, सुधीर कुमार निगम, एम.के. अवस्थी – विकास नियोजन एवं नीतियाँ, भारत बुक सेन्टर लखनऊ, पृष्ठ 10
3. डॉ0 जे0 पी0 मिश्रा – संवृद्धि एवं विकास का अर्थशास्त्र, पृष्ठ 187।
4. प्रो0 मधु दण्डवते – गाँधी, लोहिया और दीनदयालः युग समीक्षा–दीन दयाल शोध संस्थान,नई दिल्ली, पृष्ठ 15।
5. प्रो0 मधु दण्डवते – गाँधी, लोहिया और दीनदयालः युग समीक्षा–दीन दयाल शोध संस्थान नई दिल्ली, पृष्ठ 16।
6. पं0 दीनदयाल उपाध्याय – राष्ट्र जीवन की दिशा, राष्ट्र धर्म पुस्तक प्रकाशन लखनऊ 1971, पृष्ठ 84।
7. पं0 दीनदयाल उपाध्याय – एकात्म मानववाद, पृष्ठ 77।
8. पं0 दीनदयाल उपाध्याय – भारतीय अर्थनीति, विकास की दिशा, पृष्ठ 125।
9. पं0 दीनदयाल उपाध्याय – राष्ट्रचिन्तन, लोकहित प्रकाशन लखनऊ, पृष्ठ 73।
10. डॉ0 आर0 के0 गोविल – कृषि अर्थशास्त्र, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल आगरा, पृष्ठ 288–289।
11. पं0 दीनदयाल उपाध्याय – राश्ट्र चिन्तन, लोहित प्रकाशन लखनऊ पृष्ठ – 74।
12. डॉ0 टी0 आर0 शर्मा, डॉ0 जे0 सी0 वाश्णेय, डॉ0 मोहन सिंघल – विकास अर्थशास्त्र एवं नियोजन, पृष्ठ '315'।
13. बलवंत नारायण जोग – पं0 दीनदयाल उपाध्याय विचार – दर्शन, खण्ड – 6, सुरूचि प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ '141'।

❑❑

मन : प्रदूषण तथा वेद

डॉ0 विजय खरे
एसोसियट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष – इतिहास
डी.बी.एस कॉलेज, कानपुर

वैज्ञानिक व औद्योगिक विकास के परिणामस्वरूप समाज में भौतिक सुख –सुविधाओं व समृद्धि में हो रही लगातार वृद्धि के बावजूद तनाव, दुश्चिन्ता आदि आज के जीवन के अंग बनते जा रहे हैं जिसका परिणाम जीवन में असंतोष और शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य के गिरावट के रूप में देखा जा रहा है। आज ऐसे अनेक शारीरिक रोग देखे जा रहे हैं जिनका मूल वास्तव में मानसिक तनाव व मनः प्रदूषण हैं। इस तरह के मानसजन्य रोगों की लम्बी सूची है। विज्ञान भी यह मानता है कि 65 प्रतिशत रोगों का कारण व्यक्तित्व में प्रौढ़ता का अभाव तथा मानसिक अपरिपक्वता ही है। तनाव आज के जीवन का अनिवार्य अंग बन गया है और कोई भी व्यक्ति तनावमुक्त नहीं है। भारतीय वेदों में मन की निर्मलता व शुद्धता पर विशेष बल है। वैदिक मनोविज्ञान में मुख्य रूप से मन और मानसिक प्रक्रियाओं का विश्लेषण किया जाता है। शुद्ध व पवित्र मन द्वारा तेजस्विता, समृद्धि तथा शारीरिक निरोगता प्राप्त की जाती है। शारीरिक निरोगता का साधन मानस चिकित्सा है, जिसका उल्लेख वेदों में हैं आज तनाव को दूर करने के लिए जो भी निर्देशन व परामर्श की प्रक्रिया हम अपनाते हैं, उसका मूल व आदि स्रोत वैदिक मंत्रों में मिल जाता है। जब मनः प्रदूषण नहीं होगा तो मानसिक रोग पनपेंगे ही नहीं। परमात्मा ने मनुष्य का शरीर व मन इस योग्य बनाया है कि वह दैनन्दिन जीवन में आने वाले तनाव को झेल सके और इसके आवश्यक है कि हमारा मन शुभ संकल्पों से युक्त हो।

विज्ञान की भाषा में मन शरीर का कोई अवयव नहीं है। यह मस्तिष्क की शक्तियों का एक विशेष प्रकार का प्रक्षेपण है। मानव शरीर द्वारा संचालित होने वाली सभी गतिविधियों व क्रियाकलापों का संचालन मन के द्वारा होता हैं वेदों में मन की व्याख्या अति सुन्दर ढंग से की गई है कि जैसी मन की प्रवृत्ति होती है वैसा ही मनुष्य का व्यक्तित्व व स्वभाव विकसित होता है। अथर्ववेद के 6,41,1 (मंत्र–21) के अनुसार –

मनसे चेतसे धिय आकूतम उत्त चित्तये।
मत्यै श्रुताय चक्षसे विधेय हंविषावयम्।।

भारतीय मनोविज्ञान समग्र मन, चित्त, उनके साधनों, मस्तिष्क की नाड़ियों, कुण्डलिनी चक्र आदि सहित मानव अनुभूतियों तथा व्यवहार का चेतन, सापेक्ष, गत्यात्मक ज्ञान प्राप्त करने, अभ्यास तथा वैराग्य द्वारा चित्रवृत्तियों का निरोध, कैवल्या प्राप्त करने के अष्टांग योग तथा चित्त को विकसित करके अद्भुत शक्तियों तथा विवेक, ज्ञान प्राप्त करने का क्रियात्मक विज्ञान है यही कारण है कि वैदिक मनोविज्ञान मन की भद्रता तथा शिवता को लक्ष्य करके उसकी शक्तियों के संवर्धन के उद्देश्य से मानसिक प्रक्रियाओं का केन्द्र बनता हुआ दिखायी देता है। वैदिक मनों में मानवीय तनावों के निराकरण तथा मनः प्रदूषण को दूर करने के अनेक उपाय बताकर मनोविज्ञान के व्यवहारिक व जीवन उपयोगी पक्षों को प्रस्तुत किया गया है।

प्रत्येक मनुष्य के अंदर मौजूद मन ही रोग का कारण होता है। हम जो सोचते, विचारते हैं उससे हमारे शरीर के जीवकोषों में एक चैतन्यता का जन्म होता है। उसी के अनुरूप जीवकोषों के गुण होते हैं। मानसिक विचारों के कारण प्रति क्षण बड़ी संख्या में जीवकोषों का नाश और नये कोषों का निर्माण होता रहता है। विध्वंसक मानसिक वेगों (हिंसा, क्रोध, द्वेष) से जीवकोषों का अत्याधिक मात्रा में विनाश होता है और रचनात्मक वेगों (प्रेम, क्षमा, दया

इत्यादि) से अत्यधिक मात्रा में निर्माण। हमारे मानसिक विचार हमारे शरीर के प्रत्येक कोष में समा जाते हैं, और हमारा शरीर उसी के अनुसार बन जाता है, जैसे भूमि में कुछ न कुछ उगा करता है उसी प्रकार मन में भी कुछ न कुछ विचार अवश्य उठते हैं, इसलिए मन को सदैव रचनात्मक शुभ तथा परोपकारी कार्यों में व्यस्त रखे, इसका प्रतिफल आरोग्य होगा।

'इद्म यत् परमेष्ठिनं मनो वा ब्रह्म संशितम्।
येनैव ससृजे घोरं, तेनैव शान्ति रस्तु नः'' ।। अथर्व 19,9,4

सत्वगुण युक्त मन शांति, सद्भाव, श्रद्धा आदि उत्पन्न करता है इसके विपरीत तमोगुण से युक्त होकर वह द्वेष, कलह, ईर्ष्या, भय, मोह तथा क्रोध आदि को जन्म देता है।

'सं वर्चसा पमसा सं तनूमिरगन्महि मनसा स शिवेन।
तवष्टा सुदत्रो विद्धातु रामोऽनुभाण्टु तन्वो यद्विलिष्टम्।। यजु. 2, 24, 8, 14,

जब मन शुभ विचारों से युक्त होगा तब उसमें प्रसाद गुण व संयम आयेगा। संयमी व्यक्ति ही बह्मवर्चस्वी हो सकता है। इस ब्रह्मवर्चस से रोग के अणु नष्ट हो जाते हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि मनः प्रदूषण और मानसिक भावनाओं का असर शरीर पर कैसे पड़ता है? प्रकृति ने भावनाओं का शरीर से यह सम्बन्ध विशिष्ट उद्देश्य से जोड़ा है। घबराहट के समय पसीना छूटना, चिन्ता में भूख न लगना, क्रोध में चेहरा लाल हो जाना, आदि परिस्थितियां यह दर्शाती हैं कि मानसिक भावनाओं का प्रवाह शरीर के रक्त प्रवाह तथा अंदरूनी हलचलों पर आवश्यक रूप में पड़ता है। लगातार तनाव में रहने से शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता, हारमोन्स, प्रोटीन मेटाबोलिज्म आदि प्रभावित होता है, परिणामस्वरूप मस्तिष्क के न्यूरोट्रांसमीटर, न्यूरोमोड्यूलेटर तथा न्यूरो इन्डोक्राइन क्रियायें प्रभावित होती है। परिस्थितियाँ मन को प्रभावित करती हैं, और मन शरीर को। कई बार अकारण ही व्यर्थ की चिन्ता होती है। लम्बे समय तक यह स्थिति बनी रहे तो मानव शरीर कई रोगों से आक्रान्त हो जाता हैं ऐसी दशा में मस्तिष्क के आदेश से शरीर में वैसी ही प्रक्रिया होने लगती है, जैसी कि वास्तविक संकट के समय होती है। मनोवैज्ञानिकों का कहना हैं कि इस तरह की प्रक्रियायें कम तीव्र पर लम्बे समय तक चलती हैं। वास्तविक संकट के समय ये प्रक्रियायें जितनी तेजी से शुरू होती हैं, उतनी ही तेजी से संकट दूर होने पर समाप्त हो जाती हैं। मनोकल्पित शंकाओं का कोई आधार न होने से यह लम्बे समय तक चलती हैं और शारीरिक व्याधि का रूप ले लेती है जो कि किसी रोग का लक्षण प्रतीत होते हैं पर वास्तव में इनकी जड़ मन के भीतर होती है। प्रत्येक व्यक्ति के अंदर सूचना संसाधित करने के लिए 4 (सिस्टम) तंत्र है जो आपस में क्रिया प्रतिक्रिया करते हैं। मन (मस्तिष्क का क्रियात्मक पक्ष) नलिकाविहीन ग्रंन्थियाँ, स्नायु मंडल तथा प्रतिरक्षात्मक तंत्र (Immune System) (मायर, वालकिन्स, फ्लैसनर 1994) इन्हें विज्ञान की भाषा में Psychoneuroimmunology कहा जाता है। यह चारों तंत्र हमारे स्वास्थ्य को सुनिश्चित करते हैं। इनके असफल होने पर हम रोग की गिरफ्त में आ जाते हैं। (Mceven 1999) स्नायु, ग्रंथियों तथा प्रतिरक्षा तंत्र के क्रान्तिक कोषों (Critical cells) में कुछ ग्राहक (Receptors) होते हैं जिसके माध्यम से एक तंत्र दूसरे तंत्र से सूचना प्राप्त करता है। (डेन्ट्जर 2001, राइसन और मिलर 2001, विवियर 2001) चौथा तंत्र हमारा मन है जो सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं, इसके माध्यम से हमारा मस्तिष्क कार्य करता है। हमारे विचार, विश्वास, आशा तथा निराशा, मस्तिष्क के स्नायु तन्तुओं में होने वाले रासायनिक व विद्युत क्रिया के अतिरिक्त कुछ नहीं है। हमारा मस्तिष्क रोग, बुढ़ापे तथा मृत्यु के विरूद्ध एक रक्षा कवच है जो हमारे मन से प्रभावित हैं।

वेदों में अनेक स्थलों पर मानसिक तनाव व मनः प्रदूषण को दूर करने के अनेक उपाय बताये गये हैं और इससे बचने के लिए मन को वश में रखने का उपदेश यजुर्वेद के 34 वें अध्याय के 'तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु' वाले 6 मंत्रों में दिया गया हैं ऐसा मन जो जागृत व सुप्त अवस्था में दूर–दूर तक जाता है, समस्त प्रेरणाओं का

संचालक है, ज्ञान, चित्त, स्मृति, धैर्य व धारणा का साधन है, जिसने भूत, वर्तमान व भविष्य को वश में किया हो, जो विश्व की समस्त चेतना, ज्ञान व बुद्धि का आधार है, ऐसा मन शुभ संकल्पों वाला हो। मन शुद्ध होगा तो शरीर निरोगी होगा। विचार–शक्ति को सदा प्रभावित करते रहते हैं। शुभ विचार उन्नति, विकास, प्रगति व दीर्घायु के साधन हैं तथा अशुभ विचार रोग, शोक तथा अल्पायु का कारण है। विचार भूमि में ऊर्जा है, गति है, शक्ति है और प्रभावकता है, इसी से जीवन में सरसता व नीरसता आती है। इन मंत्रों द्वारा मानसिक प्रदूषण दूर हो सकता है। जो निराश हैं, उसकी जैविक उर्जा का पथ सदैव गड़बड़ होता है प्राण कंपायमान हो जाता है, परिणामस्वरूप श्वसन अनियमित हो जाता है। मंत्रों के प्रभाव से मन स्पन्दित हो जाता है, जिससे मन की बीमारी स्वतः दूर हो जाती है। गायत्री मंत्र के प्रभाव से मन की टूटी लय पुनः सुसंबद्ध होने लगती हैं, नयी उर्जा का प्रवाह होता है, मानसिक चेतना में नये प्राणों का संचार होने लगता है, और धीरे–धीरे चेतना में नये प्राणों का संचार होने लगता है, और ध ीरे–धीरे जैविक ऊर्जा का पथ सुचारू होता है, प्राण की अनियमितता समाप्त हो जाती है। मन नये सिरे से रूपान्तरित हो जाता है, जिससे निराशा, उत्साह में परिवर्तित हो जाती है।

हमारे वेद शास्त्र में प्राण की अनन्त महिमा गायी गयी है। अथर्ववेद में कहा गया है – 'प्राणायानौ मृत्योर्मा पातं स्वाहा' अर्थात् प्राण और अपान में दोनों मेरी मृत्यु से रक्षा करें। प्राणायाम से इन्द्रियों और मन के दोष दूर होते हैं। इसके द्वारा मन के ऊपर आया हुआ असत् अविद्या व क्लेश रूपी तमस का आवरण क्षीण हो जाता है। परिशुद्ध हुए मन में धारणा (एकाग्रता) स्वतः होने लगती है। प्राणायाम द्वारा स्थूल शरीर के साथ सूक्ष्म शरीर पर भी विशेष प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से होता है। हमारे शरीर में फेफड़ों, हृदय एवं मस्तिष्क का एक विशेष महत्त्व है। और इन तीनों का एक दूसरे के स्वास्थ्य से घनिष्ट सम्बन्ध भी है। इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिक मनः चिकित्सा के मूल मंत्र वैदिक वाङ्मय में भरे हुए हैं। आज आवश्यकता उन्हें जीवन में उतारने की है।

सन्दर्भ सूची

1. अखण्ड़ ज्योति, फरवरी 2005।
2. वैदिक मनोविज्ञान, डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, विश्वभारती, अनुसंधान परिषद्, शांति निकेतन, ज्ञानपुर, वाराणसी।
3. वैदिक संहिताओं में विविध विधायें– डॉ. कृष्ण लाल, जे.बी. पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
4. मनोविज्ञान, कौल तथा सिंह, पृ. –13
5. योग मनोविज्ञान की रूपरेखा– शांतिप्रकाश आत्रेय, पृ. 6
6. युग निर्माण योजना–जनवरी 2005
7. Journal of the Indian Academy of Applied Psychology, Jan-July1999.
8. How mind Hurt and Heats the Body - Oakley Ray, Jan.2004

❑❑

डॉ0 राम कमल राय साहित्य की सरसता, सजग, संवेदना और सूक्ष्म विषद विवेचना की प्रवहमान त्रिवेणी थे। डॉ रामकमल राय अध्यपाक, लेखक और राजनीति के साथ–साथ एक यायावार भी थे। यात्राएँ उन्हें प्रिय थीं। वे मुक्त मन से पर्वत प्रदेशों और सुदूर अंचलों की यात्राएँ किया करते थे।

❖ कृपया उपरोक्त विषय पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख भेजकर रचनात्मक सहयोग देने का कष्ट करें।

59

ग्रामीण क्षेत्रों में लचर शिक्षा व्यवस्था तथा शैक्षिक स्तर के उत्थान में पुस्तकालयों की भूमिका

डॉ. आलोक श्रीवास्तव
(पुस्तकालयाध्यक्ष)
एम.एस.सी, एम.लिब.आई.एस.सी, एम.फिल., पी.एच.डी,
डी.बी.एस (पी.जी) कालेज कानपुर

भारत में 6 लाख, 41 हजार सौ 71 गाँव है, सबसे ज्यादा गाँव उत्तर प्रदेश में है, और सबसे कम गाँव चंडीगढ़ में है, उत्तर प्रदेश में 1लाख 7 हजार 7सेव 53 गाँव है, चंडीगढ़ में सिर्फ 13 गाँव है।

भारत की ज्यादातर आबादी आज भी गाँव में बसती है इसलिए भारत में ग्रामीण शिक्षा का विषय अत्यंत महत्वपूर्ण है। भले ही ग्रामीण छात्रों के स्कूल जाने की संख्या की संख्या बढ रही हो पर इनमें से आधे से ज्यादा छात्र दूसरी कक्षा तक की किताब पढ़ने में असमर्थ हैं।

भारत को एक मजबूत राष्ट्र बनाने की नींव प्राथमिक और ग्रामीण स्तर पर रखना जरुरी है ताकि शुरु से ही शिक्षा की क्वालिटी उत्कृष्ट हो। शिक्षा और पाठ्य पुस्तकों को दिलचस्प बनाया जाना चाहिए। ग्रामीण छात्रों के लिए पाठ्य पुस्तकें उनकी संस्कृति, परंपरा और मूल्यों से जुड़ी होनी चाहिए ताकि उनमें पढ़ाई को लेकर रुचि पैदा हो।

असल में प्राथमिक शिक्षा ही किसी व्यक्ति के जीवन की वह नींव होती है, जिस पर उसके संपूर्णजीवन का भविष्य तय होता है, लेकिन दुख इस बात का है कि शिक्षा का अधिकार अधिनियम–2009, 1 अप्रैल 2010 से प्रभावी तौर पर लागू है और इस अधिनियम को लागू हुए चार साल हो गए, लेकिन शिक्षा को लेकर जो हमारा सपना था वो कहीं भी रूप लेता नहीं दिख रहा। हम वहीं खड़े हैं, जहाँ से चले थे, अगर कुछ बदला है तो वह केवल समय और यही समय आज सवाल पूछ रहा है कि आखिर शिक्षा की दुर्दशा का जिम्मेदार कौन है? चार साल होने के बाद भी प्राथमिक शिक्षा अपने हाल पर रो रही है। दरअसल हमारे समाज में प्रतिभा की समझ नहीं है। सरकार का चाहे पूर्वाग्रह कहें या फिर वोट प्रेम वह योग्य शिक्षकों की व्यवस्था ही नहीं करना चाहती। उत्तर प्रदेश में प्राथमिक शिक्षा की हालत ऐसी है कि अधिकतर मध्यवर्ग के लोग अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम या मिशनरी स्कूल में पढ़ाने का प्रयास करते दिखाई देते हैं। और प्राथमिक स्कूल में झांकना तक नहीं चाहते। आखिर प्राथमिक शिक्षा की हालत क्यों खराब है? हमें समझना होगा कि देश की प्राथमिक शिक्षा का स्तर क्या है?

शिक्षकों की कमी –

जब विद्यालयों में शिक्षक ही नहीं होंगे तो बच्चों को पढायेगा कौन और कौन अभिभावक ऐसी स्थिति में अपने बच्चों का यहाँ दाखिला करवायेगा। गिरते शिक्षा स्तर का प्रमुख कारण शिक्षकों की कमी हैं। आँकडे चौंकाने वाले हैं, क्योंकि देश में कहीं–कहीं तो 200 बच्चों पर 1 शिक्षक ही तैनात है और कहीं–कहीं तो पूरा का पूरा विद्घालय शिक्षामित्र के सहारे ही चलता है।

मध्याहन भोजन योजना –

सरकार ने यह योजना इसलिए चलाई थी कि गरीब बच्चों को पोषकतत्व युक्त भोजन मिलेगा, जिससे उनके शारीरिक एवं मानसिक विकास में वृद्धि होगी। पर हकीकत में इस योजना से नुकसान ज्यादा हो रहा है। असल में सरकार बच्चों के शारीरिक एवं मानसिक विकास के लिए प्राथमिक व उच्च प्राथमिक बच्चे के लिए 100 से 150

ग्राम प्रतिदिन मीनू के अनुसार भोजन की व्यवस्था करती है, परन्तु यह योजना पूरी तरह से दलाली और भ्रष्टाचारियों के चुंगुल में फंसी है और इससे बच्चों की पढ़ाई पूरी तरह बर्बाद हो रही है। बच्चे पढ़ने के लिए कम सिर्फ भोजन के समय खाने में ज्यादा रुचि दिखाते हैं। ज्यादातर विद्यालयों में तैनात एक दो अध्यापक पल्स पोलियो, जनगणना, चुनाव जैसे तमाम गैर शैक्षिक कार्यों में लगे रहते हैं और बाकी समय बच्चों के मध्याहन भोजन में। खाना बनाने के लिए सरकार द्वारा बच्चों के हिसाब से कार्य करने वालों की व्यवस्था की गई है पर हकीकत में इतना सारा काम किसी एक के वश की बात नहीं। लिहाजा बच्चें भी इसमें हाथ बंटाते रहते हैं। असल में यह योजना विद्यालयों में भ्रष्टाचार का एक जरिया है। स्कूलों को मिलने वाला राशन खाद्य निगम या कोटेदार उपलब्ध कराता है। कोटेदार और प्रधानाध्यापक की इसमें सांठगांठ रहती है।

सामाजिक हकीकत –

प्राथमिक विद्यालयों की शिक्षा की बद से बदतर हालत के लिए कुछ हदतक हमारा समाज भी जिम्मेदार है। इसे दुर्भाग्य ही कहेंगे कि देश के अधिकतर अभिभावक मौजूदा तौर को देखते हुए अपने बच्चों को तो अंग्रेजी माध्यम या फिर मिशनरी स्कूल में पढ़ाना चाहते हैं, गाँव–गाँव तेजी से फैलती अंग्रेजी व मिशनरी शिक्षा के सामने सरकारी प्राथमिक शिक्षा की हालत देखते ही बनती है। शिक्षा का अधिकार व मध्याहन भोजन की योजना के बाद भी हम सही ढंग से खड़े नहीं हो पा रहे हैं। इस सच से इंकार नहीं किया जा सकता कि मध्याहन भोजन, वेशभूषा, साइकिल, पुस्तकों के लालच में कुछ प्रवेश तो बढ सकते हैं लेकिन हकीकत में प्राथमिक शिक्षा की दशा कुछ और ही है।

शिक्षकों का शोषण –

मध्याहन भोजन कैसे बनना है, उसके लिए सब्जी लाना, गैस–तेल–लकड़ी–कंड़े का इंतजाम कराना। बच्चों की पुस्तकों को बांटना, छात्रवृत्ति के लिए खाता खुलवाना, ड्रेस बांटना। वोटर लिस्ट का काम, जनगणना कार्य, पल्स पोलियों दवा पिलवाना, चुनाव डयूटी करना जैसे अनेकों कार्य शिक्षकों के जिम्मे हैं, सिवाये पढ़ाई के शासन/प्रशासन का पढ़ाई पर कम इन्हीं व्यवस्थाओं पर ज्यादा जोर रहता है। शिक्षक पूरे वर्ष इन्हीं सब योजनाओं का हिसाब किताब लगाते रहते हैं।

हम सबको इन सब समस्याओं का हल निकालने की जरूरत है, जिससे भारत में ग्रामीण शिक्षा से जुड़े हर मुद्दे को सुलझाया जा सके।

ग्रामीण क्षेत्रों की सामाजिक व्यवस्था को विकसित करने के लिए ग्रामीण लोगो को कृषि में प्रोत्साहन देकर, पशुपालन को बढ़ावा देकर, घरेलू उद्योग की सुविधा देकर ग्रामीण रोजगार को बढ़ाने की आवश्यकता है, तथा शिक्षा में कृषि पाठ्यक्रम, पशुपालन पाठ्यक्रम तथा ग्रामीण को स्वरोजगार का पाठ्यक्रम प्राथमिक विद्यालयों में पढ़ाया जाय। इससे अक्षर ज्ञान (साक्षरता) बढ़ेगा और ग्रामीण रोजगार स्वतः सृजित होगे। ग्रामीण पुस्ताकलय इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

राजनीति की बात नहीं कहते, क्योंकि वह पंगु हो गई है। सरकारें अपने स्थायित्व औ प्रभुत्व की समस्या से ही मुक्ति नहीं ले पा रही। समृद्धि और सफलता के सही अर्थ को समझना इनके बूते की बात कहाँ? ऐसे समय एक प्रश्न जो केवल शिक्षितों से ही किया जा सकता है? यह है कि इस विशाल जनसंख्या के बौद्धिक स्तर को उठाये बिना क्या राष्ट्र की प्रगति हो सकती है? सबसे बड़े वर्ग की सामाजिक, नैतिक, आर्थिक और मानसिक उन्नति किये बिना क्या राष्ट्र के भविष्य को समृद्धि और सफलता के द्वार तक पहुँचाया जा सकता है। यदि नहीं तो किन क्राँतिकारी उपायों द्वारा इन अभावों को दूर किया जा सकता है।

इस प्रश्न का सही उत्तर प्राप्त करने के लिये इतिहास के पन्ने पलटने पड़ेंगे। हम समृद्ध और सफल देशों के इतिहास की गहराई में प्रवेश करते हैं तो पाते है कि जिन देशों ने भी क्रांतिकारी सफलतायें पाई है, उसने पुस्तकालय स्थापना को आन्दोलन का रूप देकर ही प्रजा में प्रगतिशीलता के विचार और साहस जागृत किया है। 1876 तक अमेरिका ने जो प्रगति की और उसके बाद की शताब्दी में उसने जो उपलब्धियाँ प्राप्त कीं उसने पीछे

सिर्फ पुस्तकालयों का योगदान है।

अमेरिका ने 1876 में पुस्तकालय आन्दोलन की सर्वसम्मत योजना बनाई इसमें संचालन और व्यवस्था के लिये बड़े–बड़े कार्यक्रम बनाये गये। इस पर खर्च हुये धन को आज भी अमेरिका अपने विनियोग का सर्वोत्तम उपयोग मानती है। यहाँ के सभी सार्वजनिक संस्थानों के पास और कुछ हो या न हो पुस्तकालय अवश्य मिलेंगे।

जापान की औद्योगिक क्राँति में पुस्तकालयों का ही योगदान है। रूस ने 1921 में प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य की पर उन्होंने देखा कि इससे सामान्य जन–जीवन में विचार क्रांति के आसार कम है, फलस्वरूप अनेक विद्वान् व्यक्तियों की एक कमेटी नियुक्त की गई, कमेटी ने अपनी योजना प्रस्तुत करते हुए बताया कि सारे देश में पुस्तकालयों का जाल बिछा दिया जाना चाहिये। पुस्तकालय लोगों के मन जगा सकते है और उन्हें उन्नति तथा सामाजिक कर्तव्यों की भी प्रेरणा दे सकते हैं।

भारत में पुस्तकालयों की स्थिति तथा विकास की बात करें तो आज तो स्थिति कुछ और है पर कोई दिन था, जब भारतवर्ष में पुस्तकालयों की आवश्यकता को उसी प्रकार अनुभव किया गया था, जिस प्रकार आज के सभी प्रगतिशील देशों ने अनुभव की है। यहाँ ग्रामीण पुस्तकालयों के अतिरिक्त चलते फिरते पुस्तकालय भी होते थे। मनीषियों सन्तों समाज सुधारकों के पास हस्तलिखित पुस्तकों के भण्डार हुआ करते थे। वे जहाँ भी जाते थे लोगों को इन ज्ञान–दीपों का प्रकाश दिया करते थे। पुस्तकालयों से निरन्तर प्रेरणा मिलती रहने के कारण सामाजिक चेतना जीवित थी। अनुशासन था, सामाजिकता थी, कर्तव्य पालन के भाव थे, पांडित्य था, दर्शन था और वह सब कुछ था, जो आज उन्नत देशों में उपलब्ध है। राज्यकोष पुस्तकालयों में नालन्दा व तक्षशिला के पुस्तकालयों की अभी भी ख्याति है।

ज्ञान और विचार ही व्यक्तित्व के विकास का द्वार खोलते है, अज्ञानी व्यक्ति तो अधिक से अधिक पेट भर सकता है बच्चे पैदा कर सकता है। आज हमारी देश में यही सब हो भी हो रहा है। हमारे ज्ञान–स्रोत सूखे पड़े है, यहाँ भी लोगों को निरन्तर ज्ञान का प्रकाश मिलता रहे, ऐसी कुछ भी व्यवस्था नहीं है। हर शिक्षित व्यक्ति का यह उत्तरदायित्व होता है कि वह देश को अच्छा बनाने का प्रयत्न करे। पर हमारे सामने तो आज अपने आपको अच्छा बनने का ही उत्तरदायित्व बहुत काफी है। यदि इसे ही पूरा कर लें बहुत है। हम सबको इस देश के विकास व शिक्षा के स्तर को बढाने का प्रयास करना होगा और यह लक्ष्य पुस्तकालयों की स्थापना से ही पूर्ण होगा गाँव–गाँव पुस्तकालयों की स्थापना करनी होगी। चाहे वह सरकार द्वारा स्थापित किये जाये, या कुछ समाज सेवी संस्थाएँ जो जनहित में कार्य करती हैं उनके द्वारा अथवा हम सब मिलकर अपने–अपने गाँवों में क्षेत्रों में पुस्तकों का दान करके तथा कुछ आर्थिक सहयोग करके छोटे–छोटे पुस्तकालयों की स्थापना कर सकते है। तथा भारत को व अपने समाज को शिक्षित तथा आत्मनिर्भर बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकते है।

सन्दर्भ सूची

1. hindi.mapsofindia.com/my-india/india/rural-education-india
2. www. districtsinindia.com.
3. Library and society by Anil k. Dhiman
4. पुस्तकालय और समाज – ओमप्रकाश सैनी
5. पुस्तकालय और समाज – पाण्डेय, शर्मा
6. Library and society - S.D.Vayas

❑❑

पुस्तकालयों में सूचना प्रौद्योगिकी का बढ़ता प्रभाव

प्रेम प्रकाश यादव
वरिष्ठ प्रवक्ता–लाइब्रेरी
राजकीय महाविद्यालय, अकबरपुर, कानपुर देहात, उ0प्र0,

एक ऐसी प्रौद्योगिकी विकसित की जा रही है कि बिना पुस्तक खोले उसे पढ़ा जा सके। इसका उपयोग कई कामों में किया जा सकता है। इससे पुरानी या जर्जर किताबों को खोलने की जरूरत नहीं होगी। परन्तु उसे पढ़ा जा सकेगा। सूचना का मूल्य उसके निर्णय में योगदान पर निर्भर करता है, सूचना की सार्थकता समय पर उपलब्धता, सही स्थान पर उपलब्धता तथा सही समय पर निर्णय क्षमता पर निर्भर करता है। वर्तमान समय में ऐसा कोई क्षेत्र छूटा नही है जहाँ पर सूचना प्रौद्योगिकी का प्रभाव न हो। पुस्तकालय भी एक क्षेत्र है जो सूचना से प्रभावित हुये बिना नही रहा है।

सूचना प्रौद्योगिकी का आशय यह है कि सूचना तैयार करना, एकत्रित करने, प्रक्रिया करने, संग्रहण करने और प्रदान करने से है। सूचना संचार प्रौद्योगिकी एवं इलेक्ट्रानिक मीडिया विश्व का सबसे बड़ा उद्योग बनता जा रहा है। सूचना प्रौद्योगिकी के आधार स्तम्भ टेलीविजन, कम्प्यूटर, मोबाइल और इन्टरनेट है।

पुस्तकालयों में परिवर्तन सूचना प्रौद्योगिकी के कारण हो रहा है। पहले पुस्तकालयों में सभी कार्य परम्परागत तरीको से होते थे और समय ज्यादा लगता था परन्तु सूचना प्रौद्योगिकी के आ जाने से पुस्तकालयों की कार्य प्रणाली में अभूतपूर्व परिवर्तन आया है। सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग करके पुस्तकालयों में आधुनिक सेवायें प्रदान की जा रही है। इसकी सहायता से सही व्यक्ति को सही समय पर, पुस्तकालय अपनी सेवायें सुचारू रूप से प्रदान कर रहा है।

पुस्तकालयों में सूचना प्रौद्योगिकी की आवश्यकता क्यों पड़ी ? इसका कारण हम सभी को खोजना पड़ेगा। काफी प्रयास करने के उपरान्त निम्न कारण हमारे सामने दृष्टिगोचर होते है। सूचना में तीव्र वृद्धि के कारण, सूचना को मशीनी रूप में उपलब्ध होने के कारण, पुस्तकालय में बेहतर पुस्तकालय सेवायें प्रदान करने के लिये, पुस्तकालयों में सूचना का संग्रह, वितरण हेतु, संसाधन बटवारा हेतु, चयनित सूचना प्रसार सेवा एवं सामयिक अभिज्ञता सेवा हेतु, सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से स्थानीय, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय नेटवर्क हेतु इत्यादि।

पुस्तकालय और सूचना विज्ञान के क्षेत्र में सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग सूचना संग्रह करने, सूचना पुनर्प्राप्ति और सूचना प्रसारण में किया जाता है। सूचना प्रौद्योगिकी को अपनाकर पुस्तकालयाध्यक्षों और पुस्तकालय वैज्ञानिकों के द्वारा पुस्तकालय कार्यो में तीव्र गति लाई जा सकती है। इससे धन एवं समय की बचत होती है।

सूचना प्रौद्योगिकी की विस्तृत जानकारी हेतु पुस्तकालयाध्यक्षों, सूचना वैज्ञानिकों, पुस्तकालय प्रोफेशनल कर्मचारियों और अधिकारियों को वृहद स्तर पर ट्रेनिंग की व्यवस्था की जानी चाहिये जिससे सूचना का सही प्रकार से उपयोग हो सके। पुस्तकालय में पर्याप्त मात्रा में कम्प्यूटर, सी0डी0रोम, इत्यादि की व्यवस्था तथा पुस्तकालय का विस्तृत डेटा तैयार करके पाठको के सम्मुख प्रस्तुत करना चाहिये जिससे पाठक पुस्तकालय की सभी गतिविधियों तथा पाठ्य सामग्री से अवगत हो सके। इसमे सूचना प्रौद्योगिकी का महत्वपूर्ण योगदान है। साहित्य के तीव्रगति या साहित्य के विस्फोट से सूचना को संभालना मुश्किल हो गया है। इसमें सूचना को संभालने हेतु सूचना प्रौद्योगिकी का महत्वपूर्ण योगदान है। वर्तमान समय में साहित्य इतनी तीव्र गति से प्रकाशित हो रहा है कि उसको संग्रहित और सुरक्षित रखना और मुश्किल साबित हो रहा है।

सूचना को सुरक्षित रखने हेतु, संग्रहित हेतु, पुर्नप्राप्ति हेतु, प्रसारण हेतु सूचना प्रौद्योगिकी की आवश्यकता महसूस हुई और उसका उपयोग तीव्र गति से हो रहा हैं। पुस्तकालय में विभिन्न प्रकार के कार्य जैसे पुस्तक चयन, संग्रहण, सूचीकरण, वर्गीकरण, प्रलेखन सेवा, संदर्भ सेवा इत्यादि हेतु बहुत समय लगता था। परन्तु सूचना

प्रौद्योगिकी के माध्यम से बहुत ही कम समय में पूर्ण हो जाते है। सूचना को पाठको तक शीघ्र पहुँचाने हेतु सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग हो रहा है तथा पुस्तकालयों और सूचना केन्द्रो पर होने वाली देरी से छुटकारा पाने हेतु सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग हो रहा है। वर्तमान समय में पुस्तकालय के सभी विभागों में सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग हो रहा है। कम्प्यूटर जनित कार्य शुद्ध, सार्थक और तीव्र गति से होते है। इससे धन और समय की बचत होती है।

पुस्तकालयों में सभी आकड़े सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से एकत्रित हो रहे है। सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से पुस्तक चयन, पुस्तक आर्डर इत्यादि कार्य किये जा रहे है। पाठक को मनचाही पाठ्य पुस्तक बिना समय गवाये मिल जाये, इसके लिये सूचीकरण के कार्य को किया जाता है। कम्प्यूटर की सहायता से सूचीकरण के कार्य शुद्धता और शीघ्रता से हो जाता है। सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग करके सूचीकरण का कार्य शीघ्रता, मितव्ययिता से किया जा सकता है।

सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से पत्र पत्रिका का नियंत्रण का कार्य सुचारू रूप से किया जा सकता हैं जैसे किस पत्रिका को नवीन आर्डर देना है कौन सी पत्रिका की अवधि समाप्त हो रही है कौन सी पत्रिका नही आई है इत्यादि कार्य सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से आसानी से हो सकते है। पत्रिका का संचालन अद्यतन रहता है।

सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से पुस्तकालयों मे पुस्तको का आदान–प्रदान आसानी से हो जाता है। भौतिक सत्यापन आसानी से हो जाता है। कम्प्यूटर बार कोड और साफ्टवेयर से परिसंचरण कार्य आसानी और शीघ्रता से हो रहा है।

पुस्तकालयों के बजट, सांख्यिकी आदि के आकड़े सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से शीघ्रता एवं शुद्धता से हो जाते है। संदर्भ सेवा, अन्तः पुस्तकालय ऋण सेवा, सामयिक अभिज्ञता सेवा, चयनित प्रसार सेवा, प्रलेखन प्रदान सेवा को सुचारू रूप से गतिमान और तीव्र बनाने हेतु सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग किया जा रहा है।

वर्तमान समय में सूचना प्रौद्योगिकी का प्रमुख कार्य सूचना संग्रहण एवं पुर्नप्राप्ति ही है। वर्ड प्रोसेसर के माध्यम से 1,50,000 सूचनायें एक साथ एकत्रित की जा सकती है और तीव्र गति से वांछित सूचनायें विशेष समय पर पुर्नप्राप्ति की जा सकती है।

पुस्तकालयाध्यक्षो और सूचना वैज्ञानिकों द्वारा सूचना के संग्रह हेतु और पुर्नप्राप्ति हेतु माइक्रो फिल्म, माइक्रो कार्ड, माइक्रो फिस, कम्प्यूटर आउटपुट, माइक्रो फिल्म इत्यादि का प्रयोग हो रहा है। यह सब सूचना प्रौद्योगिकी की देन है।

इन्टरनेट के माध्यम से इन्टरनेट रिले कार्ड, वीडियो कान्फ्रेसिंग इत्यादि कार्य हो रहे है। इससे धन तथा समय की बचत हो रही है।

सूचना प्रौद्योगिकी के आ जाने से पुस्तकालय में कम्प्यूटर जनित सुविधाओं का बोल बाला हो गया है। पुस्तकालय के सभी प्रोफेशनल पुस्तकालय की डिग्री के साथ–साथ कम्प्यूटर की डिग्री तथा जागरूकता की आवश्यकता महसूस हुई है।

आज सूचना का युग है। आज के समय में सूचना महत्वपूर्ण हो गयी है। पल–पल नई–नई सूचनायें आ रही है। उन्हे संग्रहित करना और पुनः प्राप्त करना कठिन हो गया है परन्तु कम्प्यूटर या सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से यह कार्य भी सरल हो गया है। इससे समय के साथ–साथ धन की भी बचत हो रही है। आज पुस्तकालय में इन्टरनेट का उपयोग बढ़ रहा है। पाठको की मांग दिन प्रतिदिन बढ़ रही है। सूचना दिन प्रतिदिन नई–नई आ रही है। इन सब का नियंत्रण सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से ही सम्भव है।

आज पुस्तकालय प्रोफेशनल को सूचना प्रौद्योगिकी या कम्प्यूटर के ज्ञान की अतिआवश्यकता है। यह समय की मांग है, यह पाठको की मांग है। पुस्तकालय की तस्वीर दिन प्रतिदिन बदलती जा रही है। कहाँ पहले ताम्र पत्र पर, फिर कागज पर सूचनायें एकत्रित रहती थी। परन्तु आज सी0डी0, पेनड्राइव पर सूचनायें उपलब्ध हो रही है।

एक ऐसी टेक्नोलॉजी विकसित की जा रही है कि बिना पुस्तक खोले उसे पढ़ा जा सके। इसका उपयोग

कई कामों में किया जा सकता है इससे पुरानी किताबें या जर्जर किताबों को खोलने की जरूरत नही होगी। परन्तु उन्हे पढ़ा जा सकेगा। दुनिया भर में कई ऐसी लाइब्रेरी है जहाँ ऐसी पुस्तके है जो सदियों पुरानी है। इनकी देखभाल करने वाले नही चाहते है कि उन्हे कोई छुएँ भी। क्योंकि पुस्तको का फटने और नष्ट होने का भी खतरा बना रहता है। इनका रखरखाव के साथ–साथ डिजिटल प्रिन्ट रखना भी मुश्किल हो रहा है। जब शोध–अनुसंधान के दौरान जब पुस्तकों का उपयोग होता है तब उन्हे पलटना मुश्किल होता है क्योंकि खतरा बना रहता है कि यह कहीं नष्ट या फट ना जाये। कैब्रिज के मैसाच्युसेट्स इंस्टिट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी (एम0आई0टी0) के वैज्ञानिकों ने इस टेक्नोलॉजी के लिये टेट्राहर्ट्ज रेडियन का उपयोग किया है। यह एक्सरे इस मामले में अच्छी है कि यह स्याही और कागज के अन्तर को भी पकड़ लेता है। यह इनके हाई रिजॉल्यूशन इमेज भी देता है।

एम0आई0टी0 के इलेक्ट्रिकल इन्जीनियर वरमक हशमत का कहना है कि अभी इस टेक्नोलॉजी को हम और विकसित करने में प्रयासरत है। अभी 20 पेज तक की चीजे/पाठ्य सामग्री पढ़ी जा सकती हैं लेकिन 8 पेज के बाद चीजे धुंधली होने लगती है। जल्दी ही इस समस्या का समाधान कर लिया जायेगा और मोटी किताबों को बिना खोले इनके प्रिन्ट निकाल लिये जायेगे।

निष्कर्ष रूप से यह कह सकते है कि अभी सूचनाओं की मांग पाठको द्वारा महानगरों, नगरों में तेजी से हो रही है। पुस्तकालय में कम्प्यूटर के क्रय हेतु धनराशि व्यय की जा रही है। पुस्तकालय को डिजिटल पुस्तकालय बनाया जा रहा है। पुस्तकालय को ई–पुस्तकालय बनाया जा रहा है। आज भारत के पुस्तकालयों की तस्वीर बदल रही है और दिन प्रतिदिन बदलती जायेगी। भविष्य में एक ऐसी प्रौद्योगिकी आने वाली है जो पुस्तक को खोले बिना पढ़ा जा सकेगा। इससे यह फायदा होगा कि जो पुरानी या जर्जर पुस्तके है, जो नष्ट हो सकती है उन्हे छुए बिना भी पढ़ा जा सकेगा।

पुस्तकालयों में सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग इस कदर बढ़ गया है कि कुछ पल में विश्व की कोई भी नवीनतम सूचना उपलब्ध हो जाती है। सूचना प्रौद्योगिकी का प्रभाव पुस्तकालयों में दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। एक पेनड्राइव में पूरी लाइब्रेरी को लेकर घूम सकते है और मनचाही सूचना पल भर में प्राप्त कर सकते है। यह सब सूचना प्रौद्योगिकी का ही कमाल है। जो विश्व भर में दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है।

सूचनायें दिन प्रतिदिन तीव्र गति से बढ़ रही है उसके साथ–साथ सूचना प्रौद्योगिकी भी तीव्र गति से बढ़ रही है। इसलिये सूचना वैज्ञानिकों तथा पुस्तकालय प्रोफेशनल एवं आम नागरिक को नई–नई सूचना प्रौद्योगिकी से अद्यतन रहना होगा। जिससे वह नवीनतम सूचनाओं का लाभ उठा सके।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा, एस0के0 : पुस्तकालय प्रशासन एवं प्रबन्ध – नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 1999।
2. Ali, Amjad : Information Technology and Libraries – Delhi : Ess Ess Pub., 2004
3. शर्मा, प्रहलाद : कम्प्यूटर और पुस्तकालय – जयपुर : अंकित पब्लिकेशन्स, 2002
4. सिंह, प्रमोद कुमार : डिजिटल लाइब्रेरी – नई दिल्ली, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, 2015
5. 14 सितम्बर 2016 दैनिक जागरण कानपुर।
6. सिंह, आर0के0 एवं अन्य : आधुनिक पुस्तकालय – नई दिल्ली : यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, 2014
7. व्यास, एस0डी0 : पुस्तकालय एवं समाज – जयपुर : पंचशील प्रकाशन, 1992
8. Gopal, K : Digital Libraries in electronic information Era – New Delhi : Author press, 2000
9. Nazeer Badhusha, K : Digital Library Architecture – New Delhi : Ane Books India, 2008.
10. Malwad, N.M. etal(ed.) : Digital Libraries : Dynamic store house of digitized information – New Delhi : New Age international, 1996
11. Jain, M.K. and Jain, Nirmal : Teaching Learning Library and Information services : A manual – Delhi : Shipra Publication, 2008

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

61

पर्यटन उद्योग में ऐतिहासिक स्थलों की उपादेयता

(पाल कालीन मूर्ति शिल्पकला के स्थलों के सन्दर्भ में)

डा0 संजू
वरिष्ठ प्रवक्ता–इतिहास
राजकीय महाविद्यालय अकबरपुर, कानपुर देहात

जब हम अपने स्थायी निवास से किसी दूसरे स्थान पर भ्रमण करने निकलते है तो हमारी यह यात्रा पर्यटन कहलाती है और हम पर्यटक जब देश के भीतर ही एक राज्य से दूसरे राज्य में यात्रा की जाती है तो उसे घरेलू पर्यटन कहा जाता है। एक देश से दूसरे देश में कुछ समय के लिए घूमने के उद्देश्य से जाना अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटन की श्रेणी में आता है जहाँ अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटन शान्ति के लिए पारपत्र सिद्ध होता है, वही घरेलू पर्यटन राष्ट्रीय एकता में सहायक होता है, श्रीलंका, स्विटरलैण्ड, सिंगापुर, इण्डोनेशिया, मॉरिशस, मलेशिया, थाईलैण्ड, हांगकाग, नेपाल सहित अनेक देशों की अर्थव्यवस्था सिर्फ पर्यटकों पर निर्भर करती है। राष्ट्रमण्डल खेलों के आयोजन को ध्यान में रखते हुए घरेलू और विदेशी पर्यटकों को आकर्षित करने के लिए अतुल्य भारत और अतिथि देवी भव जैसे अभियान चलाए जा रहे है भारत पर्यटन के ब्राण्ड के रूप में भारत में पर्यटन ने अपना विशेष स्थान बनाया है।

पर्यटन के विभिन्न आयाम

1. ग्रामीण पर्यटन :

इस समय पर्यटन के लिए लोग ऐसे वैकल्पिक स्थानों को चुन रहे है, जहाँ उन्हें तन–मन का सुकून भी प्राप्त हो सके और वे अपनी पुरानी विरासत और भारतीय सभ्यता की जड़ो को भी नजदीक से निहार सके। ग्रामीण पर्यटन की अवधारणा काफी हद तक नई है, लेकिन अर्थव्यवस्था में यह महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है, शहरों में चौबीस घण्टे व्यस्त रहने वाले लोग काम के तनाव से मुक्त होने और नई ऊर्जा हासिल करने के लिए शहरों से दूर गाँवों में शुद्ध वातावरण में कुछ समय बिताना चाहते है ग्रामीण पर्यटन की इस अवधारणा पर भारतीय गाँव खरे उतरते है। दसवीं पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण पर्यटन के विकास के लिए ध्यान दिया गया। जैसे बगीचों, अहाते की दीवार आदि का विकास, पंचायत की सीमाओं के अन्तर्गत सडकों का सुधार गाँव में प्रकाश की व्यवस्था, ठोस, अपशिष्ट प्रबन्धन और मल व्ययन प्रबनधन (केवल पूंजी लागत) में सुधार, मार्गस्थ सुविधआों का निर्माण, स्मारकों का सौन्दर्यीकरण प्रतीक चिन्ह, पर्यटक आवास आदि।

2. साहसिक पर्यटन :

साहसिक पर्यटन विदेशी पर्यटकों को अपनी और आकर्षित करने का एक बेहतरीन जरिया बन सकता हैं साहसिक पर्यटन में पर्वतारोहन, ट्रेकिंग, स्केटिंग, रॉक क्लाइविंग पैरा ग्लाइकिडंग वन्य जीव–जन्तुओं वाले अभयारण्यों तथा जंगलों की सैर आदि भी शामिल है।

3. चिकित्सा पर्यटन :

चिकित्सा पर्यटन एक ऐसा क्षेत्र है, जो स्वतः विकसित हो रहा है, इलाज सस्ता होने के कारण पडोसी देशों सहित अमरीका, ब्रिटेन से भी लोग इलाज कराने भारत आ रहे है, अर्थात् सैर के साथ–साथ इलाज भी भारत में विदेशों से कई पर्यटक सस्ते इलाज के अतिरिक्त गुणवक्ता के कारण भी आकर्षित हो रहे है चिकित्सा पर्यटन में ही आयुर्वेद की पंचकर्म क्रियाएं भी शामिल हो चुकी है पंचकर्म, तनाव, मुक्ति, मोटापा घटाना और कायाकल्प

चिकित्सा आदि कुछ ऐसे लोकप्रिय पैकेज है, जिन्हें पर्यटकों ने बहुत पसन्द किया है केरल ने सबसे पहले पंचकर्म को चिकित्सा पर्यटन से जोड़कर प्रचारित किया जो सफल रहा है भातर के दक्षिण भारतीय चेन्नई को भारत की चिकित्सा राजधानी घोषित किया गया है क्योंकि भारत में आने वाले विदेशी चिकित्सा पर्यटकों में से 45 प्रतिशत ही कुल घरेलू स्वास्थ्य पर्यटकों में से 30 से 40 प्रतिशत चेन्नई आते है।

4. क्रूज पर्यटन :

भारत के विशाल समुद्री तटों और उसके आसपास प्राकृतिक सौन्दर्य से भरपूर स्थलों की ओर देशी विदेशी पर्यटकों को आकर्षित करने के लिए कूज पर्यटन को विकसित किया जा रहा है। इसके अन्तर्गत सुविधाओं से युक्त छोटे जहाजों के बेड़े तैयार किए जाने की योजना है ये बडे पर्यटकों को भारत के नैसर्गिक सौन्दर्य का दर्शन करवाऐंगे। वर्ष 2004–05 से भारतीय बन्दरगाहों पर उतरने वाले ओशन कूज विदेशी लाइन पर्यब्क की संख्या बढ़ रही है।

5. सांस्कृतिक पर्यटन :

पर्यटन के मामले में केरल नए–नए प्रयोग करने की दृष्टि से अन्य राज्यों से काफी आगे है केरल ने मुख्य रूप से आयुर्वेद और अन्य भारतीय चिकित्सा पद्धतियों की मदद से अपने यहाँ स्वास्थ्य पर्यटन का सफल प्रयोग किया है अब यहाँ सांस्कृतिक पर्यटन का सफल प्रयोग हो रहा है।

6. धार्मिक पर्यटन :

हमारे देश में धार्मिक पर्यटन अपनी अहमू भूमिका निभा रहा है देश में सबसे अधिक धार्मिक पर्यटन से रोजगार पैदा हो रहे है, देशी पर्यटन से रोजगार पैदा हो रहे है देशी पर्यटक तो अपनी धार्मिक भावनाओं के कारण धार्मिक स्थलों का भ्रमण तो करते ही है परन्तु विदेशी पर्यटक इन स्थलों पर शान्ति की तलाश में आ रहे है अतः विदेशी पर्यटकों को इस ओर आकर्षित करने के लिए और अधिक सुविधाऐं बढ़ाने की आवश्यकता है।

7. ऐतिहासिक पर्यटन :

धार्मिक पर्यटन के बाद ऐतिहासिक पर्यटन की उन्नति की भी खूब संभावनाएँ है। देश में ऐतिहासिक स्थलों की कमी नहीं है, परन्तु उनके उचित रख–रखाव में चूक हो रही है केन्द्रीय सरकार ने इस बात को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय महत्व के स्मारकों के रख–रखाव के लिए यूनेस्कों की सिफारिशों के आधार पर जापान बैंक आफ इण्टरनेशनल कोआपरेशन से आर्थिक मदद लेने का निर्णय किया इसके अन्तर्गत महाराष्ट्र में अंजता, एलोरा, पितलखेरा गुफाओं का संरक्षण और रविकास के लिए मध्यप्रदेश में सांची, सतधारा स्थित बौद्ध स्मारकों के संरक्षण के लिए जापान सरकार में सहायता मिल रही है।

सरकार ने सभी स्मारकों/स्थलों का डाटाबेस तैयार करने के लिए राष्ट्रीय स्मारक तथा पुरावशेष मिशन की स्थापना की है। 3675 प्राचीन स्मारकों/पुरातत्वीय स्थलों अवशेषों को राष्ट्रीय महत्व के स्मारकों के रूप में घोषित किया गया है। इनका रख–रखाव तथा संरक्षण भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा किया जाता है। प्राचीन संस्मारक तथा पुरातत्वीय स्थल और अवशेष अधिनियम 1958 की धारा 4 के अनुसार संरक्षण प्रस्तावों का मूल्यांकन करने के लिए भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की एक आंतरिक समिति है, जिसमें पुरातत्व/इतिहास के विशेषज्ञ हैं।

8. कारवां पर्यटन :

भारत में बृहत भू–भाग और भू–दृश्यों के बाहुल को देखते हुए कारवां और कारवा पार्क निश्चय ही पर्यटन में एक नया आकर्षक पहल हैं।

9. रोजगार सृजन :

पर्यटन को अगर सही मायने में देख जाए तो कई विशिष्ट व्यवसायों का समूह है इसमें होटल व्यवसाय,

एयरलाइंस, टूर आपरेटर, मनोरंजन उद्योग, लोक कलाओं से जुड़ी विविध विधाओ जैसे– कठपुतली, नट, जादूगरी पर्यटन, आधारित साहित्य रचयिता, वृत्त चित्र निर्माण, हस्तशिल्प कर्मी ट्रेवल एजेनसी, आपरेटर आदि शामिल है देश में व्याप्त बेरोजगारी को दूर करने के लिए पर्यटन का बहुमुखी विकास रोजगार के अवसरों का सृजन कर सकता है।

पालकालीन मूर्ति शिल्पकला के स्थल :–

भारत वर्ष का स्वर्णयुग गुप्तकाल के बाद उत्तर व उत्तर पूर्व भारत में पाल काल राजनीतिक तथा सांस्कृतिक दृष्टिकोण से उन्नति की पराकाष्ठा का युग था, पाल काल में खासकर मूर्त शिल्प कला के क्षेत्र में अभूतपूर्व उन्नति हुई, मूर्तिकला और स्थापत्य कला निर्माण के इस युग में कितनी ही कलाकृतियों का प्रणयन किया गया, जो इतिहास की बेशकीमती धरोहर के रूप में आज भी मौजूद है। जिसे कहीं कहीं निर्माण क्षेत्र के आधार पर मगध वंश शैली कहा गया।

तीन सौ साल से अधिक समय तक विशाल भू–खण्ड में आबाद रहें पाल वंश ने मुख्यतः प्राचीन बंगाल और बिहार पर शासन किया, जिसे आज बिहार पश्चिम बगला, असम, बांग्लादेश, झारखण्ड व ओडिशा की सीमावर्ती भूमि क रूप में जाना जा सकता है इस काल में मूर्ति निर्माण की नई नवीन शैली का विकास हुआ जिसके अन्तर्गत मुख्यतः बौद्ध, हिन्दू, और जैन धर्म से जुड़े दीव विग्रह, उनके सहायक, सहयोगी, अनुचर, वावहनादि के साथ–साथ मन्दिरों, चैत्यों, विहारों और स्मारकदि का निर्माण कराया गया, इसे उच्च शैली (मध्यकालीन कला की पूर्व शैली) भी कहा जाता है। जिसे कहीं कहीं निर्माण क्षेत्र के आधार पर मगल वंश शैली में कहा गया हैं।

आठवीं शताब्दी से पूर्वी भारत में धातु और दोनों मिलाकर मूर्ति निर्माण की एक अलग शैली का जो जन्म हुआ वह पाल वंश के संस्थापक राजा के योग्य पुत्र धर्मपाल के जमाने की है जिन्हे पाल वंश का प्रथम मानना स्वीकार जाता हैं इसकी विशेषता यह है कि गहरा भूरा अथवा काला पत्थर पालिश करने पर यह धातु के सदृश्य चमकने लगता है इतिहासकारों का माननता है कि इस काल की प्रतिमाओं ने नूतन आध्यात्मिक एवं धार्मिक विश्वासों की एक नई पूजा पद्धति को जन्म दिया है। अलंकारिक अभिव्यंजना से पूर्ण में मूर्तियों मगध–वंश ,शिल्प परम्परा का प्रतिनिधित्व करती है।

ऐसे तो इस युगे में कितनी ही अमूल्य व अनूठी मूर्ति, स्मारक और कलाकृति आदि का निर्मूण हुआ पर विविध शैलीयुक्त तथागत की अनगिनत प्रतिमाएँ इसी युग में बनाई गई, मानों बुद्ध; का पुर्नअवतार इसी युंग में हुआ पंचध्यानी बुद्ध यथा अमोध सिद्धि, रत्न संभव, वैरोचन, अक्षोभ्य व अभिताभ के साथ–साथ मंजू श्री, अवलोकि तेश्वर, मैत्रेय, बोधिसत्व, लोकेश्वर, तारा हरिती, वज्रपाणि, महाप्रतिसिरा, खर्पण, जम्भल, भकृटि, प्राज्ञपारमिता, मारिची आदि के विग्रह को इस युग में एक अलग पहचान मिली।

पालकालीन मूर्ति शिल्प कला का सर्वविशिष्ट केन्द्रों में एक है नालन्दा जो आज बिहार की राजधानी पटना से तकरीबन 80 किमी दूरी पर स्थित अपने पुरातन विश्वविद्यालयी खण्डहर हेतु विश्व प्रसिद्ध हैं पाल वंश में खासकर धर्मपाल और देवपाल के जमाने में नांलदा का विश्वविद्यालय अपनी उन्नति की चरम सीमा पर था यहाँ से प्राप्त बोधिसत्व मूर्तियों में प्रतिमाशास्त्रीय परम्परा के निर्वाह के साथ ही साथ उत्तम शिल्प कला का भी दर्शन होता है इस युंग में देवपाल द्वारा एक विशालकाय बुद्ध मूर्ति को विश्वविद्यालय में दान की सूचना का विवरण मिला है। यहॉ पर पर्यटकों का आना जाना वर्ष भर लगा रहता है।

पालकालीन कला केन्द्रों में बोधगया का सुनाम है, यह गौरव की बात है कि पाँच–पाँच राजा यथा धर्मपाल, देवपाल, नारायणपाल, नयपाल और गोविन्द पाल ने तथागत की ज्ञानोदीप्त भूमि बोधगया के साथ साथ पुरातन तीर्थ गया अपर विशेष रूचि ली और भगवत्समर्पण में यहॉ कितने ही निर्माण काय्र करवाये गया गदाधर, वृद्ध परपिता महेश्वर, श्री वटेश्वर, मार्कण्डेश्वर, अगोधगया का प्रधान आकर्षण महाबोधित महाविहार में स्थापित मुख्य प्रतिमा के अलावे यहॉ सैकड़ों पालकालीन कलाकृति हैं।

पालकालीन मूर्त शिल्प केन्द्रों में विक्रमशिला का नाम आज भी आदर के साथ लिया जाता है जहाँ उस जमाने में एक शानदार विश्वविद्यालय स्थापित था, बिहार के भागलपुर से 69 किमी. दूर आन्तीचक के नजदीक पथघण्टा नामक स्थान पर पालवंशी राजा द्वारा स्थापित विक्रमशीला विश्वविद्यालय लगभग आठवीं से बारहवीं शताब्दी तक नालन्दा विश्वद्यिालय की भाँति शिक्षा के क्षेत्र में महान कार्य किया, आगे वर्ष 1203 ई. में मोहम्मद बख्तियार खिलजी के आतूंकोपरान्त इस विश्वविद्यालय का अवसान हो गया। पुरातत्व विभाग द्वारा संरक्षित इस क्षेत्र विशेष के विकासाथ्र कुछ कार्य भी हुए है, जिनमें संग्रहालय निर्माण प्रमुख है, विक्रमशिलाके सन्निकट वटेश्वर नामक एक पालकालीन स्थल है जहॉ से हिन्दू और बौद्ध दोनों ही कलाकृति प्राप्त हुई है ऐसे अंग प्रदेश की राजधानी चम्पा क्षेत्र से भी पालकाल के कुछ शिल्पकृतियाँ हस्तगत हुई हैं पालकालीन मूर्त शिल्प केन्दो में गुरारू के आगे मथुरापुर के नकिट देवकली (गया) नामक ग्राम है जिसे आजकल देकुली कहा जाता है।

राजगीर से 38 किमी और गया से 32 किमी दूरी पर अवसिथत कुर्किहार को उस जमाने में मूर्त शिल्प निर्माण में महारथ हासिल था, तभी तो यहाँ के शिल्पियों की चर्चा पुरातन ग्रन्थों में मिलती है, वर्ष 1930 में यहाँ से पालकालनी मूर्त शिल्प का विशाल भण्डार मिला था जिसमें यहाँ से प्राप्त 163 कास्य की उत्कृष्ट प्रतिमाएं भारतीय कला जगत की अमूल्य निधि के रूप में आज भी पटना संग्रहालय में प्रदश्रित है आज भी यहाँ के बागेश्वरी मन्दिर परिसर में दो दर्जन से अधिक तथा कम के विग्रह वैशिष्टता को आत्मसात् किए हुए है जिसे देखने वर्षभर दूर देश के शोधार्थी आते रहते हैं।

पटना गया रेलखण्ड पर मखदुमपुर रेल्वे स्टेशन से 7 किमी दूरी पर दरद्या नदी के किनोर एक पुरासील धेंजन है, यहॉ के समुद्र मन्दिर का फोटोग्राफ राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली में भी प्रदर्शित हैं। यहाँ गाँव के बीच भाग में पुरातत्व विभाग द्वारा संरक्षित और लोहे के जाली लगे एक कक्षा में तथागत की मूर्तियों को देखा जा सकता है, जिनकी आभा पालकालीन है।

बेगुसराय से 24 किमी दूरी पर स्थित है जयमंगला गढ यह स्थल वेस भी गुप्तमाकलीन खासक उत्तर गुप्तालीन है पर पालकाल में यहॉ की ख्याति की खूब चारों ओर प्रचारित प्रसारित हुई। यह बिहार के सबसे बड़े कावर झील के साथ भूभाग पर विराजमान है जहाँ हिन्दू बौद्ध दोनों का आगमन बना रहता है।

नवादा के वारसलीगंज से करीब 6 किन्ही दूरी पर अपसढ़ नामक गाँव उत्तर गुप्तवंश की राजधानी के रूप में रहा, इसी गाँव में स्थित 120 फीट ऊँचे टीले पर एक धमकेदार तथागत की मूर्ति का ऊपरी भाग देखा जा सकता है, जिनके मुकुट की शिल्पकगृति नवीन पाल शैली युक्त है। हानाबाद जिले मे ंअवथित व पुरातन काल में धारानगरी के नाम से प्रसिद्ध एक जाग्रत पुरास्थल है जहॉ से आज भी यदा कदा पालकालीन कलाकृतियॉ प्राप्त होती रहती है।

वर्तमान में बांग्लादेश के राजशाही कोटिवर्ष में अवस्थित पहाड़पुर इस युग के निर्मित उत्कृष्ट मूर्तियों का केन्द्र था पहाडपुर की मूर्तियों में कई युगों की मूर्तिकला के चिन्ह स्पष्ट होते है। ये सभी पालकालीन कृतियॉ और स्थल भारतीयों के लिए बहुमूल्य, विशिष्ट व अमूल्य उपहार हैं, जिन्हें सहेज–संवार कर रखना हमारा कर्तव्य है।

पर्यटन के क्षेत्र में ऐतिहासिक स्थलों के विकास हेतु प्रयत्न :

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत में पर्यटन उद्योग के लिए अनेक महत्वपूर्ण। कदम उठाए गए हैं। सरकार ने वर्ष 1949 में पर्यटन सुविधाओं में समन्वय के लिए परिवहन मंत्रालय में एक पर्यटन प्रकोष्ठ बनाया। पर्यटन और भ्रमण उद्योग के लिए कई सुविधाओं की घोषणा की गई है, तसके। विदेशी पर्यटकों के मनमुताबिक पर्यटन स्थलनों के निकट सुख–सुविधा की व्यवस्थ ाकी गई हैं बेड एण्ड ब्रेकफ्रास्ट योजना भी पर्यटकों को लुभाने के लिये बनाई गई है। बेड एण्ड ब्रेकफास्ट योजना का उद्देश्य विदेशी और घरेलू पर्यटकों के लिए स्वच्छ और वहन करने योग्य स्थान उपलब्ध कराना और स्थानीय त्यौहारों और परम्पराओं एवं सही स्थानीय भोजन का आनन्द लेते हुए उन्हें भारतीय परिवार के साथ रहने का अवसर प्रदान करना है।

समस्याऐं एवं सुझाव :

भारत में पर्यटक स्थलों पर महंगाई अधिक है वहाँ के स्थानीय व्यक्ति पर्यटकों से अधिक धन कमाना चाहते है। देश के अनेक प्रमुख पर्यटक स्थल वायुमार्ग तथा रेलमार्ग से जुड़े नहीं है। भिखारियों द्वारा भी पर्यटकों को तंग किया जाता है। यह स्थिति धार्मिक पर्यटन स्थलों पर अधिक होती है। भारतीय पर्यटन कार्यक्रमों से प्रतिस्पर्धात्मक उत्कृष्टता नहीं हैं पर्यटन उद्योग को सरकारी प्रयासों के माध्यम से चाहे कितना बढ़ावा मिलता रहे, उससे इस उद्योग का सम्पूर्ण विकास नहीं हो सकता। जब तक कि स्थानीय लोगों का सहयोग न मिले, इसके लिए आववश्यक है कि स्थानीय लोगों को लाभ मिलें और वे इस उद्योग को अपनाए। विश्व में पर्यटन उद्योग ही एकमात्र? ऐसा उद्योग है जो सम्पूर्ण विश्व को एक परिवार आपसी भाईचार की भावना उत्पन्न करने में सहयोग कर सकता हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. झा एवं श्रीमाली – प्राचीन भारत का इतिहास।
2. डॉ0 एस0 के0 माथुर एण्ड डा0 के0 के0 शर्मा – प्राचीन भारतीय इतिहास
3. डॉ0 विमल चन्द्र पाण्डेय – प्राचीन भारत का इतिहास
4. डॉ0 रतिभानु सिंह नाहर – प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास।
5. रोमिला थापर – भारत का इतिहास।
6. ए0एल0 वाशम – अद्‌भुत भारत।
7. रामधारी सिंह दिनकर – संस्कृति के चार अध्याय।

❑❑

जीवन पर्यन्त चलना ही जिन्दगी है के आग्रही, दृढ़ संकल्प के साथ अपने सृजनलोक से व्यक्तिलोक तक की यह यात्रा डॉ0 रामकमल राय सन् 1978 ई0 से शुरू कर सन् 2003 ई0 तक की कालावधि के बीच करते हैं। इसमें कोई दो राय नहीं कि अज्ञेय को पढ़ना,सोचना,समझना और लिखना, प्रकाशित करना रामकमलराय की अज्ञेय के प्रति लगाव और निष्ठा का परिमाण है। अज्ञेय पर काम करने वाले हर पाठक,शोधार्थी के लिये प्रो0 रामकमल राय की अज्ञेय पर लिखी चारों पुस्तकें–अज्ञेय सृजन और संघर्ष, शिखर से सागर तक,शेखर : एक जीवनी–विविध आयाम,अज्ञेय सृजन की समग्रता संदर्भ ग्रन्थ के रूप में प्रयुक्त होती रहेंगी। वास्तव में देखा जाए तो समाज में कुछ लोग ऐसे होते हैं जो सम्मान पाकर गौरवान्वित होते हैं तो कुछ ऐसे भी लोग होते हैं जिनका सम्मान कर समाज स्वयं गौरवान्वित होता है। डॉ0 रामकमल राय के सृजन को पढ़कर हर पाठक यह गर्व महसूस कर गौरवान्वित होता है।

❖ कृपया उपरोक्त विषय पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख भेजकर रचनात्मक सहयोग देने का कष्ट करें।

उत्तर प्रदेश में लघु उद्योगों की स्थिति का मूल्यांकन

मोनिका मिश्रा
शोध छात्रा
सिंहानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

प्रस्तावना : उत्तर प्रदेश भारत का एक ऐसा राज्य है जो कि गंगा जमुना संस्कृति का अनूठा प्रतीक है। यह राज्य 2,40,928 वर्ग किमी क्षेत्रफल में फैला हुआ है जिसमें लगभग 2011 की जनगणना के अनुसार लगभग 19,98,12,341 करोड़ जनसंख्या निवास करती है। उत्तर प्रदेश में 18 मण्डल 75 जिले हैं औद्योगिक दृष्टिकोण से उत्तर प्रदेश को चार जोन में विभिक्त किया गया है। पूर्वी क्षेत्र, पश्चिमी क्षेत्र, मध्य क्षेत्र एवं बंदेलखण्ड।

किसी राष्ट्र एवं क्षेत्र के विकास के लिए तीव्र औद्योगिक विकास का होना अति आवश्यक है। क्योंकि तीव्र औद्योगिक विकास प्राथमिक क्षेत्र को पुष्टता प्रदान करते हुए उस पर पड़ने वाले निर्भरता एवं रोजगार संबंधी दबावों को घटाकर इस क्षेत्र की वस्तुओं के लिए पर्याप्त मांग उत्पन्न करता है साथ ही साथ तृतीयक क्षेत्र अर्थात सेवा क्षेत्र हेतु आधारभूत संरचना उपलब्ध कराता है जिससे तीव्र विकास का मार्ग प्रशस्त होता है। औद्योगिक विकास में जितने महत्वपूर्ण मूल, वृहद एवं मध्यम पैमाने के उद्योग होते हैं। उससे कम महत्वपूर्ण भूमिका लघु उद्योगों की नहीं होती। लघु उद्योगों की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि यह कम पूंजी निवेश से प्रारंभ किये जा सकते हैं। परंतु उच्च रोजागर उन्मुख होते हैं जो अर्थव्यवस्था में गति प्रदान करने के साथ–साथ बेरोजागारी को भी घटाते हैं।

लघु उद्योग (छोटे पैमाने की औद्योगिक इकाइयाँ) वे होती हैं जो मध्यम स्तर के विनियोग की सहायता से उत्पादन प्रारंभ करती है। इन इकाइयों में श्रम शक्ति की मात्रा भी कम होती है और सापेक्षिक रूप से वस्तुओं एवं सेवाओं का कम मात्रा में उत्पादन किया जाता है। ये बड़े पैमाने के उद्योगों से पूंजी की मात्रा, रोजगार, उत्पादन एवं प्रबंध, आगतों एवं निर्गतों के प्रवाह इत्यादि की दृष्टि से भिन्न प्रकार की होती है। ये कुटीर उद्योग से भी इन आधारों पर भिन्न होती है–उत्पादन में यंत्रीकरण की मात्रा, मजदूरी पर लगाये गये श्रमिकों एवं पारिवारिक श्रमिकों के अनुपात, बाजार का भौगोलिक आकार, विनियोजित पूंजी इत्यादि।

लघु उद्योग ईकाई ऐसा औद्योगिक उपक्रम है जहां संयत्र एवं मशीनरी में निवेश 1 करोड़ रूपये में अधिक न हो किन्तु कुछ मद जैसे कि होजरी, हस्त औजार, दवाईयों व औषधि व लेखन सामाग्री मदें और खेलकूद का सामान आदि में निवेश की सीमा 5 करोड़ रूपये तक थी परन्तु 2 अक्टूबर 2006 से प्रभावी छोटे लघु एवं मझोले उपक्रम विकास अधिनियम, 2006 उद्यमों के लिए तीन स्तरों अर्थात छोटे, लघु एवं मझोले के एकीकरण के लिए अपनी तरह की पहली कानूनी रूपरेखा विहित करता है। संशोधित परिभाषा के अंतर्गत उद्यमों को दो वर्गों में विभक्त किया गया है –

(अ) विनिर्माण (ख) सेवाएँ

1. विनिर्माण उद्यम के अंतर्गत लघु उद्योग वे उद्योग हैं जहां संयत्र व मशीनरी में मूल निवेश 25 लाख रूपये से अधिक हो किंतु 5 करोड़ रूपये से अधिक न हो।
2. सेवा उद्यम में सेवा प्रदान करने वाले अथवा सेवा करने वाले उद्यम सम्मिलित हैं जिसके अन्तर्गत लघु उद्योगों में संयत्र व मशीनरी में मूल निवेश 10 लाख रूपये से अधिक है किन्तु 2 करोड़ रूपये से अधिक न हो।

महत्व :

देश के विकास में लघु उद्योग क्षेत्र की एक बड़ी भूमिका है। क्यों कि यह उद्योग आसानी से एवं कम पूंजी में प्रांरभ किए जा सकते हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था में इसका योगदान औद्योगिक मूल्य संवर्धन का लगभग 40 प्रतिशत है। प्रायः विकासशील देशों के लिए लघु उद्योग बहुत ही लाभकारी सिद्ध हुआ है। लघु उद्योग स्वरोजगार व प्रबंध क्षेत्रों में मार्गदर्शक के रूप में कार्य करते हैं। इस प्रकार के उद्योग में श्रमिक अपनी हस्तकला का प्रदर्शन कर सकता है क्योंकि इन उद्योगों में छोटी मशीनो एवं विद्युत शक्ति का उपयोग करके बिना भी श्रमिक अपनी प्रतिभा और कला का प्रदर्शन कर सकता है। यह उद्योग प्रायः पूंजी प्रधान न होकर श्रमप्रधान उद्योग है। देश में लघु उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तुओं का निर्यात उत्तरोत्तर बढ सकता है। अनेक ऐसी कलात्मक वस्तुएं हैं जो मशीनों से उत्पादित नहीं की जा सकती है जैसे हाथी दांत संगमरमर, चंदन की लकड़ी आदि पर कलात्मक नमूने। देश के कुल निर्यातों में लघु औद्योगिक क्षेत्र का हिस्सा लगभग 45 प्रतिशत है एवं इस क्षेत्र में लगभग 6.5 करोड़ लोगों को रोजगार प्राप्त है।

उद्देश्य :

1. लघु उद्योगों का मुख्य उद्देश्य रोजगार के अवसरों में वृद्धि करते हुए बेरोजगारी एवं अर्ध बेरोजगारी की समस्या का समाधान करना है।
2. दूसरा मुख्य उद्देश्य आर्थिक शक्ति का समान वितरण करना है। लघु उद्योगों से आर्थिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण होता है।
3. लघु उद्योगों का मुख्य उद्देश्य है कि वे प्राकृतिक साधनों का अनुकूलतम उपयोग करते हैं।
4. लघु उद्योगों के माध्यम से देश की सभ्यता एवं संस्कृति सुरक्षित रहती है। अधिकांशतः लघु उद्योगों के माध्यम से कलात्मक एवं परम्परागत वस्तुओं का निर्माण किया जाता है।
5. आम जनता को श्रेष्ठ वस्तुएं उपलब्ध कराना इनका मुख्य उद्देश्य है।
6. भारतीय अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए इतना उद्देश्य अधिक से अधिक श्रेष्ठ उत्पादन करना है।

उत्तर प्रदेश में लघु उद्योगों की स्थिति :

2011—12 के आकड़ों के आधार पर उत्तर प्रदेश भारत की तीसरी बड़ी अर्थव्यवस्था है। यहाँ का प्रमुख व्यवसाय कृषि एवं प्रमुख खाद्यान्न फसल गेहूँ है। जबकि गन्ना प्रमुख व्यवसायिक फसल है। प्रदेश अखिल भारतीय स्तर पर लगभग 70 प्रतिशत के तुल्य कुल चीनी उत्पादन में योगदान देता है। किसी अन्य राज्य की तुलना में उत्तर प्रदेश में लघ औद्योगिक ईकाईयां कार्यरत है। जो कि भारत में कुल लंघु इकाईयों के 12 प्रतिशत के तुल्य है। लघु उद्योग को पुष्टता प्रदान करने हेतु वर्ष 1954 में उत्तर प्रदेश वित्त निगम की स्थापना SFCs (State finance Orparation) Act 1951 के अन्तर्गत की गयी।

भारत के तीव्र औद्योगिक विकास में लघु उद्योगों का प्रमुख योगदान रहा है। क्योंकि राष्ट्रीय एवं प्रादेशिक स्तर पर एक बड़ी समस्या निम्न पूंजी एवं रोजगार आरक्षित सेना रही है। इस संदर्भ में लघु उद्योगों की भूमिका अति महत्वपूर्ण मानी जाती है क्योंकि यह कम प्रांरम्भिक पूंजी निवेश की मान्यता के साथ—साथ उच्च रोजगार उन्मुख होते हैं। प्रदेश सरकार ने लघु उद्योगों के विकास हेतु समय—समय पर कई प्रयास किये हैं जैसे—विशेष आर्थिक क्षेत्रों (SEZs) एवं पट्टियों का निर्माण, माल परिवहन हेतु आर्थिक क्षेत्रों एवं बाजार तक पहुँच हेतु सड़क मार्ग ब्यवस्था, ऐसे क्षेत्रों में 24 घण्टे बिजली आपूर्ति व्यवस्था साथ ही साथ उद्योगों के लिए अनुकूल वातावरण का निर्माण करना। दसवीं पंचवर्षीय योजना में प्रदेश में लगभग 20 हजार करोड़ रूपये के निर्यात दर्ज हुए जब

कि ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के लिए यह आँकड़े 40,000 करोड़ के तुल्य लक्षित किये गये। प्रदेश में लघु उद्योगों ने उत्पादन, निर्यात एवं रोजगार में उच्च स्तर प्राप्त किये। प्रदेश में मार्च 2009 तक 645640 लघु औद्योगिक ईकाईयों की स्थापना हुई जिसका कुल पूंजी निवेश 9218.83 करोड़ रूपया रहा। जबकि इसी बीच 2567262 लोगों को रोजगार उपलब्ध हुआ।

लघु उद्योगों की समस्याएँ :

प्रदेश में लघु औद्योगिक ईकाईयों की स्थापना के विकास के मार्ग में कई बाधाएँ एवं समस्याएँ पायी जाती हैं जिसमें से कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं :–

- लघु औद्योगिक ईकाईयों की स्थापना संबंधी समस्याएँ।
- विपणन संबंधी समस्याएँ।
- एक ही व्यवसाय में बहुत अधिक उत्पादकों की संख्या के कारण गलाकाट प्रतियोगिता।
- उत्पादन ईकाई से कच्चे माल के स्त्रोतो की अधिक दूरी ।
- कुशल प्रबंधन का आभाव
- नवीन तकनीकी की कमी
- अपर्याप्त पूंजी
- बाजार का पूर्णतः ज्ञान न होना।
- लोगों का अशिक्षित होना।
- लागतों का आनुपातिक रूप से अधिक होना।

निष्कर्ष :

विकासशील राष्ट्रों के तीव्र आर्थिक विकास के लिए लघु उद्योग को प्रोत्साहित किया जाना आवश्यक हैं जिसमे आय के समान वितरण, उद्यमिता विकास, आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। भारतीय अर्थव्यवस्था के संदर्भ में लधु उद्योग की भूमिका विकास के इंजन के रूप में देखी जा सकती है क्यों कि लघु उद्योग निम्न पूंजी निवेश एवं उच्च रोजगार उन्मुख होते हैं अतः राष्ट्रीय एवं प्रादेशिक सरकारों के द्वारा इन्हें अधिक से अधिक प्रोत्साहित करने का प्रयास किया जाना चाहिए।

REFERENCE :

1. Mishra & Puri - Indian Economy
2. Dutt Sundaram - Indian Economy
3. Kulshershtha - Industrial Economics
4. S.W. Bhattacharya - Development of SSI, Deep & Deep
5. Ashok Kr. Arora - Financing of SSi, Deep & Deep Publishes, New Delhi 2002
6. Indrajeet singh and N.S. - Financing of small Scale IndustryGupta S. chand&co. Ltd. New Delhi 2005
7. A. R. Bhatta - Small Scale Industry and challenges
8. Govt. of India - Industrial policy Resolution 1991
9. SIDBI Report - Small Scale Industries Sec 1999
10. UPSIC Report - Pragati Samiksha 2009-10

❑❑

63

इण्डियन टेलीफोन इण्डस्ट्रीज लिमिटेड रायबरेली में मानव संसाधन की प्रमुख चुनौतियाँ एवं समाधान : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ० ऊषा मौर्या
वाणिज्य विभाग
दयानन्द बछरावां पी०जी० कालेज, बछरावां रायबरेली

प्रस्तावना : सन् 1980 ई0 में उद्योग तथा व्यावसायिक क्षेत्रों में नई प्रौद्योगिकी का उदय हुआ। मानव संसाधन प्रबन्ध और मानव संसाधन विकास के सामने नई चुनौतियाँ आयीं। दो व्यावसायिक संस्थाएँ इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ परसोनेल मैनेजमेन्ट और नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ लेबर मैनेजमेन्ट का सन् 1980 में नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ परसोनेल मैनेजमेन्ट में विलय हुआ। सन् 1990 के दशक में मानव संसाधन विकास को मानवीय मूल्यों और उनकी उत्पादकता से जोड़ा गया। मानव संसाधन विकास में आए इस मूलगामी परिवर्तन का प्रारम्भ अमेरिकन सोसाइटी फार परसोनेल एडमिनिस्ट्रेशन के माध्यम से आया जो कालान्तर में सोसायटी फार ह्यूमन रिसोर्स मैनेजमेन्ट के नाम से जाना गया। इस प्रकार यह सन् 1920 ई0 से प्रारम्भ हुआ और मानव संसाधन प्रबन्ध का विषय व्यवसाय में पूर्णरूप से परिवर्तित हो गया। अतः इसकी परिभाषा एवं विषय–वस्तु में परिवर्तन निरन्तर होता रहा है।

मानव संसाधन प्रबन्ध सामान्य प्रबन्ध का एक अंग है। देश में औद्योगीकरण के विस्तार, अर्थव्यवस्था के उदारीकरण तथा पेशेवर प्रबन्ध को अपनाने के कारण मानव संसाधन प्रबन्ध का महत्व भी बढ़ता जा रहा है। उत्पादन के आधार स्तम्भ मैन, मनी, मशीन, मैटेरियल और मैनेजमेन्ट में मानव ही एक ऐसा संसाधन है, जो अन्य संसाधनों का प्रबन्ध करता है। अतएव मानव संसाधन स्वतः ही महत्वपूर्ण हो जाता है। भारत सरकार ने भी इसके महत्व को समझते हुए ''मानव संसाधन विकास'' मंत्रालय की अलग से स्थापना कर दी है। मानव संसाधन विकास मूलतः मानव संसाधन प्रबन्ध का एक अभिन्न अंग है। इसका मुख्य जोर सामान्य कर्मचारी के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आध्यात्मिक स्तर को बढ़ाकर उससे सर्वोत्तम तथा सर्वश्रेष्ठ कार्यक्षमता प्राप्त करने पर रहता है। साथ ही कर्मचारी भी अपने जीवन में अधिकतम संतुष्टि प्राप्त कर सके। इसका केन्द्रीय उद्देश्य मानव संसाधन को आकर्षित, विकसित, प्रेरित और स्थिर करने वाला उत्पादक एवं सहानुभूतिपूर्ण संगठनात्मक वातावरण निर्मित एवं सृजित करना है। इस प्रकार आधुनिक परिप्रेक्ष्य–अर्थव्यवस्था के उदारीकरण एवं भूमण्डलीकरण की दशा में औद्योगिक संगठनों में अप्रत्याशित एवं त्वरित परिवर्तन होने के कारण मानव संसाधन भी अन्य संसाधनों की तरह लागत का एक महत्वपूर्ण एवं महँगा तत्व हो गया है। आज मानव संसाधन विकास के स्थान पर उद्योगों में ''मानव विकास'' को महत्व दिया जा रहा है। मानव विकास के लिए व्यक्ति के स्वास्थ्य, ज्ञान, प्रतिभा और चातुर्य में वृद्धि कर उसकी कार्य योग्यता को बढ़ाया जाता है तथा उत्पादक उद्देश्यों, सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनैतिक उद्यमों में सक्रिय होने हेतु उनके द्वारा अर्जित कार्य योग्यता का सदुपयोग कर व्यावसायिक संगठन के उद्देश्यों को सुविधाजनक ढ़ंग से प्राप्त किया जाता है।

हमारे देश में उद्योगों के त्वरित संगठनात्मक परिवर्तनों के परिणाम स्वरूप मानव संसाधन प्रबन्ध के समक्ष कई चुनौतियाँ उत्पन्न हुई हैं। इसके अतिरिक्त सूचना क्रान्ति (आई०टी०) ने भी मानव संसाधन प्रबन्ध को और अधिक गतिशील एवं उत्तरदायी बना दिया है। बढ़ती हुई जनसंख्या, बेरोजगारी, श्रम संगठनों का राजनीतिकरण

तथा व्यावसायिक प्रतिष्ठानों में उनकी आवश्यकताओं से अधिक मानव संसाधन की पूर्ति, सार्वजनिक उपक्रमों के निरन्तर घाटे में चलने के कारण उन्हें निजीकरण की ओर परिवर्तित करने से और अधिक चुनौतियां उत्पन्न हो गई हैं। इन सबका विधिवत् एवं गहन अध्ययन तथा मूल्यांकन करने के लिए भारत के एक महत्वपूर्ण सार्वजनिक उद्यम आई०टी०आई० लि० को आधार बनाया गया है। दूर संचार का भी व्यावसायिक एवं औद्योगिक विकास में एक महत्वपूर्ण योगदान है। यह उद्यम दूर संचार के क्षेत्र में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है जिसका मुख्यालय बंगलौर में है। इसकी निर्मात्री इकाइयाँ बंगलौर, नैनी, श्रीनगर, रायबरेली, पालक्काड़ (केरल), मनकापुर में स्थित है जिसमें बड़ी संख्या में कर्मचारी कार्यरत हैं। ये सभी इकाइयां एक समय में लाभोपार्जन का केन्द्र रही हैं, किन्तु विगत कुछ वर्षों से कई इकाइयां घाटे पर चल रही हैं। विशेषकर आई०टी०आई० लि० रायबरेली जिसकी स्थापना सन् 1973 ई0 में हुई थी, जिसका मुख्य उद्देश्य दूर संचार के क्षेत्र में देश को आत्मनिर्भर बनाना था। इस उद्यम का आधुनिकीकरण भी किया गया इसके उत्पादन में भी परिवर्तन हुआ है, किन्तु लाभ भी घट रहा है और कर्मचारियों की संख्या भी।

यहाँ कार्यरत कर्मचारियों की कुल संख्या 6361 थी। सन् 2005 में घट कर इनकी संख्या 4179 हो गई। अप्रैल 2016 में इनकी संख्या 1565 हो गई। वर्तमान में इनकी संख्या 1116 है। उत्तर प्रदेश एवं रायबरेली जनपद के आर्थिक विकास में इस इकाई का अति महत्वपूर्ण स्थान रहा है।

अध्ययन का उद्देश्य :

1. आई०टी0०आई०लि० रायबरेली में मानव संसाधन प्रबन्ध में किये गये प्रयासों का अध्ययन।
2. उदारीकरण, निजीकरण, भूमण्डलीकरण का आई०टी०आई०लि० रायबरेली के कर्मचारियों और अधिकारियों पर प्रभाव का अध्ययन।
3. आई०टी0०आई०लि० रायबरेली में मानव संसाधन विकास हेतु प्रदान की गई सुविधाओं में कटौतियों का अध्ययन।
4. इकाई के निरन्तर घाटे में चलने के कारणों का अध्ययन।
5. आई०टी0०आई०लि० रायबरेली में मानव संसाधन के समक्ष उपस्थित चुनौतियों का अध्ययन।
6. औद्योगिक इकाई में व्याप्त कमियों का अध्ययन।

अध्ययन विधि :

शोध में सर्वेक्षण विधि एवं अवलोकन विधि का प्रयोग किया गया है।

शोध उपकरण :

प्राथमिक और द्वितीयक आँकड़ों का संग्रह एवं उनका प्रवृत्ति विश्लेषण, सामान्य औसतों, प्रकाशित अभिलेख, वार्षिक रिपोर्ट एवं सारणियों का प्रयोग किया गया है।

अध्ययन की सीमाएँ :

1. अध्ययन की दृष्टिकोण से केवल आई०टी0०आई०लि० रायबरेली में कार्यरत अधिकारियों एवं कर्मचारियों तक ही सीमित रखा है।
2. शोधकार्य में आई०टी0०आई०लि० रायबरेली की स्थापना (सन् 1973 ई0) से लेकर सन् 2016–17 ई0 तक को सम्मिलित किया गया है।

आई०टी0०आई०लि० रायबरेली में मानव संसाधन प्रबन्धन और प्रमुख चुनौतियाँ

भारत की भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी ने 22 अक्टूबर 1973 ई0 को इण्डियन टेलीफोन इण्डस्ट्रीज लिमिटेड में टेलीफोन स्विचिंग उपकरण कारखाने की आधारशिला रखी तथा साथ में प्रथम परियोजना के रूप में स्ट्राउजर विभाग की स्थापना की और मानव संसाधन प्रबन्ध का सुनिश्चितीकरण करने के लिए इसकी मुख्य शाखा

बंगलौर में एक केन्द्रीय संगठन बनाया गया। संगठन द्वारा ही समय–समय पर मानव संसाधन नियोजन की योजनाएं बनाई जाती हैं, बदलते परिवेश में उन्हें अद्यतन (अपटूडेट) किया जाता है तथा उन नियमों को लागू कराया जाता है। मुख्यालय द्वारा जारी आदेश ही उनकी समस्त संयंत्रों पर लागू होते हैं। कार्यों का विश्लेशण औद्योगिक अभियन्त्रण विभाग द्वारा किया जाता है, कर्मचारियों की नियुक्ति की पूरी प्रक्रिया एक स्टाफ चयन समिति के द्वारा सम्पन्न की जाती है। रायबरेली इकाई में कर्मचारियों की भर्ती सन् 1974 ई0 से प्रारम्भ हुई और सन् 1989 ई0 में इसकी संख्या बढ़कर 6361 हो गई । यह वर्ष रायबरेली का अधिकतम नियोजन का वर्ष था।

सन् 1990 ई0 की नयी औद्योगिक नीति की घोषणा हुई जिसमें विदेशी कम्पनियों को देश में टेलीफोन के क्षेत्र में भागीदारी के लिए प्रोत्साहित किया जाने लगा। ऐसी स्थिति में देश के वर्तमान टेलीफोन उत्पादक केन्द्रों का भविष्य खतरे में आना प्रारम्भ हो गया। यद्यपि सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों के बजट का आवंटन करना भी कम कर दिया। औद्योगिक, आर्थिक और संचार नीति के बदलने के परिणामस्वरूप बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने अपने विदेशी माल को भारत में उतार दिये जिसके चलते आई०टी0०आई०लि० रायबरेली को प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ा । यह नीति लागू होते ही आई०टी0०आई०लि० रायबरेली का एकाधिकार खत्म हो गया। निजीकरण शुरू होते ही देश की अन्य कम्पनियां दूर संचार के क्षेत्र में उत्पादन करने लगीं। स्वयं रायबरेली यूनिट को अब आर्डर का मिलना कम हो गया। अब जो भी कार्यादेश इस इकाई को मिलते थे, वे पूर्ण रूप से टेंडर पर आधारित हो गये। इससे यह इकाई प्रभावित हुई और सन् 1990 ई0 से ही प्रतिवर्ष कर्मचारियों की संख्या में गिरावट आनी शुरू हो गयी।

आई०टी0०आई०लि० रायबरेली एक लेबर इन्टेनसिव इण्डस्ट्री थी जिसका संचालन पूर्णतः मानव संसाधन पर आश्रित था। लेकिन तकनीकी परिवर्तन एंव आधुनिकीकरण के कारण इस प्लान्ट को सन् 1992 ई0 में पूर्ण रूप से इलेक्ट्रॉनिक एक्सचेंजों में परिवर्तित कर दिया गया। इस तकनीकी परिवर्तन के चलते स्ट्राउजर, क्रासबार, एक्सचेंजों के उपकरणों की भारी संख्या में क्षति हुई जिससे इस इकाई को करोड़ों रूपयों का नुकसान हुआ। इस आधुनिकीकरण के कारण इकाई में समस्त कार्यों को कम्प्यूटर एंव इलेक्ट्रानिक मशीनों के द्वारा किया जाने लगा जिसमें 6361 मानव संसाधन के कार्यों को लगभग 3000 मानव संसाधन द्वारा किया जाने लगा। शेष कर्मचारियों के लिए यहां विशेष कार्य नहीं रह गया। इस दशा में ये कर्मचारी खाली हो गये तथा बैठ कर अपने वेतन एवं अन्य कल्याणकारी सुविधाओं को प्राप्त करने लगे। आधुनिकीकरण के कारण यह इकाई प्रभावित हुई और सन् 1994 ई0 से निरन्तर धाटे पर चल रही है इस परिवर्तित युग में धीरे–धीरे अन्य बहुत सी परियोजनाएं आयीं लेकिन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के आगे सब प्रोजेक्ट असफल होते गये। असफल होने का कारण यह भी था कि आई०टी0आई०लि० रायबरेली को जो भी कार्यादेश मिलते थे, वे सीधे नहीं प्राप्त होते थे। कार्यादेश एवं तकनीक का बंटवारा हमेशा निगमित कार्यालय बंगलौर द्वारा ही किया जाता रहा है जिसमें इस इकाई को मानव संसाधन के अनुसार कभी भी कार्यादेश नहीं प्राप्त कराये गये और न ही समय एवं मांग के अनुरूप नई तकनीक उपलब्ध कराई गई जो कार्यादेश मिले भी तो पूंजी के अभाव के कारण कच्चामाल समय से नहीं उपलब्ध हो पाया, सही समय पर माल का उत्पादित न हो पाना, तैयार माल की गुणवत्ता में कमी होना, बाजार में बिक्री पर विलम्ब होना और अन्ततः सामान का स्टाक में पड़े रह जाना इत्यादि की सारी जिम्मेदारी संयंत्र पर डाल दी जाती है जिसका दुष्परिणाम यहां कार्यरत मानव संसाधन को भुगतना पड़ा।

अध्ययन करने के पश्चात् जो निष्कर्ष सामने आये उनके अनुसार इस उद्योग के समक्ष विभिन्न चुनौतियां देखने को मिली जैसे– रायबरेली इकाई में पूर्णकालिक निदेशक का न होना, वित्तीय सहायता का अभाव रहा, मानव संसाधन के अनुसार कार्यादेश की कमी का होना, कर्मचारियों के आधिक्य की समस्या, उत्पाद की उपयोगिता एवं समय से विपणन का अभाव, व्यापार में बढ़ती प्रतिस्पर्धा का आई०टी0०आई०लि० रायबरेली पर प्रभाव, भूमण्डलीकरण एवं उदारीकरण का प्रभाव रहा, कार्याभाव के कारण कर्मचारियों को विभिन्न इकाइयों में समायोजित किया गया,

बिना कार्य के भुगतान अथवा नियमित वेतन न देना, खर्चीला आधारभूत ढ़ाँचा का रहना, वैकल्पिक आय अर्जन की उदासीनता का बना रहना, मानव संसाधन विकास हेतु सुविधाओं में निरंतर कटौतियां करना, सन् 2003–2004 में स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति योजना के माध्यम से 1283 कर्मचारियों को बाहर किया गया और वर्तमान में दिन प्रतिदिन कर्मचारियों की संख्या तेजी से घटती जा रही है।

घटते हुए कर्मचारियों की संख्या

वर्ष	कुल संख्या
2013	469
2014	589
2015	479
2016	513
मार्च 2017	105

आई०टी0०आई०लि० रायबरेली में वर्तमान कार्यरत कर्मचारियों की संख्या 1116 है जिसमें अधिकारियों की संख्या 589 है और कर्मचारियों की संख्या 527 है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि जब आई०टी0०आई०लि० रायबरेली को यहां स्थापित किया गया था तब इसका एक मात्र उद्देश्य था कि पूरे देश में संचार व्यवस्था का जाल फैलाना, क्षेत्रीय विकास करना, रोजगार देना, शैक्षिक विकास करना तथा सामाजिक समता की स्थापना का प्रयास करना। लेकिन आज वर्तमान में इसका उद्देश्य वह न रहकर केवल बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से प्रतिस्पर्धा रह गया है। कार्पोरेट कार्यालय बंगलौर का पूरा सहयोग न मिल पाने के कारण आज प्रतिस्पर्धा के दौर में यह इकाई पीछे हो गई। इसके तैयार उत्पाद अन्य कम्पनियों की अपेक्षा बाजार में महँगे पड़ते हैं जिससे कई वर्षों से घाटे का शिकार हुई। कार्यादेश न मिलने की समस्या, आर्थिक समस्या, कर्मचारियों द्वारा मन लगाकर पूरे समय तक कार्य सम्पादित न करना, संस्था का बंदी के भय से कर्मचारियों के सामने अंधकार मय भविष्य की समस्या है। यद्यपि इकाई में सही कार्य संचालन हेतु एजीएम श्री आर. कृष्णा प्रसाद के निर्देशन में मई 2016 में तदर्थ (एड–ढॉक) रूप में 12 इंजीनियर्स की भर्ती की गई है। वर्तमान में एसएमपीएस, ब्रॉडबैंड उपकरण जी–पीऑन ओर वाइमैक्स, एचडीपीई आदि पर उत्पादन के कार्य किये जा रहे हैं।

समाधान के उपाय :

प्रस्तुत शोध के दौरान में आई०टी0०आई०लि० रायबरेली के मानव संसाधन प्रबन्ध में जो कमियां देखने को मिली अथवा उपलब्ध प्रपत्रों के माध्यम से जो जानकारी हासिल हुई उसके आधार पर निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत हैं–

1. प्रबन्धतंत्र को मानव संसाधन नियोजन की दृष्टि से पदों का सृजन, पद समापन, कार्य आवंटन, कार्य अवलोकन, कार्यभार पर विशेष ध्यान देना चाहिए। समय से बजट का आवंटन किया जाए जिससे निरन्तर उत्पादन कार्य हो सके। साथ ही समकालीन चुनौतियों को देखते हुए कर्मचारियों को बदलते वैश्विक परिप्रेक्ष्य के अनुरूप प्रशिक्षित किया जाए।
2. बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के अनुरूप आई०टी०आई०लि० रायबरेली को पूरे देश में अपने विस्तार पटल खोलने चाहिए जिससे बाजार में आई०टी०आई०लि० रायबरेली की पहचान बढ़े, नये आर्डर प्राप्त किये जा सकें, बाजार की सम्भावनाओं के अनुरूप वस्तुओं का उत्पादन किया जा सके, बिक्री एवं ग्राहक सेवा की सुविधा (सर्विस) कम लागत में कम समय में दी जा सके जिससे इसकी पहचान, साख और विश्वास बढ़ेगी। परिणाम स्वरूप इकाई में उत्पादन बढ़ेगा तथा भरपूर मानव संसाधन क्षमता का उपयोग किया जा सकेगा। प्रतिस्पर्धा के दौर में बाजार

में अपना स्थान बना सकेगी।

3. आई०टी०आई०लि० रायबरेली को अपने समस्त उत्पदों का प्रचार–प्रसार प्रेस एवं इलेक्ट्रानिक मिडिया द्वारा करना चाहिए ताकि लोगों को यह जानकारी हो कि यहां क्या उत्पादन हो रहा है?तभी जरूरत के अनुरूप लोग इसका उपयोग कर सकेंगें जिससे इस इकाई की बिक्री में बढ़ोत्तरी हो सकेगी।

4. शेष कार्यरत कर्मचारियों के मस्तिष्क से शासन और प्रशासन को कार्याभाव के कारण यूनिट की बंदी का भय समाप्त करना चाहिए जिससे वे पूर्ण मनोयोग के साथ अपना कार्य सम्पादित करें। इससे आई०टी०आई०लि० रायबरेली को लाभ होगा। कर्मचारियें को वेतन सही समय पर मिल सकेगा। जरूरी देय सुविधाओं को भी प्रदान किया जा सकेगा। यदि इसे और विकसित करके प्रोत्साहित किया जाए तो उत्पादन के साथ देश के निर्यात में वृद्धि, रोजगार तथा इस क्षेत्र का विकास और तेजी से सम्भव हो जाएगा।

निष्कर्ष : 1990 के दशक में उदारीकरण की ऐसी आंधी चली कि देखते–देखते भारी संख्या में निजी उद्योगों की स्थापना हो गई। इन निजी उद्योगों ने उत्पादन, विनिमय तथा वितरण की व्यवस्था को पूर्णतया व्यक्ति केन्द्रित बना दिया। अत्यधिक कार्यकुशलता, उच्च गुणवत्ता, नई टेक्नालॉजी का प्रयोग तथा कुशल प्रबन्धन ने सार्वजनिक उद्योगों के सामने गंभीर चुनौतियां प्रस्तुत की।

आई०टी०आई०लि० रायबरेली भी भूमण्डलीकरण के प्रभाव में आई। बाजार में उपलब्ध चीप और बेस्ट विदेशी उपकरणों ने रायबरेली इकाई को बाजार से बाहर कर दिया है इसके घटते हुए निवेश (इनपुट) और उपज (आउटपुट) ने इसे घाटे में चलने वाली फैक्ट्री के रूप में बदल दिया जिसका सीधा असर यहां कार्यरत मानव संसाधन पर पड़ा।

यह इकाई भी सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापित किया उद्योग है जिसमें सार्वजनिक क्षेत्र के समस्त दुष्परिणाम तो आ गये लेकिन निजी क्षेत्र की तरह कार्य में निपुणता, उच्चगुणवत्ता, प्रबन्ध की कुशलता, समय पर कार्यादेश को पूरा करना, बाजार की शक्तियों का मुकाबला करना इत्यादि अच्छाइयां नहीं आ पाई। यहां यह बताना असंगत न होगा कि स्थानीय सांसद श्रीमती सोनिया गांधी के प्रभाव से इण्डियन टेलीफोन इण्डस्ट्रीज की सभी इकाइयों हेतु प्रतिवर्ष धनावंटन के कारण सभी इकाइयों को विशेषकर रायबरेली इकाई को वेतन आदि का भुगतान संभव हो पाता रहा है। जिससे इस महत्वपूर्ण उद्योग को विशेष समयावधि के लिए जीवन दान मिल जाता रहा है, किन्तु यह स्थाई समाधान नहीं है। इसके लिए उच्च स्तर पर सोचने, विचारने और विकल्पों के क्रियान्वयन की आवश्यकता होगी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. Gupta, C.B.; Human Resource Management, Sultan Chand & Son Publisher, New Delhi. 2000.
2. Venkataratnam, C.B.; and Sirvastava, B.K., Personnel management and human Resources, TMH New Delhi 1991.
3. Aswathappa, K, ; Human Resources and personnel management Tata Mc Graw-Hill Publishing Company Limited New Delhi, Second Edition, 2000.
4. I.T.I. Publication – A Manual of Personnel Practices in Indian Telephone Limited, 1981.
5. I.T.I. At a Glance , Indian Telephone Industries Limited Raebareli, Dec. 1986.

आई०टी०आई० प्रकाशन

1. दूरवाणी द्विमासिक पत्रिका।
2. दूरवाणी संरक्षा विशेषांक
3. वार्षिक प्रतिवेदन
   संचार समीक्षा।

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

डॉ0 रामकमल राय : सृजन सरोकार

सर्वसमावेशी समतामूलक समाज के अग्रदूत

डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव*

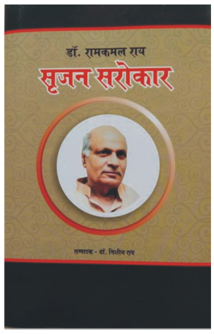

डॉ0 रामकमल राय उदात्त विचारों एवं मानवीय सदाचारों से परिपूर्ण सच्चे अर्थ में विश्वविद्यालय आचार्य थे। उनकी ज्ञान की मीमांसा में विज्ञान एवं साहित्य का अद्‌भुत संगम था। मानवी सम्बन्धों एवं संम्वेदनाओं से आप्लादित डॉ0 राम कमल राय की समाजवादी चिंतनधारा की भावभूमि भारत की देशज सांस्कृतिक चेतना रही। यही नहीं आप एक बहुलतावादी समाजार्थिक संरचना में एक सर्वसमावेशी समतामूलक प्रगति के प्रबल समर्थक थे। आपकी सदैव शोषितों, वंचितों एवं अपवंचितों के हितार्थ प्रतिबद्धताएँ जुड़ी रहीं।

यदि साहित्य को चरित्रों का अजायबघर माना जाए तो साहित्यकार स्वयं भी एक चरित्र है क्योंकि साहित्य जीवन की भावनात्मक अभिव्यक्ति होते हुए भी भावनाओं द्वारा अनुशासित नहीं होता। मूलत : वह बीज रूप में विचारों से बँधा होता है, जिसकी जड़ों का जटिल जाल सुदूर अतीत तक चला जाता है। यानी एक आम आदमी की तरह निश्चित कालखण्ड में बंधे होने के बावजूद व्यक्ति तभी लेखक हो सकता है जब वह उस कालखण्ड का अतिक्रमण कर हवा के झोंके और प्रकाश की किरण की तरह समूचे दिक्–काल का भ्रमण करने में सक्षम हो जाए। अपने भौतिक अस्तित्व से ऊपर उठकर विराट महसूसने की क्षमता ही लेखक के ज्ञान और संवेदना को उन्मुक्त और घनीभूत करते हुए विजन का रूप दे डालती है। साहित्य के इतिहास में इस प्रकार की विद्रूपताओं–विषमताओं को कभी वादात्मक प्रवृत्ति और कभी व्यक्ति चेतना के नाम से पुकारा जाता है। इस परिप्रेक्ष्य में डॉ0 रामकमल राय का लेखन सोलह आना सच निकलता है जो समय की नब्ज को पकड़ कर आगे–आगे चलता रहता है ।

डॉ0 रामकमल राय सृजन सरोकार पुस्तक के सम्पादक सहृदय,प्रशासन में क्रियाशील, इतिहास के मर्मज्ञ सक्रिय विद्वान तथा मन से साहित्यकार डॉ0 निशीथ राय जी हैं। आप दो दर्जन पुस्तकों के रचनाकार हैं। लेखन एवं प्रशासन डॉ0 निशीथ राय की जिजीविषा है जिसे बनाए रखने के लिए आप सतत जीवंत एवं सृजनशील हैं। आपकी अभिरूचि अनुसंधात्मक के साथ खोजपूर्ण रहती है। पन्द्रह अध्यायों एवं 148 पृष्ठों में विभक्त प्रतिभा एवं वैदुष्य से विभूषित डॉ0 निशीथ राय द्वारा संपादित प्रस्तुत पुस्तक डॉ0 रामकमल राय के सृजन एवं अनुभवों पर उनके समकालीन सहचरों द्वारा लिखे गये सम्यक् अध्ययन एवं विवेचन को प्रस्तुत करने के साथ ही अपने पिता को दी जाने वाली सच्ची श्रद्धांजलि भी है।

साहित्य और साहित्यकार दोनों एक ही नव निर्माण प्रक्रिया के दो पहलू होते हैं। इस दृष्टि से किसी भी साहित्यकार के कृतित्व के अध्ययन के लिए उसके व्यक्तित्व का अध्ययन महत्वपूर्ण हो जाता है। क्योंकि सर्जक व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक घटनाएँ जैसे पूर्व संस्कार, बचपन के संस्कार, पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक इत्यादि का सर्जक के व्यक्तित्व पर गहरा प्रभाव पड़ता है। व्यक्ति अगर साहित्यकार हो तो उसके कृतित्व में किसी न किसी रूप में उसके व्यक्तित्व की झलक स्पष्ट दिखाई दे जाती है। इन स्थितियों के लिये तत्कालीन देश, काल एवं वातावरण की अहम भूमिका होती है। पुस्तक डॉ0 रामकमल राय : सृजन सरोकार के संपादक डॉ0 निशीथ राय जी का मानना है कि डॉ0 रामकमल राय का सृजन भी ऐसे वातावरण में हुआ जब साहित्य जगत में सामाजिक अवमूल्यन, शिक्षा, आर्थिक, सामाजिक विसंगतियाँ, राजनीतिक छल–छद्‌म, साम्प्रदायिक कटुता, मानवीय मूल्य और जिजीविषा का संक्रमण काल चल रहा था।

जीवन पर्यन्त चलना ही जिन्दगी है के आग्रही, दृढ संकल्प के साथ अपने सृजनलोक से व्यक्तिलोक तक की यह यात्रा रामकमल राय सन् 1978 ई0 से शुरू कर सन् 2003 ई0 तक की कालावधि के बीच करते हैं। वास्तव में देखा जाए तो समाज में कुछ लोग ऐसे होते हैं जो सम्मान पाकर गौरवान्वित होते हैं तो कुछ ऐसे भी लोग होते हैं जिनका सम्मान कर समाज स्वयं गौरवान्वित होता है। डॉ0 रामकमल राय की रचनाओं को पढ़कर हर पाठक यह गर्व महसूस कर गौरवान्वित होता है।

साहित्य जगत में डॉ0 रामकमल राय के सृजन पर हो रहे चिंतन में ऐसे अनेक अछूते सन्दर्भ एवं समसामयिक घटनाओं को बहुत व्यापकता एवं नई समझ के साथ प्रस्तुत पुस्तक व्याख्या करती है जो निकट भविष्य में एक नयी बहस को जन्म देगी। शोधार्थियों, अध्येयताओं एवं प्राध्यापकों के लिये प्रस्तुत पुस्तक संग्रहणीय एवं महत्वपूर्ण होगी ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है।

पुस्तक – डॉ0 रामकमल राय–सृजन सरोकार

सम्पादक – डॉ0 निशीथ राय

प्रकाशक – प्रकाश पैकेजर्स 257, गोलागंज, लखनऊ

पृ0 – 148

* अध्यक्ष–हिन्दी एवं अन्य आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

भ्रष्टाचार विश्वकोष

डॉ0 उत्तरा यादव*

वर्तमान समय में भ्रष्टाचार एक राष्ट्रीय ही नहीं, अपितु एक अन्तर्राष्ट्रीय जटिल समस्या है और इसके खूनी पंज़े सामाजिक जीवन, अर्थव्यवस्था एवं मानव मूल्यों को भारी क्षति पहुँचा रहे हैं। इस मोड़ पर आकर यह स्वीकार कर लेना तर्कसंगत होगा कि आज भारतीय लोकतंत्र, साहित्यकार वर्ग एवं बुद्धिजीवी वर्ग के साथ कहीं कुछ कमी, व्यवधान, डर एवं कायरता सी आ गयी है, जिसके कारण यहाँ राजनीतिक भ्रष्टाचार एक कैंसर एवं कोढ़ बनकर सामाजिक जीवन तथा जनहित को बहुत बड़ा नुकसान पहुँचा रहा है। वर्तमान की राजनीति भ्रष्टाचार की पर्याय बन चुकी है। भ्रष्टाचार की राजनीति ने सभी व्यवस्थाओं को भ्रष्ट कर दिया है। भ्रष्टाचार ने केन्द्र व राज्य की सभी कल्याणकारी योजनाओं की प्रासंगिकता पर प्रश्नचिह्न लगा दिया है।

अपराध और भ्रष्टाचार एक दूसरे पर पलते हैं। ये वह जीवाणु हैं, जिनकी वृद्धि अपरिवर्तित एवं असीम होती है। भारतीय राजनीति में दलों की अपरिहार्यता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी राजनीतिक दलों का डंका बज रहा है। हर राजनीतिक दल का अन्तिम लक्ष्य सत्ता हथियाना और सत्ता के बल पर अपनी धाक जमाना होता है। इसके लिए उन्हें जमीन–आसमान के कुलाबे एक करने पड़ते हैं। जाति, धर्म, क्षेत्र के सौमनस्य को इस प्रकार तोड़ा–मरोड़ा जाता है कि युगों से चली आ रही समरसता का सर्वनाश हो जाता है। झूठ, छल, कपट, आश्वासन वह भी ऐसे आश्वासन, जिनको रूपायित किया जाना संभव ही नही होता। हर दल के अस्त्र होते हैं। इन सबका प्रयोग भारतीय राजनीति में अब इतना खुलकर होने लगा है कि यह सब स्पश्ट रूप से देखा जा सकता है।

सम्पादक का मानना है कि हम कितना अच्छे से अच्छा कानून बना लें यदि हम देश में ईमानदार और चरित्रवान लोग पैदा न कर सके तो सब व्यर्थ ही रहेगा। आज समय की जरूरत है कि सरकार की ताकत के खिलाफ नैतिकता और ईमानदारी की ताकत खड़ी हो। हमें नैतिक शिक्षा के वह पाठ फिर दोहराने होगें जिससे चरित्रवान लोग पैदा किए जा सकें। और हमें बेईमानों, गुण्डों माफियाओं को इज्जत देने की जगह नफरत एवं तिरस्कार देना होगा ताकि लोग बुरे कामों की जगह अच्छे कामों की तरफ आकर्षित हो सकें। इसलिए यह आवश्यक है कि इस पवित्र कार्य की शुरूआत हमें स्वयं से करनी होगी। अगर हम दूसरों से सुधरने की उम्मीद में अपराध तथा भ्रष्टाचार जैसे राक्षसों को खत्म करना चाहते हैं तो शायद यह असम्भव होगा। अगर हम जाग गये और राष्ट्र के उत्थान में लग गये तो पूँजीवादी ताकतें जो भ्रष्टाचार की मूल में हैं उसे उखाड़ फेंकने में सफल होंगे।

भ्रष्टाचार से निजात पाने के लिए जनता को जागरूक करना होगा। इसके लिए शासन–प्रशासन, शैक्षिक संस्थानों एवं अन्य सामाजिक संगठनों को आगे आने की आवश्यकता है। सूचना का अधिकार, यूनिक आइडेंटिफिकेशन नम्बर, बेनामी सम्पत्ति हस्तान्तरण, इमिग्रेशन डिपार्टमेण्ट की खोजबीन, जनलोकपाल बिल और कुछ वैज्ञानिक हथियार जिनमें संचार क्रान्ति, विकिलिक्स रहस्योद्घाटन,नवम्बर सन् 2016 ई0 में केन्द्र सरकार द्वारा डी मोनेटाईजेशन, मीडिया भी इस क्षेत्र में काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

इस पाँच खण्डों में प्रकाशित भ्रश्टाचार विश्वकोश की मान्यता एवं समाधान यह है कि इंसान किसी भी मामले को मुद्दा बनाकर यदि भ्रश्टाचार फैला सकता है तो फिर किसी भी मुद्दों को लेकर ईमानदारी क्यों नहीं फैला पाता? वर्तमान की इन स्थितियों को देखते हुए एवं सम्पूर्ण विश्व की सम्प्रभुता को कायम रखने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक हो गया है कि पूरी दुनिया के सम्भ्रान्त लोग, शासक, राष्ट्राध्यक्ष प्रशासक, शिक्षाविद, राजनीतिज्ञ, साहित्यकार एवं विषय विशेषज्ञ इस गम्भीर समस्या को गम्भीरता से चिन्तन–मनन करें जिससे इस वैश्विक समस्या के कुछ सार्थक परिणाम सामने आएँ।

पुस्तक का नाम–भ्रष्टाचार विश्वकोश

सम्पादक – डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव

प्रकाशन–अर्पण पब्लिकेशन्स,4831/24, प्रहलाद गली, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली.110002

ISBN-978-93-82135-98-2

मूल्य–रू–5000/– ; संस्करण : 2017 ; पृष्ठ – 1324

* एसोसिएट प्रोफेसर–समाजशास्त्र विभाग, महिला पी0जी0 कालेज, अमीनाबाद, लखनऊ

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

हिन्दी साहित्य मे स्त्री–विमर्श के विविध सरोकार

वन्दना पाण्डेय*

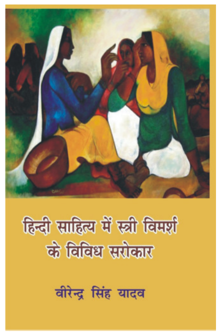

युवा लेखक एवं आलोचक डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव इस पुस्तक के माध्यम से बताना चाहते हैं कि भूतकाल मे समाज और साहित्य में स्त्री का क्या स्थान रहा है,वर्तमान में क्या स्थान है और भविष्य में क्या सम्भावनाएँ हैं। वैदिक काल में स्त्रियाँ पुरूष की सहभागिनी थीं। वह साथ खेतों में काम करने से लेकर हवन–यज्ञ तथा वैदिक मंत्रों का लेखन एवं गान भी किया करती थीं । हिन्दी साहित्य मे आदिकाल से लेकर रीतिकाल तक नारी की स्थिति अत्यन्त सोचनीय रही है। स्त्री मात्र भोग्या के रूप में एवं मोक्ष प्राप्ति के मार्ग में बाधक के रूप में प्रस्तुत की गयी है। कबीर,तुलसी एवं बिहारी सदृश कवियों ने हमेशा स्त्री को पुरूष से हीन एवं कमतर दिखाया है किन्तु वर्तमान समय में स्त्री समाज एवं स्त्री लेखन के प्रतिरूप बदल चुके हैं ।

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने यह चिन्ता व्यक्त की है कि आज महिला लेखन के इतने व्यापक होने के बाद भी कहीं न कहीं महिलाएँ आज भी पुरूष लेखकों को ही आदर्श मानती हैं । आज भी महिला लेखन को पुरूष लेखन से कम महत्व मिलता है । लेखक ने स्वीकार किया है कि शोधकार्य हुए है उतना मीरा पर नही ,उसी तरह सार्त्र को जितना सम्मान मिला है उतना सिमोन को भी नही । दूसरा पक्ष यह भी है कि यदि स्त्री लेखन पुरूष लेखन से प्रभावित हो सकता तो पुरूष लेखन स्त्री लेखन से प्रभावित क्यों नही हो सकता ,प्रश्न यह भी उठता है कि आज तक किसी पुरुष लेखक ने किसी महिला लेखिका से प्रभावित होने की बात क्यों नही की ।

डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव द्वारा लिखित यह पुस्तक छः अध्यायों मे विभक्त है । प्रथम अध्याय–स्त्री विमर्श अवधारणा, स्वरूप, परम्परा और अन्य संदर्भ है । द्वितीय अध्याय, स्त्री विमर्श–परम्परा की प्रासंगिकता और अन्य सामाजिक संदर्भ , एक अध्ययन में लेखक ने स्त्री–विमर्श पर विशेषकर हिन्दी साहित्य के सन्दर्भ में चर्चा की है। तृतीय अध्याय ,वर्तमान दौर का स्त्री विमर्श , कुछ अहम् सवाल और कुछ बुनियादी समस्याएँ हैं। पुस्तक के चौथे अध्याय स्त्री–विमर्श,आलोचना के दायरे में,लेखक ने स्त्री–लेखिकाओं,स्त्रीवादी पुरूष लेखकों और समीक्षकों के साक्षात्कारव है। इसमें अंजूदुआ जैमिनी ,डॉ0 हेमा देवरानी ,डॉ0 आनन्द कुमार खरे आदि विद्वानों के साक्षात्कार शामिल हैं । पंचम् अध्याय 'वर्तमान संदर्भों में स्त्री लेखन की दशा एवं दिशा एवं अन्य सामाजिक संदर्भ, मे भारतीय एवं पाश्चात्य चिन्तकों की दृष्टि से स्त्री लेखन पर विचार किया गया है। षष्टम् अध याय,स्त्री–विमर्श उपलब्धियाँ ,मल्यांकन एवं निष्कर्ष है।

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने महिला लेखन और साहित्य पर गम्भीरता से विचार किया है । महिला लेखन की पुरूषवादी समाज ने आसानी से स्वीकार्य नहीं किया है । वर्तमान मे भी महिला लेखन को उतनी मान्यता नही मिल रही जितना पुरूष लेखन को । मैत्रेयी पुष्पा, मृदुला गर्ग, चित्रा, प्रभा खेतान, कृष्णा सोबती, मेहरून्निसा परवेज सदृश नारी लेखिकाओं ने बेहतरीन साहित्य लिखा है ।

लेखक के ये विचार हैं कि आज की नारी ने अपने मौन को तोड़ा है । वह वैचारिक रुप से स्वतंत्र हुई हैं। वह पितृसत्ता के खिलाफ खुलकर बोलने लगी है । आज की नारी न तो पुरूषों से प्रताड़ित है,न देवी बनकर रहना चाहती है बल्कि वह पुरूष की सहभागिनी बनकर रहना चाहती है । पुस्तक के अन्तिम अध्याय में लेखक ने यह प्रश्न किया है कि विज्ञान और तकनीकी के इस युग में आज भी स्त्री को गर्भ में ही किस बात की सजा मिल रही है ? दहेज–विरोधी कानून होने के बावजूद भी स्त्री की बलि क्यों चढ़ाई जा रही है ? बाजारवाद की चकाचौध ने स्त्री देह को प्रदर्शन का जरिया क्यों बना दिया है ? यह ऐसे ज्वलंत प्रश्न है जो कि व्यवस्था के प्रति विरोध प्रदर्शित करते हैं ।

डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव द्वारा इस पुस्तक में हिन्दी साहित्य में स्त्री–विमर्श के क्षेत्र में प्राध्यापकों, बुद्धजीवियों, साहित्यकारों एवं शोध–छात्रों की दृष्टि से सार्थक, गम्भीर एवं चिन्तनशील विचारों को रखा गया है । स्त्री–विमर्श के क्षेत्र मे शोध–छात्रों के लिये यह पुस्तक विशेष उपयोगी है ।

पुस्तक–हिन्दी साहित्य में स्त्री–विमर्श के विविध सरोकार
लेखक–डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव
प्रकाशक–आशा प्रकाशन 8144–आर्य नगर,कानपुर–208002,उत्तर प्रदेश ।
मूल्य–600/-; पेज–248; संस्करण–प्रथम–2016
ISBN : 978–93–81022–57–3

* शोध छात्रा–हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग, डा0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ, उ0प्र0

स्त्री विमर्श का समकालीन परिदृश्य : दशा एवं दिशा

डॉ0 सुरेश एफ कानडे*

युवा आलोचक डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव का मानना है कि जिस तरह नारी सृष्टि का मूल आधार रही है,उसी तरह वह सभ्यता के प्रारम्भ से साहित्य का आधार रही है। साहित्य जिस पूर्णता की अभिव्यक्ति करता है,वह बिना नारी की सहभागिता के बिना अपूर्ण दिखता है। साहित्य में नारी की भूमिका वैदिक सभ्यता से लेकर वर्तमान समय तक कहीं प्रेरणा शक्ति की रही है तो कहीं वह आधार बनाकर सृजन एवं सर्जक का आधार भी रही है। अर्थात् पहले वह अधिकतर साहित्य प्रेरक बनकर या वर्ण्य विषय के रूप में साहित्य से सम्बद्ध रही है। स्त्री लेखन के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी साहित्य की बात की जाये तो मीरा–महादेवी की विरासत से जुड़कर महिला लेखन का एक स्वतंत्र ढाँचा निर्मित होता दिखाई देता है। वर्तमान के महिला लेखन में वह सक्रिय रचनाकार की भूमिका में है। हालाँकि स्त्री लेखन की परम्परा कोई नयी बात नही है और न ही यह आधुनिक युग की देन है बल्कि यह परम्परा बहुत पुरानी है लेकिन यह अलग बात है कि वर्तमान में इनके सन्दर्भगत सरोकार परिवर्तित हो गये हैं और आज इसमें स्त्रियों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है।

पुस्तक की मान्यता है कि आधुनिक काल में स्त्री लेखन की परम्परा में स्त्री नवजागरण के रूप में वह अपने अधिकारों के प्रति सजग हो रही है और न्याय के लिए संघर्ष का पितृक तर्क व्यवस्थाओं एवं नैतिकताओं की धज्जियाँ उड़ा रही हैं। सही अर्थों में देखा जाये तो आज के स्त्री विमर्ष ने पुरुष वर्चस्ववाद के प्रतिमानों का खुलकर विरोध करना शुरू कर दिया है। यही कारण है कि अब पुरुष लेखन के अन्तर्विरोध भी खुलकर सामने आने लगे हैं। सामाजिक परिप्रेक्ष्य में स्त्री लेखन की प्रासंगिकता इसलिए बढ़ गयी है कि उसने स्त्री को हाशियाकृत संसार से बाहर निकलकर उसके भीतर सदियों से पैदा हुई उस यथास्थितिवादी मानसिकता को तोड़ा है जो उसे गुलामी की मानसिकता में जकड़े हुए थी। आज उसने पढ़ना, लिखना एवं बोलना शुरू कर दिया है। यह आवाज भले ही नक्कारखाने में तूती सी हो लेकिन यह तो निश्चित हो गया है कि आज स्त्रियों ने अपने विमर्श के द्वारा समान मानवीय अधिकारों के प्रति जागरूकता दिखाई है।

लेखक ने इस पुस्तक का विषय चुनते समय प्रारम्भ में अपने उदगार व्यक्ति किए हैं–डॉ0 वीरेन्द्र यादव का का मानना है कि मेरे जहन में यह विचार था कि अतीत एवं वर्तमान में इस विषय पर हुये अनुसंधान एवं वर्तमान में हो रहे स्त्री विषयक लेखन ,विमर्श, चिंतन की तस्वीर समाज के लोगों तक पहुँचे। चिंतन की इस परम्परा को काफी प्रयास एवं परिश्रम करने के बाद भी उनका मानना है कि जैसा वह चाहते थे, वैसा कार्य (तस्वीर) नहीं कर पाये । लेकिन इन सबके वाबजूद इसके पढ़ने का आश्वादन आपको अवश्य आएगा। कुल कुल मिलाकर यह लेखक का एक महत्वपूर्ण प्रयास है और साथ ही स्त्री विषयक चिंतन से सम्बन्धित (लेखन के दृष्टिकोण से) या दृष्टि निर्माण प्रक्रिया का आरम्भिक बिन्दु भी, जिसका अभी विस्तार और परिमार्जन होना शेष है। अर्थात अभी यह बहस खत्म नहीं हुई है और इसके अंतहीन दौर में ऐसी ही कुछ और रचनाओं की संभावनाएँ डॉ0 वीरेन्द्र के मन में कौंध रही हैं।

अंत में पुस्तक की मान्यता कुल मिलाकर यह है कि प्रारम्भिक स्त्रियोंद्धारक आन्दोलन का प्रमुख उद्देश्य स्त्रियों के उत्थान और कल्याण के लिए था। इन सुधार आन्दोलनों में स्त्री को केन्द्र बनाकर समाज निर्माण हेतु नवजागरण किया गया। जिसकी परम्परा से विकसित होकर भारतीय समाज व्यवस्था में समकालीन नारी के लिए पोशक तत्व प्राप्त हुए।

पुस्तक का नाम – स्त्री विमर्श का समकालीन परिदृश्य : दशा एवं दिशा

लेखक का नाम – डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव

प्रकाशक – अखण्ड पब्लिशिंग हाऊस

एल–9ए, सेकण्ड फलोर, गली न0 42,

सादतपुर एक्सटेंसन, नई दिल्ली–110094

ISBN-978-81-8435-474-4; मूल्य–रू–450; संस्करण : 2017; पृ0–370

* प्लाट नं. 48, साईं बंगला, प्रोफेसर कॉलोनी, विजडम हाईस्कूल के पीछे,
रामेश्वरनगर, गंगापुर रोड, नासिक–422013 (महाराष्ट्र)

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

भारत में समाजवादी विमर्श के विविध आयाम

नीलम देवी यादव*

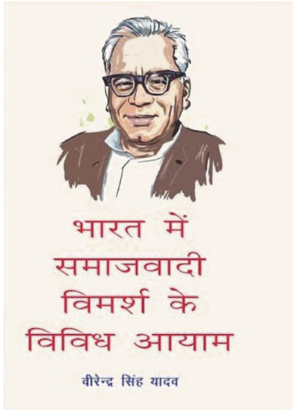

युवा आलोचक डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव की समाजवाद पर अद्यतन पुस्तक है।जिसमें समाजवाद को नए सिरे से परिभाषित किया गया है। सम्पादकीय में लिखा गया है कि प्रचलन में समाजवाद बहुचर्चित शब्द है, किन्तु समग्र रूप में समाजवाद का स्वरूप अब भी निश्चित नहीं है। समाजवाद एक ऐसा सपना है जिसने बीसवीं सदी में दुनिया को सर्वाधिक आन्दोलित किया और दुनिया के अलग–अलग कोनों में अलग–अलग ढंग से लोग समाजवाद को प्राप्त करने के प्रयास करते रहे हैं। अर्थात समाजवाद विषमताओं का उन्मूलन करके विभिन्न समतापरक समाज व्यवस्था के निर्माण के लिए भी अलग–अलग ढंग से इसका प्रयोग किया जाता है, किन्तु इन सबकी मूल प्रेरणा और लक्ष्य एक ही रहा है कि समाज में जाति, धर्म, रंग व भाषा के नाम पर भेदभाव न किया जाय, जिससे समाज में एकता की भावना जागृत हो। जयप्रकाश नारायण, युसुफ मेहरअली, अच्युत पटवर्धन, अशोक मेहता, आचार्य नरेन्द्र देव, सम्पूर्णानन्द आदि की भाँति डॉ0 राममनोहर लोहिया भी भारतीय राजनीति के अन्य महान समाजवादी प्रणेताओं में से एक थे।

सम्पादक की मान्यता है कि भारत के प्राचीन ग्रन्थों में समाजवादी भावना का उल्लेख मिलता है। श्रीमद्भगवत गीता, धर्मशास्त्रों,स्मृतियों तथा हमारा वैदिक साहित्य,समाजवाद की भावना से ओत–प्रोत है। ऋग्वेद तथा बौद्ध धर्मग्रंथों में, विशेषकर 'धम्मपद' में मानव भ्रातृत्व, एकता तथा आध्यात्मिक समानता से संबंधित अनेक भावुकतापूर्ण तथा लोकोपकारी आदर्श मिलते हैं। समाजवाद न तो सम्पत्ति का सिद्धांत है और न राज्य का, बल्कि इन सबसे ऊपर यह एक जीवन दर्शन है, अतः इस दृष्टि से इसका संबंध जीवन के प्रत्येक पहलू से है–सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक, किन्तु आर्थिक तथा सामाजिक पुनर्निर्माण के दर्शन के रूप में समाजवाद भारत में पश्चिमी देशों के प्रभाव से ही विकसित तथा लोकप्रिय हुआ है। समाजवाद चाहे स्त्री हो या पुरुष सबको एक समान जीवन जीने और अपना विकास करने का अधिकार देता है। ऐसा तभी हो सकता है जब समाज में जाति–भेद समाप्त हो, मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण समाप्त हो। इसके लिए शोषितों को एक होकर शोषण की व्यवस्था को बदलना आवश्यक है।

इस पुस्तक में लेखक कुछ प्रश्न भी उठाता है जैसे कि आजकल के समाज में यह भीषण विषमता क्यों है? आखिर इस विषमता का मूल कारण क्या है ? हमारी दृष्टि में इस विषमता का मूल कारण यह है कि उत्पादन विनिमय और वितरण के साधनों पर चंद पूँजीपतियों का अधिकार है। उत्पादन के इन साधनों में मिलों, कारखानों और बैकों आदि में काम करने वालों का इन साधनों पर कोई अधिकार नहीं है। पूँजीपतियों द्वारा अपना माल बेचना भी दूभर होता जा रहा है। शायद यही प्रमुख कारण है कि इस प्रकार उत्पादन की शक्तियों और उत्पादन के साधनों तथा उत्पादन की शक्तियों और विनिमय के बीच घोर असंगतियाँ उपस्थित हो गयी हैं। समाजवाद का उद्देश्य इन्हीं असमताओं और असंगतियों को दूर करना है। हजारों वर्षों से अमीरी–गरीबी का भेद चला आ रहा है, मगर यह कहना गलत है कि हमेशा यही चलता रहेगा, गरीबी शुरू हुई, क्यों शुरू हुई यही तो समाजवाद बताता है इसी में तो श्रेणी संघर्ष का रहस्य है।

इस सम्पादित पुस्तक को ज्ञानवर्धक उपयोगी एवं जनसामान्य की समझ लायक बनाने के लिए अनेक विद्वतजनों के लेखों को सम्मिलित किया गया है। भारत में समाजवादी विमर्श के विविध आयाम नामक प्रस्तुत पुस्तक में समाजवाद से सम्बन्धित विभिन्न समकालीन भारतीय एवं वैश्विक मुद्दों को उठाकर उसके समाधान की कोशिश करने का विनम्र प्रयास किया गया है। सम्पादक अपने इस प्रयास में कितना सफल हुआ है, इस हेतु आपकी प्रतिक्रिया उनके लिए प्रेरणास्रोत का कार्य तो करेगी ही, साथ ही साथ आप सब पाठक बन्धुओं के समीक्षापूर्ण विचार एवं सुझाव उन्हें अगले संस्करण के संशोधन में सहायक भी होंगे। आशा है कि समाजवादी विचारधारा में रूचि रखने वाले पाठकों को यह कृति अवश्य पसंद आएगी।

पुस्तक का नाम – भारत में समाजवादी विमर्श के विविध आयाम
सम्पादक–डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव
प्रकाशन–ए0बी0एस0 बुक्स,बी0–21,शिव कालोनी,बुद्ध बिहार, फेस–2, दिल्ली–110086
ISBN-978-93-86088-12-3; मूल्य–रू–1499.00; पृ0–325
संस्करण : 2016

* शोध छात्रा–इतिहास विभाग, डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

नई सदी का भारत : मुददे, विकल्प और नीतियाँ

डॉ0 विजय कुमार वर्मा*

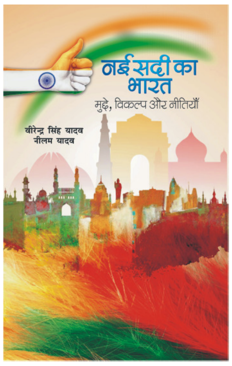

प्रस्तुत पुस्तक की मान्यता है कि भूमंडलीकरण की आँधी ने जहाँ एक ओर हमारे शहरों का नक्शा बदल दिया है, वहीं दूसरी ओर गाँव भी उससे बुरी तरह प्रभावित दिख रहे हैं। प्रत्येक प्रांत की अपनी प्रांतीय भाषा हुआ करती है, ठीक उसी तरह प्रांत में बोली जाने वाली बोलियाँ भी होती हैं किन्तु आज भूमंडलीकरण के चलते बोलियों की उपयोगिता एवं इनकी जीवंतता समाप्त सी होती जा रही है। और वैश्विक संस्कृति का विकृति चेहरा भारतीय ग्रामीण परिवेश में उत्तर आधुनिकता के विविध रंगों में देखने को मिल रहा है। दुनियाँ को एक बाजार में तब्दील करके कुछ लोग बहुतों को बेच–खरीद कर ''यूज और 'थ्रो' कर रहे हैं। ''भूमण्डलीकरण समाज का एक अन्तर्विरोध यह है कि वह एक ही समय में विश्व नागरिक है और स्थानीय भी। इसीलिए धार्मिक विद्वेष, जातीय विद्वेष से वह ऊपर उठ ही नहीं पा रहा है।''

इस पुस्तक में केवल स्याह पक्ष ही नहीं हैं बल्कि इन सबके बावजूद कुछ उजले पक्ष भी हैं जो भारत को आज भी विश्व में महान बनाते हैं। धर्म, दर्शन, कला, संगीत और विज्ञान के क्षेत्र में भारत शताब्दियों तक विश्व के मानचित्र पर चमकता रहा है। आज भी वह दुनिया के उन समृद्धतम और महानतम देशों में से एक है, जिसके पास प्राकृतिक संसाधनों और मानवीय शक्ति की कमी नहीं है। दुनिया भर में फैले भारतीय नागरिक व्यापार, चिकित्सा, इंजीनियरिंग तथा अन्य विभिन्न क्षेत्रों में सफलता के उच्चतम शिखर को छू रहे हैं। दुनिया भर के 70 प्रतिशत सिलीकान वैली पर भारतीयों का कब्जा है। कुछ स्थितियों को छोड़कर यदि बात की जाए तो भारत एक सुप्त महाशक्ति है, अगर वह जाग जाए तो विश्व की अर्थव्यवस्था पर जबरदस्त प्रभाव डाल सकता है।

नई सदी के भारत के भविष्य के बारे में इशारा करती प्रस्तुत पुस्तक की मान्यता है कि कभी मोटर–गाड़ी तो कभी मोबाइल की सहज उपलब्धता आम आदमी तक को हासिल हो जाना और सबसे बड़ी बात यह है कि अपने–अपने समय में इन चीजों की ऐसी उपलब्धता कि इनका 'स्टेट्स–सिम्बल' न बन पाना, उत्तर आधुनिकता की उस उत्तरोत्तरता की ओर संकेत है कि हो सकता है, भविष्य में कभी वैज्ञानिक उपलब्धियों और वैज्ञानिक गति पर आम आदमी का भी वैसे ही अधिकार हो जाए जितना कि आज हवा, पानी, आक्सीजन आदि पर है। यह बात हवाई भी लग सकती है, लेकिन यह ध्यान रखने की बात है कि जब मारकोनी ने बेतार दूरभाष (मोबाइल) के अनुसंधान के संकल्प की घोषणा की थी, तो लोगों को एक बारगी यह लगा था कि वह कुछ ज्यादे ही हवाई–सोच में लगा हुआ है किन्तु परिणाम आज सामने हैं। यह उत्तर आधुनिकता समाज, विज्ञान, राजनीति, आम आदमी की विचारधारा आदि अनेक मोर्चों पर बहुप्रतीक्षित और कौतूहलपूर्ण परिणामों के साथ हाजिर होती हुयी, अनवरत गतिशील रहने वाली अनिवार्य प्रक्रिया है। कभी अद्भुत कल्पनाएँ साकार होकर हमें चौंका देती थीं, तो अब ऐसा भी समय है कि कुछ एक चीजें ऐसे सम्भव या घटित हो जा रही हैं जिनकी हम पूर्व कल्पना ही नहीं कर सकते थे। क्या सचमुच हम यथार्थ, अति यथार्थ से गुजरते हुए कल्पनातीत यथार्थ के समय में खड़े हैं। गुब्बारे से हवाई जहाज तक की कल्पना तो साकार हो चुकी है, अब देखना है कि सुपर मैन और स्पाइडर मैन की कल्पना कौन सा भविष्य का दरवाजा खोल सकती है।

प्रस्तुत पुस्तक में देश के विभिन्न प्रान्तों के उच्च शिक्षा जगत से सम्बद्ध प्राध्यापकों, शिक्षाविदों, बुद्धिजीवियों, साहित्यकारों, अध्यात्म चिन्तकों ,मनोवैज्ञानिकों एवं वैज्ञानिकों के सार्थक चिन्तन, मनन एवं गम्भीर विचारों को रखा गया है जिसमें भारत के समकालीन सरोकारों से सम्बन्धित मुद्दों को उठाया गया है। आशा है कि भारत के नीति नियन्ता एवं शोध छात्रों को यह पुस्तक अवश्य पसंद आएगी।

पुस्तक का नाम – नई सदी का भारत : मुददे,विकल्प और नीतियाँ

सम्पादक – डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव,नीलम यादव

प्रकाशन – ए0बी0एस0 बुक्स, बी0–21, शिव कालोनी, बुद्ध बिहार, फेस–2, दिल्ली.110086

ISBN - 978-93-86088-16-1

मूल्य – रू 1395.00; पृ0–278; संस्करण : 2017

* असिस्टेंट प्रोफेसर – समाजशास्त्र एवं समाजकार्य विभाग
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

हिन्दी साहित्य में समकालीन परिदृश्य के विविध धरातल

नन्हकू प्रसाद यादव*

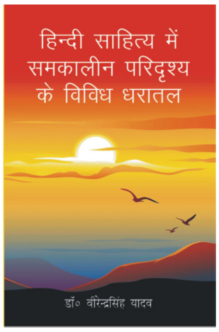

साहित्य और संस्कृति का परस्पर घनिष्ठ संबंध होता है। संस्कृति जिन जीवन–मूल्यों का संचयन करता है, साहित्य उन जीवन–मूल्यों का पोषण करता चलता है। साहित्य या संस्कृति के स्थाई और सर्वमान्य मूल्य क्या हैं जिन्हें हम मनुष्यता की मूल्यवान धरोहर के रूप में सहेज सकें या जिनके कारण मनुष्य सही अर्थों में मनुष्य और उसके द्वारा रची जाने वाली संस्कृति सही मायनों में मानव संस्कृति है। वस्तुतः साहित्य और संस्कृति के स्थायी मूल्य वे हैं जिन्हें मनुष्य ने अपने लंबे सामाजिक जीवन में प्रकृति तथा परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए अर्जित और समृद्ध किया है। संस्कृति मनुष्य की सामासिक सह अस्तित्व का बोध कराती है। साहित्य और संस्कृति युगानुरूप अपने अन्तर में विगत युगों को आत्मसात किये रहती है जिससे उनकी निरंतरता सदा बनी रहती है। लेकिन वर्तमान के साहित्य में इन तत्वों का ह्रास स्पष्ट तौर पर उत्तर आधुनिकता की वजह से हो रहा है।

सम्पादक का मानना है कि हिन्दी साहित्य अपने लगभग हजार वर्ष के अधिक इतिहास में अनेक विरोध एवं प्रतिरोधों को सहते हुए विविध विमर्शों को जन्म देकर आधुनिक से उत्तरआधुनिक हुई है। वास्तविकता यह है कि उत्तर आधुनिकतावाद बीसवीं सदी में साठ के दशक के उन मुक्ति आन्दोलनों से निकला है, जिसने व्यक्ति तथा व्यवस्था, अल्प समूह तथा वृहत समाज, विचारों तथा विसंगतियों, नीतियों, राजनीति व राष्ट्रीयता पर प्रश्नचिह्न ही नहीं लगाए हैं। बल्कि नारी मुक्ति, दलित–दमित–दमन विद्रोह, अश्वेत रोष, शांति मार्च, क्रान्ति, युवा विद्रोह और न जाने कितने छोटे–छोटे आन्दोलनों ने विभेदों और केन्द्रीयता के चक्रव्यूह को तोड़कर समाज को जनसमाज व संस्कृति को जनसमूह की संस्कृति में परिवर्तित कर दिया है। वर्तमान साहित्य में उत्तर आधुनिकता के प्रभाव क्षेत्र का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि यह फिल्म से लेकर फैशन तक, विचार से लेकर विज्ञापन तक, कल्चर से लेकर कॉमिक्स तक,कला से लेकर साहित्य–संस्कृति और यहाँ तक की इतिहास, दर्शन, मीडिया सभी इससे प्रभावित दिखाई दे रहे हैं। परिणामस्वरूप विरोधी विचार,हाशिए पर स्थित लोग,नारीवर्ग,दलित–आदिवासी जनजातियाँ,समलैंगिक स्त्री–पुरूष आदि जिन्हें समाज में सक्रियता व सांस्कृतिक संवाद के दायरे से बाहर रखा जाता था, अब अस्मिता के संघर्ष समूह बनकर केन्द्रीय पात्र के रूप में उभरे हैं।

लेखक का मानना है कि उत्तर आधुनिकतावाद को तात्कालिक परिवेश से जोड़कर यदि इसका मूल्यांकन करें तो वर्तमान के उत्तर आधुनिक समाज के मूल्यों का मानदण्ड मानव–प्रेम नहीं है। अपितु सामाजिक परिवेश के व्यापार एवं बाजार से उसका अटूट रिश्ता भी है। क्या मुक्त बाजार की अवधारणा का प्रवेश संस्कृति और साहित्य के क्षेत्र में भी उतनी ही आसानी से कभी हो पाएगा, जितनी आसानी से वह वर्तमान में आर्थिक और राजनीति क्षेत्र में उभरता चला आ रहा है। यहाँ सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या साहित्य में ऐसी अंदरूनी शक्ति और स्फूर्ति है कि वह प्रभाव और परिवर्तन की दिशा का निर्धारक बन सकता है?.......क्या यह भी असंभव नहीं कि मुक्त बाजार जिसने सदा जीवन को भी बाजार, खरीद–फरोख्त की वस्तु बनाकर उसको बाज़ार में खड़ा किया है और जो मानव की गरिमा को ध्वस्त करने का साधन बना है।

प्रस्तुत पुस्तक में सम्पादक का मानना है कि शायद इसमें किसी को कोई आपत्ति हो कि उत्तर आधुनिक की चालक शक्ति विज्ञान और प्रौद्योगिकी है। संचार क्रान्ति तथा विश्व ग्राम की अवधारणा जिसका परिणाम है। तकनीकी क्रान्ति ने इसे टिकाऊ बनाया है जिसके कारण उत्पादन बढ़ा है। लेकिन उसी अनुपात में मनुष्य के शोषण की दर भी अपेक्षाकृत कम हुई है।

प्रस्तुत पुस्तक इन्हीं कुछ उत्तर आधुनिक स्थापनाओं को व्याख्यायित करती साहित्य के विविध समकालीन चर्चाओं को उजागर करने का कार्य करती नजर आती है। आशा है कि साहित्य में रूचि एवं शोध करने वाले छात्रों को यह पुस्तक पसंद आएगी।

सम्पादक – डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव

पुस्तक का नाम – हिन्दी साहित्य में समकालीन परिदृश्य के विविध धरातल

प्रकाशन – ए0बी0एस0 बुक्स, बी0–21, शिव कालोनी, बुद्ध बिहार, फेस–2, दिल्ली–110086

ISBN - 978-81-932415-5-4, मूल्य – रू. 1395.00, पृ0 – 305, संस्करण : 2017

* शोध छात्र – हिन्दी एवं अन्य आधुनिक भारतीय भाषा विभाग,
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

PEER REVIEW BOARD KRITIKA

डॉ0 वाई0 पी0 सिंह
प्रोफेसर–हिन्दी विभाग
लखनऊ, विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)
दूरभाष न0–9415914942
E-mail - yp.hindi.indology @gmail.com

डॉ0 देवेनबरा
एसोसिएट प्रोफेसर–हिन्दी विभाग
गुवाहटी कालेज बमुनिमाईदम
(BAMUNIMAIDAM), गुवाहटी–781021
दूरभाष न0–9435046970
E-mail - debenbora@gmail.com

डॉ0 मुकेश कुमार मालवीय
असिस्टेंट प्रोफेसर–विधि विभाग
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)
दूरभाष न0–8004851126
E-mail - mukesh9424@gmail.com

डॉ0 किशन यादव
एसोसिएट प्रोफेसर–राजनीति विज्ञान विभाग
बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी (उ.प्र.)
दूरभाष न0–9454054899
E-mail - dr.kishanpolsc@yahoo.com

डॉ0 पुष्पेन्द्र मिश्रा
एसोसिएट प्रोफेसर–वाणिज्य विभाग
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास
विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)
दूरभाष न0–9415103233
E-mail - pushpendramishra.dsmru@gmail.com

डॉ0 राजेश्वर यादव
असिस्टेंट प्रोफेसर–दर्शनशास्त्र विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)
दूरभाष न0–9415789303
E-mail - rpyadavlu@gmail.com

डॉ0 आशुतोष पाण्डेय
एसोसिएट प्रोफेसर–लोक प्रशासन एवं राजनीति विज्ञान विभाग
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)
दूरभाष न0–9411863763
E-mail - ashuparsiya@rediffmail.com

कृतिका इंटरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एंड सोशल साइंसेज
ISSN : 0975-0002 अंक : 19, वर्ष : 10, जनवरी–जून 2017

रजिस्ट्रेशन ऑफ न्यूज पेपर्स रूल्स 1956 (सेन्ट्रल) के अन्तर्गत
'कृतिका' – हिन्दी अर्द्धवार्षिक के सम्बन्ध में स्वामित्व
तथा अन्य विवरण विषयक जानकारी

घोषणा–पत्र

(फार्म–4)

1.	प्रकाशन स्थल	:	1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
2.	प्रकाशन अवधि	:	अर्द्धवार्षिक
3.	मुद्रक का नाम	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
	नागरिकता		भारतीय
	पता		1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
4.	प्रकाशक का नाम	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
	नागरिकता		भारतीय
	पता		1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
5.	सम्पादक का नाम	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
	नागरिकता		भारतीय
	पता		1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
6.	उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव 1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.

मैं डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव एतदद्वारा घोषित करता हूँ कि उपरोक्त विवरण मेरी अधिकतम जानकारी तथा विश्वास के अनुसार दिये गये विवरण सत्य हैं।

दिनांक : जनवरी 2017

हस्ताक्षर
डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

मुद्रक : महक कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिण्टर्स,
15, आजाद नगर, उरई (जालौन)

☞सम्पादक : डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

सदस्यता पत्रक

देश–देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

कृतिका इंटरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एंड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975–0002 अंक : 19, वर्ष : 10, जनवरी–जून 2017

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

प्रधान सम्पादकीय कार्यालय – 303 तीसरा तल, टाईप फाइव, विश्वविद्यालय परिसर,
डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास, विश्वविद्यालय, मोहान रोड, लखनऊ, उ.प्र. 226 017

पत्रांक– दिनाँक–

श्रीमान सम्पादक, कृतिका
303 तीसरा तल, टाईप फाइव, विश्वविद्यालय परिसर,
डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास, विश्वविद्यालय, मोहान रोड, लखनऊ, उ.प्र. 226 017

महोदय,

निवेदन है कि मैं या हमारा विश्वविद्यालय/महाविद्यालय कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल ऑफ हाफ इयरली "ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज, ISSN : 0974–0002, RNI: UPHIN/2008/30136 (साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका) की वार्षिक संस्थागत' सदस्य बनना चाहता है। मैं या हमारी संस्था सम्पादक कृतिका, के नाम व्यक्तिगत या संस्थागत सदस्यता शुल्क भारतीय स्टेट बैंक, मुख्य शाखा लखनऊ को ड्राप्ट या खाता सं. 30358537228, में नकद जमा कर रहा हूँ या रही हूँ।

नाम एवं पद का नाम ....

संस्था का नाम ....

पत्र व्यवहार का पूरा पता पिन कोड सहित ....

फोन/मो. नं. .... EMAIL...

स्थान एवं दिनांक ....

हस्ताक्षर

i/kku lEikndh; dk;ky;
Mk- ohjsUnz flag ;kno
303 तीसरा तल, टाईप 5, विश्वविद्यालय परिसर,
डॉ. शकुन्तला मिश्रा विश्वविद्यालय,
मोहान रोड, लखनऊ, 226017
दूरभाष–07607782917, 09415924888
Email : dr.virendrayadav@gmail.com
Email : kritika_orai@rediffmail.com
Webside :www.kritika.org.in

izcU/ku
vkjk/kuk cqDl
(प्रकाशक एवं वितरक)
124/152–सी ब्लाक, गोविन्दनगर,
कानपुर–208006, उ.प्र.
दूरभाष – 09935007102, 05122651490
Email : aradhanabooks@rediffmail.com
Webside :www.kritika.org.in

कृतिका पत्रिका की वार्षिक संस्थागत सदस्यता से तात्पर्य प्रिन्टेड उतने मूल्य की प्रति या प्रतियाँ (किसी भी अंक की)

आराधना ब्रदर्स कानपुर के नवीनतम् प्रकाशन

पुस्तक	लेखक	मूल्य
स्वर्ग की अदालत	डॉ. परशुराम शुक्ल	300/-
चिकित्सा विज्ञान की खोंजे	डॉ. परशुराम शुक्ल	350/-
बुन्देलखण्ड का साहित्य, कला और संस्कृति	डॉ. परशुराम शुक्ल	350/-
हिन्दी बाल साहित्य का सैद्धांतिक विवेचन	डॉ. परशुराम शुक्ल	500/-
बाल साहित्यकारों की कहानी उन्हीं की जुबानी	डॉ. परशुराम शुक्ल	400/-
हिन्दी बालकाव्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन	मनोज कुमार	400/-
हिन्दी का बाल लोक साहित्य	डॉ. मीना सिंह गौर	400/-
बाल सतसई प्रबोधिनी	स्वामी विजयानन्द	600/-
स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी बाल कविता में वैज्ञानिक चेतना	डॉ. डी.आर. राहुल	300/-
स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी बाल कविता में युगचेतना	डॉ. उमा सिरोनिया	600/-
बाल कविता में सामाजिक–सांस्कृतिक चेतना	डॉ. शिरोमणि सिंह 'पथ'	400/-
हिन्दी बाल साहित्य में मनोरंजन एवं नैतिकता	डॉ. रामशंकर आर्य	400/-
बाल समस्याएँ कारण और निदान	जयजयराम आनन्द	500/-
हिन्दी बाल कविता की प्रवृत्तियाँ	डॉ. उदय सिंह जाटव	500/-
मयंक का हिन्दी बाल साहित्य	डॉ. कंचनलता यादव	500/-
डॉ. अंबेडकर : वैचारिकी एवं दलित विमर्श	डॉ. कालीचरण स्नेही	600/-
मॉरिशस की कहानियों में भारतीय संस्कार–जीवन मूल्य	डॉ. तनूजा चौधरी	300/-
साठोत्तरी लेखिकाओं का स्त्री–विमर्श	डॉ. तनूजा चौधरी	500/-
मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में नारी समस्यायें आधुनिकताबोध	डॉ. सविता मसीह	500/-
मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य में नारी	डॉ. भारती	400/-
मैत्रेयी पुष्पा का कथा साहित्य	डॉ. प्रियंका रानी	400/-
मुकुट बिहारी 'सरोज' और डॉ. सीता किशोर खरे के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. प्रगति	600/-
हिन्दी व्यंग्य लेखन में शरद जोशी का योगदान	डॉ. शिवशंकर यादव	400/-
सौन्दर्यबोध और भारतीय चिन्तन परम्परा	डॉ. पद्मा शर्मा	400/-
हिन्दी महिला उपन्यास लेखन में स्त्री आन्दोलन	डॉ. मुनेश यादव	500/-
शशिप्रभा शास्त्री के कथा साहित्य में नारी	डॉ. अनिता शर्मा	500/-
वैश्विक परिदृश्य में वैदिक ज्ञान–विज्ञान	डॉ. पुष्पा यादव	900/-
मुक्तिबोध सृजन के विविध	डॉ. वन्दना श्रीवास्तव	700/-
जगत् सत्यं ब्रह्म नास्ति	कामता प्रसाद विश्वकर्मा	250/-
साधना सफल है! (कहानी संग्रह)	सीताराम यादव	250/-
टैगोर और रूसो की शिक्षा का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. अनीता यादव	350/-
प्यासे केन के फूल	कुँवर वैरागी	500/-
यात्रा (परिधि से केन्द्र तक)	हरीराम गुप्ता 'निर्पेक्ष'	250/-
हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श के विविध सरोकार	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	600/-
हिन्दी भाषा एक अबाध प्रवाह	डॉ. मीता, डॉ. सुमन	350/-
आधुनिक हिन्दी कविता में लोक चेतना	डॉ. मीता, डॉ. सुमन	350/-
रेणु का कथा साहित्य	डॉ. सुरेश चन्द्र मेहरोत्रा	500/-

रामचंद्रिका में वक्रोक्ति सिद्धांत का अनुशीलन	डॉ. ममता गंगवार	500/-
बुन्देलखण्ड का साहित्य, कला और संस्कृति	डॉ. परशुराम शुक्ल	350/-
बुंदेलखण्ड के साहित्यकारों का साहित्यिक अवदान	डॉ. छाया राहुल	700/-
बुन्देलखण्ड की साहित्य सर्जना	डॉ. किरण शर्मा	350/-
आधुनिक बुन्देली काव्य	डॉ. कालीचरण स्नेही	300/-
जायसी और कबीर : सामासिक संस्कृति के संदर्भ में	डॉ. डी.आर. राहुल	600/-
समीक्षा रेखायें	डॉ. कामिनी	400/-
उरैन	डॉ. कामिनी	350/-
आलेख	डॉ. कामिनी	350/-
हाशिये पर (कहानी संग्रह)	डॉ. कामिनी	150/-
संस्कार गीत और लोक जीवन	डॉ कामिनी	200/-
वृंदावनलाल वर्मा के उपन्यासों में नारी	डॉ. रामप्रकाश जाटव	350/-
चिड़ियाँ चुग गईं खेत (लघुकथा संग्रह)	डॉ. राज गोस्वामी	300/-
सुनहरी धूप (काव्य–धारा)	मंजू एस. सिंह	200/-
सबके अपने अमित...	सं. डॉ. निरंजन कुमार	300/-
गुलदस्ता	डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह	350/-
बंशी उठी पुकार	डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह	250/-
प्रदोष नृत्य	डॉ. हरीशचन्द्र शर्मा	250/-
मृत्यु पर विजय	डॉ. हरीशचन्द्र शर्मा	300/-
रामाश्रय (खण्डकाव्य)	डॉ. हरीश चन्द्र शर्मा	500/-
प्रेमचन्द्र युगीन उपन्यास लेखिकाएँ और उनका रचना संसार	डॉ. संध्या शर्मा	150/-
हिन्दी यात्रा साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि	डॉ. संध्या शर्मा	500/-
'अंधेरे में' आख्यान का स्वरूप	डॉ. मीता अरोरा	200/-
पं. श्रीवर चतुर्वेदी : व्यक्ति एवं अभिव्यक्ति	डॉ. रामकिशोर यादव	500/-
जैनेंद्र का कथालोचन	डॉ. वन्दना श्रीवास्तव	350/-
'रामायण' और 'महाभारत' में राजनीतिक विचार	डॉ. कान्ती शर्मा	500/-
स्थानवाची नामों का समाज भाषा शास्त्रीय विश्लेषण	डॉ. कमलेश प्रजापति	350/-
प्रसाद नाट्य साहित्य में हास्य–व्यंग्य	डॉ. संगीता अग्रवाल	200/-
नयी कहानी : अस्तित्व एवं स्वरूप	डॉ. संगीता अग्रवाल	250/-
शिवानी के उपन्यासों में कूर्मांचलीय लोक संस्कृति	डॉ. अलका मिश्र	300/-
महाप्राण निराला : पुनर्मूल्यांकन	डॉ. प्रदीप मिश्र	400/-
शृंगार शिरोमणि का रस–भाव विवेचन	डॉ. प्रदीप मिश्र	500/-
शिवानी के उपन्यासों के पात्र	डॉ. सुषमा पुरवार	400/-
कालजयी नाटककार लक्ष्मीनारायण मिश्र	डॉ. मंजुला श्रीवास्तव	400/-
भारतीय नारी का धर्मशास्त्रीय अध्ययन	डॉ. पूजा श्रीवास्तव	300/-
महान वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टीन	डॉ. जगदीश त्रिपाठी	200/-
महान वैज्ञानिक गैलीलियो गैलिली	डॉ. जगदीश त्रिपाठी	200/-
महान वैज्ञानिक बैंजामिन फ्रैंकलिन	डॉ. जगदीश त्रिपाठी	200/-
महान वैज्ञानिक आइजक न्यूटन	डॉ. जगदीश त्रिपाठी	200/-
महान वैज्ञानिक सी.वी. रामन	डॉ. जगदीश त्रिपाठी	200/-

विज्ञान पहेलियाँ	चन्द्र प्रकाश शर्मा	200/-
मानव जीवन और पेड़ पौधे	डॉ. शिवानी शुक्ला	250/-
संतोष का फल	रघुपति सिंह	175/-
आसमान छूते विकलांग	सुखदेव सिंह सेंगर	200/-
भारत के अमर वीर	सुखदेव सिंह सेंगर	350/-
साहित्य के समुद्र गुरुदेव	सुखदेव सिंह सेंगर	250/-
तुम न आये सितारों को नींद आ गई	मंजुल मयंक	300/-
मेरी हम जिन्दगी मेरी हमशाइरी	डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह	200/-
गीत से नवगीत	डॉ. शुभा श्रीवास्तव	250/-
उर्वशी काव्य में नारी चेतना	डॉ. मीता अरोरा	200/-
उठी हाट के हम व्यापारी	रामस्वरूप	80/-
सबका अंतरिक्ष	डॉ. सीता किशोर	150/-
इस दौर से गुज़रे हैं हम	डॉ. सीता किशोर	200/-
सिर्फ रेत ही रेत	डॉ. कामिनी	100/-
सहमे सहमे अक्षर	डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह	300/-
अनाम सखे	डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह	150/-
नारी स्वर	ज्ञानचन्द्र गुप्त	200/-
पुरवा	मंजु सिंह	200/-
मनन और मूल्यांकन	डॉ. विश्वम्भरनाथ	250/-
साहित्यिक एवं सांस्कृतिक निबन्ध	डॉ. कैलाश नाथ द्विवेदी	150/-
स्थान नाम बोलते हैं	डॉ. कामिनी	75/-
जन्म जन्मान्तर	मंजु सिंह	200/-
महाकवि भवभूति के नाटकों में ध्वनि तत्व	डॉ. शिवबालक द्विवेदी	225/-
पं. बनारसी दास चतुर्वेदी व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डॉ. कालीचरण 'स्नेही'	400/-
वासुदेव गोस्वामी और उनका साहित्य	डॉ. श्रीमती गीता पाण्डेय	150/-
विचार–वीथी (निबन्ध–संग्रह)	डॉ. पुरुषोत्तम बाजपेयी	75/-
बुंदेलखंड की पूर्व रियासतों में पत्रपांडुलिपियों का सर्वेक्षण	डॉ. सीता किशोर	250/-
अपराधी कल्याण के विविध आयाम	डॉ. ए. एन. अग्निहोत्री	300/-
दतिया जिले में पत्र–पाण्डुलिपियों का सर्वेक्षण	डॉ. कामिनी	120/-
ग्वालियर संभाग में व्यवहृत बोली रूपों का भाषा अध्ययन	डॉ. सीता किशोर	200/-
भदावरी बोली का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन	डॉ. श्यामसुन्दर सौनकिया	150/-
हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में नारी	डॉ. हरिशंकर शर्मा	140/-
संस्मरण और संस्मरणकार	डॉ. मनोरमा शर्मा	60/-
ब्रजनंदन व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डॉ. ओमप्रकाश सिंह	60/-
स्वच्छ भारत अभियान (मुद्दे–समस्यायें–संभावनायें)	डॉ. अरविन्द शुक्ला	595/-
स्वच्छ भारत अभियान : चुनौतियाँ एवं अवसर	डॉ. अरविन्द शुक्ला	650/-
उभरती पर्यावरणीय चिंताएँ एवं सतत् विकास	डॉ. अरविन्द शुक्ला	600/-
पर्यावरण एवं अक्षय विकास	डॉ. अरविन्द शुक्ला	650/-
वैश्विक पर्यावरण एवं सतत् विकास	डॉ. अरविन्द शुक्ला	595/-
नई सदी में पर्यावरण : चिंतन के विविध परिदृश्य	मनोज कुमार यादव	995/-

भारत में समावेशी एवं सतत् विकास	डॉ. सपना, डॉ. शुक्ला	850/-
भारत में उच्च शिक्षा दशा एवं चुनौतियाँ	डॉ. उमेश शाक्य	600/-
राष्ट्रवादी–मार्क्सवादी इतिहास लेखन महात्मा गांधी	डॉ. सुप्रिया वर्मा	500/-
भारत का समाजवाद : दशा एवं दिशा	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	500/-
डॉ. लोहिया का समाजवाद एवं वैचारिक विमर्श	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	600/-
डॉ. लोहिया का समाजवादी विमर्श	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	600/-
डॉ. लोहिया का समाजवाद एवं सामाजिक समरसता	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	600/-
डॉ. लोहिया का समाजवाद एवं अर्थ दर्शन	डॉ. यतीन्द्र नाथ शर्मा	500/-
भारतीय राजनीतिक–सामाजिक समस्यायें	डॉ.(श्रीमती) राजेश जैन	600/-
भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में उ.प्र. की महिलाओं का योगदान	डॉ. संजू	400/-
राजपूत कालीन सामाजिक विषमताएँ	डॉ. प्रशांत सिंह	500/-
पंचायती राजव्यवस्था में महिलाओं की सहभागिता	डॉ. अनीता	400/-
चाणक्य नीति : वर्तमान में प्रासंगिकता	डॉ. ममता गंगवार	600/-
विश्व पर्यावरण एवं राजनीतिक संघर्ष	डॉ. आर.के. त्रिपाठी	400/-
Communication Skills & Higher Education	Dr. Sapana Pandey	750/-
Environmental Issues & Sustainable Development	Dr. Arvind Shukla	600/-
Environmental Concerns & Clean India Campaign	Dr. Arvind Shukla	595/-
Swachh Bharat Campaign (Administrative Perspectives Issues & Challenges)	Dr. Arvind Shukla	595/-
Global Environment & Sustainable Development	Dr. Arvind Shukla	595/-
A Journey Into Religious Freedom	Fr. Jerom Paul	400/-
The Permanent Synod of the East	Fr. Jerom Paul	400/-
Dalit Politics in Uttar Pradesh : A Study of Bahujan Samaj Party (B.S.P.)	Dr. Ravi Ramesh Shukla	650/-
Khilafat Movement	Dr. Razia Nayab	500/-
Arun Joshi : An Exploration of the Self	Dr. Anjita Singh	500/-
Tourism Industry in Himanchal Pradesh	Dr. Tiwari	400/-
Modern English Poetry	Dr. Satish Kumar	400/-
Speech Act analysis of Political Discourse	Dr. Kamalakar Jadhav	350/-
Critical Essays of Indian English Drama	Dr. R.T. Bedre	450/-
Socio Realism in Indian English Drama	Dr. R.T. Bedre	800/-

नोट : (1) हमारी संस्था महाविद्यालय/विश्वविद्यालय एवं सार्वजनिक पुस्तकालय हेतु समस्त विषयों में समस्त प्रकार की पुस्तकों की आपूर्ति आपकी माँग के अनुसार करती है।

(2) पुस्तकों का आदेश भेजते समय अपना नाम, पता, पिनकोड व फोन नं. लिखें या मेल करें।

आराधना ब्रदर्स प्रकाशक एवं वितरक

124/152–सी ब्लाक, गोविन्द नगर, कानपुर–208 006 (उ.प्र.)

दूरभाष : 09935007102, 09889121111, 0512–2651490 दूरभाष : aradhanabooks@rediffmail.com